उ. प्र. विधानसभा में विपक्षी दलों की भूमिका

1952-86

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी.एच.डी.
(राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोधप्रबन्ध

निर्देशक–

डा० राजेन्द्र कुमार

एम०ए०पी०एच०डी०

राजनीति विज्ञान विभाग दयानन्द
वैदिक महाविद्यालय
उरई (उ० प्र०)

प्रस्तुति–

श्रीमती पुष्पलता गुप्ता

एम०ए० राजनीति विज्ञान
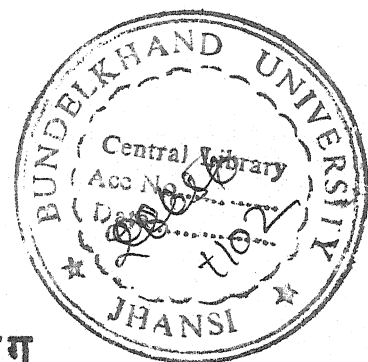
राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ०प्र०)

1993

CERTIFICATE

It is certified that the Thesis entitled "Role of Opposition in U.P. Legislative Assembly, 1952-86" is being Submitted by Mrs. Pushplata Gupta for the award of Ph.D. in Political Science of Bundelkhand University, Jhansi (U.P). This is an Original record of candidate's work carried under my supervision and guidence and has never been submitted for the award of Ph.D. Degree in any University. Mrs Pushplata Gupta has attended more than 200 days.

23.XI.93

(DR. RAJENDRA KUMAR)
Department Of Political Science,
D.V. Post Graduate, College,
ORAI, (U.P.)

-:: समर्पण ::-

स्वर्गीय नाना सत्तीदीन गुप्ता

को, जो

इस

"शोध-प्रबन्ध"

को

पूरा करने में

मेरे

अजस्र प्रेरणा स्रोत

रहे

%
%%%
%%%%%
%%%%%%%
%%%%%
%%%
%

-::: प्राक्कथन :::-

विधान मण्डल का राज्य के संवैधानिक ढ़ांचे और राजनैतिक जीवन में प्रमुख एवं केन्द्रीय स्थान होता है । यही वह धुरी है जिसके चारों ओर अन्य सभी राजनैतिक संस्थाएँ घूमती हैं । यह राष्ट्रीय नव निर्माण का माध्यम है । अभी तक हमने राजनैतिक , आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में जो भी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं उन सबका श्रेय विधान सभाओं को ही जाता है। भविष्य में शान्तिपूर्ण व संवैधानिक तरीकों से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने का साधन विधान मण्डल ही हैं । एक लोकतंत्रीय व्यवस्था के माध्यम से जिसमें कि जनता संप्रभु होती है, समाज वादी समाज का निर्माण करना , सबके लिए वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं है । हमारे जन प्रतिनिधि इस उद्देश्य के लिए निरन्तर संघर्षरत हैं ।

साधारणतया सर्वसाधारण की प्रतिपक्षी जनप्रतिनिधियों के सम्बन्ध में यह धारणा है कि वे दलीय राजनीति के दल-दल में फँस कर समाज व राष्ट्रीय हितों की अवहेलना कर अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण करते हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विभिन्न विधान मण्डलीय गतिविधियों के अन्तर्गत विपक्षी विधायकों के कार्य व योगदान के मूल्यांकन के साथ-2 यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि भारतीय संघ के हृदय प्रदेश उत्तर प्रदेश की विधान सभा में विरोध पक्ष का आचरण कैसा रहा । क्या उन्होने संसदीय प्रणाली में आस्था रखते हुए लोकतंत्र के सिद्धान्तों व आदर्शों के अनुरूप कार्य किया अथवा इसके विपरीत ? इस शोध प्रबन्ध में चतुर्थ आम चुनाव के उपरान्त दल-बदल , संयुक्त विधायक दल का निर्माण, सरकारों के गठन व दलों के एकीकरण आदि प्रक्रियाओं में विपक्षी विधायकों के कार्य व व्यवहार की भी समीक्षा की गयी है ।

यह शोध प्रबन्ध मूलतः प्राथमिक स्रोतों , जिसमें विधान सभा की दैनिक कार्यवाहियाँ , विधान सभा के संक्षिप्त सिंहावलोकन , विधानसभा में दैनिक कार्यवृत्त , समितियों के प्रतिवेदन तथा उत्तर प्रदेश विधान सभा सचिवालय से प्रकाशित सामग्री पर आधारित है । व्यवहारिक जानकारी के लिए विपक्षी विधायकों से प्रत्यक्ष भेंट वार्ता तथा प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएँ एकत्र की गयीं और इस जानकारी के आधार पर शोध कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया गया ।

मैं अपने निर्देशक परम श्रद्धेय डा0 राजेन्द्र कुमार पुरवार की हृदय से आभारी हूँ जिनके कुशल एवं विद्वता पूर्ण निर्देशन में मैं यह शोध कार्य पूर्ण कर सकी । मैं आगरा कालेज आगरा के भू0पू0 विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) डा0 सत्यनारायण दुबे , क्राइस्टचर्च कालेज, कानपुर के पूर्व विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) डा0 रामगुलाम गुप्त , श्रीमती जयश्री पुरवार , विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान , दयानन्द वैदिक कालेज, उरई तथा श्री कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया , राजकीय महाविद्यालय शिवराजपुर (कानपुर) के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होने अपने अमूल्य सुझावों से मुझे अपना शोध कार्य पूर्ण करने में सहायता की ।

मैं लोक सभा सचिवालय , नई दिल्ली तथा संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान , नई दिल्ली की आभारी हूँ जहाँ से मुझे अपेक्षित जानकारी प्राप्त करने में सहयोग मिला । मैं उत्तर प्रदेश विधान सभा सचिवालय पुस्तकालय , लखनऊ तथा उ0प्र0 विधान सभा पुस्तकालय,लखनऊ के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आभारी हूँ जिन्होने मुझे न केवल पुस्तकालय में अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की अपितु अध्ययन में आने वाली समस्त बाधाओं को अपने सहयोग एवं मार्ग दर्शन से यथासम्भव दूर किया और मेरे मनोबल को बनाये रखा ।

मैं अपने भाइयों अरबिन्द कुमार एवं संजय कुमार तथा अपनी बहनों श्रीमती मधुलता गुप्ता एवं श्रीमती स्नेहलता के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होने इस शोध प्रबन्ध को तैयार करने में मुझे अपना सहयोग देकर मेरे मनोबल को बनाये रखा ।

पुष्पलता गुप्ता

श्रीमती पुष्पलता गुप्ता
एम0ए0, राजनीति विज्ञान,

विजय दशमी-
24,अक्तूबर, 1993
निवासः:-

श्री हरगोबिन्द गुप्ता, एडवोकेट,
6/229,विवेक नगर,
हमीरपुर (उ0प्र0)

अनुक्रमणिका

अध्याय - 1, भूमिका

(क) विपक्ष की अवधारणा
(ख) विपक्ष का योगदान और उसके कार्य
(ग) प्रजातंत्र में विपक्ष की भूमिका

भूमिका

लोकतंत्रीय व्यवस्था में सत्ता दल के साथ ही विपक्षी दल की अहम् भूमिका होती है। वास्तव मे विपक्ष लोकतन्त्र का पूरक है। संसदीय शासन की सफलताओं के लिए यह आवश्यक है कि व्यवस्थापिका सरकार पर नियन्त्रण करे। शासक दल द्वारा राजनैतिक, आर्थिक व प्रशासनिक मामलों में उचित मार्गदर्शन दलीय पद्धति के कारण सम्भव नहीं है। इसके लिए एक सुगठित, सशक्त व सुयोग्य विपक्ष की आवश्यकता होती है। सरकार को निरंकुश होने से रोकने में और नागरिक अधिकारों के सजग प्रहरी के रूप में भारतीय विपक्ष की भूमिका इतिहास का एक प्रामाणिक तथ्य है।

भारत नें लोकतंत्र का वरण किया है और उसके हृदय प्रदेश उत्तर प्रदेश में विपक्षी दलों ने लोकतंत्र के विकास में, संसदीय परम्पराओं की स्थापना में और शासन को जनोन्मुखी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यदि एक ओर विपक्ष ने विधान मण्डल के बाहर प्रदेश की जन समस्याओं को लेकर जन आन्दोलन और याचनाओं के माध्यम से जनमत जाग्रत करने में और शासन को जनहितैषी बनाने का विशिष्ट कार्य किया है, तो विधान सभा में संसदीय प्रणाली के माध्यम से कानून निर्माण में व कार्य पालिका को संवेदनशील बनाने में उसने प्रेरणादायी भूमिका निबाही है। इस सन्दर्भ में इस प्रान्त के विपक्ष में देश की अन्य विधान सभाओं के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया है व राजनीति को एक नई दिशा दी है।

लोकतंत्र चर्चा पर आधारित होता है और चर्चा के अन्तर्गत तर्क और वितर्क पूर्वानुमानित होते है। इसीलिए विधान मण्डल को मन्त्रणात्मक निकाय कहा जाता है, शासी निकाय नहीं। अतः लोकतंत्र का सार मूलतः इस तथ्य में है कि बहुजन का मार्ग प्रशस्त हो तथा अल्पमत को कहने का अवसर मिले ताकि सत्य का उद्घाटन हो सके। कहा भी गया है "वादे वादे जयते तत्व बोधें" जे.एस.मिल ने इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि विवेचना की स्वतन्त्रता के अभाव में सत्य का सम्पूर्ण पक्ष प्रकाश में नही आता(1) और यह वहीं सम्भव है जहाँ एक सशक्त विपक्ष है।

शासन की संसदीय प्रणाली बर्तमान स्वरूप में दो शताब्दियों के मध्य विकसित हुई एक आधुनिक घटना है और उसी प्रकार संसदीय विपक्ष भी एक नवीन विचारधारा है। फिर भी ग्रीस और रोम के नगर राज्यों में जनत्रन्त्रात्मक शासन के कुछ लक्षण मौजूद थे और शासन की नीतियों व कार्यप्रणालियों में विपक्ष की प्रणाली दृष्टिगोचर होती थी (2) उदाहरण के लिए रोम के नगर राज्यों में एक संस्था थी जिसे ट्रिव्यून कहा जाता था(3) यह संस्था शासन के द्वारा लिए गये निर्णयों का विरोध कर सकती थी तथा विधायिका (जिन्हें सीनेट कहा जाता था) के द्वारा लिए गये कदमों को अस्वीकृत कर सकती थी। (4)

---

(1) मिल स्टुयर्ट "लिबर्टी मास्टर्स आफ पॉलीटिकल थॉट" वाल्यूम 3 ग्रेटब्रिटेन 1961 पृ0 139–40

(2)फर्टयाल एच.एस. रोल आफ अपोजीशन इन इन्डियन पार्लियामेन्ट इलाहाबाद 1971 पृ0 1.

(3) तदैव पृ0 1–2.

(4) तदैव पृ0 2 पैरा 1.

मध्य युग के सामन्तशाही राजतंत्र में भी शासन में विपक्ष के कुछ लक्षण मौजूद थे। राजा के अधिकारों को सीमित करने के लिए चर्च व विधायिका थी। कार्य पालिका से विधायिका का अलग होना भी शासन में विपक्ष का लक्षण था। (1) किन्तु विपक्ष एक अलग संस्था के रूप में नहीं था। मध्यकालीन अंग्रेजी संसद राजा का विरोध कर सकती थी किन्तु उसकी कार्यपालिकीय शक्ति नहीं छीनती थी। (2)

संसदीय विपक्ष के विचार का विकास सन् 1688 में महान क्रान्ति के बाद शुरू हुआ, कालान्तर में घटनाक्रम के पश्चात् यूरोप महाद्वीप में फ्रांस में (अल्ट्रा रॉयलिस्ट) द्वारा, जो कि तत्कालीन शासक लुई 18 वें की उदारवादी प्रतिनिधि संस्था से असंतुष्ट थे, संगठित विपक्ष की स्थापना की गई।(3) ब्रिटिश राज्य प्रणाली में विपक्ष एक संस्था के रूप में 19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध 1938 में विकसित हुआ। जब जान कैम हाब हाउस जिसे कि रैडिकल स्टेट्स मैन की ख्याति प्राप्त थी ने शाही विपक्ष शब्द का प्रयोग किया।(4) इसके पश्चात 20वीं शताब्दी में पराजित दल द्वारा छाया मंत्रिमण्डल गठित करने की प्रथा प्रचलित हुई। एक विधिक संस्था के रूप में विपक्ष की सम्पुष्टि 1937 के "दि मिनिर्स्टस आफ दि क्राउन ऐक्ट" द्वारा हुई जिसमें ब्रिटिश संसद ने विपक्षी दल के नेता को वेतन देने की व्यवस्था की थी। (5) विपक्ष उसको कहा जाता था जिसके सत्ता पक्ष के बाद सर्वाधिक सदस्य होते थे और किसी भी संशय की अवस्था में विपक्ष की भूमिका अदा करेंगे इसका निर्णय संसद का अधिष्ठाता करता था। (6) कनाडा, आस्ट्रेलिया व दक्षिण अफ्रीका के संघ के संविधानों के द्वारा क्रमशः 1905, 1920, 1946 में विपक्ष के नेता को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई तथा भारत में सर्वप्रथम 1969 में विपक्षी दल व उसके नेता को लोकसभा में वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। (7) क्योकि भारतीय राजनीति की यह विडम्बना रही है कि यहाँ पर 1967 से पूर्व एक दलीय आधिपत्य कायम रहा एवं चौथे आम चुनाव व 1969 में सत्तारूढ़ दल कांग्रेस में फूट के कारण प्रतिपक्ष की शक्ति में वृद्धि हुई।

(क)विपक्ष की अवधारणा–

वेस्टमिनिस्टर के गणतन्त्रों में विपक्ष को माननीय राजा का छाया मंत्रिमण्डल कहा जाता है अथवा इसे वैकल्पिक मंत्रिमण्डल कहा जा सकता है। गिल्वर्ट कैम्पियन ने संसदात्मक विपक्ष को निम्नलिखित शब्दों में कहा है कि 'विपक्ष किसी भी समय एक यूनिट के रूप में सुगठित अल्पमत है जिसे कि विभागीय मान्यता प्राप्त है, जिसे विभाग की कार्यप्रणाली का अनुभव है और जो शासन चलाने के लिए तैयार है जबकि मंत्रि मण्डल ने देश का विश्वास खो दिया है।" (8) इसी प्रकार इर्स्किन मे ने कहा है कि "सरकार द्वारा त्यागपत्र दिये जाने पर अल्प मत वाला सबसे बड़ा दल ही सरकार बनाने के लिए तैयार रहता है। (9) इस प्रकार ब्रिटेन में हाउस

---

(1) फर्टयाल एच.एस. रोल आफ अपोजीशन इन इन्डियन पार्लियामेन्ट इलाहाबाद 1971 पृ0 2.

(2) तदैव पृ0 2–3.

(3) मार्क्सिज्म, कम्युनिज्म एण्ड वैस्टर्न सोसाइटी : एकम्परैटिव इन साइक्लोपेडिया, एडीटेड बाइ, कनिंग, सी0डी0 वाल्यूम 6 पृ0 158.

(4) टर्नर सी0एफ0 दि शैडो कैबिनेट इन ब्रिटिश पालीटिक्स पृ0 2. (5) मुखर्जी ए0आर0 पार्लियामेन्टरी प्रोसीजर इन इन्डिया कलकत्ता आक्स फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, सैकेन्ड एडीशन 1967 पृ0 35. (6) जे0 हारवे एल ब्रदर दि ब्रिटिश कान्स्टीटयूशन लन्दन 1963 पृ0 150–151. (7) कौल एवं शकधर संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार पृ0 117. (8) कैम्पियन गिल्वर्ट, गर्वन्मेन्ट सिन्स 1918, लन्दन 1951 पृ0 19. (9) मेइर्स्किन पार्लियामेन्टरी प्रेक्टिस लन्दन 922, वर्ष 2, 20वाँ संस्करण 1983 पृ0 252.

आफ कामन्स में उस विपक्षी दल को जो वैकल्पिक सरकार बनाने की स्थिति में हो, मान्यता प्राप्त विपक्षी दल माना जाता है।

परन्तु भारतीय संसद में किसी दल को सरकारी तौर पर विपक्षी दल के रूप में मान्यता देने के लिए यह कसौटी नही अपनायी जाती है। भारत में सदस्यों के किसी संघ को जो संसद की दोनों सभाओं में से किसी एक में संसदीय दल गठित करने का प्रस्ताव करता हो, निम्नलिखित शर्तें पूरी करना चाहिए :-

(1) इसकी एक सुस्पष्ट विचारधारा व कार्यक्रम होना चाहिए और इसे एक सामंजस्य पूर्ण इकाई होना चाहिए, जो संगठित रूप में विकसित होने में समर्थ हो।

(2) सभा के अन्दर और सभा के बाहर इसका कोई संगठन होना चाहिए।

(3) सभा में इसकी ऐसी न्यूनतम सदस्य संख्या होनी चाहिए जो सभा में गणपूर्ति के लिए अपेक्षित है। अर्थात उसकी सदस्य संख्या सभा की बैठक के लिए अपेक्षित गणपूर्ति की संख्या से कम नहीं होना चाहिए। इस समय यह संख्या संसद की प्रत्येक सभा की कुल सदस्य संख्या का 10 वाँ भाग है। (1)

यदि कुछ संघटक ग्रुप मिलकर ऐसी पार्टी बना ले जिसका संसदीय कार्य के लिए एक साझा कार्यक्रम हो और जिसका एक साझा नेता हो, जो सभा में उनकी ओर से बोले तो उन्हें सरकारी तौर पर विपक्षी पार्टी के रूप में मान्यता दिये बिना सभा में काम करने के सीमित प्रयोजनों के लिए संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता दी जा सकती है, जैसा राज्यसभा में किया गया है। जहां एक या दो सदस्यों वाले कुछ छोटे ग्रुप सभा में समन्वय बनाये रखने व काम करने के प्रयोजनों के लिए यू.रा.यम. (असम्बद्ध सदस्य) के नाम से संगठित हो गये है। (2)

विश्व के सभी देशों में विपक्ष विद्यमान रहा है चाहे वहाँ पर एक पार्टी व्यवस्था, द्विदलीय व्यवस्था हो और चाहे बहुदलीय संसद हो। चूंकि एक दलीय प्रणाली में प्रति पक्ष को एक अलग संस्था के रूप में नहीं रखा जा सकता था अत: वह विपक्ष एक असहयोगी समूह के रूप में रहा जिसका झुकाव अल्पमतीय हो। यह असहयोगी समूह दल की सभाओं (मीटिंग) में तीक्ष्ण आलोचना कर सकता था उदाहरणार्थ – इटली में फासिस्ट सदैव वामपंथी, दक्षिण पंथी एवं मध्यम पंथी में बटे हुए थे। जर्मनी की नाजी पार्टी में 1934 के पहले विभिन्न प्रकार के मतभेद मौजूद थे।। इसी तरह रूसी प्रणाली की स्थिति थी, किन्तु इस आन्तरिक विपक्ष को आलोचना करने की स्वीकृति नही थी। स्टॉलिन के आखिरी वर्षो में यह और भी कठिन हो गया। किन्तु जिन देशों में विरोध प्रकट करने की अनुमति नही प्रदान की जाती वहाँ असहमत वर्ग ''छदम् वेश'' में सत्ता पक्ष के विरूद्ध किसी न किसी रूप में क्रियाशील रहता रहा है।

द्विदलीय प्रणाली में विपक्ष एक वास्तविक विरोधी दल का स्वरूप धारण करता है क्योंकि ऐसे राज्य

---

(1) कौल एम.एन. एन्ड शकधर एस.एल.,प्रैक्टिस एन्ड प्रोसीजर आफ पार्लियामेन्ट, दिल्ली मैट्रो पालिटन 1979, पृ0 288.

(2) अग्रवाल सुर्दशन (महासचिव राज्यसभा), संसद में विपक्ष, उ0प्र0 विधानसभा स्वर्ण जयन्ती स्मारिका 1937-1987, पृ0 81-82.

जहाँ मुख्य रूप से दो राजनीतिक दल ही प्रधान होते है, निर्वाचन में उन्हें प्राप्त मतों की संख्या में तथा विधान मण्डलीय स्थानों की संख्या में कोई अधिक अन्तर नहीं होता। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में 1950–51 में सत्तारूढ़ लेबर पार्टी की सदस्य संख्या विरोध पक्ष से मात्र 17 (1), तथा 1951–54 में सत्तारूढ़ दल कन्जरवेटिव पार्टी की सदस्य संख्या विपक्ष से मात्र 26 अधिक थी (2) इसी प्रकार 1964–66 में लेबर पार्टी के सदस्यों की संख्या प्रतिपक्ष से मात्र 20 अधिक थी (3) ऐसे देशों में विपक्ष सत्ता पक्ष के गले में फाँसी के फन्दे की भाँति हमेशा लगा रहता है। हेराल्ड जे. लास्की ने इंगित किया है कि दो और केवल दो दल एक संसदात्मक गणतन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। (4) इंग्लैण्ड में विपक्ष को बड़े अक्षरों में (ओ) से वर्णित किया जाता है क्योंकि यह विपक्ष के अन्दर एक सरकार होती है। (5) ब्रिटेन के सन्दर्भ में यह कहा जाता कि वहाँ का प्रधानमंत्री विपक्षी दल के नेता को अपनी पत्नी से भी अच्छी तरह जानता है।(6) ''सरकैम्पियन'' के अनुसार केवल ब्रिटिश दलीय व्यवस्था ही उत्तरदायी विपक्ष को जन्म दे सकती है, जहाँ विपक्ष को सरकारी मान्यता व मान्यता प्राप्त अधिकार हैं। (7) इसीलिए सत्ताधारी दल और विपक्ष अपनी भूमिका को पहचानते है । गैर सत्ताधारी दल (विपक्ष) सत्ताधारी दल पर भावनात्मक आक्रमण करते है तथा सत्ताधारी दल आलोचना को रोकने का प्रयास नही करता, अतः इसका अर्थ यह होता है कि सरकार विपक्ष द्वारा उठायी गई आलोचना को स्वीकार करती है। (8)

बहुदलीय प्रणाली में विपक्ष अकसर विभिन्न असमान मतीय समूहों का संगठन होता है। यह समूह अकसर एक दूसरे से तब तक स्पर्धा करते है जब तक कोई एक दल बहुमत में नहीं आ जाता। अकसर यह स्थिति लोकतान्त्रिक देशों में पायी जाती है क्योंकि यह एक विकल्पीय सरकार की तरह कार्य नहीं करते, चूँकि यह खुद असमान दलों से बना होता है तो अगर यह सत्ता प्राप्त भी कर ले तो बहुत ही थोड़े समय प्रशासन चलाता है। द्वितीय, इस प्रणाली में विपक्ष विभिन्न दलों के न्यूनाधिक मात्रा में क्रियाशील होने के कारण संख्यात्मक दृष्टि में दुर्बल रहता है क्योंकि निर्वाचन में पराजित होने के कारण उसे अधिक स्थान नहीं मिल पाते अतः सत्ता पक्ष को पराजय का भय नहीं रहता तथा विरोध पक्ष निराश हो जाता है।(9)

---

(1) ब्रिटेनिका बुक आफ द इयर 1952, लन्दन, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका लि0 1952 पृ0 207.

(2) काश्यप सुभाष (एडिटेड) विदेशों में निर्वाचन, विधि तथा व्यवहार, वहल ए.के. 'निर्वाचन तथा लोकतन्त्रात्मक स्थिरता, दिल्ली संविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, 1972 पृ0 52.

(3) ब्रिटेन एन आफिसियल हैन्डबुक, लन्दन, सेन्ट्रल आफिस आफ इनफारमेशन, 1966 पृ0 37.

(4)लास्की एच.जे. पार्लियामेन्टरी गर्वन्मेन्ट इन इंग्लैन्ड, लन्दन, 1959 पृ0 63.

(5) न्यूमैन राबर्ट सी., यूरोपियन एन्ड कम्परेटिव गर्वनमेन्ट, न्यूयार्क, 1960 पृ0 156–57.

(6) आज, 19 जुलाई 1953

(7) कैम्पियन जी0,ब्रिटिश गर्वन्मेन्ट सिन्स 1918. लन्दन जार्ज ऐलिन, 1950 पृ0 20.

(8) राबर्ट0 सी0 न्यूमैन, यूरोपियन एन्ड कम्परेटिव गर्वन्मेन्ट, न्यूयार्क 1960 पृ0 157..

(9) डुर्वजर एम. पालिटिकल पार्टीज लन्दन, मैथ्यून एन्ड कम्पनी लि0 1954 पृ0 412–415.

दुर्बल विपक्ष के विभिन्न गुटों में आपस में भी उतनी ही वैमनस्यता होती है जितनी की सत्ता पक्ष से । ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर विपक्ष का मनोबल गिरता है और उसका अस्तित्व संदिग्ध हो जाता है वही दूसरी ओर सत्ता पक्ष को इसका लाभ मिलता है और वह विपक्ष को कोई महत्व प्रदान नहीं करता। (1)

भारतीय संदर्भ में इस व्यवस्था को हम एक दलीय आधिपत्य वाली बहुदलीय व्यवस्था कह सकते है।(2) किन्तु के.वी. राव के अनुसार हमारे लिए यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि हमारी वर्तमान व्यवस्था को बहुदलीय व्यवस्था कहना चाहिए अथवा एक दलीय व्यवस्था। (3)

विरोध पक्ष चूंकि सरकारी पक्ष से भिन्न विचारधारा का समर्थन करता है इसलिए मोटे तौर पर हम टियर्न के शब्दों में कह सकते है कि विरोध पक्ष का मुख्य कर्तव्य कोई प्रस्ताव न करना, सरकार के प्रत्येक कार्य का विरोध करना तथा शासन को अपदस्थ करना है। (4) लार्ड रेडोल्फ चर्चिल ने स्वीकार किया है कि विपक्ष का कार्य, जैसे कि वह समझते है सरकार का विरोध करना है समर्थन करना नहीं। (5)

लेकिन सकारात्मक दृष्टि से; यदि हम विभिन्न राजनीति शास्त्रियों एवं राजनेताओं की मान्यताओं का अवलोकन करें तो विरोध पक्ष में निश्चित रूप से वे गुण परिलक्षित होते है जो कि किसी लोकतान्त्रिक देश के समुचित एवं चर्तुदिक विकास हेतु आवश्यक होते है, बशर्ते लोकतंत्र की नींव लोकतान्त्रिक आदर्शों पर टिकी हुयी हों, और उसका उद्देश्य विरोध के लिए विरोध करना न हो। विपक्ष को विरोध करना चाहिए न की बाधा, उसे (विपक्ष) को रचनात्मक होना चाहिए न कि विध्वंसकारी। (6)

(ख) विपक्ष का योगदान और उसके कार्य :—

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों का कार्यक्षेत्र नागरिक जीवन के हर क्षेत्र से सम्बद्ध हो गया है, फलस्वरूप उसके कर्तव्यों में भी वृद्धि हो गई है। कार्याधिक्य के कारण उसके क्रिया कलाप एवं नीतियाँ दोष रहित नही हो सकती अत: विरोध पक्ष का मुख्य कार्य सरकार की त्रुटिपूर्ण नीतियों की आलोचना करना और उन्हें परिवर्तित कराने का प्रयास करना है। उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री ने इस तथ्य को स्वयं स्वीकार किया है कि "कोई भी सरकार हो, वह सर्वज्ञता का दावा नहीं कर सकती है। हम जानते है कि हम चाहे कितना ही ख्याल करके फूंक – फूंक कर कदम रखें, फिर भी गलती हो सकती है जो आलोचना की जाती है, वही हमारी गलतियों को बतला देते है। (7)

---

(1) सुभाष चन्द 'मेन आपोजीशन पार्टीज इन राजस्थान' (अप्रकाशित शोधग्रंथ) जोधपुर राजस्थान पृ0 225.
(2) कोठारी रजनी, पार्टी सिस्टम एन्ड इलेक्शन स्टडीज, द कांग्रेस सिस्टम इन इन्डिया, नई दिल्ली पृ0 2.
(3) राव के.वी. पार्लियामेन्टरी डेमोक्रेसी आफ इन्डिया, एक्रिटिक्ल कमेन्ट्री 1965 पृ0 401.
(4) जैनिंग आइवर पार्लियामेन्ट, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1967 पृ0 167.
(5) तदैव पृ0 167–68.
(6) सरतोरी गियोवानी, अपोजीशन एन्ड कन्ट्रोल : प्राब्लम एन्ड प्रौस्पैक्ट्स पृ0 151.
(7) उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 165 22, जनवरी 1956 पृ0 189.

इस प्रकार विपक्ष का कार्य अधिक निपुण व जटिल है(1) जो दल सरकार बनाता है उसे इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि उसे भरकस प्रयास करने के लिए विवश कर दे । बहुत से मंत्री किसी समर्थक का चाटुकारिता पूर्ण भाषण सुनने के बजाय किसी विपक्षी सदस्य की स्वस्थ आलोचना सुनना अधिक प्रसंद करेगें। वास्तव में विपक्ष का मुख्य कार्य सरकार द्वारा चलायी गयी नीतियों, उनके कार्यक्रमों की रचनात्मक आलोचना करना, जनता की शिकायतों को पेश करना और विधान कार्यों तथा सरकार के सभी क्रिया कलापों पर कड़ी निगरानी रखना है । (2) सरकार की दोषपूर्ण नीतियों को परिवर्तित करने के प्रयास के संदर्भ में जैनिग्स ने लिखा है – कि प्रति पक्ष का कार्य केवल यह देखना नही है कि आपत्ति जनक सरकारी प्रस्तावों का बहस व मतदान के माध्यम से विरोध किया जाय बल्कि सरकारी विधेयकों पर रियायतें प्राप्त की जाये । प्रचार के समस्त माध्यमों से सरकार को उसकी सामान्य नीतियों में परिवर्तन करने के लिए विवश किया जाय(3) इसीलिए शासन की संसदात्मक प्रणाली में विपक्षी दल का कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सत्ताधारी दल का, सरकार पर प्रहार करना और उसके अवपव मंत्री की आलोचना करना विपक्ष का कार्य है (4) श्री जैन के अनुसार," प्रभावशाली विपक्ष का अर्थ होता है ऐसा विपक्ष जो संसदीय व्यवस्था में दो मूल कार्यकरता है – प्रथम यह सत्तारूढ़ दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों की रचनात्मक आलोचना एवं सुधार करता है – द्वितीय आवश्यकता करता पड़ने पर वैकल्पिक सरकार का गठन करता हो । (5)

विरोध पक्ष द्वारा सदन में की गयी सरकारी नीतियों की आलोचना सरकार को भी अपनी नीति का बचाव व उसकी सार्थकता सिद्ध करने का अवसर प्रदान करती है । वस्तुतः प्रयत्क्ष आक्रमण से लाभ होता है क्योंकि आक्रमण में ही प्रतिरक्षा निहित होती है । यदि कोई आक्रमण न्याय संगत है तो उसकी प्रतिरक्षा भी युक्तिपूर्ण ढंग से की जा सकती है । (6) इसका प्रभाव यह होता है कि तर्क वितर्क के माध्यम से निकले किसी प्रस्ताव अथवा नीति की विशुद्धता एवं सार्थकता में और अधिक वृद्धि हो जाती है । नीति केवल बहुमत के शासन का उत्पादन नही होती, जैसा सामान्तया माना जाता है वरन् यह विचार विमर्श पर आधारित शासन, प्रतिपक्षी दल के तर्कों तथा आपत्तियों और दीर्घाओं में सरकारी बहुमत के प्रभाव के मध्य होने वाली प्रक्रियाओं का परिणाम होती है।(7) प्रतिपक्षी आलोचना से जहां राष्ट्र को उस बस्तु की जानकारी होती है, जिसे वह नहीं जानता और इसके माध्यम से ऐसी भी बातें ज्ञात हो जाती हैं जो कि अन्य तरीकों से ज्ञात नहीं होती (8) वही सरकार द्वारा उठाये गये किसी भी

---

(1) हंग किर्टिन : दि परपज आफ पालियीमेंट, लंदन ,ब्लैड फोर्ड प्रेस, पृ0 89–90.

(2) वासन अलफ्रेड सी : अवर हाउस इन इन्ट्रोडक्शन टू पार्लियामेंटरी प्रोसीजर, लंदन पीपुल्स यूनीवर्सिटी 1948 पृ0 204. (3) जैनिंग आइवर पालियामेंट, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस 1969 पृ0 167.

(4) जैनिंग्स आइवर, कैबिनेट गर्वनमेंट कैम्ब्रिज 1951 दूसरा संसकरण पृ0 2.

(5) जैन डी0सी0 अपोजीसन इन इन्डिया रीसेंट ट्रेन्ड्स पालिटिकल साइंसटिस्ट वॉ 31 जुलाई,दिस0 1966

(6) आइवर जैनिंगस, मंत्रिमण्डलीय शासन 1969 पृ0 605.

(7) हंग क्वींटन, उद्धतकर्ता हर्वेएंडवेदर दि बिट्रिश कान्सट्रीट्यूशन्,लंदन मैकमिनल 1972 ,पृ0 154.

(8) बैजहाट, इंगलिश कान्सटी टयूशन फंटाना 1963 पृ0 133.

गलत राजनीतिक कदम को विरोध पक्ष के माध्यम से संसार के लाग शीघ्र जान जाते हैं।[1] सरकार व विपक्ष के मध्य का यह वाद विवाद जनता को राजनैतिक प्रशिक्षण तो प्रदान करता ही है कानूनी तथा संवैधानिक क्षेत्र में किसी सीमा तक उसकी तार्किक शक्ति में भी बृद्धि करता है।[2]

विरोधी दल सरकार का विकल्प प्रस्तुत करता है। सर आइवर जैनिंग्स के अनुसार – विरोधी दल सरकार के विफल होने पर तुरन्त ही विकल्प बन जाता है, यह जनता के असंतोष का केन्द्र भी है। विरोधी दल का कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की सरकार का। यदि विरोधी दल न हो तो हम उसे प्रजातंत्र नहीं कह सकते। सम्राट का विरोधी दल व्यर्थ का वाक्यॉश नहीं है सम्राट को सरकार व विरोधी दल दोनों की आवश्यकता है।[3] एक दूसरे स्थल पर वे लिखते हैं कि महत्ता की दृष्टि से सम्राट के विरोधी दल का स्थान सम्राट की सरकार से दूसरे नंबर पर आता है।[4] संसद का सबसे महत्वपूर्ण भाग कामन्स सभा का विरोधी दल है।[5] विपक्षी नेता भावी प्रधानमंत्री होता है।[6] तथा आजके विपक्षी दल को कल सत्ता रूढ़ दल का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सहन करना पड़ सकता है।[7] हाऊस आफ कामन्स के संदर्भ में जैनिंग्स नें लिखा है कि सरकार हाऊस आफ कामन्स को अपनी इच्छानुसार कोई कानून पारित करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती क्योकि विरोधी दल बैकल्पिक सरकार के रूप में हमेशा तैयार रहता है।[8] भारतीस संदर्भ में श्री कोठारी का मत है कि विरोधी दल के दबाव का एक परिणाम यह भी होता है कि कांग्रेस (सत्तारूढ़ दल) को बराबर इस बात का भय बना रहता था कि यदि वह प्रभावशाली लोकमत से बहुत दूर रहती है और यदि उसकी आंतरिक गुटबंदी द्वारा संतुलन स्थापित नहीं होता तो विरोधी दल उसे अपदस्थ कर सकते हैं।[9] श्री पायली के अनुसार अवसर आने पर विपक्ष सरकार के उत्तरदायित्व को ग्रहण करता है, यदि ऐसा विकल्प संभव उपलब्ध नहीं हो तो इसका परिणाम या तो निरंकुश राजतंत्र की स्थापना या विप्लव होगा।[10]

---

1. जैनिंग्स आईवर, पार्लियामेंट, कैम्ब्रिज 1939. पृष्ठ – 505
2. गुप्ता चन्द्र कान्तः लोक सभा में विपक्ष की भूमिका 1967 से 1976, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 1981, पृष्ठ–7
3. सर आईवर जैनिंग्स, कैबिनेट गर्वनमेंट, 1951 पृष्ठ- 16
4. तदैव 1951, पृष्ठ–439
5. तदैव पृष्ठ–440
6. कौल एम.एन., शकधर एम.एल., संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार, पृष्ठ– 115
7. सुभाष चन्द्रः मेन अपोजीशन पार्टीज इन राजस्थान, जोधपुर विश्वविद्यालय, पृष्ठ–2
8. जैनिंग्स आइवरः मन्त्रिमंण्डलीय शासन, पृष्ठ– 68
9. पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्शन स्टडीज, कोठारी रजनी, " द कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया" पृष्ठ–3
10. पायली एम.वी. कान्स्टीट्यूशनल गर्वनमेंट इन इण्डिया, बाम्बे एशिया पब्लिशिंग हाऊस, थर्ड रिवाईज्ड एडिशन, 1977, पृष्ठ–491

उल्लेखनीय है कि विपक्ष द्वारा सरकार की वैकल्पिक व्यवस्था करना एक शान्तिपूर्ण प्रक्रिया है । चाहे यह संसदात्मक विचारधारा के परिवर्तन से हो अथवा आम चुनाव के द्वारा । इस प्रक्रिया को प्रेरणा देने के लिए एवं सत्ता परिवर्तन को उचित ठहराने के लिए विपक्ष एक कार्य-क्रम निर्धारित करता है जो कि आवश्यक नहीं कि हर एक दृष्टिकोण में सरकार के कार्यक्रम से भिन्न हो । विपक्ष अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सदैव शान्ति पूर्ण साधनों का उपयोग करता है यह एक उत्तरदायी समूह है जिसका उद्देश्य देश को अराजकता की स्थिति में ले जाना नहीं है। जे. बन्दोपाध्याय के अनुसार-बन्दी शिविर, सैनिक शासन, गुप्त पुलिस और सशस्त्र विद्रोह तानाशाही देशों के मुख्य लक्षण हैं । प्रजातंत्र में संसदीय विरोधी दल इन लक्षणों की जगह एक विकल्प प्रस्तुत करता है । इस बात को ध्यान में रखकर संसदीय विरोधी दल उस राजनीतिक विरोधी दल के हाथों में महत्वपूर्ण साधन है जो किसी समय विधान मण्डल में अल्पमत बन जाये । एक संसदीय विरोधी दल के रूप में कार्य करके ही ऐसा राजनीतिक दल अपने विचारों को स्पष्ट और प्रभावशाली ढंग से निर्वाचक गण के सामने रख सकता है । दूसरे शब्दों में एक प्रभावशाली संसदीय दल विरोधी पक्ष की तरह कार्य करके ही एक राजनीतिक दल जो निर्वाचनों में पराजित हो गया हो फिर से शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा सत्ताधारी हो सकता है तभी एक आदर्श सरकार के रूप में प्रजातंत्र सफल हो सकता है । [1] इकबाल नरायण के शब्दों में - "ऐसे विपक्ष के अस्तित्व से जो पूर्ण स्वाधीनता से सरकार की आलोचना कर सके और फिर भी बहुमत के शासन के सम्मुख नत मस्तक रह सके एक ऐसी व्यवस्था बन जाती है कि जिससे शासन का परिवर्तन बिना किसी हिंसा पूर्ण उथल-पुथल के हो सकता है ।"[2] दूसरे शब्दों में विरोधी दल देश में तानाशाही, अराजकता, सैनिक शासन, गृह युद्ध अथवा क्रान्ति जैसी अमानवीय, अलोकतांत्रिक तथा प्रलंकारी घटनाओं की संभावनाओं को समाप्त करता है ।[3] अतः विरोधी दल शक्ति प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण साधन ही अपनाता है यह राज्य के नियमों व परम्पराओं के अधीन ही कार्य करता है और राज्य के प्रति पूर्ण निष्ठा रखता है । विरोधी दल एक उत्तरदायी निकाय है, वह ऐसा कोई काम नहीं करता जिससे देश में अराजकता फैले । यदि सत्ताधारी दल कुछ कारणों से सरकार को चलाने में असमर्थ हैं या सरकार का चलाना असंभव हो तो विरोधी दल अपने हाथ में सत्ता लेने के लिए तैयार रहता है । देश के प्रति निष्ठा और अपने उत्तरदायित्व को समझने के कारण विरोधी दल केवल राजनैतिक गुट न होकर वास्तव में सम्राट का विरोधी दल बन जाता है ।[4]

विपक्ष को भी सत्तारूढ़ दल की भाँति जनहित में कार्य करना होता है । प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई नें उस समय ही लिखा था जब वे प्रतिपक्षीय नेता के रूप में कार्यरत थे । -निम्नलिखित कार्य करके यह देखना विपक्ष का कार्य है कि देश के हितों की सुरक्षा की जा रही है- "प्रथम, सरकार के लोक तांत्रिक तथा देश के हितों में किये गये कार्यों का समर्थन करने, द्वितीय, सरकार के उन प्रयासों का विरोध करके जिनका वे देश के लिए अहितकर समझते हैं,

---

1. जे. बन्दोपाध्यायः थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ पार्लियामेंटी अपोजीशन, 1961, पृष्ठ-3
2. नारायण इकबालः शासन के सिद्धान्त एवं प्रमुख संविधान भाग-2 आगरा अग्रवाल एण्ड कम्पनी 1980, पृष्ठ -136
3. गुप्ता चंन्द्रकांत, लोक सभा में विपक्ष की भूमिका 1967 से 1976 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय(अप्रकाशित शोध निबंध(1981, पृष्ठ-9
4. आरजी बाल्ड एस०फोर्ड, हिज मैजेस्टिक अपोजीशन, 1714-1830, 1964, पृष्ठ-2

तृतीय, सरकार के दुष्कर्मो का तथ्य निरूपण करके तथा भ्रष्टाचार के मामलों को रोकने अथवा उन्हें कम से कम स्तर तक लाने के लिए सभी सांविधानिक शान्तिपूर्ण उपायों को प्रकाश में लाना॥"(1)

तनाव के समय विरोधी दल एक सुव्यवस्थित स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में कार्य करता है ऐसे अवसरों पर विरोधी दल न तो कभी संविधान को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा न देश में अराजकता फैलाने का समर्थन ही करेगा । ऐसा ही उदाहरण ब्रिटिश संविधान में मिलता है 1956 में अनुदार सरकार नें स्वेज नहर के राष्ट्रीय करण की आड़ लेकर मिश्र पर आक्रमण किया ब्रिटेन के मजदूर दल नें इस नीति का समर्थन नहीं किया और न ही वह आक्रमण से सहमत हुआ इस दल को युद्ध के नैतिक आधार और औचित्य पर सन्देह था ब्रिटेन के विरोधी दलों के नेता ह्यूगेरस्कल ने कहा- कि वे प्रत्येक सांविधानिक शासन द्वारा आक्रमण की नीति का विरोध करेंगे उन्होंने सांबिधानिक शब्द पर बल दिया । उन्होंने कहा कि वे किसी मनुष्य से भी सरकार के आदेशों की अवहेलना करने के लिए नहीं कहेंगे परन्तु वे जनमत के प्रभाव द्वारा सरकार पर प्रत्येक ढंग से दबाव डालने का प्रयत्न करेंगे । जिससे वह उस नीति का परित्याग कर दे जिसने हमें एक विषम स्थिति में रख दिया है । मजदूर दल नें ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिससे कि सरकार के कार्यों में बाधा पहुँचे । मजदूर दल नें यह स्वीकार किया कि उसके पास सरकार की नीतियों की सांविधानिक उपायों द्वारा आलोचना के साधन बहुत सीमित थे ।(2)

विपक्ष नागरिकों के आवश्यकताओं एवं कष्टों को संसदीय माध्यम से सरकार तक पहुँचाने तथा इनके निवारणार्थ सरकार पर दबाव डालने का महत्वपूर्ण कार्य करता है । विरोध पक्ष के समर्थक विपक्ष का गठन अपनी आवाज सदन में पहुँचाने के लिए ही करते हैं ।(3) विपक्ष अपनी लगातार खोज-बीन से तथा शासन की नीतियों की आलोचना विभिन्न संसदीय माध्यमों से करके शासन को जनतंत्र का एक अधिक लाभ दायक उपकरण बनाता है विपक्ष की आलोचना सत्ताधारी दल को सतर्क बनाती है और अपनी सीमाओं के बारे में सावधान करती है । फलस्वरूप सत्ता में बैठे लोगों की नीतियों में सुधार होता है – जैसा कि डेविड आप्टर नें कहा है, "जिस प्रकार बैरोमीटर के गिलास के उतार चढ़ाव मौसम के बारे में सूचना देते हैं उसी प्रकार विपक्ष की उन्नति व अवनति सरकार की नीतियों के प्रभावी पन को व्यक्त करती है ।"(4)

---

1. देशाई मुरारजी: "संसद व राज्य विधान सभाओं में विपक्ष की भूमिका" (श्यामलाल शकधर द्वारा संपादित) संविधान व संसद" 1976 पृष्ठ-370
2. रिचर्ड रोज: पालिटिक्स इन इंग्लैण्ड, पृष्ठ-220
3. पायली एम.बी.: कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया बाम्बे-177, पृष्ठ-491
4. डा0 ई. आफ्टर: समरिफलेक्शन आन दि रोल आफ पालिटिकल अपोजीशन इन न्यूनेशन कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाईटी एण्ड हिस्ट्री 1961-62, पृष्ठ-154-68

विपक्ष का कार्य सरकारी दृष्टिकोण से भिन्न मत रखने वाले मतदाताओं का प्रतिनिधित्व कर विधायिका को वास्तविक रूप में जनता की प्रतिनिधि सभा का स्वरूप प्रदान करना है, यदि मतदाता सत्तारूढ़ दल की नीतियों को पसन्द नहीं करते तो वह विपक्ष के माध्यम से ही दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं और आगामी निर्वाचन में सरकार को बदलने का अवसर प्राप्त कर सकते हैं ।[1] विरोधी दल का नेता अपने भाषण द्वारा मतदाताओं को यह समझाने का प्रयत्न करता है कि सरकार की अपेक्षा उनकी नीतियाँ अधिक ठोस एवं हितकर हैं । लास्की के मतानुसार– ब्रिटिश जनता सरकारी कार्यों में अधिक से अधिक कमियाँ निकालने के लिए कामन्स सभा में एक बड़ी संख्या में सदस्य भेजती है, जो सरकार की त्रुटियों का अधिक से अधिक लाभ उठाते हैं तथा इस बात पर बल देते हैं कि सरकार देश को नष्ट कर रही है तथा सरकार से ऐसी सूचना प्राप्त करने का प्रयत्न करती है जिससे यह सिद्ध हो जाये और मतदाताओं के समक्ष इस प्रकार का प्रचार करते हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि सरकार का प्रयोजन कैसे ही अच्छे हैं परन्तु फिर भी वह (सरकार वास्तव में प्रत्येक कार्य हानिप्रद ढ़ग से कर रही है ।[2] विरोधी दल जनता के सभी वर्गों में विधायिका के प्रति रूचि पैदा करते हैं, जो कि संसदीय लोकतंत्र के सफल संचालन व विकास हेतु आवश्यक तत्व है । अन्जेला एस. वर्गर ने इस संदर्भ में लिखा है कि विरोधी दलों की प्रमुख भूमिका यह थी कि उनके माध्यम से राजनीतिक संचारण होता और वे राजनीतिक समाजीकरण एवं भर्ती का काम करते थे । वे समाज के उन वर्गों को संगठित करते थे और उनमें राजनीतिक चेतना लाते थे जो अभी तक कांग्रेस (सत्ता रूढ़ दल) के प्रभाव में नहीं आये थे । इस प्रकार विरोधी दलों के माध्यम से समाज के यह वर्ग राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने लगते थे ।[3]

विपक्ष सशस्त्र सेना को पक्षपात रहित तथा लोक सेवाओं को अराजनीतिक बनाता है ।[4] प्रजातंत्र में यह जरूरी है कि देश का प्रशासनिक तंत्र अराजनीतिक बना रहे । एक सशक्त विरोधी दल राजनीति में निर्मित मोनेपोली (एकाधिकार) को रोकता है जो आर्थिक मोनोपोली से भी खराब होती है । जहाँ विपक्ष नहीं होता । वहाँ नागरिक सेवा का झुकाव एवं लगाव सत्ताधारी दल के साथ जुड़ जाता है जो प्रजातंत्र के लिए घातक है ।[5]

---

1. पायली एम.वी.: कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया, पृष्ठ–491
2. लास्की एच.जे.: पार्लियामेंट्री गर्वनमेंट इन इग्लैण्ड–1959, पृष्ठ–72
3. बर्गर अन्जेला एस.: अपोजीशन इन डामिनेंट पार्टी सिस्टम, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बाम्बे–1969, पृष्ठ–282–283
4. फर्टयाल एच.एस.: रोल आफ द अपोजीशन इन इण्डियन पार्लियामेंट–1971. पृ.6–7-
5. शर्मा लक्ष्मीनारायण: संसदीय प्रजातंत्र में विपक्ष, विधायिनी, मध्य प्रदेश सचिवालय प्रकाशन वर्ष–4 अंक–4 1 जून 1986

विरोध पक्ष राजनीति व लोक सेवाओं को भ्रष्टाचार से बचाता है । श्री भाम्भरी के अनुसार विपक्षी दल का यह सार्वजनिक कर्तव्य है कि वह भ्रष्टाचार व दोष पूर्ण प्रशासन के प्रश्नों को उजागर करे यह कर्तव्य सरकारी कर्तव्यों से कुछ ही कम महत्वपूर्ण है ।(1) विपक्ष अपनी तीखी नजर से सरकार के पक्षपात पूर्ण रवैये का, यदि है, तो बड़ी स्वतंत्रता से अवलोकन करता है तथा अपने बाकयुद्ध से सरकार को जलील करने का साहस करता है । वह सरटोबी के इस परामर्श पर चलता है कि देखते ही हमेशा की तरह खीच लो और खीचते ही कसम खाकर कहो जो कहने में भी भयानक मालूम पड़े । यही काम भ्रष्टाचार व दोषपूर्ण प्रशासन पर एक बड़ा प्रतिरोधक है जिसे कि संविधान में भ्रष्टाचार व गलत प्रशासन को रोकने के लिए प्रदान किया है इसी के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के साथ किये गये अन्याय का निराकरण होता है ।(2)

विपक्ष समय-समय पर उठने वाले राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विचारणीय विषयों पर जनमत का निर्माण करता है ।(3) इससे सत्ता पक्ष को विभिन्न विषयों पर जनमत की राय की जानकारी प्राप्त होती रहती है । सत्तापक्ष स्वयं तो राष्ट्रीय क्रत्यों में इतना व्यस्त रहता है कि वह किसी विषय पर जनमत की राय जानने में प्रायः असमर्थ रहता है । इस रूप में विपक्ष एक गुरूतर कार्य का सम्पादन करता है ।

राज्य के संगठन के अन्तर्गत एक विश्वसीय व उत्तरदायी विपक्ष अल्प मत के प्रतिनिधि की तरह अल्मत के अधिकारों की रक्षा करता है इससे देश की सम्पूर्ण जनता शासन में सक्रिय भागीदारी अनुभव करती है । विपक्ष अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से संसद के और इस प्रकार राष्ट्र के सम्मुख अपने सवाल रख सकता है । इस प्रकार धर्म, भाषा, संस्कृति पर आधारित किसी अल्प संख्यक वर्ग को तथा किसी भी तिथि या विचारधारा के लोगों को यह शिकायत नहीं रहती कि उनकी आवाज को अनसुना कर दिया गया या दवा दिया गया है । इससे देश की सम्पूर्ण जनता में देश के प्रति एक उच्चतर किस्म की देश भक्ति व निष्ठा का जन्म होता है ।

---

1. भाम्भरी. सी०पी०. रोल आफ अपोजीशन इन दि हाउस आफ पीपुल, पृ० 122.
2. जैनिग्स आइवरः मंत्रिमण्डलीय शासन- पृष्ठ-618
3. वर्मा राम बहादुरः राष्ट्रीय एकता के निर्माण में संसद, संसदीय पत्रिका संविधानिक एण्ड संसदीय अध्यक्ष संस्थान, नई दिल्ली - 1977 अंक 1 वर्ष-1 पृष्ठ-17

(ग) प्रजातंत्र में विपक्ष की भूमिका:-

संसदात्मक जनतंत्र का सबसे सुस्पष्ट लक्षण विपक्ष का होना है विपक्ष संसदात्मक गणतंत्र का जीवनी रक्त है । संसदीय लोकतंत्र व मंत्रिमंण्डल पद्धति की सफलता के लिए आवश्यक पहली शर्त यह है कि विपक्ष सबल हो । यदि कहीं विपक्ष नहीं हो तो वहाँ प्रजातंत्र नहीं है ।[1] प्रतिपक्ष का अस्तित्व लोकतांत्रिक व्यस्था की मौजूदगी को प्रदर्शित करता है यदि यह जानना हो कि अमुख देश की जनता स्वतंत्र है या नहीं तो यह जानना आवश्यक है कि वहाँ विरोधी दल है या नहीं और यदि है तो कहाँ पर है ।[2] विरोधी दल का अस्तित्व प्रजातंत्र की सबसे बड़ी विशेषता है ।[3]

भारत के सभी विवेकशील व अनुभवी राजनीतिज्ञों ने भारतीय संसद और राज्य के विधान मण्डलों में विरोधी दल के महत्व को स्वीकार किया है कि विरोधी दल के अभाव में भारत में प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता है । श्री जय प्रकाश नारायण के अनुसार यदि भारत में प्रजातंत्र को सफल बनाना है तो विधान मण्डलों में (कांग्रेस) सत्ता का सामना करने के लिए एक प्रभावशाली विरोधी दल का होना आवश्यक है । क्योंकि जब तक एक प्रभावशाली प्रतिपक्ष (सत्ता पक्ष) कांग्रेस का अधिपत्य समाप्त नहीं करता तब तक भारतीय प्रजातंत्र को गम्भीर भय है ।[4] 26 जनवरी 1962 के हिन्दुस्तान टाइम्स के गणतंत्र दिवस विशेषांक में उस समय के लोक सभा के अध्यक्ष श्री सरदार हुकुम सिंह नें लिखा था कि विरोधी दल का मुख्य कार्य विरोध करना है । एक प्रतिनिधि सरकार अवश्य ही एक दलीय सरकार होती हे । जब दल सरकारी होता है तो विरोधी दल भी होना चाहिये । यदि ऐसा नहीं है तो वास्तव में प्रजातंत्र भी नहीं है । एक तानाशाह अपने दल के सिवाय सब दलों को नष्ट कर देता है । यदि कहीं पर दलीय सरकार नहीं है, तो उस देश में तानाशाही होती है।[5] इस प्रकार प्रजातंत्र का निचोड़ इस बात में है कि कार्यपालिका की विधान मण्डल के भीतर और बाहर प्रति वर्ष व प्रतिदिन आलोचना की जानी चाहिये । ऐसा न होने पर सरकार प्रजातंत्रात्मक न रहेगी । वह शीघ्र ही मनचाही करने लगेगी और

---

1. जैनिंग्स आइवर: "कैबिनेट गर्वनमेंट", 1958 पृष्ठ-15
2. जैनिंग्स आइवर: "दि ब्रिटिश कान्स्टीट्यूशन", कैम्ब्रिज, 1952, पृष्ठ-42
3. पील रार्बट ए., (एडिटर) पालिटिकल अपोजीशन इन वेस्टर्न डैमोक्रेसी, 1966, पृष्ठ-18
4. दि टाइम्स आफ इण्डिया: 1956, नवम्बर
5. दि हिन्दुस्टान टाइम्स, नवम्बर 30, 1962

आगे चलकर अत्याचारी शासन का रूप ले लेगी । यह जो बात अपने हित में समझेगी वैसा दूसरों के हितों अथवा राष्ट्र हित का ध्यान न रखते हुए करने लगेगी" जनता का शासन कुछ थोड़े से व्यापारियों द्वारा कुछ व्यक्तियों के लिए" का सिद्धान्त ले लेगा ।[1]

एक विशाल अनुसरण तथा विशाल सदस्यता से राजनीतिक दलों का विकास समाज के जनतंत्रीकरण में मदद करता है । यह तानाशाही को रोकता है । यह विपक्ष, शासन को आम जनता की राय व इच्छाओं के प्रति उत्तरदायी बनाता है तथा शासन के द्वारा अपनी स्थिति व शक्ति का दुरूपयोग करने से रोकता है तथा आम जनमत और लोगों को आवश्यकताओं के प्रति उस सीमा तक उत्तरदायी बनाता हैं जितना कि मानवीय सत्य निष्ठा किसी भी शासक को उत्तरदायी बनाने में संभव हो । प्रतिपक्षी दलों का विकास जनतंत्र में हुआ है तथा जनतंत्र में ही उन्हें फलने फूलने का तथा पोषित होने का अवसर मिलता है । जनतंत्र में विपक्षी दल व राजनेताओं को केवल उनकी कल्पनाओं व सबको संतुष्ट करने के लिए नहीं, वरन वे नेता व राजनीतिज्ञ एक अच्छी तरह से परिभाषित लाभ दायक कार्य करते हैं, के कारण जनतंत्र में एक भूमिका अदा करनी होती है । सैमुअल जे0 ईल्डर्स वेल ने ठीक ही कहा है– कि यह आम सहमति है कि जनतंत्र में नेताओं एवं विपक्षी समूहों की–जैसे कि कुछ जोखिम भरे कार्य करने के लिए, नीतियाँ बनाने के लिए, निर्णय लेने वाली समितियों के गठन के लिए, आम जनता के मध्य सूचना देने व संचार माध्यम बनाने के लिए, आम सहमति का विकास करने के लिए, उत्तरदायित्व महसूस करने के लिए और इस प्रकार समाज को एक प्रभावकारी और आवश्यकतानुसार अपने मतभेदों को प्रस्तावित करने के लिए विपक्षी दलों की आवश्यकता होती है ।[2]

कोई भी पार्टी अथवा नेता चुनाव के आधार पर स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश होने का प्रलोभन नहीं छोड़ सकता जब तक उसके सम्मुख एक जागरूक, मजबूत तथा सशक्त चेतन विपक्ष न हो । विपक्ष सत्ता पक्ष की कमियों, गलतियों, असफलताओं, भ्रष्टाचार तथा ईमानदारी व निष्ठा की कमी को उजागर करता है और इसके लिए वह (विपक्ष) संकोचहीन तौर तरीकों को लक्ष्य की प्राप्ति और उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सदैव तैयार रखता है । जनतंत्र में एक स्वस्थ व सशक्त विपक्ष सत्ताधारी अथवा शासक की नीतियों का अनुमोदन करने से इनकार करने तथा शासन के कार्यक्रम

---

1. शरण पी. उद्धृतकर्ता:, भारतीय शासन व राजनीति मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन 1975 –76 पृष्ठ 392, ब्रिटेन के हाई कमिश्नर द्वारा संसदात्मक विपक्ष पर आयोजित सेमिनार में फरवरी 1956 में प्रस्तुत विचार ।
2. सैमुअल जे0 ईल्डर्सवेल: पालिटिकल पार्टीज ए विहेवियल एनालिसिस, शिकागो, 1964, पृष्ठ–22

को क्रियान्वित होने हेतु अनुदान को पारित होने से रोकने की सामर्थ रखता है इसमें शासक को सत्ता से च्युत करने के लिए मतदान की शक्ति होती हे जो कि विपक्ष के अतिरिक्त और किसी के पास एवं अन्य किसी साधन के संभव नहीं है । दूसरे साधनों से कोई भी व्यक्ति शासन की आलोचना कर सकता है, एक सशक्त जनमत तैयार कर सकता है । शासन की गलतियों तथा असफलताओं के प्रति जनता को सचेत कर सकता है और जनता को विद्रोह करने की प्रेरणा दे सकता है लेकिन अगर यह जनतंत्र है, अगर एक से अधिक राजनीतिक दल व सहयोगी एवं असहयोगी समूह हैं जो सशक्त आवाज से युक्त हैं, किसी भी शासक को सत्ता से हटा सकते हैं । ए0एल0लावेल नें कहा है- कि मान्यता प्राप्त विपक्ष की लगातार उपस्थिति शासक के निरंकुश बनने में एक बाधा है । संभव आम राय की परिधि के अन्दर एक निशिचत कार्यक्रम से युक्त विपक्षी दल की स्थिति न केवल शासक वर्ग के अत्याचार के विरूद्ध एक ढ़ाल है वरन् यह एक धर्मान्ध बहुमत वाले दल के विरूद्ध भी एक ढ़ाल का कार्य करती है । [1]

अगर शासन सत्ता एवं शक्ति एक ही दल या राजनीतिज्ञों के समूह में सम्मिलित हो जाये तो जनतंत्र केवल एक प्रदर्शन मात्र होगा । कोई भी दल कितना ही अपने देश व देश वासियों के हित में कार्य करने की घोषणा करे "चूँकि शक्ति भ्रष्ट कर देती है तथा सर्वभौम शक्ति सार्वभौम रूप से भ्रष्ट कर देती है" राष्ट्र हित के लिए अहितकर ही होगा । किसी भी सरकार के लिए यह बहुत ही साधारण बात है कि वह स्वतंत्र चुनाव में आम जनता द्वारा चुनी गयी सरकार है का दावा करे तथा यह कहे कि उसे जनता का विश्वास एवं समर्थन प्राप्त है लेकिन विकास शील देशों में विशेषकर जहॉं पर आम जनता की राजनीतिक चेतना प्रतिनिध्यात्मक जनतत्र के सजे संवरे विचार और लोगों के परीक्षण, विश्लेषण और प्रत्येक नीति की समालोचना तथा शासन के कार्यों का विभिन्न पहलुओं से परीक्षण सीमित है, बहुमत के परदे के पीछे तथा लोक प्रिय मत की आड़ में शरण लेना बहुत सरल है । इस प्रकार की सरकार को जनता द्वारा सावधानी पूर्वक देखने की आवश्यकता है कि शासन के द्वारा अपने विशाल बहुमत का दुरूपयोग आम जनता की स्वतंत्रता को नष्अ करने के लिए तो नहीं किया जाता । डांलाल्ड मैक लियाटन ने सही ही कहा है - कि जो सरकार बहुत लोक प्रियता अर्जित करती है वह अपने सबसे गन्दे स्वरूप को भी परिलक्षित करती है । [2]

कोई भी व्यक्ति अथवा समूह सत्ता का समपर्ण नहीं करना चाहता अगर एक बार उसने सत्ता का सुख चख लिया अगर यह किसी चीज को प्राप्त करना

---

1. ए.एल. लावेलः "पब्लिक ओपीनियन एण्ड पापुलर गर्वनमेंट, लन्दर-1916 पृष्ठ-57-58
2. सर रोईस्टर्सः प्रास्पैक्ट आफ इण्डियन डेमोक्रेसी, मेरठ-1929 पृष्ठ- 7

या हड़पना चाहता है तो उसे पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेता है। केवल एक प्रभाव पूर्ण व अनुशासित एवं उद्देश्यपूर्ण विपक्ष से इसे संयमित किया जा सकता है जो कि प्रत्येक क्षण जागरूक रहे। शासन के प्रत्येक कार्य पर नजर रखे तथा शासन के प्रत्येक गलत कार्य व असफलता को अपने कर्तव्य की भाँति उद्घाटित करेगा और शासन द्वारा सत्ता के दुरूपयोग के प्रति राष्ट्र को सचेत करेगा। विपक्ष को शासन के गलत कार्यों और असफलताओं के प्रति जनमत का निर्माण करना होता है जिससे कि लोग शासन की नीतियों के विरोध द्वारा शासन में परिवर्तन का रास्ता इंगित कर सके आइवर जैनिंग्स ने कहा है – कि विपक्ष एक त्वरित बैकल्पिक शाक है और आम जनता के असंतोष का केन्द्र बिन्दु है।[1]

अगर बहुत ही सीमित अर्थों में यदि आधुनिक समाज स्वतंत्र है तो भी उसे एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता है जिसके द्वारा वह अपनी तकलीफों को कह सकता है और अपने विचारों को प्रकट कर सकता है तो सबसे महत्वपूर्ण साधन, जिसके द्वारा वह ऐसा कर सकता है वह विपक्षी दल है। राष्ट्र धरातल को विपक्षी दल की आवश्यकता है क्योंकि विपक्षी दल के अभाव में स्वतंत्रता का नारा खोखला है, अर्थहीन और कागजी है। आइवर जैनिंग्स के अनुसार "हम लोग स्वतंत्र हैं क्योंकि हम स्वतंत्र पूर्वक आलोचना कर सकते हैं। यदि हमारी आलोचनायें जनता को प्रभावित कर सकें तो सरकार को हटना पड़ेगा। जनमत के दबाव के कारण अनेक विधेयक नष्ट हो चुके हैं और बहुत सी अच्छी नीतियों में परिवर्तन कर दिया गया है। सरकार पर आक्षेप करने का मुख्य उत्तरदायित्व विरोधी दल पर है। यदि यह जानना हो कि अमुक देश की जनता स्वतंत्र है अथवा नहीं तो यह जानना आवश्यक हे कि वहाँ पर विरोधी दल है या नहीं और यदि है तो कहाँ पर है ?[2] इस प्रकार वैचारिक स्वतंत्रता विपक्ष का पर्याय है अगर विपक्ष नहीं तो जनतंत्र नहीं है।[3]

उ0प्र0 सरकार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्री चन्द्रभानु के शब्दों में " "किसी भी गणराज्य में विरोधी दल की आवश्यकता होती है और विरोधी दल रहना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा गणतंत्रीय परम्परायें कायम रह सकती हैं और सरकार भी ठीक तरह से कार्य कर सकती है।[4] 3 फरवरी 1957 को पटना में

---

1. आइवर जैनिंग्स: कैविनेट गर्वनमेंट कैम्ब्रिज– पृष्ठ–15 1951 संस्करण–2
2. जैनिंग्स आइवर : ब्रिटिश कान्टीट्यूशन 1950 पृष्ठ–82
3. जैनिग्स आइवर: कैविनेट गर्वनमेंट, कैम्ब्रिज 1951 संस्करण–2 पृष्ठ–15
4. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड–219, 24 फरवरी 1961 पृष्ठ–333

जय प्रकाश नारायण ने अपने वक्तव्य में विपक्ष की महत्ता स्वीकार करते हुए कहा कि "संसदीय प्रजातंत्र की मौलिक विशेषता यह है कि प्रभावशाली विपक्ष के अभाव में सफलता पूर्वक कार्य नहीं कर सकता ।[1] सुदीर्घकालीन राजनीतिक अनुभव रखने वाले निस्पृह बयोबृद्ध नेता श्री राज गोपाला चार्य के अनुसार– "विरोध पक्ष के अभाव में कांग्रेस हर तरह के महत्वाकांक्षी स्वार्थियों का चारागाह बन जायेगी ।[2]

यदि लोकतंत्र की सफलता के लिए विरोध पक्ष का होना आवश्यक है तो विपक्ष का निर्माण व विकास वहीं संभव है जहाँ दलों का निर्माण करने, निर्वाचन में भाग लेने, वाक् स्वतंत्रता, सरकार की आलोचना करने का अधिकार नागरिकों को प्राप्त होगा । विपक्ष के विकास के लिये यह जरूरी हैं कि सरकार प्रतिपक्ष की आलोचना का जबाब पुलिस एवं जेल से न देकर तर्कों से दे । श्री अटल बिहारी बाजपेयी के मतानुसार – लोक तंत्र का आधार है विरोध को न केवल सहन करने का धैर्य, अपितु समादर करने की उदारता, जहाँ असहिष्णुता है, जहाँ मतान्धता है, जहाँ विरोध को गद्दारी मानने का भाव है, वहाँ लोकतंत्र समाप्त होता है और तानाशाही का उदय होता है।[3] जैनिंग्स के शब्दों में लोक तंत्र में यह मानकर चलना चाहिये कि बहुमत का कार्य शासन करना है दमन करना नहीं तभी प्रतिपक्ष अपनी भूमिका का जनतंत्र के पोषक के रूप में निर्वाह कर सकता है ।[4]

---

1. द टाईम्स आफ इण्डिया, 4 फरवरी 1957
2. आज, 13 अक्टूबर 1956
3. लोक सभा वाद–विवाद दिनांक 1971
4. जैनिंग्स आइवर, कैबिनेट गर्वनमेंट, कैम्ब्रिज वर्ष 1958, पृष्ठ– 16

अध्याय – 2, उत्तर प्रदेश विधान सभा में विपक्षी राजनीति का उद्‌भव व विकास

(क) स्वतंत्रतापूर्व विपक्ष– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

(ख) स्वतंत्रोत्तर भारत के प्रमुख विपक्षी दल, सिद्धान्त, नीतियाँ व कार्यक्रम

(ग) उ0 प्र0 विधान सभा में प्रमुख विपक्षी दल– उनका गठन, सिद्धान्त व कार्यक्रम

उ0प्र0 विधान सभा में विपक्षी राजनीति का उद्भव एवं विकास

1858 ई0 में ब्रिटिश सम्राट द्वारा प्रशासकीय अधिकार ग्रहण करने पर भारत के संवैधानिक इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ । इसी समय भारत में प्रतिनिधिात्मक संस्थाओं की स्थापना का श्रीगणेश हुआ । 1861 में सरसैयद अहमद खाँ जैसे राज भक्तों ने इस बात पर बल दिया कि यदि देश वासियों को लेजिस्लेटिव कौन्सिल (विधान परिषद) में स्थान दे दिया जाता, तो हाल ही में हुआ विद्रोह घटित न होता । उन्होंने कहा, "केवल जनता की आवाज ही ऐसी होती जो किसी गलती को मूल में ही होने से रोक सकती है और एकाएक खतरा उत्पन्न होने तथा उससे हमारा सर्वनाश होने के पूर्व ही हमें सचेत कर सकती है ।"[1] इस प्रकार 1861 में पारित इण्डियन कौन्सिल एक्ट के अन्तर्गत पहली बार विधायन कार्य में भारतीयों को सम्मिलित किया गया ।

उ0प्र0 विधान परिषद में दलीय राजनीति का विकास 5 जनवरी, 1887 को प्रान्त के प्रथम विधान परिषद में एक सरकारी विज्ञप्ति के रूप में सामने आया । परिषद के 9 नाम निर्देशित सदस्य थे जिनमें सरकारी 4 व 5 असरकारी सदस्य थे । कौन्सिल के भारतीय सदस्यों में पं0 अजुध्या प्रसाद, वीरेश्वर मित्तल, चौधरी काली राम ने कौन्सिल वाद-विवाद में सक्रिय रूप से भाग लिया । उ0प्र0 विधान परिषद के जन्म से पहले ही कांग्रेस का जन्म हो चुका था । उ0प्र0 में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इसी दलीय राजनीति का एक बिन्दु था ।[2]

1892 के इण्डियन कौन्सिल एक्ट में निर्वाचन के सिद्धान्त की सुविधा तो नहीं थी, किन्तु कौन्सिल के सदस्यों की संख्या 15 कर दी गई जिसमें 8 सदस्य गैरसरकारी होते थे लेकिन उस समय वास्तविक अर्थों में विधान मण्डल नहीं थे । यह एक परामर्श दात्री समिति थी, जो गवर्नर को प्रशासन चलाने में सहायता प्रदान करती थी किन्तु मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी नहीं थी । यह एक ऐसी सरकार थी जैसा कि लार्ड क्रोनर ने कहा है "समस्त आवश्यक विवरणों में यह अप्रवासी विदेशियों की अव्यक्त रूप में अपने देश के हितों की रक्षा में लगी सरकार थी "।[3]

इन विधायी सभाओं में अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों का प्रभाव था तथा गैर सरकारी लोगों की नियुक्तियाँ व नामांकन संस्थाओं द्वारा होता था जो कि सरकारी अधिकारियों की संस्तुति पर हुआ करती थी । इस प्रकार इन गैर सरकारी लोगों को जनता का प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था । हालांकि विशिष्ट अवसरों पर इन लोगों की शिकायतें सदन को बताया

1- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, विधान सभा सचिवालय, उ0प्र0, 1977, पृष्ठ-8

2- उ0प्र0 विधान परिषद के सदस्य व स्वतंत्रता संग्राम (उ0प्र0 विधान सभा शताब्दी वर्ष समारोह द्वारा" उद्धृत उ0प्र0 वि0स0 सचिवालय पुस्तकालय के सौजन्य से, पृष्ठ-5

3- लार्ड क्रोनरः हाउस हाफ कामन्स वाद-विवाद, खण्ड- 111, पृ0-735, उद्घृतकर्ता कुलवीर सिंह मलिक- रोल आफ अपोजिसन इन डेमोक्रेसी, पृ.-59-60

करते थे । लार्ड मोर्ले ने हाउस आफ कामन्स में बोलते हुये कहा था– "भारत की विधायी सभा में गैर सरकारी सदस्यों को बहुमत आवश्यक है । संसदीय प्रणाली में सरकारी सदस्यों का बहुमत संसदात्मक प्रणाली के विरोध में, तर्कयुक्त विषमता के स्वरूप में स्पष्ट अवहेलना है तथा इसका उद्देश्य भारत में संसदीय प्रणाली की नींव डालना व विकास करना नहीं है ।"[1]

इस प्रकार की विधायी सभाओं के सदस्यों में जो कि दो भागों सरकारी, गैर सरकारी में विभाजित थे, सरकारी पक्ष निश्चित रूप से स्थायी बहुमत था और गैरसरकारी पक्ष एक स्थायी अल्पमत था । असरकारी पक्ष न तो प्रश्न पूछ सकते थे न कभी अविश्वास प्रस्ताव रख सकते थे तथा जब कभी विभाजन होता था हमेशा सरकार के पक्ष में मतदान करते थे । श्री गोखले, जो कि एक गैर सरकारी सदस्य थे, ने एक बार कहा था– "वास्तव में गैर सरकारी सदस्यों के लिये विपक्ष का शब्द उपयुक्त नहीं होगा । गैर सरकारी सदस्य अधिकतर सरकार का समर्थन करते थे लेकिन जिस समय वे किसी विषय पर सरकार का विरोध करते थे, वह इसलिये विरोध था क्योंकि उस विषय पर सरकार का दृष्टिकोण सही नहीं था ।[2]

(क) स्वतंत्रतापूर्व विपक्ष– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यः–

1919 में भारत के संवैधानिक ढांचे में एक परिवर्तन हुआ जिसके फलस्वरूप सरकारी बहुमत तो घट गया किन्तु इसके साथ नामांकित सदस्यों का एक लम्बा समूह था जिसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उस सरकार का समर्थन करने में थी, जिसने उनका नामांकन किया था । इस सम्बन्ध में एक बार टिप्पणी करते हुये वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता श्री कमलापति त्रिपाठी ने कहा– "विपक्ष के ज्यादातर सदस्य अंग्रेजों के खुशामदी नवाब एवं ताल्लुकेदार थे"।[3] 1919 के एक्ट के अधीन निर्वाचित परिषद की 9 फरवरी, 1924 की बैठक, जिसकी अध्यक्षता श्री कीन ने की थी, यह महत्वपूर्ण घोषणा की–"स्वराज्य पार्टी विरोधी पक्ष का रूप ग्रहण करेगी और वह सरकारी पक्ष के सामने बायें ब्लाक में बैठेगी जिसके लिये उन्हें

1– जी0वी0 वनकार– रोल आफ अपोजिशन इन ए डेमोक्रेसी, भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन, भोपाल स्मारिका, पृ0–62

2– –तदैव– पृ0–63

3– अमृत प्रभात लखनऊ, 19 दिसम्बर, 1987, स्वर्ण जयन्ती समारोह, उ0प्र0 विधान सभा में लिये गये एक साक्षात्कार से उद्धृत

सीटें नियत कर दी गई । इस प्रकार विरोधी दल के लिये सीटों के आरक्षण की परिपाटी प्रारम्भ हुई ।[1]

परिषद के प्रथम शासकीय अध्यक्ष श्री कीन का कार्यकाल 1925 में समाप्त हुआ तथा माननीय रायबहादुर लाला सीताराम को 19 अगस्त, 1925 को प्रथम गैर सरकारी अध्यक्ष चुना गया ।

सन् 1926 में नई परिषद का चयन हुआ जिसमें सीताराम पुनः परिषद के अध्यक्ष चुने गये तथा श्री मुकुन्दी लाल को उपाध्यक्ष चुना गया । नई परिषद में नेशनलिस्ट पार्टी का नेतृत्व श्री सी0वाई0 चिन्तामणि और स्वराज्य पार्टी का नेतृत्व श्री गोबिन्द बल्लभ पन्त करते थे ।[2]

सन् 1928 में परिषद के सामने यह प्रश्न आया कि वह साइमन कमीशन का सहयोग दें अथवा बहिष्कार करे । स्वराज्य पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी दोनों के ही सदस्यों ने इस मामले को आगे बढ़ाने के लिये फरवरी, 1928 में बहिष्कार का प्रस्ताव किया जिसे वे एकल मत (वोट) से पारित कराने में सफल हो गये । प्रथम अविश्वास प्रस्ताव, विपक्ष का महत्वपूर्ण साधन (अविश्वास प्रस्ताव), सितम्बर, 1928 में प्रस्तुत किया गया । 1928 में जब सरकार ने सदन के समक्ष साइमन कमीशन के साथ काम करने के लिये एक समिति का चुनाव करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो उस समय स्वराजिस्ट और नेशनलिस्ट पार्टियों ने यह आरोप लगाया कि वे परिषद के प्रति इस योजनाबद्ध अपमान से क्षुब्ध हैं और इस प्रस्ताव पर विचार करने के पूर्व ही उन्होंने सदन त्याग दिया । उनकी अनुपस्थिति में परिषद ने उक्त समिति के चुनाव का अनुमोदन सर्वसम्मति से कर दिया । दूसरे दिन नेशनलिस्ट और स्वराजिस्ट पार्टियाँ शिक्षा मंत्री के विरूद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव लोने के लिये, जो कि परिषद के इतिहास में पहला था, आपस में मिल गई, यह प्रस्ताव माननीय अध्यक्ष रायबहादुर लालासीताराम के निर्णायक मत से पारित हुआ । प्रस्ताव के पक्ष अपने निर्णायक मत का उपयोग करने से पूर्व अध्यक्ष (प्रेसीडेन्ट) ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये-

"इस स्थिति में अध्यक्ष पद का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने निर्णायक मत का उपयोग करें । विधि के अधीन अध्यक्ष न तो अपने इस कर्तव्य से विमुख हो सकता

1- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, विधान सभा सचिवालय, उ0प्र0, 1977

2- -तदैव-

है और न वह इससे बच सकता है । उसे प्रस्ताव के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना मत देना ही है क्योकि सदन ने प्रस्ताव पर अपना कोई भी स्पष्ट अभिमत नहीं दिया है । मैं समझता हूँ कि मेरा यह कहना सही होगा कि 'नहीं' वाले मतों में स्वयं शिक्षा मंत्री का मत भी सम्मिलित है । यदि हितवद्ध व्यक्ति के मत के रूप में उक्त मत की गणना न की जाय तो सदन का अभिमत (वरडिक्ट) पक्ष में 57 तथा विपक्ष में 56 होगा । माननीय सदस्यों को उस गम्भीर दायित्व को महसूस करना चाहिए जिसकी अनुभूमि मैं इस कठिन परिस्थिति में अपना निर्णायक मत देते समय कर रहा हूँ ।

अध्यक्ष इस सदन के सदस्यों की स्वतंत्रता और स्वाधीनता की अभिरक्षा समझा जाता है । अध्यक्ष से यह भी आशा की जाती है कि वह सदन की इच्छाओं के आशय का ठीक-ठीक निर्वचन (इण्टरप्रेट) करे । अध्यक्ष पद की न तो अपनी कोई अन्तरआत्मा होती है और न उसकी अपनी धारणा होती है और वह किसी मामले के गुणदोष के बारे में भी विचार नहीं कर सकता । मुझे विश्वास है कि मेरा यह सोचना गलत नहीं है कि सदन उक्त प्रस्ताव के पक्ष में है । अतएव उक्त परिस्थितियों में मैं अपना निर्णायक मत प्रस्ताव के 'हाँ' पक्ष में दे रहा हूँ "[1]

विपक्ष की यह सबसे बड़ी विजय थी कि विधान परिषद अध्यक्ष ने अपना मत विपक्ष में दिया । हालांकि उस समय की परिस्थितियां भिन्न थी अतः शिक्षा मंत्री की निन्दा ही की जा सकी । उन्हें पदच्युत नहीं होना पड़ा । यह एक प्रकार से प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत निन्दा प्रस्ताव था, जो पारित हुआ ।

प्रतिपक्ष ने विभिन्न जनसमस्याओं, जैसे बेरोजगारी, कारागार प्रशासन, दलित वर्गों की शिक्षा आदि महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी आवाज सदन में उठाई तथा सरकार की गलत नीतियों का विरोध किया । कांग्रेस द्वारा आरम्भ किये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा लखनऊ में 25 व 26 मई को हुयी दुर्घटनाओं के प्रति सरकार के रवैये और उसके अधिकारियों के आचरण के सम्बन्ध भी परिषद में चर्चा हुई । स्वराज्य पार्टी के 18 सदस्यों ने कांग्रेस के आदेश पत्र के अनुपालन में तथा अन्य 9 सदस्यों ने आन्दोलन के सम्बन्ध में सरकार द्वारा अपनाई गई दमनात्मक नीति के विरोध में त्याग-पत्र दे दिया ।[2]

1- उ0प्र0 विधान परिषद की कार्यवाही, 22 सितम्बर, 1928, पृष्ठ- 354

2- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, विधान सभा सचिवालय, उ0प्र0 1977, पृष्ठ- 20

सितम्बर, अक्टूबर, 1930 में एक नई परिषद का चुनाव किया गया इसमें राज्यपाल द्वारा रायबहादुर लाला सीताराम को सभापति (चेयनमैन) नियुक्त किया गया तथा नवाब जादा मोहम्मद लियाकत अली खॉं को परिषद का उपाध्यक्ष (डिप्टी प्रेसीडेन्ट) निर्वाचित किया गया । वर्ष 1931 में सदन में नेशनलिस्ट, इण्डीपेन्डेन्स, प्रोग्रेसिव, डेमोक्रेटिक और कान्सटीट्यू-शनलिस्ट नाम की 5 पार्टियॉं बनी ।

मार्च, 1933 में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत-पत्र प्रकाशित किया जिसमें ब्रिटिश सरकार के इस आशय के प्रस्ताव समाविष्ट थे कि देश का भावी संवैधानिक गठन कैसा हो । इस श्वेत पत्र के विरोध में देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और इसकी बड़ी निन्दा तथा आलोचना हुई । परिषद में विपक्ष की मांग पर विचार-विमर्श के लिये 3 दिन नियत्त कर दिये गये जिसमें सरकारी सदस्यों ने भाग नहीं लिया ।[1]

1935 के गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट के अधीन गठिन विधान मण्डल 2 सदनों वाला था । विधान सभा में 228 व विधान परिषद में 60 सदस्य थे । अब विधान सभा में कोई मनोनीत सदस्य नहीं होता था ।1935 का भारत सरकार अधिनियम लागू हो जाने के बाद सम्पूर्ण देश में चुनाव हुये । उसमें उ0प्र0 में कांग्रेस को 228 में से 143 सीटें मिली। 85 सीटें विपक्ष को मिली, जिसमें 32 सीटें स्वतंत्र पार्टी को तथा मुस्लिम लीग को 28 तथा 25 सदस्य निर्दलीय रहे । 17 जुलाई, 1935 को पं0 गोबिन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्री मण्डल गठित किया गया तथा श्री पुरूषोत्तम दास टण्डन एवं श्री अब्दुल हकीम क्रमशः विधान सभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष चुने गये ।[2]

उ0प्र0 विधान सभा में स्वतंत्रतापूर्व विपक्ष ने अध्यक्ष पद के प्रति सम्मान व विश्वास व्यक्त कर लोकतांत्रिक संस्थाओं व पदों के प्रति सम्मान व्यक्त किया जो आजकल दुर्लभ है- अध्यक्ष पद पर चुने जाने के दिन ही माननीय अध्यक्ष श्री पुरूषोत्तमदास टण्डन ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की कि वह सदन में जो भी अपना मत व्यक्त करेंगे वह सर्वथा निष्पक्ष होगा । तद्नुसार वह सदन के बाहर सक्रिय राजनीति में भाग लेते रहे । इससे प्रदेश में एक प्रकार की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई व कुछ विरोधी दल के सदस्यों ने इसकी बहुत आलोचना की । 19 जनवरी, 1938 को मुस्लिम लीग के एक सदस्य श्री जेड0एच0 लारी ने स्थगन प्रस्ताव सम्बन्धी एक नोटिस भेजा जिसमें "विधान सभा अध्यक्ष द्वारा दलगत राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने पर" सदन में विचार करने की

1- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, विधान सभा सचिवालय, उ0प्र0, 1977, पृष्ठ- 21

2- -तदैव- पृष्ठ- 25

मांग की गई । अध्यक्ष, श्री टण्डन ने इस प्रस्ताव को इस आधार पर असंगत ठहराते हुये अनियमित घोषित किया कि सदन में अध्यक्ष के सम्बन्ध में वाद-विवाद नहीं किया जा सकता अतः विपक्ष द्वारा उनके विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने का विचार किया गया तब उन्होंने अपना यह मत व्यक्त किया कि "अध्यक्ष को सदैव सम्पूर्ण सदन का समर्थन प्राप्त होना चाहिए और केवल बहुमत के समर्थन के बल पर ही वह इस महत्वपूर्ण पद पर बने रहने पर विश्वास नहीं करते हैं । उन्होंने विरोधी पक्ष से कहा कि यदि वे उन्हें नहीं चाहते तो पर्याप्त संख्या में उनके सदस्य केवल एक चिट पर अपना हस्ताक्षर करके उन्हें दे दें वे उसी दिन अपना त्याग-पत्र दे देंगे" ।[1] विपक्ष ने उन पर पूर्ण सम्मान व्यक्त करते हुये अविश्वास का प्रस्ताव सदन में नहीं उठाया ।

उ0प्र0 विधान सभा में वर्ष 1937 से 1939 के दौरान सरकारी व गैरसरकारी विधेयक पारित हुये जिसमें वाद-विवाद ने प्रतिपक्ष ने महत्वपूर्ण योगदान किया तथा विपक्ष के नानयूनियन लेवर दल के श्री वी0के0 मुखर्जी द्वारा एक गैर सरकारी विधेयक-दि यूनाइटेड प्राविन्सेज शाप्सविल 1938 रखा गया जो विधान सभा भंग हो जाने के कारण व्यपगत हो गया । वर्ष 1947 में भी विपक्ष के 2 गैर सरकारी विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत हुये प्रथम रिलीजस इन्डाउमेन्ट (संयुक्त प्रान्तीय संशोधन) विधेयक 1947 था जो श्री रोशन जमा खाँ (मुस्लिम लीग) द्वारा रखा गया । दूसरा विधेयक संयुक्त प्रान्त का होम्योपैथिक मेडिशिन बिल 1947 था जो मुस्लिम लीग के ही लेफ्टीनेन्ट एम0 सुल्तान आलम खाँ द्वारा रखा गया यह विधेयक पारित हो गया । उ0प्र0 विधान सभा के इतिहास में यह पहला अवसर था जब कोई गैर सरकारी विधेयक पारित हो गया ।[2] वर्ष 1937 से 39 के दौरान अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम जैसे यू0पी0 मिनिस्टर सैलरी एक्ट, यू0पी0 मैटरनिटी बेनिफिट एक्ट इत्यादि महत्वपूर्ण विधेयक पारित हुये ।[3]

विधान सभा में महत्वपूर्ण संकल्प इस प्रकार किया गया कि गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट 1935 को निरस्त किया जाय और उसके स्थान पर एक ऐसा संविधान लागू किया जाय जो वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गई किसी संविधान सभा द्वारा स्वाधीन भारत के लिये तैयार किया गया हो । प्रतिपक्ष के पूर्ण समर्थन से यह संकल्प 2 अक्टूबर, 1937 को पारित हुआ ।[4]

1- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय, 1977, पृष्ट- 26

2- उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत असरकारी विधेयक, सम्पादक भालचन्द्र शुक्ल पृष्ठ- 110

3- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, पृष्ठ- 27

4- उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही, 2 अक्टूबर, 1937, पृष्ठ-303

1935 में गठित मंत्रि मण्डल मुश्किल से 2 वर्ष कार्य कर पाया था कि 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया तथा वायसराय ने भारत को युद्धरत देश घोषित कर दिया तथा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा एक संशोधित अधिनियम पारित करके भारत वर्ष की केन्द्रीय सरकार व अधिकारी तंत्र को आपात कालीन बहुत सी शक्तियाँ प्रदान कर दी गई अतः 3 अक्टूबर, 1939 को माननीय अध्यक्ष ने सदन में अपने एक वक्तव्य से सदस्यों को इस तथ्य से अवगत कराया कि विधान मण्डलों की सभी शक्तियाँ वापस ले ली गई हैं । इस घटना पर क्षोभ व्यक्त करते हुये सदन में एक संकल्प पारित हुआ कि "विधान सभा का मत है कि सरकार ब्रिटिश नीति से अपने को सम्बद्ध नहीं कर सकती है"।[1] इसके साथ ही कांग्रेस मंत्रि मण्डल ने त्याग पत्र दे दिया चूकि विपक्ष की इतनी संख्या नहीं थी कि विधान सभा का विश्वास प्राप्त करने वाला कोई अन्य मंत्रि मण्डल बनाया जा सके अतः 3 नवम्बर, 1939 को राज्याल ने एक घोषणा द्वारा संविधान को निलम्बित कर दिया जिसके फलस्वरूप विधान सभा तुरन्त निलम्बित कर दी गई ।[2]

युद्ध के पश्चात् पुनः सामान्य चुनाव कराने का निश्चय किया गया अतः प्रान्तीय विधान मण्डल का पुनर्गठन करने के उद्देश्य से 8 सितम्बर, 1945 को राज्यपाल ने उ0प्र0 विधान सभा को भंग कर दिया तदुपरान्त चुनाव के फलस्वरूप 152 सीटें कांग्रेस, 54 मुस्लिम लीग, 14 निर्दलीय, 7 राष्ट्रवादी मुसलमान, 1 अबरारों को मिली तथा पं0 गोबिन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में कांग्रेस मंत्री मण्डल गठित हुआ व मुस्लिम लीग मुख्य विरोधी दल बना ।[3]

वर्ष 1947 में इण्डियन इन्डीपेन्डेन्स एक्ट पारित हो जाने पर 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 3 नवम्बर, 1947 को विपक्ष सहित सभी सदस्यों ने बड़े उत्साह से शपथ ग्रहण की । तथा 4 नवम्बर, 1947 को सर्वसम्मति से यह संकल्प पारित हुआ कि विधान सभा का समस्त कार्य हिन्दी में किया जायेगा । वर्ष 1949 में 2 युग प्रवर्तक विधेयक- यू0पी0 जमीदारी विनाश और भूमि व्यवस्था विधेयक तथा यू0पी0 काश्तकार (विशेपाधिकार उपार्जन) विधेयक, प्रस्तुत हुये जिन्हें विपक्ष ने सैद्धान्तिक सहमति प्रदान की ये विधान सभा 1951 चलती रही । 20 मई, 1952 को प्रथम आम चुनाव हुये जिसमें पुनः गोविन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल का गठन हुआ ।[4]

1- उ0प्र0 वि0स0 का0, 3 अक्टूबर, 1939, पृष्ठ- 406

2- उ0प्र0 वि0स0 के 32 वर्ष, सम्पादक भालचन्द्र शुक्ल

3- उ0प्र0 विधान सभा चुनाव व परिणाम

4- उ0प्र0 विधान मण्डल की ऐतिहासिक रूप-रेखा, पृष्ठ- 32

(ख) स्वतंत्रोत्तर भारत के प्रमुख विपक्षी दल, सिद्धान्त, नीतियाँ व कार्यक्रम ::

(1) कांग्रेस पार्टी ::-

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 27 दिसम्बर, 1885 में बम्बई में हुयी थी । यह एशिया में राजनीतिक दलों में जापान के सिविल राइट्स मूवमेंट की संस्था "जिउमिन्कन" के बाद होना कहा जाता है जिसकी स्थापना वर्ष 1872 ईस्वी में जापान में हुयी थी । यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कांग्रेस समस्त भारतीय राजनीतिक दलों की मातृ संस्था तथा जन्मभूमि है । इस दल से 1934 में सोशलिस्ट कांग्रेस पार्टी गठित हुयी थी । सोशलिस्ट कांग्रेस पार्टी के उद्भव की शुरूआत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में स्वतंत्रता आन्दोलन के तरीके की आलोचना में निहित था । सोशलिस्ट कांग्रेस, समाजवादी विचारधारा की समर्थक थी । कांग्रेस सोशलिस्ट में पंडित नेहरू भी थे । इसमें जयप्रकाशनारायण अच्युत पटवर्धन, आचार्य नरेन्द्रदेव , सुभाषचन्द्रबोस बड़े नेता थे । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंडित नेहरू को छोंड़ कर उपरोक्त सभी नेता कांग्रेस दल से अलग हो गये । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व कांग्रेस एक आन्दोलन था जिसकी परिणति एक बृहद आधार वाले दल में हुयी । विश्लेषण से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि पार्टी का ऐतिहासिक स्वरूप इस पार्टी से कभी भी अलग नहीं हुआ और इससे यह संगठन लाभ उठा रहा है । हालांकि पार्टी के सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोए रखने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उसके ऐतिहासिक विशिष्टताओं की वजह से कोई लाभ नहीं हुआ है , लेकिन कहने के लिए यह हमेशा सुलभ रहा है कि इस दल ने देश को राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान की । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ये विशिष्ट लोगों की एक पार्टी थी जिसने कि एक बड़ा आन्दोलन किया और इस आन्दोलन का असर सम्पूर्ण देहातों तक में घुस गया, इसका नेहरू व उसके उत्तराधिकारियों ने सहानुभूति अर्जित करने के लिए और पार्टी में अन्दरूनी तनाव से मुक्ति पाने के लिए खूब उपयोग किया । लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रधानमंत्री और कांग्रेस दल का अध्यक्ष एक ही व्यक्ति हो या न हो का विवाद बहुत समय तक चलता रहा और आखिर में यह विवाद इस दल के विभाजन का मुख्य कारण बना।[1]

स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में गाँधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दल की एकता के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाई हलांकि उनका यह विचार था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस संगठन को लोक सेवक संघ का नाम दे दिया जाये और कांग्रेस शब्द को समाप्त कर दिया जाये तथा संसदीय क्षेत्र को एक नवीन राजनीतिक चेतना से युक्त संगठन के लिए छोंड़ दिया जाये ।[2]

1- Dietrner Rothermund- "Die Politische willensbaldung in Indian 1950-1960". Wicsbaden 1965, Page 177

2- एम0वी0 रामन राव,कांग्रेस का संविधान , कांग्रेस पब्लिकेशन ,पृ0 70,1965

गाँधी जी का उपर्युक्त राजनीतिक टेस्टामेंट क्रियान्वित नहीं हुआ क्योंकि उसका कारण था कि जो नेता इस संगठन से जुड़े रहे थे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वह उस लाभ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे । "बैक्टोल्ड" अपनी पुस्तक इण्डिया और चाइना[1], "डाइ अल्टरनेटिव इन एशियन स्ट्रगर्ट 1961" में लिखता है कि अगर गाँधी जी के कथन को क्रियान्वित कर दिया गया होता तो भारत वास्तविक द्विदलीय प्रणाली में चल पड़ा होता लेकिन गाँधी जी पूर्णतया गलत नहीं थे जब उन्होने इस संगठन के भावी क्षय की कल्पना की[2] लेकिन भारतीय गणतंत्र के स्थायित्व के लिए यह महत्वपूर्ण था कि कांग्रेस के इतने सुगठित ढ़ांचे से एक नवीन राजनीतिक प्रणाली का जन्म हुआ।

कांग्रेस पार्टी हमेशा एक संघात्मक ढ़ांचे में कार्य करती रही । किन्तु यह एक अत्यधिक केन्द्रीय संगठन नहीं रहा है । केन्द्रीय नेतृत्व मनमाने तरीके से अपना कार्य नहीं चला सकता था । पंडित नेहरू के जीवन काल में ही अनेक प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया था और वे उन नीतियों की अवहेलना करते थे जो उन्हें उपयुक्त नहीं लगती थीं ।[3] 1967 के चुनाव परिणामों के बाद में केन्द्रीय नेतृत्व बुरी तरह से लड़खड़ा गया और केन्द्र व प्रान्तों के मध्य में बुद्धि पूर्ण सामन्जस्य एवं सहयोग को सुरक्षित रखना जटिल हो गया परिणाम स्वरूप कांग्रेस का विभाजन हुआ और कांग्रेस "ओ" के नाम से एक प्रथक दल का निर्माण हुआ ।

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

स्वतंत्रता आन्दोलन के दरम्यान अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आबादी के विभिन्न स्तरों और परस्पर विरोधी हितों को स्पष्ट रूप से जोड़ने की अपनी क्षमता के आधार पर दूसरे दलों के ऊपर एक वरीयता प्राप्त कर ली थी । आबादी का उपखण्ड चाहे वह भूमिहीन मजदूर हो, आदिवासी हो , हरिजन, मध्यमवर्गीय किसान, जमींदार अथवा शहरी पूँजीपति हो , कांग्रेस का संविधान अपने में आर्थिक , सामाजिक हितों के आधार पर परस्पर विरोधी टुकड़ों को एक जुट करने के एक चेतन प्रयास को दर्शाता हुआ अभिलेख है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी कांग्रेस ने वैचारिक और राजनीतिक हितों के एक विस्तृत वर्ण पट को परिलक्षित करने का निरन्तर प्रयास किया है । जिसने दल को दक्षिण पंथी व वामपंथी लोगों की अतिवादिता जो उनके सिद्धान्तों और हितों में है, से दूर रखा है । कांग्रेस ने एक बहुल समाज की राजनीति का अनुशरण करने और विभिन्न वर्गों के हितों का समन्वय करने के अपने कार्य को जारी रखा है

1- प्यारेलाल (महात्मागाँधी द्वारा रचित दि लास्ट मीन्स से उद्धृत) खण्ड-2, अहमदाबाद, 1958, पृ0 675

2- मारकस एस फ्रान्डा "भारतीय कांग्रेस पार्टी का संगठनात्मक विकास" पैसिफिक अफेयर्स , बैकूवर, 1962, पृ0 298

3- सेठी जी0डी0 इण्डियाज स्टेटिक पावर स्ट्रक्चर, न्यू देहली, 1969,पृ050

अगर उसकी नीति इस तरह न होती तो दल के लिये यह बहुत ही कठिन होता कि वह बहुजन हिताय राजनीति करने वाला एक दल होता । इसी लिए कुछ लोग कांग्रेस को एक गैर सैद्धान्तिक दल कहते हैं ।

अगर सिद्धान्त को एक लम्बे और अत्यन्त विषम समाज में गतिशील बनाया जाता है तो वह उस समाज में वर्तमान हावी हितों का समूह पैदा करता है और इसके कारण बहुमत की राजनीति और उनके हितों का संवर्धन कठिन बन जाता है । रजनी कोठारी के शब्दों में " एक सिद्धान्त जो कि राष्ट्रीय समाज के एक खण्ड अथवा एक वर्ग के हितों का संरक्षण करने के लिए और उनमें प्रगति लाने के लिए बनाया जाता है , वह अधिकतर दूसरे वर्ग और खण्डों को अपने से पूर्णतयः पृथक कर देता है जिससे राष्ट्र की संरचना बिल्कुल असंभव हो जाती है । इसी कारण कांग्रेस ने सैद्धान्तिक राजनीति को अपने में आत्मसात कर लिया है और अपना मार्ग समझौता और धीरे - धीरे लक्ष्य की प्राप्ति की राजनीति बनाया है ।[1]

फिर भी यह सही नही होगा कि कांग्रेस को सिद्धान्त विहीन दल कहा जाये । कांग्रेस के सैद्धान्तिक प्लेटफार्म में राष्ट्रीयता , धर्म निरपेक्षता , समाजवाद और जनतंत्र पथप्रदर्शक सिद्धान्त हैं। । कांग्रेस के अनुसार राष्ट्रीयता को परिभाषित किया गया है ।- भारत की सम्प्रभुता , सीमाओं की अखण्डता और एकता के प्रति उसका लगातार झुकाव। कांग्रेस के राष्ट्र का हित छोटे हितों से ऊपर है , इस प्रकार क्षेत्र क्षेत्र और भाषावाद के ऊपर राष्ट्रीय हित है । किसी भी प्रकार से देश से अलग होने के प्रयास को यह दल चुनौती के रूप में स्वीकार करता है और हर हालत में उसे परास्त करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है । कांग्रेस के अनुसार धर्म निरपेक्षता विभिन्न धर्मो और सम्प्रदायों एक तरफ तथा दूसरी तरफ राज्य के बीच में उदासीनता का रूख अपनाती है इसके अनुसार कोई विशिष्ट धर्म राजनीति का आधार नही होगा और सामान्य जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी धर्म को वरीयता नही दी जायेगी । कांग्रेस दल जातिवाद का जो कि विभिन्न जातियों के मध्य में एक जाति को दूसरे से श्रेयस्कर बनाता है का घोर विरोध करता है । यह अस्पृश्यता का विरोधी है और सामा० राजनीतिक समता को शिक्षा और कानूनी कार्यवाही के द्वारा लाना चाहता है । इसी प्रकार साम्प्रदायिकता को, जो मजहबी कट्टरता प्रकट करती है और जिसकी वजह से हिन्दू व मुसलमानों के बीच में अक्सर दंगे होते हैं कांग्रेस के अनुसार सामाजिक और राजनीतिक जीवन की चेतन धर्म निरपेक्षता के द्वारा हटाया जाना चाहिए । समाजवाद के विषय में कांग्रेस ने परिभाषित किया है कि उसका अर्थ समाज में राज्य का अधिकतम नियंत्रण एवं केन्द्रीयकरण है । इसी लिए

1- कोठारी रजनीः पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्शन स्टडीज, एलाइड पब्लिसर्स नई दिल्ली, 1967, कृष्णन गोपाल, कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया एण्ड वन पार्टी डामीनेन्स , डेव्लपमेंट एण्ड ट्रेन्डस ।

यह दल पब्लिक सेक्टर व संगठन की वकालत करता है । क्योंकि उसके द्वारा दल आय श्रोतों पर एकाधिकार को रोंकने की प्रवृत्ति तथा समाज के कमजोर वर्गो के हितों में प्रोन्नति लाना चाहता है । कांग्रेस के अनुसार जहाँ पर प्राइवेट सेक्टरों की बहुलता है उन्हें पब्लिक सेक्टर में परिवर्तित किया जाना चाहिए । कांग्रेस के अनुसार समाज वाद का अर्थ है उत्पादन को बढ़ाना और उसके साथ ही साथ राष्ट्रीय धन का समुचित वितरण करना । कांग्रेस का पथप्रदर्शक तत्व जनतंत्र है । जिसका अर्थ है संसदात्मक प्रतिनिधित्व की प्रणाली , जो कि सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव में चुनी हुयी जनप्रतिनिधियों की सरकार है । जो इस बात का हर एक को मौका देती है कि राष्ट्रीय समाज में आम भागीदारी हो ।

इस प्रकार राजनीति तंत्र में कांग्रेस का आधार राष्ट्रीयता , संसदात्मक जनतंत्र धर्म निरपेक्षता व समाजवाद है । 1950 के संविधान में कांग्रेस ने कहा था कि वह धर्म निरपेक्ष जनतंत्रात्मक गणतंत्र जो कि संसदीय स्वरूप की सरकार रखेगा और जिसमें जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा , वैसी सरकार बनायेगा। दल ने पंचवर्षीय योजनाओं को शुरू करने की नीति की उद्घोषणा की - जिसके द्वारा दल जनतंत्रात्मक ढ़ांचे के अन्दर नियोजित आर्थिक विकास के द्वारा राष्ट्र निर्माण का कार्य करेगा , क्योंकि उसी के द्वारा दल अधिकतम आम भागीदारी , सामाजिक न्याय और आर्थिक उन्नति के दो लक्ष्यों को प्राप्त करने के अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है । इस नवीन सामाजिक व्यवस्था में जाति , रंग , लिंग अथवा धर्म के आधार पर समाज का एक खण्ड अथवा एक व्यक्ति दूसरे की तुलना में असमानता नहीं करपायेगा यह दल का विश्वास है ।

कालान्तर में अविभाजित कांग्रेस के दो दल हो गये । कांग्रेस"ओ" व कांग्रेस आई । 1969 में यह विभाजन हुआ । 1969 से 1977 के मध्य दोनों दल प्रथक रहे व कांग्रेस "ओ" ने रूलिंग कांग्रेस के बारे में कहा -"कि वह उसी तरह की प्रणाली की पक्षधर है किन्तु वह रूलिंग कांग्रेस की कार्यप्रणाली की स्वेच्छाचारी मानती है । यह आकलन एक तरफ यह दर्शाता है कि "संविधान के नीतिनिर्देशक तत्व एक तरफ व व्यक्तियों के मौलिक अधिकार दूसरी तरफ हैं" के बारे में कांग्रेस ओ व कांग्रेस आई की पहुँच में मतभेद है । संविधान के मूल अधिकारों का उद्देश्य अपनी बुनियादी स्वतंत्रता और नागरिकीय स्वतंत्रताओं में राज्य के हस्तक्षेप से अपना बचाव करता है । वहीं पर संविधान के निर्देशक तत्वों का लक्ष्य सामा0 न्याय को बढ़ाना है । इसके द्वारा राज्य के गतिशील हस्तक्षेप के द्वारा बहुल समाज के हित को प्राप्त करना है नीति निर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन मूल अधिकारों के क्रियान्वयन से अक्सर टकराव करता है । कांग्रेस (ओ) के अनुसार न्याय पालिका को स्वतंत्र होना चाहिए, क्योंकि

वह राज्य की स्वेच्छाचारिता के विरूद्ध संविधान और जनतंत्रता (नागरिक स्वतंत्रता) का आश्रय स्थल है । कांग्रेस (ओ) का मानना है कि संविधान में सम्प्रभुता , नागरिक सम्प्रभुता है और यह सम्प्रभुता संविधान के अध्याय 3 व 4 में प्रदत्त मूल अधिकारों के द्वारा स्पष्ट होती है । अतः संसद को संविधान के अधीनस्थ होना चाहिए संविधान के ऊपर नहीं ।[1]

सत्ताधारी कांग्रेस के अनुसार संसदात्मक सम्प्रभुता की रक्षा की जानी चाहिये जिससे कि संसद भारतीय संविधान को उसमे उपयुक्त संशोधनों के द्वारा त्वरित सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का एक उचित हथियार बना सके । दल के अनुसार मूल अधिकारों की तुलना में नीतिनिर्देशक तत्वों को वरीयता दी जानी चाहिए । क्योंकि नीति निर्देशक तत्व सम्पूर्ण नागरिकों से सम्बन्धित हैं और उनकी समाज के कमजोर वर्गो के लिए विशेष सार्थकता व आवश्यकता है । जबकि मूल अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्तियों से है तथा मूल अधिकारों का उन लोगों के हित में अनुपालन कराया जाता है , जो कि पैसे वाले हैं तथा जिनके पास शक्ति है , कि वे कानूनी दाँव पेंचों में धन का व्यय कर सकते हैं । अतः यदि नीति निर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन करना है तो मूल अधिकारों का संक्षिप्तीकरण करना होगा । और इस संक्षिप्तीकरण के लिए संसद के पास अविवादित विशेषाधिकार होना चाहिए । न्याय पालिका को प्रगतिशील सामाजिक , आर्थिक विधायन तथा उनको सक्षम बनाने वाले संवैधानिक संशोधनों के पारण में आड़ नहीं आना चाहिए क्योंकि न्यायपालिका के द्वारा ऐसा करना लोगों की सार्वभौमिक इच्छा के साथ खिलवाड़ करना होगा और इस वजह से नीतिनिर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन मुश्किल होगा । संगठन कांग्रेस सत्ताधारी कांग्रेस से इस तरह उस तरीके से भिन्न है जिसमें कि यह नीति निर्देशक तत्वों को क्रियान्वित करना चाहती है । सत्ताधारी कांग्रेस के द्वारा मूल अधिकारों के ऊपर नीतिनिर्देशक तत्वों को प्रभावी बनाना और एक साम्याकृति सामाजिक व्यवस्था के अभिवर्धन में राज्य की भूमिका पर विशेष बल देना संगठन कांग्रेस की तुलना में अविभाजित कांग्रेस के संदर्भ में अपनी विभिन्नता को स्पष्ट करता है ।

1955 के आवाडी प्रस्ताव में कांग्रेस ने कहा था कि भारतीय संविधान के राज्य के नीति निर्देशक तत्व और स्मृति पत्र में दिए हुए लक्ष्य की पूर्ति के लिए कांग्रेस के संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समाज की समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए- जिसमें उत्पादन के मुख्य श्रोत सामाजिक स्वामित्व एवं नियंत्रण में हों के उत्पादन को गतिशील रूप से बढ़ाने तथा राष्ट्रीय धन का साम्यात्मक वितरण के लिए नियोजन आवश्यक है । 1957 के अपने चुनावी घोषणापत्र में अविभाजित कांग्रेस

1- कांग्रेस (ओ) का घोषणापत्र 1971

ने कहा कि भारत में क्रान्ति तभी आ सकती है जबकि राजनीतिक क्रांति के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति आवे । 1976 में किये गये 42वें संविधान संशोधन के स्मृतिपत्र में यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि भारत एक संप्रभुता सम्पन्न जनतंत्रात्मक धर्मनिरपेक्ष एवं समाजवादी गणतंत्र होगा । इस प्रकार कांग्रेस के विचारों के अनुसार देश में राजनीतिक क्रान्ति आ चुकी है और उसको पूरा करने के लिए सामाजिक , आर्थिक क्रान्ति लाना होगा जिसके लिए ध्यान तथा प्रयास की आवश्यकता है ।

कांग्रेस द्वारा निर्धारित लक्ष्य "सामाजिक आर्थिक क्रान्ति" अर्थतंत्र की बड़ी-बड़ी इकाइयों जैसे बैंकीकरण, बीमा , मुख्य बड़े उद्योग , व्यापार आयात निर्यात के अत्यावश्यक क्षेत्रों में राज्य नियंत्रण को आवश्यक मानती है । इसके अनुसार एकाधिकार को समाप्त करना जरूरी है । दल आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास करना चाहता है । दल के अनुसार मध्यम और लघु उद्योगों का अभिवर्धन होना चाहिए तथा कृषि पर आधारित नीति जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ें को प्रोत्साहन मिलना चाहिए । दल का लक्ष्य है कि औद्योगिक मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिया जाना सुनिश्चित किया जाना चाहिए तथा मजदूरों को शोषणात्मक अनुबन्धों एवं शर्तों से बचाना चाहिए इसका उद्देश्य प्रबन्ध तंत्र व बढ़ी हुयी उत्पादकता के लाभों में श्रमिकों की भागीदारी पैदा करना है । दल शहरी सम्पत्ति में सीमांकन का समर्थक है तथा देहाती क्षेत्रों में कृषि भूमि की अधिकतम जोत सीमा निश्चित करना चाहता है तथा अधिकतम जोत सीमांकन के द्वारा प्राप्त अतिरिक्त भूमि को ऐसे कृषिविहीन मजदूरों व आदि वासियों व दूसरी पिछड़ी जातियों के मध्य वितरित करना है जिन्हें इसकी महती आवश्यकता है । दल विधायन द्वारा कृषि कर्मी मजदूरों को न्यूनतम वेतन दिलाये जाने व उनको ग्रामीण साहूकारों से मुक्ति दिलाने तथा लघु एवं सीमांकित किसानों को ऋण और उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाकर पैदावार को बढ़ाने तथा उनकी सहायता करने का समर्थक है । दल समाज के कमजोर वर्गों को भवन निर्माण व शिक्षा की सहायता देने का भी समर्थक है ।

दल विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को युगों से चली आ रही अशिक्षा ,गरीबी, और पिछड़ापन से समाज को मुक्ति दिलाने में उपयोग करने का समर्थक है । यह गृहक्रान्ति देश के अन्दर शान्ति की स्थापना करेगी और अन्त0 समुदाय के दूसरे सदस्यों के साथ एक रचनात्मक सम्बन्धों को निर्मित करेगी । राष्ट्र के भीतर आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए संघर्ष एक अधिक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था जो एक गरीब अविकसित राष्ट्र की एक धनी तथा विकसित राष्ट्र के मध्य होनी चाहिए के निर्माण की आवश्यकता को उजागर करेगा । इस प्रकार की दुनिया में नस्लवाद, उपनिवेशवाद, शोषण तथा प्रकारान्तर को कोई स्थान नही होगा और न इस संसार में युद्ध सामग्री मिलेट्री ब्लाकों

तथा पैक्टों के लिए जगह होगी क्योंकि यह दोष राष्ट्रो के पारस्परिक सहयोग के रास्ते से विलग करते हैं एवं विनाशात्मक लक्ष्यों की पूर्ति में उनके साधन श्रोतों को नष्ट करते हैं । कांग्रेस शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व और निर्गुट नीति को एक अच्छी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा राजनीतिक एवं आर्थिक प्रणाली के रूप में विकसित किये जाने का समर्थक है ।

(2) भारतीय साम्यवादी दल ::

यद्यपि साम्यवादी दल की स्थापना श्री मानवेन्द्र नाथ राय 17 अक्तूबर 1920 में ताशकन्द में कर चुके थे , तथापि भारत में उसकी जड़ें नहीं जम सकी थीं अत: राधामोहन गोकुल जी की प्रेरणा से सत्यभक्त नामक एक कांग्रेसी कार्यकर्ता ने दिनांक 1925 में भारत साम्यवादी की स्थापना के उद्देश्य से कानपुर में एक सम्मेलन का आयोजन किया तथा एक कार्यसमिति के गठन के बाद इसका अस्तित्व प्रकाश में आया ।[1] इस सम्मेलन ने भारत के साम्यवादियों को संगठित होने का अवसर दिया , किन्तु ब्रिटिश औपनिवेंशक सत्ता का प्रबल विरोधी होने के कारण, इस दल को जन्म के समय से ही अवैध घोपित कर दिया गया । फलत: इसके सदस्य लुकछिप कर कार्य करते रहे । इसके संविधान का प्रारूप 1931 में बना जिसे 1933 में दल के प्रथम अधिवेशन में स्वीकार किया गय । 1934 में इसकी क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । फलस्वरूप अधिकांश कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट में मिल गये । चूँकि इस दल की ब्रिटेन द्वारा भारतीयों को दी गयी संवैधानिक रियायतों में कोई आस्था नहीं थी । इसलिये इसने 1937 में प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना का विरोध किया ।

राष्ट्रीय आन्दोलन को कम्युनिस्टों ने विश्वसाम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष का एक अंग स्वीकार किया । इसलिये 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कुछ विरोधी रूप अपनाते हुये इसे साम्राज्यवादी युद्ध की संज्ञा दी । लेकिन 1941 में जर्मनी द्वारा सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिये जाने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में एकदम परिवर्तन आ गया । तथा इसने युद्ध को "जनता युद्ध" घोषित कर दिया एवं इसकी सहानुभूति स्पष्ट रूप से सोवियत संघ के प्रति हो गयी । परिणाम स्वरूप 24 जुलाई 1942 में ब्रिटिश सरकार द्वारा दल पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया गया ।[2] तथा दल ने ब्रिटिश सरकार को पूर्ण सहयोग देते हुये 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया । बाद में पाकिस्तान की माँग का समर्थन किया । इससे भारतीय जनता में इसका प्रभाव क्षीण होता गया ।

1- पट्टाभिराम , एम0 (एडिटेड) जेनरल इलेक्शन इन इण्डिया, पृ0 110, एलाइड पब्लिकेशन ,दिल्ली, 1967, पृ0 118

2- मसानी , एम0आर0 , दि कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया , ए शार्टहिस्ट्री, बाम्बे मा0 विद्याभवन, 1967, पृ0 62

स्वतंत्रता के बाद प्रथम आमचुनाव में इसे उ0प्र0 में तो सफलता नहीं मिली लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर अच्छी सफलता प्राप्त कर यह लोकसभा में प्रमुख विरोधी दल के रूप में उभर कर सामने आया । फरवरी 1953 में चुनाव आयोग ने इसे प्राप्त मतों के आधार पर राष्ट्रीयदल के रूप में मान्यता प्रदान की । 1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के सम्बन्ध में दल में काफी मतभेद उत्पन्न हो गये । चीन के साम्यवादी दल ने एस0ए0 डांगे के नेतृत्व वाली दक्षिण पन्थी कम्युनिस्ट पार्टी की कड़ी आलोचना की, यद्यपि दल में वैचारिक मतभेद जन्म के समय ही थे , लेकिन 1962 में यह स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गये । फलस्वरूप 1964 में दल दो भागों में विभक्त हो गया तथा दल के अत्यधिक वामपन्थी सदस्यों ने मार्क्सवादी साम्यवादी दल का गठन किया जो कि चीन से प्रभावित था ।[1]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

साम्यवादी दल अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों को निर्धारित करने में प्रजा समाजवादी व समाजवादी दल की तरह कभी सचेत नहीं रहा ।[2] विभिन्न क्षेत्रों में इसकी प्रमुख नीतियाँ निम्नव् हैं :-

दल का मुख्य लक्ष्य वर्तमान अप्रजातांत्रिक तथा अप्रिय सरकार के स्थान पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में जनवादी लोकतांत्रिक राज्य का गठन करना है ।[3] जिसमें सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व हो । जुलाई 1951 में दल के प्रधान श्री अजय घोष ने एस0ए0 डांगे के सहयोग से जिस नयी नीति का सूत्रपात किया उसका अभिप्राय यह था कि भारतीय जनता अभी सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयार नहीं है । अतः कांग्रेसी सकार की घरेलू नीतियों के विरूद्ध केवल संवैधानिक विरोध किया जाये । पहले दल का संसदीय प्रजातंत्र में विश्वास नहीं था लेकिन 1956 के पालघाट अधिवेशन में इसने अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करके संसदीय व्यवस्था में विश्वास व्यक्त किया । इस प्रकार साम्यवादीदल अपनी अन्तर्राष्ट्रीय व क्रान्तिकारी दल की भूमिका को छोड़कर राष्ट्रवादी व संसदीय दल बन गया ।[4]

दल बिना मुआवजे के जमींदारी प्रथा समाप्त करने तथा अतिरिक्त भूमि भूमिहीन श्रमिकों व मजदूरों को देना चाहता है । साथ ही इसका विश्वास है कि कृषि

1- एस0 प्रसन्न कुमार, पालिटिकल पार्टीज इन इण्डिया , एलाइड पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1967, पृ0 110-111

2- वीनर मायरन (एडिटेड) स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया पूर्वोक्त पृ0 86

3- यूनिटी आफ दि पार्टी एण्ड दि इण्टरनेशनल कम्युनिस्ट मूवमेंट, कम्युनिस्टपार्टी पब्लिकेशन , न्यू देहली, अगस्त 1968 पृ0 35

4- दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 12 मई 1956

के उपकरणों तथा आवश्यक बीज आदि खरीदने के लिए दीर्घकालीन ऋण दिया जाये तथा उन्हें उपज में उचित मूल्य मिले ।[1]

(3) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स) ::

1962 में अजय घोस की मृत्यु व चीन आक्रमण से भारत के साम्यवादी आन्दोलन में सैद्धान्तिक मतभेद प्रारम्भ हो गये जिसके परिणाम स्वरूप भारत में एक नये दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्स) का उदय हुआ । 1967 के आम चुनावों में दोनों दलों ने भाग लिया व केरल तथा पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चा सरकार बनाने में सफल रहे ।[2] किन्तु सी0पी0एम0 के उग्रवादी सदस्यों ने चीन के साम्यवादी दल के इशारे पर बुर्जुआ लोगों के साथ सरकार बनाने का विरोध किया । परिणाम स्वरूप सी0पी0एम0 ने माओं की पार्टी का समर्थन खो दिया और अति क्रान्तिकारियों ने एक तीसरा दल - कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया - (मार्क्सवादी व लेनिन वादी) का गठन किया जिसे नक्सलवादी भी कहा गया है इस प्रकार भारत के साम्यवादीदल कांग्रेस का विकल्प बनने की बजाय एक दूसरे को समाप्त करने का बीड़ा उठाये हैं ।[3]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

साम्यवादी दल (मार्क्स) दलित व निर्धन वर्ग के लोगों की स्थिति सुधारने पर बल देती है , लेकिन कोई ठोस आर्थिक कार्यक्रम नहीं प्रस्तुत करती जिससे कि कुछ आशा बंध सके कि यह सत्तारूढ़ होने पर सचमुच ही दलितों व निर्धनों के लिए कुछ कर सकेगी । यह आपात स्थिति की घोषणा व प्राविधानों के विरूद्ध है तथा कांग्रेस के 20 सूत्रीय कार्यक्रम की आलोचना करती है ।[4]

साम्यवादी दल (मार्क्स) का मानना है कि देश में गत वर्षों से निरन्तर बेरोजगारी बढ़ती जा रही है अतः प्रत्येक नागरिक को काम काज, , रोजगार दिलाने के अधिकार को मौलिक अधिकार में सम्मिलित किये जाने का समर्थन करती है । इसके अनुसार छोटे तथा सीमान्त किसानों को उनकी खेती की आवश्यकताओं के लिए

1- मोहनराम , इण्डियन कम्युनिज्म, विकास दिल्ली 1969 पृ0 33

2- ए0पी0 चटर्जी, "दि इलेक्शन स्ट्रेट्रेजी आफ दि लेफ्ट कम्युनिस्ट", इन एम0पट्टाभिराम (एडिटेड) "जनरल इलेक्शन इन इण्डिया" 1967 एलाइड पब्लिकेशन , न्यू देहली, 1967, पृ0 67-68 .

3- पुरवार, एल0 जौहरी. "भारतीय शासन व राजनीति" विशाल पब्लि०, दिल्ली. पृ० 823

4- सी0पी0एम0 इलेक्शन मैनीफेस्टो 1971 .

आवश्यकीय साधन और विलीय सहायता दिलाने की व्यवस्था की जायेगी । किसानों को लाभकारी मूल्य दिलाने के लिये सरकार की ओर से उचित मूल्य पर कृषि उपज खरीदने की व्यवस्था की जायेगी । करों और अधिभार को घटाया जायेगा । बाजार में बिकने योग्य सभी अतिरिक्त अनाजों को सरकार जमीदारों ओर बड़े-2 किसानों से ले लेगी । मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने1971 के घोषापत्र में कहा कि गत वर्षों में मूल्य बृद्धि 30 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गति से हुयी है । समाज के सभी वर्गों का मूल्य बृद्धि के कारण शोषण बढ़ा है और उनके जीवन स्तर में गिरावट आयी है ।[1] देश के 70% लोग गरीबी के नीचे जीवन स्तर बिता रहे हैं तथा सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य लोगों की पहुँच के बाहर हो गये हैं दल इन सभी बुराइयों को दूर करने को कटिबद्ध है ।[2]

मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने घोषणापत्र में स्पष्ट किया कि दल मजदूर आन्दोलनों को स्वस्थ बनाने के लिए उनके ट्रेड यूनियन अधिकारों जिनमें सामूहिक सौदेबाजी, हड़ताल का अधिकार आदि सम्मिलित हैं को फिर से प्रतिष्ठित करने का समर्थन करता है । श्रमिकों को आवश्यकतानुसार वेतन दिलाने, बोनस कानून को रद्द करने तथा मजदूरों के दमनकारी कानूनों को समाप्त करने का बचन भी देता है । यह जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करके उनकी भूमि को लेकर भूमिहीन मजदूरों में बाँटने की समर्थक है तथा खेतिहर मजदूरों को प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दिलाने का समर्थक है ।[3]

मार्क्सवादी साम्यवादी दल पूँजीपतियों के एकाधिकार की आलोचक है । इसके अनुसार लोगों के ऊपर कर भार बढ़ा है तथा पूँजीपतियों और विदेशी पूँजी वाले कम्पनियों के लाभ बहुत बढ़ गये हैं । अतः विदेशी पूँजी के भारत में आने पर रोंक लगायी जानी चाहिए पार्टी विदेशी ऋणों की अदायगी पर रोक लगाने के लिए कटिबद्ध है । इजारेदार घरानों के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने तथा छोटे एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता देना व विदेशी व्यापार को सरकार के हाँथों में नियंत्रित किया जाना तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग व प्रतिष्ठानों को नौकरशाही से मुक्त किया जाना पार्टी कार्यक्रम के मुख्य केन्द्रविन्दु हैं । इसके अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों और प्रतिष्ठानों को नौकरशाही से मुक्त किया जाना चाहिए तथा उनसे भ्रष्टाचार को दूर कर प्रबन्धन को सुधारा जाना चाहिए । दल शिक्षा के क्षेत्र में 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा का पक्षधर है ।[4]

1- सी0पी0एम इलेक्शन मैनीफेस्टो 1974

2- हर्टमैन एच0, पालिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 1982,पृ0101

3- सी0पी0एम0 इलेक्शन मैनीफेस्टो 1971

4- सिरसिकार एन0, तथा एम0 फर्नान्डीज, इण्डियन पालिटिकल पार्टीज,1984,पृ0146-47

(4) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ::

समाजवादी दल तथा कृषक मजदूर पार्टी को मिलाकर प्रजासोशलिस्ट पार्टी का निर्माण किया गया क्योंकि प्रथम आम चुनाव में आशानुरूप सफलता प्राप्त नहीं हुयी थी अतः कांग्रेस के विकल्प के रूप में एक सशक्त विपक्षी दल का गठन करने के उद्देश्य से सितम्बर 1952 में इसका निर्माण हुआ ।[1] इस नयी पार्टी के कार्यक्रम में समाज वाद के लक्ष्य के स्थान पर गाँधी जी के सामाजिक सिद्धान्तों की स्थापना की गयी ।[2] 6 फरवरी 1953 को चुनाव आयोग द्वारा इसे राष्ट्रीय स्तर के दल की मान्यता दी गयी[3] किन्तु शीघ्र ही इसमें सैद्धान्तिक मतभेद उभर कर सामने आये उदाहरणार्थ- प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश नेताओं का मत था कि उन्हें उन राज्यों में जिनमें साम्यवादी दल तथा अन्य साम्प्रदायिक शक्तियाँ मजबूत हैं वहाँ कांग्रेस का समर्थन करना चाहिए परन्तु राम मनोहर लोहिया का दृष्टिकोण इसके विपरीत था । वे कांग्रेस व कम्युनिस्ट से दूरी रखना चाहते थे । फलस्वरूप दिसम्बर 1955 में लोहिया द्वारा त्यागपत्र देकर पुनः समाजवादी दल का निर्माण किया गया । उत्तर प्रदेश में यह विघटन काफी गंभीर रहा क्योंकि यहाँ प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी समिति लोहिया समर्थकों की थी ।[4]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

यह दल वर्ग जाति भेद से रहित एक ऐसे समाजवादी समाज की रचना करता है , जो सामा0 आर्थिक, तथा राजनीतिक शोषण से मुक्त हो , कृषि के क्षेत्र में यह किसानों को कृषि उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य देने के पक्ष में है । यह मुआवजा दिये बिना जमीदारी व जागीरदारी को समाप्त करने व छोटे जमीदारों को पुननिर्विशन अनुदान देने के पक्ष में हैं ।

1- 12 जुलाई 1953 को फारवर्ड ब्लाक (रूईकर ग्रुप) ने इस नये दल में शामिल होने का निर्णय लिया । लेकिन चन्द वर्षों बाद 1955 के अवाडी अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा समाज वादी प्रवृत्ति स्वीकार कर लेने पर यह मार्च 1955 में पुनः कांग्रेस में आकर मिल गया ।

2- पामदत्त रजनी, "भारत वर्तमान और भावी", नई दिल्ली, पीपुल पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, 1956, पृ0 230

3- नेशनल हेराल्ड (लखनऊ) , 7 फरवरी 1956

4- सिंह हरीकिशोर, दि हिस्ट्री आफ प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, पृ0 211-15

यह बड़े पूँजी वादी संस्थानों को जब्त करने , आमदनी की सीमा निर्धारित करने , बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने, बैंकों का राष्ट्रीयकरण कने तथा सहकारी उपभोक्ता समितियों की स्थापना करने के पक्ष में है तथा ग्रामीण व लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के पक्ष में है । इसका मानना है कि नियोजन व प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए ।[1]

यह बड़े पैमाने पर पब्लिक सेक्टर में नियंत्रण तथा नौकरशाही में नियंत्रण चाहती है । पूरे तरीके से यह पार्टी एक सामाजिक व्यवस्था पर जो कि आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीयकृत नियाजन की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करती पर जोर देती है । यह कुछ सिद्धान्तों में गाँधीवादी सिद्धान्तों का पालन करती है ।[2] 1957 के एक प्रस्ताव में दल ने भाषा नीति को स्पष्ट किया कि आँग्ल भाषा को बनाये रखा जाये लेकिन हिन्दी को राष्ट्र भाषा का रूप दिया जाना चाहिए ।[3]

विदेशी नीति के क्षेत्र में इसका दृष्टिकोण कांग्रेस से पृथक है 50 के दशक में इस पार्टी के नेतृत्व ने नेहरू की विदेश नीति की जमकर आलोचना की और उन आदर्शों की वकालत की जिन्हें तिब्बत में क्रान्ति के बाद सामान्य रूप से स्वीकार किया गया । अन्त में पंडित नेहरू ने स्वयं कहा - कि चीनियों ने भारतीयक्षेत्रपर कब्जा-कर लिया है ।[4] इस दल ने 1962 तथा 1967 के चुनाव घोषणापत्रों में कांग्रेस की विदेश नीति की समस्याओं का खुलासा किया और इस बात की पुरजोर चर्चा की कि भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में चीनी व पाकिस्तानी दवाव है । यह कांग्रेस के असंलग्नता व निरगुट आन्दोलन का समर्थन करती है ।[5]

(5) भारतीय लोकदल ::

भारतीय लोकदल की स्थापना 29 अगस्त 1974 को स्वतंत्र पार्टी और भारतीय क्रांतिदल तथा 5 अन्य छोटे-2 घटकों से मिलाकर की गयी । इसमें अन्य घटक उत्कल कांग्रेस , राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल, किसान मजदूर पार्टी , पंजाब खेती-बारी जमीदार

1- इलेक्शन मैनीफेस्टो , 1967 , पृ0 2
2- -तदैव- 1962, पृ0 3
3- एशियन रिकार्डर 1957,दिनाँक 17, पृ0 227
4- मुकुट बिहारी लाल , कम्युनिस्ट चीन्स एग्रेजन, बनारस, पी0एस0पी0 पब्लिकेशन
5- इलेक्शन मेनीफेस्टो , 1962-1967

यूनियन और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का एक असन्तुष्ट टुकड़ा था । इस पार्टी की संरचना की नीव भारतीय क्रान्ति दल व स्वतंत्र पार्टी की यह संयुक्त विचार धारा थी कि सामाजिक न्याय एवं लोक कल्याण के प्रति जितनी अच्छी तरह से सभी क्षेत्रों व्यक्तिगत हित व व्यक्तिगत व्यवसाय के आधार पर की जा सकती है उतनी राज्य की सम्पत्ति व राज्य के नियंत्रण द्वारा नही हो सकती । अर्थात यह राज्य के एकाधिकार का विरोध करती है ।[1] इस नवीन दल के प्रारम्भिक अध्यक्ष श्री चरण सिंह थे जो कि पूर्व कांग्रेस सदस्य तथा भारतीय क्रान्तिदल के अध्यक्ष रह चुके थे । इस दल का उद्देश्य गाँधी जी के सिद्धान्तों पर चलना तथा साम्यवादी दल व भारतीय जनसंघ के मध्यवर्ती मार्ग का अनुशरण करना है ।[2]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

यह दल राष्ट्रीय अर्थ तंत्र में साम्यवादी दल की तरह राज्य की दखलन्दाजी का समर्थक नही है । इसके अनुसार राज्य को केवल जनतंत्र व धर्म निरपेक्षता को बरकरार रखते हुये कानून व व्यवस्था की रक्षा करनी चाहिये तथा कम से कम नियंत्रण कर एक स्वच्छन्द एवं साफ सुथरा प्रशासन देना चाहिये । इसे निजी सम्पत्ति प्राप्त करने तथा एक स्वतंत्र न्यायपालिका (जो कि संविधान की प्रहरी होती है) के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए । दल के अनुसार राज्य को अपने नागरिकों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिये जिससे कि वे स्वप्रेरणा से कार्य कर सकें ।[3]

लोकदल महात्मागाँधी के सिद्धान्तों पर आधारित है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं के लिये अच्छा अवसर देता है जिससे कि लोगों को अपने विकास का पूर्ण अवसर मिले ।[4]

भालोद संवैधानिक स्वरूप को बहाल करने की पक्षधर है तथा साथ ही साथ मौलिक अधिकारों , राज्य की शक्तियों तथा न्याय पालिका की स्थिति के सम्बन्ध में प्रारम्भ में रखे गये तथा अनुमोदित प्रावधानों की पक्षधर है । उसके अनुसार भारतीय संविधान जैसा कि शुरू में विनिर्मित था , राजनीतिक प्रणाली के लिये एक आदर्श घोषणापत्र है और इसके साथ सत्ताधारी दल द्वारा छेड़छाँड़ किये जाने की आवश्यकता नहीं है जैसा

1- भारतीय लोकदल, पब्लिसी एण्ड प्रोग्राम , भा0लो0दल पब्लिकेशन, पब्लिस्ट बाई पीलू मोदी फ्राम-2, लोदी स्टेट , न्यू देहली,1974

2- भा0क्रा0 दल इलेक्शन मैनीफेस्टो , 1971

3- भा0लो0दल इलेक्शन मैनीफेस्टो 1974

4- इण्डियन पालिटिकल पार्टीज,सिसिकार , फर्नान्डीज, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1984, पृ0 127

कि कई संविधान संशोधनों द्वारा किया गया । इन संशोधनों ने संविधान की आत्मा व उसके वैचारिक दर्शन के विपरीत कार्य किये हैं । न्यायालयों की स्वायत्तता व अधिकार इनसे छरित हुए हैं । केन्द्रवाद को बढ़ावा मिला है तथा व्यक्ति की व्यकितगत स्वतंत्रता का हनन हुआ है ।[1]

आर्थिक प्रश्नों पर भारतीय लोक दल एक विनियोजित आर्थिक विकास - नीचे से ऊपर किये जाने का पक्षधर है इसके अनुसार नियोजन का लक्ष्य प्रथमतः व सर्वाधिक रूप से सामान्य व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि होना चाहिए[2] भालोद संवैधानिक सैद्धान्तिक समाज वाद के लक्ष्यों के अनुसार एकाधिकार पैदा करने वाली योजना की पक्षधर नही है । कांग्रेस की पंचवर्षीय योजनाओं के विरोध में भालोद केन्द्रीय स्तर पर एक इन्फ्रास्ट्रक्चर योजना बनाती है जिसमें हर एक राज्य को अपनी योजना बनाने अपने साधन के स्रोतों को ढूढ़ने तथा अपने राजस्व का नियोजन कहाँ करना है तथा उसका अधिकतम उपयोग कैसे हो का निर्णय लेने का अधिकार देता है ।[3] यह प्रतियोगितात्मक उद्योगों के विस्तार और ज्यादा उत्पादन जिसमें श्रमिकों की सुरक्षा भी शामिल है की पक्षधर है ।

भालोद गाँधी जी के न्यास धारिता (ट्रस्टीशिप्) के सिद्धान्त का समर्थक है। दल राज्य की नीतियों द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्र उद्योग प्रणाली की, जिसमें प्रतिबन्ध व सामाजिक वाध्यताएँ भी हों, की पक्षधर है । भारतीय लोकदल सम्पत्ति के अधिकतम बंटवारे में , जोकि न्यासों व निवेश समितियों के द्वारा हो तथा जिसमें कर्मचारियों की भागीदारी का प्राविधान हो जिससे कि वे अधिकतम उत्पादन कर सकें , का अनुशरण करती है । यह नकदी सामान के उद्‌योगों, उपभोक्ता सामान उद्‌योगों तथा ग्रामीण उद्योगों के संतुलित विकास को चाहती है । यह बड़े उद्‌योगों को दी गयी वरीयता के विपरीत है । इसका मानना है कि बड़े उद्योगों को बड़े विवेक से क्रियान्वित किया जाना चाहिए तथा उनका विकेन्द्री करण होना चाहिए । और उनका इसप्रकार विस्तार किया जाना चाहिए जिससे कि वह उजागर सामाजिक विषमताओं को समाप्त कर सके । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए निजी उद्योग पतियों को विशेष रूप से लघु उद्योगों में लगे हुए और स्वयं परिश्रम करने वाले श्रमिकों , दस्तकारों व व्यापारियों को उत्साहित किया जाना चाहिए ।[4] पार्टी शहरी व देहाती क्षेत्रों में गहन सामूहिक कार्यक्रमों के द्वारा रोजगार को पैदा करने की आवश्यकता पर बल देती है । यह पार्टी श्रमिकों के संगठन बनाने

1- इण्डियन पालिटिक्स पार्टीज सिरसिकार, फर्नान्डीज, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ,1984,पृ0127-28

2- पैन्थमटी ,पालिटिकल पार्टीज एण्ड डैमोक्रेटिक कन्सेन्सस, मैकमिलन, देहली,1976, पृ0 48

3- दि बी0के0डी0 इलेक्शन मैनीफेस्टो, 1971

4- भारतीय लोक दल चुनाव घोषणापत्र-1974

के अधिकार, उनके सामूहिक समझौता करने के अधिकार , साथ ही साथ उनको मालिकों को अपने श्रम को बिना सहभागिता के कतई न देने का समर्थन करती है । लेकिन यह पार्टी राजनीतिक दलों के अनुदारवादी व्यक्तियों के द्वारा नेतृत्व के स्थान पर श्रमिकों के द्वारा खुद नियंत्रित उत्तरदायी और बलवान ट्रेड यूनियन की पक्षधर है ।[1] इसका विचार है कि प्रत्येक उद्योग के लिए एक यूनियन होनी चाहिए और गुप्त मतदान द्वारा इसकी मान्यता समयान्तर में निर्धारित की जानी चाहिये । श्रमिकों को ये अधिकार है कि उनको उचित तनख्वाह मिले और औद्योगिक लाभ में एक उचित हिस्सा मिले लेकिन यह हिस्सेदारी उद्योग पर मिले लाभ पर आधारित होना चाहिए ।[2] इस प्रकार उद्योग के प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी अप्रतिबन्धित होनी चाहिए । पुनर्व्यवस्थित आर्थिक नीति श्रमिकों की स्थिति को साथ ही साथ सामान्य व्यक्ति के स्तर को अच्छा बनायेगी दल का मानना है कि सबसे ज्यादा प्राथमिकता व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताओं जैसे भोजन,कपड़ा, आवास, रोजगार, शिक्षा तथा दूसरे सार्वजनिक लाभ के कार्यों के लिए होनी चाहिए ।[3] दल का मानना है कि विशाल पब्लिक सेक्टर उद्योगों द्वारा कीमत बढ़ाने वाली अर्थनीति का दमन करके सामान्य व्यक्तियों पर पड़ने वाली करनीति का बोझ कम किया जा सकता है । प्रशासनिक व्यय जिसका भार आवश्यक वस्तुओं की बढ़ी हुयी कीमतों और बुर्जुवा कर नीति के रूप में सामान्य व्यक्यिों पर पड़ता है, कम किया जाना चाहिए ।[4]

भालोद की ग्रामीण अर्थनीति किसानों के स्वामित्व पर आधारित गतिशील ग्रामीण अर्थनीति को दर्शाती है । पार्टी भूमिसुधार की माँग बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के करती है । यह सहकारिता पर बल देती है । लेकिन इस सहकारिता का अर्थ कृषियोग्य भूमि का एकत्रीकरण नही है । यह पार्टी इस बात की पक्षधर है कि जमीन को जोतने वाले को स्वामित्व का अधिकार दिया जाये और इसके लिये दल गैर किसानों को जमीन के हस्तांतरण, उसके छोटे-2 टुकड़े करने तथा अलाभकारी जोतों को निर्मित होने से रोकने के लिये कानून बनाने की पक्षधर है । इसका मानना है कि सरकारी कृषि फार्मो को टुकड़ों में बाँट कर भूमिहीन कृषि मजदूरों में बाँट दिया जाना चाहिए[5] ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए सरकार को प्रयासरत होना चाहिए । यह लघु औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करने की पक्षधर है । क्योंकि यह रोजगार के अवसर बढ़ाती है । और भूमि पर पड़ने वाले भार को कम करती है ।

1- स्वतंत्र पार्टी का चुनाव घोषणापत्र ।971

2- -तदैव-

3- भा0क्रा0 दल का चुनाव घोषणापत्र ।971

4- भारतीय लोकदल पालिशी एण्ड प्रोग्राम (भा0लो0दल पब्लिकेशन), पब्लिस्ड बाई पीलू मोदी, फ्राम 2, लोदी स्टेट, न्यू देहलीी, ।974

5- भारतीय लोकदल चुनाव घोषणा पत्र ।974

दल स्थाई कृषि मजदूरों को रोजगार की सुरक्षा और समुचित वेतन की क़ानूनी सुरक्षा देने की पक्षधर है । दल के अनुसार ग्रामीण मजदूरों को परम्परागत कर्जे से मुक्ति दिलायी जानी चाहिए । विकसित सिंचाई साधनों, ग्रामीण विद्युतीकरण, कृषि पर आधारित औद्योगिक सेवाओं, पशुधन सुधार व भूमि संरक्षण नीति के द्वारा ग्रामीण मजदूरों की स्थिति में सुधार लाया जाना चाहिए तथा इसे ग्रामीण अर्थ व्यवस्था से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए ।[1]

जहाँ तक विदेशी आर्थिक सम्बन्धों का प्रश्न है । भा0लो0 दल अपनी सामान्य अर्थनीति के अनुकूल शासन के द्वारा किसी बड़े विदेशी कर्जे को लेने के स्थान पर निजी विदेशी पूँजी से औद्योगों में निवेश की पक्षधर है ।[2]

वैदेशिक नीति के मामलों में भालोद विश्व के विकसित देशों के साथ एक उचित एवं सम्मानजनक व्यापार की शर्तों की पक्षधर है जिसमें कि विकसित देशों तथा तीसरी दुनिया के देशों के मध्य में औद्योगिक और आर्थिक खाई स्थाई रूप से कम हो सके । यह पाकिस्तान, बंगलादेश से विशेष रूप में अन्य पड़ोसी देशों, दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की पक्षधर है । यह निशस्त्रीकरण को चाहती है और सभी प्रकार के उपनिवेशवाद पारम्परिक व साम्यवाद का विरोध करती है । इस प्रकार भालोद को एक दक्षिण पंथी दल माना जाता है ।[3]

6- जनता पार्टी ::

कांग्रेस की विकल्प की खोज का कार्य तो वैसे बहुत अवसरों पर किया जाता रहा है किन्तु सन् 1971 का महागठबन्धन इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है जिसमें संगठन कांग्रेस स्वतंत्र व जनसंघ ने चुनाव में सहयोगी के रूप में कार्य किया है । यद्यपि इसमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी किन्तु इसने विभिन्न विचारधारा वाले लोगों को एक सीमित उद्देश्य के लिए विचार-विमर्श हेतु राजनीतिक मंच प्रदान किया तथा इसमें इन दलों के नेताओं को समीप लाकर कांग्रेस विशेषकर इन्दिरागाँधी को अपदस्थ करने का उपक्रम किया । जनता पार्टी के उदय के पीछे इसके शिल्पकारों जैसे बिहार आन्दोलन के नेता जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी, चौधरी चरण सिंह

1- हर्टमैन एच0, पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन ,मेरठ 1982, पृ0 176

2- - तदैव - पृ0 176-177

3- सिरसिकार एण्ड फर्नान्डीज , इण्डियन पालिटिकल पार्टीज, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 1984, पृ0 178

श्री जी0एन0जी रंगा, गोरे, श्री निजलिंगप्पा, श्री एस0एम0 जोशी व संगठन कांग्रेस के श्री मोरार जी देसाई तथा श्री ईरासेलियन आदि विरोधी दल के नेताओं का विशेष योगदान रहा ।[1] मार्च सन् 1976 में बम्बई सम्मेलन में आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में इन विरोधी दलों के नेता देश की तत्कालिक परिस्थिति को देखते हुए इस बात को सहमत हो गये कि पूर्ण विलय कर नई पार्टी को जन्म दिया जाये और 25 मई 1976 को जय प्रकाश ने इसके विधिवत गठन की घोषणा की ।[2]

आधार सिद्धान्त तय हो जाने के बाद चारों घटकों व भूतपूर्व कांग्रेसी जनों ने एक चुनावी दल का गठन कर लिया । संदेहों , शिकायतों , वैधानिकता आदि को एक तरफ करते हुए संयुक्त कार्यक्रम , चुनाव चिहृन , झण्डा , उम्मीदवार चयन की विधि व चुनाव संचालन के तरीकों के बारे में शीघ्र सहमति हो गयी ।[3] 1977 की जनवरी में लोकसभा भंग होने व नये निर्वाचन की घोषणा होते ही नया दल अपनी चुनावी रणनीति बनाने लगा । 23 जनवरी को 27 सदस्सीय राष्ट्रीय समिति की घोषणा की गयी । जिसमें मोरारजी देसाई को अध्यक्ष व चौधरी चरण सिंह को उपाध्यक्ष बनाया गया ।[4] जनता पार्टी की एक उपसमिति का गठन चौधरी चरण सिंह जो पार्टी के उपाध्यक्ष भी थे जिसका कार्य अपने दल का चुनाव घोषणा पत्र जारी करना था इस समिति ने नई दिल्ली में 10 फरवरी 1977 को अपने दल का चुनाव घोषणा पत्र जारी किया इसके उद्देश्य तथा विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए चौधरी जी ने पत्रकारों को बताया कि जनता पार्टी समाजवाद में विश्वास करती है । मगर वह समाजवाद , सत्ता दल के समाजवाद से बिल्कुल भिन्न है इसका आधार गाँधीवाद होगा [5] घोषणा पत्र के अनुसार दल भारत का प्रमुख उद्योग कृषि होने के कारण कृषि को प्राथमिकता प्रदान करता है । साथ ही दल भारी उद्योगों की अपेक्षा छोटे-2 और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देने का उल्लेख करता है । घोषणा पत्र मे यह भी कहा गया है कि राज्यों की स्वायत्तता की पुनः स्थापना की जायेगी । महत्वपूर्ण बात यह भी निर्दिष्ट थी कि जनता पार्टी के सभी घटक एक दल में संगठित हो गये हैं । यह दल सरकार द्वारा पूर्व आयोजित कार्यक्रम परिवार नियोजन का विरोध करता है ।[6]

1- जनता पार्टी का जन्म तिहाड़ जेल , 8 फरवरी की शाम ,1976 को भारतीय लोकदल जनसंघ व सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं के विचार-विमर्श के फलस्वरूप हुआ ।

2- नवभारत टाइम्स नई दिल्ली, 26 मई 1976

3- दि हिन्दू (मद्रास) 2 मई 1972

4- जनता पार्टी की राष्ट्रीय समिति में 27 सदस्यों में श्री अशोक मेहता , श्री अटल विहारी बाजपेयी , श्री भानुप्रताप सिंह, श्री भैरव सिंह शेखावत, श्री बीजू पटनायक, श्री चन्द्रभानु गुप्ता, श्री चाँद राम, श्री चन्द्र शेखर, श्री एच0एम0 पटेल, श्री कुशभाऊ ठाकरे , श्रीमती मृणाल गोरे , श्री एन0संजीवरेड्डी श्री पी0 रामचन्द्रन, श्री समरगुहा, श्री सिकन्दरबक्श , श्री ए0 श्रीधरन , श्री पी0सी0 सेन, श्री करपूरी ठाकुर, श्री श्यामनन्दन मिश्र , श्री शान्तिभूषण कोषाध्यक्ष तथा महासचिव थे , श्री लालकृष्ण आडवानी, श्री सुरेन्द्रमोहन,श्रीरामधन तथा श्री सिकन्दर बक्श ।

5- दिनमान , 10 फरवरी 1977, पृ0 11

6- जनता पार्टी चुनाव घोषणा पत्र 1977

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

राजनीतिक क्षेत्र में जनता पार्टी 12 सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत करती है जिसमें वह आपात स्थिति का उन्मूलन करने मौलिक अधिकारों के निलम्बन के आदेश वापस लिये जाने सभी राजनैतिक बंदियों को रिहा करने , न्यायिक जाँच के बिना किसी भी संस्था पर प्रतिबंध न लगाने , संविधान के 42वें संशोधन को रद्द किये जाने पर संविधान की धारा 352 में ऐसा संशोधन किये जाने जिससे कि सत्तारूढ़ गुट के स्वार्थ के लिए राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू न किया जा सके की वकालत करता है । उक्त मताधिकार की आयु 18वर्ष किये जाने का समर्थक है 1977 के प्रथम चुनाव घोषणा पत्र में दल ने घोषित कार्यक्रम में स्पष्ट किया कि कानून के समक्ष सभी व्यक्तियों को समान माना जायेगा तथा पत्र-पत्रिकाओं से सेंसरशिप को हटा दिया जायेगा । मौलिक अधिकारों की सूची में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को निरस्त कर रोजी-रोटी के अधिकार को शामिल किया जायेगा तथा ऐसा प्रबन्ध किया जायेगा कि सरकारी कर्मचारियों को गैर कानूनी आदेश मानने के लिए बाध्य नहीं किया जाये ।[1]

आर्थिक क्षेत्र में पार्टी 13 प्रमुख कार्यक्रमों का निर्धारण करती है जो इस प्रकार हैं - व्यक्तिगत सम्पत्ति के मौलिक अधिकार का बहिष्कार, सबको रोजी-रोटी का मौलिक अधिकार रहेगा । गाँधीवादी व्यवस्था के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकेन्द्रीकरण 10 वर्ष के भीतर भुखमरी का अन्त, स्वावलम्बन के अनुकूल तकनीक का विकास , कृषि को प्राथमिकता और भूमि सुधार कानूनों को क्रियान्वित किया जावेगा । ग्राम और शहर के बीच विशमता समाप्त करने के कार्यक्रमों का अमल किया जायेगा । रोजमर्रा उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया जायेगा । लघु व्यवसाय व कुटीर उद्योगो का विकास आय, वेतन , दामों के बीच निश्चित नीति का अमल , दस हजार रूपये वार्षिक आयकर में छूट दी जायेगी , अढ़ाई एकड़ तक की जोत पर लगान माफ किया जायेगा और न्यायसंगत कर व्यवस्था और बिक्रीकर के बदले उत्पादन शुल्क तथा जल ऊर्जा के प्रसंग में राष्ट्र व्यापी नीति पर अमल तथा वातावरण को शुद्ध रखने का कार्यक्रम लागू किया जायेगा ।[2]

सामाजिक क्षेत्र में भारतीय जनता पार्टी का कार्यक्रम है कि यह पार्टी माध्यमिक शिक्षा तथा अनिवार्य शिक्षा को लागू करना निरक्षरता की समाप्ति सभी के पीने योग्य और राष्ट्रव्यापी स्वास्थ्य और बीमा, ग्राम विकास का नया आन्दोलन, सस्ते मकान

1- चुनाव घोषणा पत्र 1977

2- पचौरिया भवानी शंकर भा0रा0 व जनता पार्टी का गतिक्रम, पृ0 319

और सार्वजनिक आवास व्यवस्था, विकास के लिए एक वैज्ञानिक नीति तथा सामाजिक वीमे की एक बड़ी योजना, जनसंख्या के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर बालात्कार रहित परिवार नियोजन, अनुसूचित जातियों के लिए पूर्ण अधिकारों और आश्वासनों सहित नये युग का सूत्रपात कर नागरिक अधिकारों के विषय में जाँच आयोग ,भ्रष्टाचार उन्मूलन करने के लिए स्वावलम्बी व्यवस्था , नारी अधिकार तथा युवावर्ग की समृद्धि गरीबों के लिए कानूनी सहायता व कम खर्चीली न्याय व्यवस्था करना तथा अध्यवसाय और स्वावलम्बन युक्त कर्मठता को प्रोत्साहन दिये जाने पर बल देतीहै।[1]

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जनता पार्टी का दृष्टिकोण है कि वह सभी देशों के साथ मित्रता करेगी और गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलते हुए दृढसंकल्पवान होकर जहाँ कहीं भी मानव अधिकारों का हनन होता देखेगी उसके विरुद्ध आवाज उठाना अपना कर्तव्य मानेगी । जनता पार्टी की मान्यता है कि रचनात्मक और युक्तियुक्त विदेश नीति राष्ट्र का सर्वोत्तम साधन हो सकती है । इसके बावजूद वह इस बात का ध्यान रखेगी देश की सेनाएँ , प्रशिक्षण व आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से लैशहोंहथियारों के आयात के सिलसिले में इस बात का विचार रखेगी कि अन्य देश संकट के समय हमें कठिनाई में न डाल सकें । पार्टी का विचार है कि वह अवकाश लेने वाले सैनिकों के कौशल का पूरा लाभ देश की विकास योजना में लेना चाहेगी ।

जनता पार्टी आजादी , रोजगार व रोटी के लिए संकल्पबद्ध है । तथा वह समाज का विकास ऊपर से नीचे नहीं अपितु नीचे से ऊपर करने में अपनी आस्था रखती है ।[2]

जनता पार्टी में तीन शीर्षस्थ श्री मोरारजी देसाई , श्री चरण सिंह तथा बाबू जगजीवन राम जैसे व्यक्ति थे । जिस दल में अनेक महात्वाकांक्षी होते हैं उस दल की प्रायः उतनी ही समस्याएँ हो जाया करती हैं । अतः जनता पार्टी के केन्द्रीय सरकार के पतन के पीछे शीर्षस्थ नेताओं के आपसी मनमुटाव व वैमनस्य की अवधारणा प्रबल रही जनता पार्टी से जुलाई 5-15 के मध्य भू0पूर्व भालोद समाजवादी व लोकतांत्रिक बहुगुणा समर्थकों ने निकल कर जनता पार्टी सरकार को अल्पमत से कर दिया तथा बहुगुणा समर्थकों ने जिनकी संख्या 100 में ऊपर हो गयी ; 27 जुलाई 79 को चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में जनता (एस) की सरकार गठित की । इस दल को कांग्रेस (ई), समाजवादी भाकपा का समर्थन मिलने से बहुमत सिद्ध हुआ और श्री देसाई की सरकार जिसने अपना

1- जनता पार्टी का घोषणा पत्र , 1977 नई दिल्ली , पृ0 2

2- दैनिक दिनमान 20-27 फरवरी 1977, पृ0 11 एवं 12

पद त्याग किया था , बाबू जगजीवन के नेतृत्व में विरोधी दल की भूमिका निभाने लगी[1]

7- **भारतीय जनता पार्टी ::**

जनता पार्टी के विघटन से एक नये दल का जन्म हुआ जिसमें प्रथम अध्यक्ष अटल विहारी बाजपेयी बने वास्तव में यह जनसंघ का परिवर्तित रूप है जिसका निर्माण 1952 में हुआ था । जनसंघ की साधारण परिषद ने 30 अप्रैल 1977 के अपने अधिवेशन में जनता पार्टी में शामिल होने का संकल्प पारित किया । श्री बाजपेयी ने संकल्प रखा और वह सर्वसम्मति से पारित हो गया । श्री बाजपेयी ने कहा कि जनता पार्टी की आशा आकांक्षाओं को पूरा करने और भारत को एक महान समृद्ध राष्ट्र बनाने में अपनी शक्ति लगायेंगे । आपात काल के बाद जो स्थिति बनी उसका सामना किसी एक दल द्वारा सम्भव नहीं । अतः लोक तांत्रिक प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए विलय अवश्यम्भावी हो गया ।[2] जब जनता पार्टी का पतन हुआ तो जनसंघ घटक ने पुनः भारतीय जनता पार्टी के नाम से पार्टी बना ली । जनसंघ की सभी प्रभावशाली हस्तियाँ जैसे लालकृष्ण आडवानी , नाना जी देश मुख , भाई महावीर , सुन्दर सिंह भण्डारी, विजय कुमार मेहरोत्रा इस पार्टी के मुख्य स्तम्भ हैं । पार्टी ने द्वैध सदस्यता के विवाद को यह प्राविधान लिखकर समाप्त कर दिया है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सदस्यता भारतीय जनता पार्टी की सदस्यता के लिए अयोग्यता नही है । यदि वह सदस्य दल की नीतियों, कार्यक्रमों के प्रति प्रतिबद्ध है ।[3]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

इस दल के पाँच आदर्शों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताई है । राष्ट्रवाद व राष्ट्रीय एकता , प्रजातंत्र सकारात्मक धर्म निरपेक्ष वाद , गाँधीवादी समाज वाद व मूल्यों पर आधारित राजनीति[4]। विज्ञान के क्षेत्र में यह दल मानता है कि विज्ञान एवं टेक्नालाजी के आधार पर देश का आधुनिकीकरण किया जायेगा । लेकिन इसी के साथ राष्ट्रीय जीवन में अपनी संस्कृति की जड़ों को मजबूत किया जायेगा ।[5] दल केन्द्र व राज्य सम्बन्धों का पुनरगठन करेगी तथा सँविधान के अनुच्छेद 356 का तभी प्रयोग किया जायेगा

1- पचौरिया भवानीशंकर, भारतीय राजनीति व जनता पार्टी का गतिक्रम, लोकतंत्र समीक्षा , नवम्बर, दिसम्बर 1977, पृ0 339.

2- -तदैव- भारतीय राजनीति तथा जनता पार्टी का राजनीतिक गतिक्रम , लोकतंत्र समीक्षा 1977, नवम्बर दिसम्बर पृ0 334

3- पुरवार तथा जौहरी, भारतीय शासन व राजनीति ,(भारतीय दल व्यवस्था),पृ0821, विशाल पब्लिकेशन दिल्ली 1988

4- -तदैव- पृ0 820

5- जनता पार्टी का घोषणा पत्र , 1980 स्वतंत्र भारत पृ0 1, मई 1980

जब राज्य मे सवैधानिक व्यवस्था बिल्कुल पूरी तरह टूट जायेगी । दल देश में स्थिर सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपतीय प्रणाली अपनाने की सम्भावनाओं का पता लगाने पर बल देती है तथा चुनाव में लिस्ट प्रणाली शुरू करने की समर्थक है ।

विदेश नीति के बारे में पार्टी का मानना है कि विश्व राजनीति का नया ध्रुवीकरण होने से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका काफी सीमित हो गयी है तथा नई परिस्थितियों को देखते हुए बहुध्रुवीय व्यवस्था की जरूरत है और उसमें भारत को नये सिरे से विदेश नीति में गौर करना पड़ेगा । दल पश्चिम एशिया में शान्ति बहाली का समर्थक है । पार्टी जम्मू कश्मीर से सम्बद्ध धारा 370 की समाप्ति चाहती है ।[1]

पार्टी के अनुसार पूरे देश में रोजगार के लिए एक जैसी योजना सम्भव नहीं है इसके लिए क्षेत्रीय स्तर पर रोजगार की सम्भावनाओं का पता लगाकर अलग-अलग योजनाएँ बनाई जायेंगी । पार्टी सभी प्रकार के भ्रष्टाचारों का मूल राजनीतिक भ्रष्टाचार को मानती है और वह सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार से निपटने के लिए कटिबद्ध है । पार्टी भ्रष्ट अधिकारी, भ्रष्ट व्यापारी और भ्रष्ट राजनीतिज्ञ के अपवित्र गठबन्धन को नष्ट करने के लिए शीघ्र प्रभावी कदम उठाने की समर्थक है । पार्टी सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता की समर्थक है ।[2]

पार्टी निजी क्षेत्र में वेतन को निर्वाह से जोड़ने तथा मालिकों को अपने कर्मचारियों को आवास सुविधा दिलाने के लिए प्रोत्साहन देने तथा निजी क्षेत्र में पेंशन व अनिवार्य जमायोजना शुरू करने तथा अवकाश प्राप्त करने के एक महीने के भीतर भविष्य निधि तथा अन्य देय राशि दे देने की समर्थक है ।[3]

भाजपा आकाशवाणी व दूरदर्शन को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करना चाहती है । तथा अच्छी फिल्मों को प्रोत्साहन देने के लिए एक अलग श्रेणी व्यू बनाये जाने का समर्थन करती है । यह फिल्में मनोरंजन कर से मुक्त होंगी । इस प्रकार पार्टी खेल व कला को पूर्ण प्रोत्साहन देती है ।

पार्टी सत्ता के विकेन्द्रीकरण के तहत पंचायतों से लेकर महानगर परिषदों तक को संवैधानिक दर्जा प्रदान करके विकास बजट की 10% धनराशि उन्हें सीधे उपलब्ध

1- भाजपा चुनाव घोषणापत्र, 89

2- भारतीय जनता पार्टी चुनाव घोषणा पत्र 1980

3- -तदैव- 1989

कराये जाने तथा काम के अधिकार के प्रति सैद्धान्तिक सहमति की समर्थक है तथा जनसंख्या नियंत्री करण के लिए राष्ट्रीय सहमति , राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने की समर्थक है।[1]

पार्टी निष्पक्ष चुनाव की समर्थक है तथा लोक सभा व विधान सभाओं के लिए एक आम चुनाव करवाने , निर्वाचन आयोग का अधिकार क्षेत्र स्थानीय निकायों तक बढ़ाने तथा जर्मनी एवं जापान इत्यादि देशों की तरह सरकारी खर्चे पर चुनाव सम्पन्न कराने और सरकारी मशीनरी का सत्तारूढ़ दल द्वारा दुरूपयोग किये जाने का समर्थन करती है ।

(8) द्रविड़मुनेत्रकड़गम :: (डी0एम0के0)

डी0एम0के0 क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में सबसे शक्तिशाली क्षेत्रीय दल है जैसे पंजाब में अकाली दल। इसके संस्थापनकर्ता ई0वी0आर0 नैकर थे । वर्ष 1949 में श्री सी0 अन्नादुराई के नेतृत्व में इस दल का बहुत बड़ा हिस्सा अपने मातृदल से अलग हो गया और उसने द्रविड़मुनेत्रकड़गम बनाया । यह दल प्रारम्भ से ही तमिलनाडु में असमान विवाहों के विपरीत था । द्रविड़कड़गम के नेता ने एक असमान विवाह कर लिया था इसलिए अन्नादुराई इसके संस्थापक ई0वी0आर0 नैकर से अलग हो गये थे । प्रारम्भ में यह दल एक स्वतंत्र दक्षिण भारतीय प्रविणियन राज्य की स्थापना चाहता था । जिस राज्य के भीतर मद्रास आन्ध्रप्रदेश व त्रावड़कोर व कोचीन होगा । प्रविड़स्थान का लक्ष्य इसके नेता सी0 अन्नादुराई, उसके महारथियों के द्वारा छठवें दशक के प्रारम्भ तक अपनी पार्टी का लक्ष्य कहते थे ।[2] चीन के आक्रमण के बाद पार्टी ने ऐसा महसूस किया कि समस्त देश में राष्ट्रवाद की लहर है । अतः इस पार्टी ने अपने द्रविड़ स्थान के लक्ष्य को अमहत्वपूर्ण बनाकर दक्षिण भारत में हिन्दी के थोपे जाने के विरोध का लक्ष्य बनाया । यह दल अब्राहमण लोगों का दल है और इसकी यादें ब्राह्मणों एवं आर्यों द्वारा उन ब्राह्मणों पर किये गये अत्याचारों से युक्त हैं । अब्राह्मण प्रविणियन आन्दोलन 20वीं सताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में मद्रास में उत्पन्न हुआ । दल "ब्राह्मण उत्तर भारत के आर्यों का दक्षिण भारत के गैर आर्यों में नियंत्रण का विरोध करता है । यह संस्कृत भाषा के गौरव और ब्राह्मण की उच्चता का विरोधी है । इसका मानना है कि तमिल भाषा व संस्कृति को ब्राह्मण प्रभाव से मुक्त करना आवश्यक हो तो वर्ण हिन्दू राज्य से द्रविण स्थान को अलग राज्य बनाया जाये" इस प्रकार इसके कार्यक्रम में अलगाववाद है । यह उत्तर भारत को हिन्दी भाषी राज्य मानता है और दक्षिण भारत में हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार के विरोध को अपना लक्ष्य मानता है ।

1- भारतीय जनता पार्टी का घोषणा पत्र 1980, स्वतंत्रभारत पृ0 3,30नवम्बर

2- इकबाल नारायण , स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया 1967,सी0 अन्नादुराई द्रविण मुनेत्रकड़गम, एस0आई0सी0 इट

इस दल ने 1952 के आम चुनाव का विरोध किया । हालांकि उन प्रत्याशियों की जिन्हें दल की विचारधारा से सहानुभूति थी इस दल ने मदद की । 1957 में पहलीबार इसने आम चुनाव में 15 विधान सभा क्षेत्रों व 2 लोक सभा क्षेत्रों में विजय प्राप्त की 1962 में इस दल को विधान सभा में कुल 234 सीटों में 50 सीटें और 7 लोक सभा सीट प्राप्त हुयीं । 1962 के आम चुनाव में लोकसभा में 25 सीटें और विधान सभा में 138 सीटें प्राप्त कर यह सत्ताधारी दल बन गया । 1971 में इसने विधान सभा में कुल 234 में 184 विधान सभा सीटें जीतीं व 24 लोक सभा सीटों में 23 सीटों में विजय प्राप्त की 1963 के भारतीय संविधान संशोधन के लागू होने पर इसने अपनी पृथक होने की माँग का परित्याग कर दिया लेकिन भारतीय गणतंत्र के भीतर राज्य की स्वायत्तता पर बल दिया । अब यह दल ब्राह्मणों को अपने दल की सदस्यता देती है । तथा तमिल संस्कृति व सभ्यता से युक्त एक जाति विहीन व वर्ग विहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य रखती है । भारतीय गणतंत्र के संघीय स्वरूप के अनुकूल राज्यों की स्वायत्तता जोकि सुरक्षा विदेशी मामले और मुद्रा ऐसे मामलों में केन्द्र को सशक्त बनाने का उद्देश्य रखते हुए राज्यों के शक्ति एवं उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लक्ष्य को लेकर राज मन्नार कमेटी का प्रस्ताव डी0एम0के0 की देन है । 1976 में यह दल सत्ता से अपदस्थ हो गया किन्तु 1977 के बाद जनता पार्टी के निर्माण एवं उसके द्वारा केन्द्र पर सत्ता में आने के बाद राज मन्नार कमेटी के प्रस्तावों ने एक बार पुनः केन्द्र राज्य सम्बन्धों की पुनः व्याख्या एवं क्रियान्वयन को लेकर संविधान की परिधि में उसका सिंघवलोकन तथा उसको लागू करने को लेकर एक संवैधानिक बहस छिड़ गयी और न केवल तमिलनाडु बल्कि पंजाब , हरियाड़ा, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार , मध्यप्रदेश व उत्तर प्रदेश जो कि गैर कांग्रेस शासित राज्य थे । उन्होने भी संघीय ढ़ांचे में राज्यों को और अधिकार दिये जाने का पुरजोर समर्थन किया ।

(ग) उत्तर प्रदेश में प्रमुख विपक्षीदल उनके सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

भारत में संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा , ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था द्वारा ली गयी है । लेकिन राजनीतिक दलों का विकास एवं उदभव ब्रिटिश दलों के समान नही है । कारण भारत की परिस्थितियाँ ब्रिटेन से भिन्न हैं । भारत के राजनीतिक दलों की प्रकृति उन देशों के दलों से अधिक मिलती हैं जिन्होनें भारत की ही तरह ब्रिटेन व अन्य यूरोपीय देशों की निरंकुशता व साम्राज्यवाद से मुक्ति पायी है । इस सामान्य उददेश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न वर्गों के लोग एक ही दल में सम्मिलित हो गये जैसा कि भारत में कांग्रेस के रूप में हुआ है । स्वतंत्रता के पूर्व काल की परिस्थितियों की माँग भी यही थी , कि विभिन्न दल व समूह मिलकर कांग्रेस की छत्रछाया में काम करें ।[1] कांग्रेस वास्तव में केन्द्रीय,राइटिस्ट व लेफिटिस्ट का एक बृहद संविद था ।

---

1 - हाल्प्पा जी0एस0 (एडीटेड) डाइलेमा आफ डेमोक्रेटिक पालिटिक्स इन इण्डिया बाम्बे , पी0सी0 मानक तला एण्ड सन्स प्रा0लि0, 1966पृ0160-162

जो एक उददेश्य स्वतंत्रता के लिए अपने में सबको समाए था । इस राष्ट्रव्यापी दल में वैचारिक असमानताओं के कारण विभिन्न गुटों का निर्माण होता रहा किन्तु जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के स्तर से हटकर एक राजनीतिक दल के स्तर पर आयी तब इन विभिन्न गुटों ने भी अपना दलीय अस्तित्व बना लिया । इस प्रकार भारत में राजनीतिक दलों का विकास कांग्रेस दल के फूटने से हुआ सामाजिक व आर्थिक हितों के आधार पर नही ।[1]

इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद विकसित अधिकांश राजनीतिक दल किसी न किसी रूप में कांग्रेस के अंग रह चुके थे ।[2] उदाहरणार्थ - 1948 तक कांग्रेस का अभिन्न अंग बनी समाजवादी दल का 1934 में कांग्रेस के भीतर ही कांग्रेस समाजवादीदल के नाम से निर्माण हो चुका था । हिन्दू महासभा यद्यपि कभी कांग्रेस का अंग नहीं रही तथापि इसके अनेक प्रमुख नेता जैसे पंडित मदन मोहन मालवीय , लाला लाजपतराय एक समय कांग्रेस के प्रमुख नेता माने जाते थे । भारतीय जनसंघ के संस्थापक श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी जी , बंगाल विधान सभा के कांग्रेसी सदस्य तथा स्वतंत्रता बाद नेहरू मंत्रिमंडल में उद्योग व रसद मंत्री रह चुके थे ।

भारत की स्वतंत्रता के बाद उक्त राजनीतिक दलों ने अपना अस्तित्व कायम करते समय अपनी कुछ नीतियाँ व कार्यक्रम निर्धारित किये जिन्हें आम चुनाव के अवसर पर घोषणा पत्र के रूप में प्रसारित किये जाते रहे । जिनसे उनके दृष्टिकोण व नीतियों की जानकारी प्राप्त होती है । अतः विभिन्न विपक्षी राजनीतिक दलों की नीतियों उद्भव एवं विकास का विवरण निम्नवत् है :-

(1) हिन्दू महासभा ::-

1909 में मिन्टो मारले सुधार कानून द्वारा हिन्दू मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का सूत्रपात हुआ इस समय हिन्दुओं के किसी ऐसे शक्तिशाली संगठन का अभाव था जो हिन्दू वर्ग के हितों की रक्षा कर सके । अतः इस अभाव को महसूस अक्तूबर 1909 में मुस्लिम बाहुल्य प्रान्त पंजाब में उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री प्रतुलचन्द्र चटर्जी की अध्यक्षता में पंजाब प्रान्तीय हिन्दू महासभा की स्थापना हुयी ।[3] इसने अपने 1912 के द्वितीय अधिवेशन में हिन्दुओं के मुस्लिम लीग की आक्रामक कार्यवाही के विरूद्ध संगठित होने की अपील की । इसी आधार पर 1915

1- कोठारी रजनी, भारत में राजनीति, अनुवादक , अशोक जी (सम्पादक स्वतंत्रभारत लखनऊ),दिल्ली ओरिएन्ट लांगमैन, पृ0 115

2- मुस्लिम लीग एंग्लोइण्डियन व पारसियों के कुछ साम्प्रदायिक गुट कांग्रेस से अलग अस्तित्व रखते थे ।

3- तिलक रघुकुल, लोकतंत्र, स्वरूप एवं समस्याएँ लखनऊ उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रथम संस्करण 1972 पृ0 505

में हरिद्वार में महाराजा मणीन्द्र चन्द्र नन्दी की अध्यक्षता में "अखिल भारतीय हिन्दू महासभा" की स्थापना हुयी ।[1] 1921 में इसका नाम हिन्दू महासभा हो गया ।[2] तथा 1925 में इसका पुनर्गठन किया गया ।[3]

राजनीति में भाग लेने के प्रश्न पर मतैक्य न होने के कारण 1926 तक इसने राजनीति में प्रवेश नहीं किया । बाद में पारस्परिक विचार विमर्श के बाद यह समझौता हुआ कि महासभा द्वारा केवल उन्हीं कांग्रेसी उम्मीदवारों का विरोध किया जाये जो हिन्दू हितों के समर्थक न हों । 1928 में साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रश्न पर महासभा के दो गुट हो गये ।[4] डा0 मुन्जे व भाई परमानन्द कमीशन के साथ सहयोग करने के पक्ष में थे । जबकि लाला लाजपतराय व पंडित मदन मोहन मालवीय कांग्रेस द्वारा समन्वित बहिष्कार का अनुमोदन कर रहे थे । 1930 के बाद महासभा ने कांग्रेस व मुस्लिम दोनों की आलोचना को लक्ष्य बनाया । उसने 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय की आलोचना की तथा कांग्रेस को मुसलमानों को प्रश्रय देने के लिए दोषी ठहराया । 26 वर्ष के कारवास के उपरान्त 1938 में वीर सावरकर को पुनः महासभा का अध्यक्ष चुना गया इससे महासभः के संगठन को नया जीवन मिला । इन्होने हिन्दू राष्ट्रवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया "जिसके अनुसार हिन्दू वही है जो भारत को मातृभूमि व पुण्य भूमि के रूप में स्वीकार करता है । इसी समय से महासभा ने केसरिया झण्डे का प्रयोग शुरू किया ।[5]

1940 में वीर सावरकर ने वायसराय के सामने उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की माँग रखी तथा "हिन्दुओं की उनकी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व देने पर दबाव डाला । 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू होने पर महासभा ने स्वतंत्रता की माँग का समर्थन किया[6],1946 में डा0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी वीर सावरकर के उत्तराधिकारी चुने गये तथा 1947 में जब कांग्रेस ने भारत के विभाजन पर अपनी सहमति प्रदान की

1- तिलक रघुकुल , लोकतंत्र स्वरूप व समस्याएँ, लखनऊ उ0प्र0 हिन्दीग्रन्थ अकादमी प्रथमसंस्सकरण 1972,पृ0 505-506.

2- -तदैव -

3- -तदैव-

4- पट्टाभिराम , एम(एडिटेड, जनरल इलेक्शन्स इन इण्डिया) 1967 एन एक्जास्टिव स्टडी आफ मैन पालिटिकल ट्रेड्स, नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, 1967,पृ029

5- -तदैव- पृ0 506

6- बक्सटर करेग-"दि जनसंघ"- ए बायोग्राफी आफ इन इण्डियन पालिटिकल पार्टी-" बाम्बे आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1971 पृ0 25

तब महासभा ने इसका तीव्र विरोध किया तथा एक स्वर से अखण्ड भारत का समर्थन किया[1] ।1948 में महासभा की प्रतिष्ठा को उस समय धक्का लगा जब महाराष्ट्रीय चित-पावन ब्राह्मण नाथूराम गोडसे द्वारा महात्मागाँधी की हत्या की गयी । इस व्यक्ति का सम्बन्ध पहले महासभा से रह चुका था । तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से भी सम्बद्ध था ।[2] महासभा में दलीय विच्छिन्नता के लक्षण प्रकट होने लगे तथा दल के अधिकांश कट्टर धर्मावलम्बियों ने दल के समाज सुधार से सम्बन्धित प्रगतिशील दृष्टिकोण से असन्तुष्ट होकर रामराज्य परिषद का निर्माण कर लिया ।[3] ।1948 में महासभा सभा द्वारा अपने को सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य तक सीमित रखने का प्रस्ताव जब अस्वीकृत कर दिया गया तो श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने दिसम्बर ।1948 में महासभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया जो 7 मई ।1949 को स्वीकृत हो गया ।[4] ।1952 से ।1967 तक महासभा ने देश के आम चुनाव में भाग लिया लेकिन इसका प्रभाव शनैः-शनैः घटता गया ।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम ::

हिन्दू महासभा का कार्यक्रम "हिन्दू , हिन्दी , हिन्दुस्तान" के आदर्श पर अवलम्बित है । ।1939 में वीर सावरकर ने कहा था कि राजनीति को हिन्दुत्व से रंग दो और राष्ट्र के हाँथों में अस्त्र दे दो" तभी से महासभा इस लक्ष्य को लेकर चलती रही है । इसके अनुसार वर्तमान संविधान नैतिक - आध्यात्मिक प्रेरणा से शून्य है । उसमें ऐसा संशोधन होना चाहिए कि देश में वास्तविक लोकतंत्रीय हिन्दू राज्य का स्वरूप प्रकट हो जाये । हिन्दू महासभा के श्री भोपटकर ने लिखा है -"यदि पाकिस्तान मुस्लिम राज्य हो सकता है , फिलिस्तीन यहूदी राज्य हो सकता है या ब्रिटेन व अमेरिका ईसाई राज्य हो सकते हैं तो मैं यह सोचने में असमर्थ हूँ कि प्रभुत्व सम्पन्न भारत को हिन्दू राज्य या हिन्दू राज क्यों नहीं होना चाहिए"[5] यह हिन्दू कोड बिल के हमेशा विरूद्ध रही । ।1950 से ही महासभा ने धर्मनिरपेक्षता का विरोध करते हुए अखण्ड हिन्दुस्तान

1- बक्सटर करेग , दि जनसंघ ए बायोग्राफी आफ इन इण्डियन पालिटिकल पार्टी- बाम्बे आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, ।97। पृ0 25

2- फर्टियाल एच0एस0, रोल आफ दि अपोजीशन इन इण्डियन पार्लियामेंट इलाहाबाद चैतन्य पब्लिशिंग हाउस , पृ0 ।।

3- प्रकाश इन्द्र, "ए रिव्यू आफ दि हिस्ट्री वर्क आफ हिन्दू महासभा,2 एडीशन, दिल्ली, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा ।952, पृ0 259-266

4- -तदैव- पृ0 259-266

5- लाहिड़ी आशुतोष, महासमाज, न्यू स्टैण्ड इन्ट्रोडक्शन, दिल्ली, हिन्दू महासभा जून ।949, पृ0 ।-3

पर बल दिया[1] संस्कृत को उपयुक्त स्थान देने के साथ-साथ यह हिन्दी तथा एक अन्य भारतीय भाषा का अध्ययन सबके लिए अनिवार्य करने के पक्ष में हैं । यह संविधान में संशोधन कर गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने की इच्छुक है ।[2] तथा सभी नागरिकों को पूर्ण नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करने की गारण्टी देना चाहती है । इसका विश्वास है कि राज्यों को फिर से प्रान्तों में बदल दिया जाये ।

आर्थिक क्षेत्र में महासभा नियोजित आर्थिक विकास में विश्वास करती है लेकिन यह कांग्रेस सरकार द्वारा संचालित पंचवर्षीय योजना की कड़ी आलोचना करती है वह इसमें मूलभूत परिवर्तन करने के पक्ष में है । जिसमें देश खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाये तथा बेरोजगारी समाप्त की जा सके । इसने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया है । यह खाद्य उत्पादन के साधनों को बढ़ाने , सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देने , अच्छे बीज व खाद्य का वितरण करने तथा अतिरिक्त भूमि भूमि हीनों को देने के पक्ष में है । कृषि मजदूरों की बेरोजगारी के समाधान हेतु यह कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहती है । इसका विश्वास है कि श्रमनीति का उद्देश्य श्रमिक तथा श्रम दाता के मध्य अच्छे सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना होना चाहिए । वाणिज्य तथा व्यापार को अधिक से अधिक छूट दी जाये । लेकिन बैंक तथा मुद्रा पर आवश्यक नियंत्रण रखा जाये । यह विदेश प्रतिस्पर्धा हेतु कुछ उद्योगों को छोड़कर सभी मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किये जाने के पक्ष में है ।[3] इसकी मान्यता है कि करों के भारी बोझ को कम करके इससे होने वाले घाटे की पूर्ति हेतु फिजूल खर्च कम किया जाये ।

इसका विश्वास है कि अनुसूचित जातियों को सभी सम्भव सहायता प्रदान की जाये जिससे वे अन्य वर्गों के समकक्ष आ सकें । परन्तु यह विधानमण्डल या नौकरियों में इनके लिए स्थान सुरक्षित रखने के विरूद्ध है । क्योंकि इससे प्रथकता की भावना जाग्रत होतीहै । यह धर्म परिवर्तन पर प्रतिबन्ध लगाने , अस्पृश्यता समाप्त करने , मध्यम वर्गीय व्यक्तियों के विकास पर बल देने , प्राइमरी कक्षा तक शिक्षा अनिवार्य करने तथा अनियन्त्रण नीति अपनाने के पक्ष में है ।[4]

1- इलेक्शन मैनीफेस्टो 1952,दिल्ली, हिन्दू महासभा भवन.

2- पट्टाभिराम एम, जनरल इलेक्शन इन इण्डिया

3- कलकत्ता अधिवेशन के अनुसार स्वीकृत नीति

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा में विपक्ष, ले0 विनोद विजय, विपक्षी दल सिद्धान्त नीतियाँ एवं कार्यक्रम , राधा पब्लिकेशन 1991, पृ0 18

(2) जनसंघ ::

डा0 श्यामप्रसाद मुखर्जी द्वारा हिन्दू महासभा एवं केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की सदस्यता से त्यागपत्र तथा उदार भारतीय दृष्टिकोण अपनाने वाले राजनीतिक दल की आवश्यकता की प्रतीक कांग्रेस से गाँधी , सरदार पटेल, टण्डन आदि भारतीय दृष्टिकोण के प्रतिपादकों का विक्षोह और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा निजी संरक्षण हेतु राजनीतिक मंच की आवश्यकता की प्रतीक , ये प्रमुख कारण रहे थे जिन्होने जनसंघ की स्थापना के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की ।[1] इसी आधार पर परस्पर एक दूसरे की आवश्यकता महसूस करते हुए डा0 श्यामप्रसाद मुखर्जी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख नेताओं (बसंत राव , बलराज मधोक आदि) के माध्यम से गुरू गोवल्कर के साथ सम्पर्क कर एक नये दल की स्थापना का प्रस्ताव किया इस समझौते के आधार पर कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक सांस्कृतिक संगठन है व राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन के पुनरनिर्माण के कार्यक्रमों में यह किसी दल की कठपुतली नहीं बनेगा । वह बदले में नए राजनीतिक दल की अपनी सीमाओं का सम्मान करेगा , एक नये दल के गठन का निर्णय लिया गया । 21 अक्तूबर 1951 को भारतीय जनसंघ नाम से दल की स्थापना की गयी ।[2] दल के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बन्ध के विषय में प्रोफेसर हार्ट मैन का मानना है । यह कहा जा सकता है कि आर0एस0एस0 , जनसंघ के बिना जिन्दा है । लेकिन जनसंघ आर0एस0एस0 के बिना जिन्दा रह सकेगा । यह सन्देहजनक बात है ।[3] लेकिन जनसंघ के एक प्रमुख नेता दीनदयाल उपाध्याय ने इसके सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि- संवैधानिक दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है । केवल सम्बन्ध यह है कि दल के बहुत से सदस्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघसे हैं । आर0एस0एस0 एक सांस्कृतिक संगठन है जो राजनीति में भाग नहीं लेता ।[4]

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

दल की मुख्य वैचारिक प्रेरणा भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं व मर्यादाओं के प्रकाश में राष्ट्र का निर्माण व विकास करना है जैसा कि स्पष्ट करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है -"हमारा विचार है कि भारतीय परम्पराओं , संस्कृति और विरासतों

1- मोतीलाल एण्ड झांगियानी, जनसंघ एण्ड स्वतंत्र, ए प्रोफाइल आफ दि राइटिस पार्टीज इन इण्डिया, बम्बई 1967, पृ0 38

2- जनसंघ एवं भारतीय राजनीति , डा0 सी0पी0 भाम्भरी,"आइडियालाजी एण्ड स्टडी आफ पालिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, इकनोमिक एण्ड पालिटिकल वीकली, 30 अप्रैल 1968, पृ0 23

3- हार्टमैन एच0, पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया,पृ0 135

4- झांगियानी मोतीलाल, जनसंघ एण्ड स्वतंत्र प्रोफाइल आफ दि राइट्स पार्टी इन इण्डिया , बाम्बे 1969, पृ0 189

की उपेक्षा कर भारतीय राजनीति को विदेशों से आयातित विचारों की दिशा मोड़ने का प्रयास किया गया है । अतः जनसंघ के रूप में राष्ट्र के अन्दर से ही वैचारिक प्रेरणा प्राप्त करने वाली पार्टी हो गयी थी ।"[1] प्रो0 बलराज मधोक ने पार्टी का लक्ष्य भारतीय संस्कृति बताते हुए कहा हमारा लक्ष्य भारतीय संस्कृति है जिसकी जड़ ऋगवेद से मिलती है । ऋग वेद कहता है कि ईश्वर एक है । बुद्धिमान लोग अलग-2 नामों से पुकारते हैं ।[2]

इस प्रकार जनसंघ की वैचारिक प्रेरणा का स्रोत भारत का गौरवपूर्ण अतीत है । दल के अनुसार भारतीय राज्य का निर्माण एवं प्रगति की कुन्जी पाश्चात्य पूँजीवादी या साम्यवादी विचारधारा में नहीं , अपितु भारतीय जीवन दर्शन व संस्कृति में निहित है । इसके अनुसार राष्ट्र की प्रगति या कल्याण का मूल्य पश्चिमी भौतिकता वादी नहीं अपितु आध्यात्मिक परम्पराओं जो कि भारत में अनन्त काल से चली आ रही है में निहित है । इस मान्यता को और स्पष्ट करते हुए जनसंघ का मानना है कि हमारा तात्पर्य आर्थिक कार्यक्रमों की उपेक्षा नहीं है । वस्तुतः भौतिक सम्मृद्धि के बिना आध्यात्मिक मुक्ति सम्भव नही है ।[3]

एक सशक्त एवं एकात्मक राष्ट्र का गठन जनसंघ का प्रमुख लक्ष्य रहा है । यह भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रवाद के आधार पर जनसंघ अखण्ड भारत के निर्माण का लक्ष्य रखता है । यह एक राष्ट्र , एक राज्य , एक संस्कृति तथा धर्म राज्य में विश्वास करते हुए कानून के शासन को स्वीकार करता है ।[4] इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक संस्कृति है । चूँकि इसका प्रेरणा स्रोत अतीत है अतः अतीत के प्रति निष्ठावान ही सच्चे भारतीय हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में जनसंघ के भारतीय करण के नारे को समझा जा सकता है। इसके अनुसार सम्प्रदाय विशेष जिसकी निष्ठा के केन्द्र भारत की सीमाओं के बाहर है वे राष्ट्र के प्रति समग्र निष्ठा नही रख सकते । वह एकात्मक निष्ठा एक संस्कृति के प्रमाणीकरण से ही सम्भव है । यह संस्कृति भारतीय संस्कृति या दूसरे अर्थों में हिन्दू संस्कृति है [5] इस प्रकार एक सक्षम व शक्तिशाली राष्ट्र के लिए जहाँ एक संस्कृति के प्रति निष्ठा आवश्यक है वहीं संविधान की एकात्मकता के प्रति भी आवश्यक है । 1955 को दल ने एकात्मक सरकार में विश्वास करते हुए सत्ता का विकेन्द्रीकरण

1- झांगियानी मोतीलाल , जनसंघ एण्ड स्वतंत्र प्रोफाइल आफ दि राइट्स पार्टी इन इण्डिया, बाम्बे 1969, पृ0 189

2- बलराज मधोक , ह्वाट भारतीय जनसंघ स्टैण्ड फार 1966,पृ0 7

3- जनसंघ सिद्धान्त व नीतियाँ,विजयवाड़ा अधिवेशन 1964,विज्ञप्ति पृ03

4- बक्सटर करेग, द जनसंघ ए बायोग्राफी आफ इण्डियन पोलिटिकल पार्टी,बाम्बे, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1971, पृ0 25

5- दीनदयाल , द कनफिलिक्ट आफ द कल्चर्स , डा0 के0एल0 कमल द्वारा उद्धरित , पार्टी पालिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेट, (एस0 चन्द्रा एण्ड कं0) पृ0 सं0 151

व राज्यों में विधान मण्डलों के द्वितीय सदन को समाप्त करने का समर्थन किया है ।[1]

आर्थिक क्षेत्र में जनसंघ सुनियोजित विकास को महत्व देता है तथा राष्ट्रीय आयोजन को स्वीकार करता है परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र को दिये जाने वाले महत्व व समाज वादी ढ़ांचे की वार्ताओं के प्रति सशंकित है क्योंकि दल का मानना है कि इससे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण व दुरूपयोग पर रोंक नहीं लगता । अपितु केवल स्वरूप मे परिवर्तन होता है । राज्य का स्वामित्व भी उतना ही दोषपूर्ण है जितना वैयक्तिक, इसके निराकरण हेतु सामाजिक नियंत्रण व औद्योगिकीकरण के स्वरूप में परिवर्तन वॉछनीय है । इसके लिए पूँजी विनियोग वाले उद्योगों की अपेक्षा श्रम विनियोग उद्योग का महत्व अधिक होता है । इसी में बेकारी की समस्या का हल भी है ।[2]

कृषि के क्षेत्र में जनसंघ कृषि उद्योगों को महत्व देता है । भूमि सुधार को यह कृषि के विकास का अनिवार्य अंग मानता है तथा भूस्वामी व कृषक दोनों को संतुष्ट रखने के पक्ष में है । अतः जहाँ यह शीलिंग के पक्ष में है व 'जमीन जोतने वाले की' सिद्धान्त का पक्षधर है वहीं जमीदारों को उचित मुआवजा देकर जमीदारी प्रथा को समाप्त करना चाहता है इसका विश्वास है कि जोतों पर नियंत्रण रखकर अतिरिक्त भूमि भूमिहीनों को वितरित की जाये । यह कृषकों के मनमाने विस्थापन के भी विरूद्ध है ।[3]

जनसंघ की नीतियों में परम्परागत व आधुनिक विचारों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है जहाँ यह वर्णाश्रम धर्म व जाति व्यवस्था को उचित ठहराता है वहीं यह अस्पश्यता समाप्त कर महिलाओं की सामजिक क्षेत्र में अयोग्यता समाप्त करने जैसे विचार प्रकट करता है [4] यह गौ हत्या, हिन्दू कोडबिल का विरोध करताहै तथा आयुर्वेदिक पद्धति का समर्थन करता है ।

शिक्षा के क्षेत्र में जनसंघ शिक्षा के समस्त नवीनीकरण को स्वीकार करता है । शिक्षा में चरित्र निर्माण व मूल्यों के प्रसार की उपेक्षा को यह राष्ट्र की सोंचनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार मानता है । इसका मत है कि भारतीय सभ्यता के आधार

1- इलेक्शन मैनीफेस्टो 1962, दिल्ली भारतीय जनसंघ ।

2- दीनदयाल उपाध्याय, पब्लिक डायरी से उद्धत , प्रकाशन 1968, पृ0 33

3- जनसंघ चुनाव घोषणा पत्र सन् 1967

4- यह दयानन्द व तिलक की सुधारवादी परम्पराओं का समर्थक है , पं0 दीनदयाल उपाध्याय पालिटिकल डायरी से उद्धृत- जैको प्रकाशन, 1968, 131

पर गुरूकुल पद्धति में शिक्षा दी जाये ।[1] यह राज्य की नीति निर्देशक के आधार पर 11 वर्ष के बच्चों को नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा का समर्थक है तथा विश्वविद्यालयों व शिक्षण संस्थाओं में स्वायत्तता का सम्मान करता है । दल हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करता है ।[2] 1967 के बाद दल ने त्रिभाषा फार्मूले को मान्यता दी , लेकिन संस्कृत की अनिवार्यता को स्वीकार करता है ।[3]

सामाजिक क्षेत्र में यह मद्यनिषेध का समर्थन करते हुए शराब पीने को एक सामाजिक बुराई मानता है तथा निर्धन वर्ग के लोगों को अन्य लोगों के समक्ष लाने के लिये ग्रामीण व निर्धन वर्ग के लोगों को आवास तथा व्यक्ति - व्यक्ति वेतन क्रमश: 2000/- रूपया प्रति निर्धारित करने की बात कहता है । यह केन्द्र, राज्य व स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों के वेतन व मँहगायी भत्ते में एकरूपता व छोटी जोतों व किसानों को ऋण सहायता , मजदूरों को औद्योगिक प्रबन्ध व लाभ में हिस्से की माँग का समर्थक है ।[4]

अल्पमत समूहों के प्रति जनसंघ की विचार धारा विवादास्पद रहीहै , तथा इस पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाया गया है । क्योंकि इसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सम्बद्ध माना जाता है व इसका मुसलमानों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण है हालांकि दल के मान्य नेताओं ने संसद व उसके बाहर इसका विरोध किया है ।

(3) स्वतंत्र पार्टी ::

स्वतंत्रपार्टी का अखिल भारतीय स्तर पर गठन 4 जून 1959 में स्वतंत्रता आन्दोलन में कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता तथा भारत के प्रथम गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपाला चारी के नेतृत्व में हुआ । इस पार्टी के निर्माण का कारण कांग्रेस की नीतियों से असन्तुष्ट होना था ।[5] 1955 के अवाडी अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा समाजवाद का लक्ष्य तथा 1969 के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा सहकारी कृषि का लक्ष्य स्वीकार कर लेने के कारण

1- जनसंघ का चुनाव घोषणा पत्र 1952, दिल्ली ।

2- इलेक्शन मैनीफेस्टो 1962, एडोप्टेड बाई दि पार्टी एट दि बनारस सैशन आफ दि प्रतिनिधि सभा इन नवम्बर 1961, दिल्ली , भारतीय जनसंघ

3- भारतीय जनसंघ प्रिंसिपल एण्ड पालिसी , एडोप्टेड बाई भारतीय प्रतिनिधि सभा , विजयवाड़ा , जनवरी 25-26,1965, पृ0 22

4- टाइम्स आफ इण्डिया , 30-12-1969, कालीकट अधिवेशन ,दिसम्बर-69

5- गाइजेलर वर्जिग, इण्डियन एशिएन गेफेहर्खिलक जाहेद, ड्यूजेल डोर्फ ,1968,पृ0199

देश के अनेक लोग इससे शंकालु हो उठे क्योंकि उनका विश्वास था कि इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता वाधित होगी व जनजीवन मेरा राज्य का हस्तक्षेप बढ़ेगा । परम्परागत मान्यताओं को ठेस पहुँचेगी व उत्पादन में कमी आयेगी अतः इस प्रकार की विचारधारा वाले लोग जिनमें राजाजी तथा - भसानी प्रमुख थे, 1959 जून में मद्रास में एकत्र हुये तथा एक वक्तव्य प्रकाशन के द्वारा नागरिक जीवन में राज्य के बदले हस्तक्षेप की निन्दाकर महात्मागाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को उपयुक्त बताते हुये एक कन्जरवेटिव पार्टी की कल्पना की दि फोरम आफ फ्री इण्टर प्राइजेज (एफ0एफ0ई) तथा आल इण्डिया एग्रीकल्चरिस्ट फेडरेशन इसमें मुख्य सहायक थे ।[1] स्वतंत्रपार्टी की विधिवत घोषण बाम्बे में राजा जी द्वारा की गयी , बाद में राज्यास्तर के अन्य दल व समुदाय इसमें शामिल हुये ।[2]

नीतियाँ व कार्यक्रम ::

स्वतंत्र पार्टी उदारवादी विचार धारा में विश्वास करती है तथा वामपन्थी विचार धारा की आलोचक है । यह समाजवाद के विरूद्ध व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की समर्थक है और इसी कारण यह कांग्रेस की नीतियों जिनमें समाजवाद व राज्य का व्यक्ति स्वातन्त्र्य में हस्तक्षेप है , विरोध करती है तथा इस सिद्धान्त की समर्थक है कि "वह सरकार सबसे अच्छी है जो कम से कम शासन करती है ।[3] इसके अनुसार कांग्रेस की नीतियाँ प्रजातंत्र व स्वतंत्रता के लिये हानिकारक हैं । यह सोवियतवादी योजना की आलोचक है । नियोजन के क्षेत्र में यह फ्रारेन के मोनेट प्लान तथा ग्रेट ब्रिटेन की नेशनल इकोनोमिक डेवलपमेंट काउन्सिल की गतिविधियों को आदर्श मानती है ।[4]

स्वतंत्र पार्टी व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों की समर्थक है इसके मतानुसार कांग्रेस की नीतियाँ कम्युनिज्म के आधार पर बनी हैं अतः खतरनाक हैं । इसी लिये पार्टी के गठन के समय कदाचित इसके नेताओं का उद्देश्य कांग्रेस पर वामपन्थी समूहों के विरोध में दबाव डालने का था परन्तु आम चुनाव में सफलता से इसके नेताओं के विचारों में परिवर्तन हुआ ।[5]

1- होवार्ड एल0आई मैन दि स्वतंत्र पार्टी एण्ड इण्डियन कन्जरवेटिज्म, कैम्ब्रिज 1967, पृ0 11

2- दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 31, नवम्बर, 1961, उड़ीसा की गणतंत्र परिषद का विलय 11नवम्बर 1961 को हुआ ।

3- मीनू मसानी, पार्टी पालिटिक्स, इन इण्डिया, पब्लिकेशन आफ लास्की इन्सटीट्यूट, अहमदाबाद,जू0 1962, पृ0 10

4- स्वतंत्र न्यूज लेटर,बाम्बे, नं0 42, पृ0 8

5- मसानी मीनू ,ओपेनिंग रिमार्क इन प्रेपेटेटरी कन्वेशन बाम्बे, अगस्त 1959 पृ0 8

यह कृषि को उच्च प्राथमिकता देती है । किन्तु जनसंघ की भाँति सहकारी कृषि का विरोध करती है ।[1] यह कृषकों का स्तर सुधारने के लिये यानी, बिजली, खाद अन्य सभी कृषि उपकरण व सुविधायें मुहैया कराने की पक्षधर है तथा भूमि पर कृषकों को स्वामित्व का अधिकार देने के सिद्धान्त को स्वीकार करता है तथा भूमिहीन कृषकों, श्रमिकों को सहकारी बैंकों से ऋण देने का पक्षधर है । भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत बड़े कृषकों से ली गयी भूमि का उचित मुआवजा दिये जाने की पक्षधर है । स्वतंत्र पार्टी बैंकों के राष्ट्रीकरण की विरोधी है तथा बीमा पर राज्य का नियंत्रण व प्रिवीपर्स समाप्त किये जाने का भी विरोध करता है ।[2] पार्टी उद्योगों पर एकाधिकार की विरोधी है तथा इस पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगाये जाने पर बल देती है । यह उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का विरोध करती है तथा निजी एवं कुटीर उद्योगों के विकास का समर्थन करती है इसके अनुसार प्रबन्ध में मजदूरों की सहभागिता होनी चाहिए तथा उन्हें लाभ में समुचित हिस्सा मिलना चाहिए ।[3]

धार्मिक क्षेत्र में दल धार्मिक स्वतंत्रता की पक्षधर है तथा धर्म में विश्वास प्रकट करता है । शिक्षा में दल का विश्वास है दल विश्वविद्यालय की स्वायत्तता बनाये रखने की पक्षधर है तथा यह दल "राज्यपाल के पद को दलीय राजनीति से अलग रखे जाने की माँग करता है तथा आपात कालीन उपबन्धों की समाप्ति चाहता है ।[4]

4- समाजवादी दल ::

सर्वप्रथम समाजवादी पार्टी का निर्माण 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी के रूप में हुआ । यह उन नवयुवक कांग्रेस जनों का समूह था जो 1930-31 में असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण नासिक जेल में रखे गये थे । यह युवक ऐसे थे जो मार्क्सवाद से तो प्रभावित थे किन्तु लोकतंत्र में अटल विश्वास होने के कारण साम्यवादी दल की गतिविधियों व नीतियों से सन्तुष्ट नहीं थे । समाजवादी विचारधारा से प्रभावित ये युवक साम्राज्यवाद को स्वतंत्रता , समानता का दुश्मन समझते थे तथा कांग्रेसी नेतृत्व से भी असन्तुष्ट थे । इस लिये एक ऐसे दल की आवश्यकता महसूस की गयी जो कांग्रेस

1- मसानी मीनू , ओपेनिंग रिमार्क इन प्रेपेटेटरी कन्वेन्शन बाम्बे, अगस्त,1959,पृ08
2- हावर्ड एल, अर्डमैन, दि स्वतंत्र पार्टी एण्ड इण्डियन कन्जरवेटिव्स, कैम्ब्रिज,1967
3- इलेक्शन मैनी फेस्टो 1962, एस0एल0 पाप्ले, (सम्पादक)सं0 18,पृ0163
4- इलेक्शन मैनीफेस्टो, 1967, पृ018

पार्टी के झण्डे तले रहकर ही पार्टी नेतृत्व को समाजवादी कार्यक्रमों के लिए प्रभावित करे तथा नेताओं पर सही दिशा में चलने के लिए दबाव डाले । इन्हीं सब कारणों से जनवरी 1934 में बम्बई में एक सभा की गयी तथा एक सात सूत्रीय कार्यक्रम भारत में समाजवादी पैटर्न के समाज की स्थापना के लिए पार्टी नेताओं ने बनाया एवं 1934 में ही पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सूत्रपात हुआ । 1936 के मेरठ अधिवेशन में इसके सिद्धान्तों में समाज के सोशलिस्टिक पैटर्न पर स्थापना पर बल दिया गया है ।[1] उत्तर प्रदेश में इसके नेता प्रमुख कांग्रेसियों में से एक डा0 सम्पूर्णानन्द थे ।[2]

1937 व 1940 के संविधान सभा चुनावों में पार्टी ने अपने प्रत्याशी नहीं खड़े किये । द्वितीय विश्वयुद्ध में कांग्रेस समाजवादी पार्टी के सदस्यों ने कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में साथ दिया व ब्रिटेन द्वारा भारतीयों के युद्धरत होने की घोषणा की निन्दा की । 1942 के भारत छोंड़ो आन्दोलन में जब महात्मागाँधी व कांग्रेस के अन्य गणमान्य नेता जेल चले गये तो पार्टी नेताओं ने कांग्रेस की नीतियों का भरपूर समर्थन किया व कांग्रेसी कार्यक्रम को आगे बढ़ाया किन्तु जब 1946 में कैबिनेट मिशन ने भारत में कांग्रेस नेताओं से सत्ता हस्तान्तरण के मसले पर कांग्रेस समाजवादी बातचीत द्वारा हल निकाले जाने के विरोधी थे । अतः कांग्रेस से इनके सम्बन्धों में कटुता आ गयी । परिणाम स्वरूप जनवरी 1948 में अशोक मेहता के आग्रह पर समाजवादियों ने नगर निगम चुनावों में कांग्रेस के विरूद्ध अपने प्रत्याशी खड़े कर दिये ।[3] प्रतिक्रियास्वरूप कांग्रेस ने संविधान में यह संशोधन किया कि कोई भी व्यक्ति यदि दूसरे राजनीतिक संगठन का सदस्य है , कांग्रेस सदस्य नहीं हो सकता ।[4] अतः 1948 के नासिक सम्मेलन में समाजवादी दल कांग्रेस से अलग हो गया कांग्रेस शब्द इसके पूर्व ही कानपुर अधिवेशन में समाजवादी दल ने त्याग दिया था।[5] तथा 1952 के आम चुनाव में कांग्रेस के विरूद्ध पार्टी ने अपने प्रत्याशी खड़े किये उन्हें आशा थी कि वे पार्लियामेंट में द्वितीय स्थान प्राप्त करेंगे, लेकिन उन्हें चुनाव परिणामों में तीसरा स्थान मिला । चुनावों के कुछ समय पूर्व ही कांग्रेस के पूर्वअध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने किसान मजदूर प्रजा पार्टी का निर्माण किया था । अतः निराशाजनक चुनाव परिणामों के फलस्वरूप यह विचार हुआ कि दोनों दल आपस में मिलकर एक शक्तिशाली समाजवादी दल का निर्माण करें । फलस्वरूप 12 सितम्बर 1952 को किसान मजदूर पार्टी का समाजवादी पार्टी में विलय हो गया । तथा प्रजा

1- मायरन वीनर , पार्टी पोलिटिक्स इन इण्डिया, प्रिंसिटन,1957,अध्याय-2-7

2- सम्पूर्णानन्द , मेमोरीज एण्ड रिफ्लेक्शन्स, बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस,1962,पृ0-2

3- तिलक रघुकुल , लोकतंत्र समस्याएँ व सम्भावनाएँ , पृ0 487

4- कांग्रेस कार्यकारिणी प्रस्ताव, 30 मार्च 1948

5- शिवलाल, इण्टरनेशनल डिक्शनरी आफ इलेक्टोरल पालिटिक्स, नई दिल्ली , दि इलेक्शन आर्काइब्ज, पृ0 180

सोशलिस्ट पार्टी का नामकरण हुआ ।[2] आचार्य कृपलानी पार्टी अध्यक्ष तथा अशोक मेहता पार्टी के महासचिव बने ।[2] लेकिन शीघ्र ही मतभेद उभर कर सामने आये तथा दिसम्बर 1953 में इसका विघटन हो गया तथा प्रजाशोसलिस्ट पार्टी के कांग्रेस से गठबन्धन के विषय पर मतभेद हो जाने के कारण लोहिया ने प्रजासोशलिस्ट पार्टी से त्यागपत्र देकर समाजवादी दल को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयास किये तथा नवीन समाजवादी दल की स्थापना की ।[3] डा0 लोहिया द्वारा निर्मित समाजवादी दल के विधान सभा सदस्यों ने 1962 के चुनाव के बाद बड़े ही गुप्त रूप से यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी के नाम से एक नयी पार्टी का गठन किया ।[4] डा0 लोहिया जबकि इसके घोर विरोधी थे । द्वितीय व तृतीय आम चुनावों में इसने पृथक दल के रूप में भाग लिया ।

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

समाजवादी दल की नीतियाँ व कार्यक्रम के अन्तर्गत यह दल भाषा व अनुसूचित जाति विषयपर अधिक महत्व देता है ।[5] यह अनुसूचित एवं पिछड़ी जाति के व्यक्तियों व महिलाओ को सभी सरकारी नौकरियों एवं राजनैतिक स्थानों में 60 प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखने पर बल देता है। यह अंग्रेजी को समाप्त करने के पक्ष में तथा प्रान्तीय भाषा का धीरे - धीरे प्रयोग करते हुए, हिन्दी को लिंक भाषा बनाना चाहता है । सोशलिस्ट पार्टी निम्न तरह से अपनी प्रणाली स्पष्ट करती है - सोशलिस्ट पार्टी समाजवाद का लक्ष्य अपने में जनतंत्र के आदर्श, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता , सामाजिक समानता, त्वरित आर्थिक परिर्वतन , राजनीतिक व आर्थिक शक्ति विकेन्द्रीकरण , व्यक्ति के शहरों में पलायन से रोकने के लिए लघु उद्योग धन्धों की तकनीकी का प्रादुर्भाव जिससे कि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की उत्पत्ति को रोका जा सके तथा नागरिक सत्यागृह और शान्तिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन सन्निहित रखता है ।[6] सोशलिस्ट पार्टी का विचार है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बिना सोशलिस्ट सोशाइटी की रचना नहीं हो सकती ।[7]

1- सिंह हरीकिशोर, ए हिस्ट्री आफ प्रजाशोसलिस्ट पार्टी ,1934-1959, लखनऊ,पृ0130

2- मायरन वीनर, पार्टी पालिटिक्स इन इण्डिया,प्रिंसटन, 1957, पृ0 98

3- सिंह हरीकिशोर , ए हिस्ट्री आफ प्रजासोशलिस्ट पार्टी 1934-59,लखनऊ,पृ0211

4- -तदैव- पृ0 223

5- वर्गर एन्जेला, "अपोजीशन इन ए डोमिनेन्ट पार्टी सिस्टम", आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस,बाम्बे, १९७१.

6- सोशलिस्ट पार्टी , इलेक्शन मैनीफेस्टोज,1952,57,62, पी0एस0पी0 इलेक्शन मैनीफेस्टो, 1952, 57, 62, 67, 71, एस0एस0पी0 इलेक्शन मैनीफेस्टो, 1967, 71, प्लेटफार्म आफ दि सोशलिस्ट पार्टी (विचार के ड्राफ्ट) जनता वाल्यूम - 27, नं0 35, 17 सितम्बर 1972

7- - तदैव -

जिसे हम भारतीय समाजवादी विचारधारा कहते हैं में विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोण सन्निहित हैं इसके अन्दर ग्रामीण जनतंत्र पर आधारित राजनैतिक अर्थतंत्र के विकेन्द्रीकरण का गाँधी जी का दृष्टिकोण तथा यथास्थान अहिंसात्मक जनआन्दोलन के द्वारा जिसमें कि शान्तिपूर्ण व्यवहारिक असहयोग सम्मिलित है , के द्वारा ग्रामीण धरातल पर उसमें सम्मिलित होना निहित हो। यह मार्क्सवादी चिन्तन को भी महत्व देती है और मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार वर्गसोशण से रहित समाज की रचना चाहता है और अन्त में जनतांत्रिक समाजवाद की ब्रिटिश फेवियन व्याख्या पर विश्वास करता है ।

यह अनुसूचित एवं पिछड़ी जाति के व्यक्तियों व महिलाओं के लिए सभी सरकारी नौकरियों में 60 प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखना चाहता है इसका विश्वास है कि अधिक से अधिक वेतन व कम से कम वेतन के बीच 20 गुना से अधिक अन्तर न हो । भूमि सुधार करके प्रत्येक कृषक के पास कम से कम साढ़े बारह एकड़ तथा अधिक से अधिक तीस एकड़ भूमि हो । छोटे भूस्वामियों को छोंड़ कर , अधिग्रहण की गयी भूमि का मुआवजा न दिया जाये । यह मूल उद्योगों , बैंकों तथा वीमा कंपनियों के राष्ट्रीय करण के पक्ष में है । प्राइमरी स्तर तक निःशुल्क शिक्षा व अनिवार्य शिक्षा दिये जाने की वकालत करता है । यह जनसंख्या पर नियंत्रण लगाने के पक्ष में है।

5- **किसान मजदूर प्रजा पार्टी ::**

प्रथम आम चुनाव के पूर्व आचार्य जे0वी0 कृपलानी के नेतृत्व में कृषक मजदूर प्रजापार्टी का गठन हुआ । यह अपने विचारों से गाँधीवादी थी ।[1] जून 1951 में इसमें जनकांग्रेस का विलय हो गया ।[2] स्वतंत्रता के बाद श्री रफीअहमद किदवई, कांग्रेस की राजनीति में असफल हो जाने के कारण इस दल में अपने समर्थकों के साथ सम्मिलित हो गये ।[3] लेकिन प्रथम आम चुनाव हेतु नामांकन पत्र भरे जाने की अंतिम तिथि के कुछ सप्ताह पहले अपने समर्थकों के साथ श्री किदवई पुनः कांग्रेस में चले गये । शेष समर्थक किसान मजदूर प्रजापार्टी में ही रहे । लेकिन आम चुनाव में इस दल का मात्र एक सदस्य ही विधान सभा के लिए चुना जा सका । अतः यह आवश्यक समझा गया कि समान विचारों वाले दलों में तालमेल स्थापित किया जाये ताकि कांग्रेस का विकल्प प्रस्तुत हो सके । फलस्वरूप सितम्बर 1952 में इसने समाजवादी पार्टी में अपने को विलय कर एक नये दल प्रजासोशलिस्ट पार्टी का निर्माण किया ।

1- दण्डवते एम0आर, इवोल्यूशन आफ दि सोशलिस्ट पालिसीज एण्ड पर्स्पेर्टिव ,1935-64पृ013

2- वर्मर अन्जेला एस0, अपोजीशन इन डामिनेंट पार्टी सिस्टम, आक्सफोर्ट यूनीवर्सिटी प्रेस, बाम्बे, 1969, पृ0 38

3- मायरन वीनर , पार्टी पोलिटिक्स इन इण्डिया,पृ0 80

नीति एवं कार्यक्रम ::

यह दल शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा स्वतंत्र , प्रंजातांत्रिक , जातिहीन एवं वर्ग विहीन समाज का उत्सुक था । दल का विश्वास था कि नागरिक के जीवन व कार्यों में प्रशासकीय हस्तक्षेप घटाया जाये । स्थानीय संस्थाओं को न्यायोचित अधिकार प्रदान किये जायें । भूमि पर उसके जोतने वाले का स्वामित्व हो । बेकार पड़ी व अतिरिक्त भूमि भूमिहीनों को वितरित की जाये । दल की नीति सभी प्रमुख व मूल उद्योगों के राष्ट्रीगकरण करने तथा निजी क्षेत्र में निरन्तर नियंत्रण रखने की थी ताकि उसका प्रबन्ध राष्ट्रीय हित में हो सके । दल उद्योगों के प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी तीव्र औद्योगीकरण करने तथा विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों का सन्तुलित विकास करने का पक्षधर था । दल का मानना था कि कृषि मजदूरों को न्यूनतम वेतन तथा प्रत्येक नागरिक को न्यूनतम वेतन व काम करने के अधिकार की गारन्टी दी जाये ।

दल चौदह वर्ष तक की उम्र के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने तथा निःशुल्क तकनीकी शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में था । साथ ही इसका अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की आर्थिक स्थिति सुधार हेतु अस्पृश्यता समाप्त करने , समान कार्य के लिये समान वेतन बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को समान अधिकार देने में विश्वास था ।[1]

6- संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ::

दिसम्बर 1955 में लोहिया ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से त्यागपत्र देकर समाजवादी दल का गठन किया । इस विघटन के बाद द्वितीय आम चुनाव के उपरान्त उ0प्र0 राज्य विधान सभा के उक्त दोनों दलों के कुछ सदस्यों ने पुनः एकता के प्रयास किये । लेकिन जब वह इसमें सफल नहीं हो सके तो उन्होने स्वतंत्र प्रगतिशील विधान सभाई दल तथा भारतीय जनसंघ के कुछ सदस्यों के साथ मिलकर आचार्य दीपशंकर के नेतृत्व में 6 अगस्त 1959 को समाजवादी एकता दल का निर्माण किया । लेकिन विधान सभा में गठित इस दल में अल्प समय में ही दरार पड गयी तथा इसका अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया । तृतीय आम-चुनाव में जब राज्य विधान सभा में भारतीय जनसंघ मुख्य विरोधी दल के रूप में उभर कर सामने आया तथा साम्यवादी शक्तियों का प्रभाव बढ़ने लगा तो समाजवादी दलों के खेमों में एकता के प्रयास शुरू हो गये । फलस्वरूप 13 दिसम्बर , 1962 को समाजवादी तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर "यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी" का संगठन किया तथा इसने विधान सभा में जनसंघ के स्थान पर मुख्य विरोधी दल का रूप ग्रहण किया ।[2]

1- वर्गर अन्जेला एस0 , अपोजीशन इन डेमिनेट पार्टी सिस्टम, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, बाम्बे 1969 उद्धृतकर्ता विजयविनोद,उ0प्र0विधान सभा में विपक्ष, 1952-67 तक,पृ024-25

2- एशियन रिकार्डर, 1963, पृ0 49-84

मूलतः उक्त गठबन्धन इसलिये सम्भव हो सका कि प्रजासोशलिस्ट पार्टी द्वारा लोहिया सोशलिस्ट पार्टी के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया गया।[1] लेकिन शीघ्र ही समाजवादी दल की भाषानीति व अनुसूचित तथा पिछड़े वर्गों के लिए 60% प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखने की नीति पर मतभेद उभर कर सामने आ गये और इसकी अभिव्यक्ति 27 मार्च 1963 को विधान सभा में उस समय हुयी जब समाजवादी दल के सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा दी गयी व्यवस्था के विरूद्ध आचरण करने पर सदन से निष्कासन कर दिया गया। मात्र दो प्रजासोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों ने समाजवादी दल के सदस्यों का साथ दिया। इस पर यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री उग्रसेन ने इस आधार पर दल को विघटित कर दिया कि समाजवादी दल के सदस्यों का प्रजासोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों ने साथ नहीं दिया। इस विघटन का प्रजासोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश तथा समाजवादी दल के कुछ सदस्यों ने कड़ा विरोध किया लेकिन सदन में पुनः दो समाजवादी दलों का उदय हो गया। प्रजासोशलिस्टपार्टी के सदस्यों ने अपना यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी के रूप में ही अस्तित्व बनाये रखना स्वीकार किया तथा समाजवादी दल श्री उग्रसेन के नेतृत्व में गठित हुआ। बाद में जब राष्ट्रीय स्तर पर जून 1964 में दोनों दलों का गठबन्धन सम्भव हो सका। इस समय राज्य में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के जिन सदस्यों ने, लोहिया सोशलिस्ट पार्टी के गठबन्धन करने का विरोध किया वे कांग्रेस के खेमें में चलेगये। शेष संयुक्त पार्टी में बने रहे। लेकिन दुर्भाग्य से यह गठबन्धन भी अल्पकालिक सिद्ध हुआ तथा चतुर्थ आम चुनाव के पूर्व ही जनवरी 1965 में प्रजासोशलिस्ट पार्टीनेअपने को पृथक दल के रूप में संगठित कर लिया।

नीति व कार्यक्रम ::

संयुक्त समाजवादी दल संसद में जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है और संसद के बाहर के प्रदर्शन का रास्ता अख्तियार करती है तथा प्रदर्शन कारियों का नेतृत्व करती है। इस प्रकार यह जनतंत्रीकरण और राजनीति में हिस्सेदारी करती है। पार्टी का प्रयास है कि कानून निर्माण करने वाली समितियाँ एवं संस्थाएँ जनता के दुख-दर्द, असन्तोष और माँग का दर्पण बनें।[2]

एस0एस0पी0 कांग्रेस को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानते हैं और इसके लिए वह कम्युनिस्टों और दक्षिण पंथी ताकतों से समझौता करने में कांग्रेस से लड़ने के लिए सही ठहराती हैं।[3]

1- वीनर मायरन (एडिटेड) "स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया" प्रिन्सटन यूनीवर्सिटीप्रेस, 1957.

2- लिमयेमधु- "संयुक्त सोशलिस्ट क्यों?" पापुलर इलेक्शन गाइड, बाम्बे 1967, पृ0 7

3- संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, स्टेटमेंट आफ प्रिंसपल्स, प्रोग्राम एण्ड पालिटिकल लाइन, एडाप्टेड एट सेकेण्ड नेशनल कांफ्रेन्स, कोटा, 3-6 अप्रैल 1966, पृ0 34

एस0एस0पी0 का समाजवाद यूरोपीय समाजवाद की परम्पराओं से सहमत नहीं है । उनका तर्क है कि यूरोपीय समाजवाद ने परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे संवैधानिक उपायों के द्वारा तथा मिलबाँट कर प्राप्त किया है । इनकी राय में यूरोप के अतिरिक्त समाजवादी प्रक्रिया को कठोर होना चाहिए । अगर आवश्यक हो तो असंवैधानिक भी हो सकता है । यह दल को उत्पादन को बढ़ाने पर जोर देती है ।[1] यह दल ऐसा नहीं मानता कि समाजवाद का स्वयमेव विकास होगा । दल के अनुसार त्वरित सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता है , दल का मानना है कि उनका दल क्रान्तिकारी युद्ध चाहता है । एक ठोस समाजवादी कार्यक्रम रखता है, देश के प्रति इनको अटूट प्रेम है और ऐसे जनतंत्र को चाहता है जिसमें विकेन्द्रीकरण हो । यह अहिंसात्मक कार्यों द्वारा जनमानस में परिवर्तन चाहता है और इसके लिए गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन को हथियार की तरह प्रयोग करने की पुनरावृत्ति की अपील करता है । इस पार्टी का उद्देश्य है कि पार्टी को गतिशील भावना का होना चाहिए । समाज में जहाँ भी अन्याय है सामाजिक अन्याय के भीतर भी उसका विरोध किया जाना चाहिए ।

आर्थिक क्षेत्र में इस पार्टी का मानना है कि भारत में लोगों के स्तर में असमानता न केवल आर्थिक है परन्तु इसके भी ऊपर सामाजिक क्षेत्र में असमानता है । एस0एस0पी0 पिछड़ी जातियों की आवश्यकताओं व मांगों का पुरजोर समर्थन करती है क्योंकि समाज का जो उच्च वर्ग है वह कमजोर वर्ग से समानता व समन्वयन की नीति अख्तियार करने के लिए तैयार नहीं हैं । एस0एस0पी0 के अनुसार भारतीय समाज की 90% जनता दलित वर्ग में आतीहै ।[2]

यह दल लोहिया के ।। सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन करता है जिससे लोगों की दशा में सुधार आ सके , ये निम्न हैं - एकीकृत स्कूल प्रणाली , गैर उपजाऊ भूमि पर लगान माफी , जहाँ भी सिंचाई सम्भव है उन खेतों में पाँच या सात वर्ष की अवधि के अन्दर पानी देना , सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी को समाप्त करना , मासिक खर्चों में एक हजार रूपये माहवार से ज्यादा पर रोक लगाना , अगले 20 साल तक रेलवे में । क्लास की व्यवस्था करना , कृषि और औद्योगिक कीमतों में नियंत्रण, वने हुए माल के उत्पादन और भाड़ा को मिलाकर उसका बाजारू मूल्य डेढ़ गुना से ज्यादा न हो , दो फसलों के बीच में खाद्यान्न भावों में 20 प्रतिशत से ज्यादा अन्तर न हो , पिछड़ी जातियों के लिए 60% वरीयता , जिसके पास 2 से ज्यादा मकान हो उसकी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण तथा भूमि का प्रभावपूर्ण बंटवारा"[3]

1- एन इण्टरव्यू विद पी0के0दास, एस0एस0पी0, न्यू देहली, मार्च 1969,से उद्धृत,पृ07

2- डा0 राम मनोहर लोहिया , इक्वलिटी एण्ड प्रासपेरिटी,मैन काइन्ड पब्लिकेशन,दिल्ली, 1966,पृ04

3- -तदैव-

7- **भारतीय क्रान्तिदल ::**

चतुर्थ आम चुनाव के पूर्व कांग्रेस असहमति व गुटबाजी का केन्द्र बन गयी इसके पणिाम स्वरूप पश्चिम बंगाल में बंगला कांग्रेस , विहार में जन क्रान्तिदल, राजस्थान में जनता पार्टी व उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश में जन कांग्रेस जैसे क्षेत्रीय दलों का प्रादुर्भाव हुआ । इन सभी के जन्मदाता कांग्रेसी नेतृत्व का विरोध करने वाले कांग्रेसी सदस्य थे ।[1] यद्यपि कांग्रेसी नेतृत्व ने इन्हें एकजुट रखने का प्रयास किया किन्तु इसका हल कुछ नहीं निकला जैसे ही चतुर्थ आम चुनाव आये पार्टी के अन्दर अनुशासन समाप्त हो गया व ऐसे नवीन दलों की स्थापना शुरू हो गयी जिनके निर्माण में सिद्धान्त व पार्टी संगठन का आधार नहीं था ।

ये विभाजन की प्रवृत्तियाँ सम्पूर्ण भारत में फैली थीं । अतः अखिल भारतीय राजनीतिक दल के निर्माण की पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार थी और उसी से अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय क्रांतिदल का निर्माण हुआ । इसमें पूर्व कांग्रेस विधायक या पूर्व कांग्रेस सांसद होना पार्टी सदस्यता की प्रथम आवश्यक शर्त थी इनमें विभिन्न कांग्रेसी असन्तुष्ट व निर्दलीय शामिल हुए 6 व 7 दिसम्बर 1966 को दिल्ली में नवीन दल के निर्माण हेतु सम्मेलन हुआ ।[2] आचार्य जे0वी0 कृपलानी ने इस समिति की , जिसमें करीब 75 नेताओं ने जोकि आसाम , केरल, मध्यप्रदेश व उड़ीसा से थे , की अध्यक्षता की ।[3] इस समिति में एक 8 सूत्रीय कार्यक्रम स्वीकार किया गया । इसमें जनकांग्रेस ने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जनतंत्र के आधार पर एक कामन वेल्थ की तरह नवीन दल के निर्धारण की आवश्यकता पर जोर दिया ।[4] यह कार्यक्रम न तो नया था और न ही मौलिक था । इस प्रोग्राम के साथ आशुरचना का दोष था । इसमें नवीन पार्टी के स्वरूपात्मक गठन का तथ्य आम चुनावों तक स्थगित कर दिया गया ।

आम चुनावों के पश्चात 15 व 16 मई 1967 को पटना में गैर कांग्रेसी सरकारों के मुख्यमंत्रीगण तथा समान विचारधारा वाली पार्टी के अध्यक्षों - जो विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न नाम के दलों का प्रतिनिधित्व करते थे - को विभिन्न समितियों का गठन करने, एक कार्यक्रम व रूपरेखा बनाने के लिए तथा प्रस्तावित दल के नाम और इस दल का झण्डा निश्चित करने के

1- "ये नये दल कांग्रेस पैतृक दल के लाभकारी पदों पर न बैठे हुए विधायकों से बने हैं" द्वारा ईस्टर्न इकनामिक, वार्षिकी संस्करण 1967, 30 दिसम्बर 1966,पृ0128।

2- श्री एस0के0सिन्हा, भारतीय क्रान्तिदल , नेशनल कन्वेन्शन , इन्दौर,पृ0 67 व 13

3- टाइम्स आफ इण्डिया , न्यू दिल्ली, 7 दिसम्बर 1966

4- एम0 पट्टाभिरमैया, जनरल इलेक्शन आफ इण्डिया , एन एक्झास्टिव स्टडी इन मेन पालिटिकल ट्रेण्ड , बाम्बे 1967, पृ0 312

लिए बुलाया गया । नवम्बर 1967 में इन्दौर में पूर्वकांग्रेसियों की एक खास सभा में भारतीय क्रान्तिदल का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें भारतीय क्रान्तिदल के उद्देश्य व इसकी आकांक्षा तथा संविधान की उद्घोषणा की गयी लेकिन वी0के0डी0 ज्यादा दिन तक स्थायी नहीं रह सकी और शीघ्र इसमें विरोधाभास प्रकट हुए ।

1967 के आम चुनावों के पहले जिन राजनीतिक संगठनों ने नवीन दल बनाने में अपने हित को समझा चुनावों के बाद उनका उत्साह समाप्त हो गया । केरल कांग्रेस ने इन्दौर सम्मेलन मे भाग नहीं लिया । इसी प्रकार हरियाणा पंजाब व मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्रीगण जिन्होने गैर कांग्रेसी सरकारें बनाई थीं, ने वही व्यवहार किया । दक्षिण भारतीय राजनीतिज्ञों की उपस्थिति केवल प्रतीक रूप में रह गयी थी ।[1] चुनाव परिणामों ने भा0क्रां0दल में विरोधाभास उत्पन्न कर दिये- भारतीय क्रान्ति दल की कार्यकुशलता इस बात पर निर्भर करती थी कि चुनावों के द्वारा व्यक्तिगत शक्ति और स्वार्थ की कितनी पूर्ति हुयी थी । नवीन चुने हुये मुख्यमंत्री उन लोगों का सम्मान नहीं करते थे जिन्होने चुनाव में असफलता पाई थी ।[2] भारतीय क्रांतिदल की विहार, उ0प्र0 तथा पश्चिमी बंगाल की राज्य स्तरीय इकाइयाँ संयुक्त सरकारों की मुख्य घटक थीं जिनके लिए गैर कांग्रेसवाद एक मुख्य आधार था । दिसम्बर 1967 में हुमायूँ कबीर, जिसने कि पश्चिम बंगाल में संयुक्त बाम मोर्चा के अजयमुखर्जी कीनेतृत्व वाली सरकार को अपदस्थ करने में एक क्रियाशील भूमिका अदा की थी तथा भा0क्रां0दल के गठन में प्रभावी भूमिका थी को दल से इस बात पर निष्कासित कर दिया गया कि उन्होने गैर कांगेसवाद के विरूद्ध कम आक्रामकता दर्शायी थी ।[3] परिणामस्वरूप विहार व बंगाल की तरह देश के अन्य भागों में भी दल बदल हुआ । हुमायूँ कबीर ने बंगला कांग्रेस बना ली ।[4] मध्यवर्ती चुनावों ने यह स्पष्ट कर दिया कि केवल उत्तर प्रदेश में भारतीय क्रांतिदल एक शक्तिशाली विपक्ष है । विहार जहाँ इस दल के अध्यक्ष महामाया प्रसाद सिनहा थे को करारी हार मिली तथा पश्चिम बंगाल में तो यह चुनाव में उतरी ही नहीं । अगस्त 1974 को भा0क्रां0दल का विलय भारतीय लोक दल में हो गया ।

सिद्धान्त व कार्यक्रम ::

भारतीय क्रान्ति दल महात्मा गाँधी के दर्शन के अनुसार आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक शोषण से रहित जनतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए कार्य करेगा ।[5] भा0कां0दल महात्मागाँधी के मार्ग पर चलने तथा गाँधी के सिद्धान्तों का संवर्धन व पालन करने के लिए कटिबद्ध

1- इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, बाम्बे, 25 नवम्बर 1967, पृ0 2045

2- लिंक , नई दिल्ली, 1967 पृ0 21

3- इण्डियन रिकार्डर एण्ड डाइजेस्ट, न्यू दिल्ली जनवरी 1968, पृ0 8

4- कश्यप सुभाष, दि पालिटिक्स आफ डिफेक्शन, ए स्टडी आफ स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली,197 पृ0 219

5- भा0क्रां0दल का संविधान, अनुच्छेद -11, पृ0 10

है । दल के गठन के पूर्व ही जनकांग्रेस ने गाँधी जी के सिद्धान्तों की वकालत की थी - ने कहा कि कांग्रेस गाँधी जी के सिद्धान्तों का दुरूपयोग करने की दोषी है । भा0क्रां0 दल गाँधी जी के सिद्धान्तों के अनुसार जनता को चलने के लिए प्रेरित करती है । तथा मानव समस्याओं की जड़ पर प्रहार करती है । यह मौलिक दृष्टिकोण भारतीय क्रांति दल के उद्घोषित दृष्टिकोण - "भारतीय क्रांति दल लोगों की प्रवृत्ति में परिवर्तन करने के लिए कार्य करेगा जिससे कि वे भाग्यवाद से अपने को अलग कर सके और अपने उत्थान के लिए तथा देश के आर्थिक विकास के लिए कठिन परिश्रम कर सकें" - में परिलक्षित होता है ।[1] यह दल गाँधी जी के सिद्धान्त कि- "अधिकार कर्तव्य से जो कि अच्छी तरह से किये जाते हैं का समर्थन करता है तथा जनता को इस पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है ।"[2]

दल गाँधी जी के सिद्धान्तों का तो समर्थन करता है किन्तु उनकी व्याख्या आधुनिक संदर्भ में करते हुए यह हल, चरखा व ग्रामीण संस्कृति की तरफ लौटने की वकालत नहीं करता । इसके अनुसार विकास की प्रक्रिया नीचे से उत्पन्न होनी चाहिए न कि ऊपर से ।[3] भारतीय क्रांतिदल किसी भी देश के औद्योगीकरण के विरूद्ध नहीं है । दल कृषि को वरीयता देता है इसके अनुसार एक उन्नतिशील धनवान कृषक न केवल खाद्यान्न की वृद्धि के लिए आवश्यक है वरन् एक सामान्य आर्थिक विकास के लिए उत्साह उत्पन्न करने वाला है । दल के अनुसार एक धनी किसान वर्ग राष्ट्र की शक्ति को बढ़ायेगा जो कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को बढ़ायेगा । अपितु अपने हितों की रक्षा करने के अवसरों की वृद्धि भी करेगा ।[4]

xxx

x
xxx
xxxxx
xxx
x

1- भा0क्रां0 दल का संविधान, पृ0 2
2- - तदैव - पृ0 4
3- भा0क्रां0दल के उद्देश्य व सिद्धान्त, लखनऊ , पृ0 11
4- भा0क्रां0दल का घोषणा-पत्र, 1967

अध्याय – 3, राज्य प्रधान और विपक्षी दल

(क) राज्यपाल की नियुक्ति व विपक्ष
(ख) राज्यपाल का अभिभाषण व विपक्ष
(ग) राज्यपाल के अभिभाषण पर बहस व विपक्ष
(घ) राज्यपाल के कार्यों पर विचार करने की परिसीमायें

राज्य प्रधान और विपक्षी दल:

भारतीय राज्यों में शासन के लिये संसदीय ढाँचे की सरकार को अपनाया गया है। भारतीय राज्यों का यह ढाँचा संघीय सरकार के आधार पर ही रखा गया है। यहाँ राज्यों का प्रधान राज्यपाल होता है जो एक लोकप्रिय एवं उत्तरदायी मंत्रि परिषद की सहायता से शासन करता है । राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित है। राज्यपाल की कार्यपालिका शक्ति का आधार वही है जो कि संवैधानिक रूप से केन्द्र में राष्ट्रपति को प्राप्त है[1] इस प्रकार राज्यपाल को केवल संवैधानिक मुखिया के रूप में ही स्वीकार किया गया है किन्तु यह मानना आश्चर्यजनक नही है कि यह संस्था प्रारम्भिक मान्य स्थिति के अभाव में इससे कुछ इतर भी है । विभिन्न राज्यों के राज्यपालों ने विभिन्न रूप में आचरण किया है परिणाम स्वरूप इस दिशा में समान परम्परायें विकसित नही हो सकी है । प्रतिपक्ष इनसे कहाँ तक प्रभावित हुआ है व विभिन्न अवसरों जैसे राज्यपाल के अभिभाषण, राज्यपाल की नियुक्ति व राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग के परिप्रेक्ष्य में विपक्ष का आचरण व दृष्टिकोण क्या रहा – इसका विवेचन निम्नवत है–

(क) राज्यपाल की नियुक्ति व विपक्ष:

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार "राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह उनके प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है । संसदीय शासन का प्रधान होने के नाते राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग मंत्रि मण्डल व प्रधानमंत्री की सलाह से करता है" । व्यवहारिक रूप से राज्यपाल केन्द्र में सत्तारूढ़ दल द्वारा नियुक्त किया जाता है और सत्तारूढ़ दल जब भी असन्तुष्ट हो राज्यपाल को उसके पद से हटाया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि व्यवहारिक रूप से राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त रहने का अर्थ प्रधानमंत्री की इच्छा होता है ।

संविधान निर्मात्री सभा में राज्यपाल की नियुक्ति को लेकर काफी मतभेद रहे है "प्रादेशिक संविधान समिति" ने अपने प्रतिवेदन में राज्यपाल का चुनाव राज्य की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के सिद्वान्त के अनुसार किये जाने का उपबन्ध किया।[2] संविधान निर्मात्री सभा के समक्ष समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुये सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उपरोक्त प्रावधान के विषय में यह कहा था-"यद्यपि प्रादेशिक संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल को अत्यधिक सीमित शक्तियाँ दी गयी है फिर भी उसका चुनाव एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गयी है जो काफी जटिल है अतः यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस जटिल प्रक्रिया को क्यों अपनाया जाये। किसी प्रदेश में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव कराना अत्यन्त कठिन कार्य है । ऐसा होते हुये भी यह (चुनाव) राज्यपाल के पद की मर्यादा को देखते हुये आवश्यक समझा गया है। इससे राज्यपाल जो पूरे प्रदेश के वयस्कों द्वारा निर्वाचित किया गया है, उसका लोकप्रिय मंत्रिमण्डल तथा सम्पूर्ण प्रदेश पर काफी प्रभाव रहेगा । उसकी हैसियत व मर्यादा को देखते हुये उसे देश की जनता के सभी

---

1. एम0वी0 पायली, कान्स्टीटयूशनल गर्वनमेन्ट इन इन्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस 1965 पृष्ठ 475
2. भारतीय संविधान, धारा 153, 155, 157 तथा 158

सभी वर्गों की सम्मति तथा सामान्य समर्थन प्राप्त होना चाहिए[1]

संविधान निर्मात्री सभा में प्रादेशिक संविधान समिति के उपरोक्त प्रतिवेदन के बिना किसी विशेष वाद-विवाद के स्वीकार कर लिया गया । इसी प्रतिवेदन के आधार पर संविधान का प्रारूप तैयार किया गया । जो दो वर्षो बाद 30 मई 1949 को संविधान निर्मात्री सभा के समक्ष रखा गया तब भूतपूर्व प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नियुक्ति पद्धति का समर्थन किया और कहा "मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि यदि राज्यपाल का निर्वाचन होगा तो इससे प्रदेश में विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा[2]

संविधान निर्मात्री सभा मेंहुये उपरोक्त वाद-विवाद से यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को नियुक्त किये जाने की पद्धति को अपनाये जाने के दो प्रमुख कारण बताये गये प्रथम राज्यपाल को दलगत राजनीति से ऊपर रखना, द्वितीय राज्यपालों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ही महत्ता, जिससे राज्यों पर केन्द्र सरकार का नियंत्रण प्रभावी हो सकें ।

प्रश्न यह है कि क्या संविधान निर्माताओं का मंतव्य पूरा हुआ क्या संविधान निर्माताओं के विचार दर्शन को व्यवहार में भी सत्तारूढ़ राजदल द्वारा मान्यता प्रदान की गयी क्या राज्यपाल के पदधारकों ने वास्तव में दलीय निष्पक्षता का परिचय दिया । उत्तर नकारात्मक है। स्वाधीनता के बाद से ही किसी मूल्य पर सत्ता की प्राप्ति करना और उसे सुरक्षित रखना ही हमारे देश के कर्णधारों का अंतिम लक्ष्य बन गया । इस मनःस्थिति से देश में अवसरवादी, सिद्धान्तहीन तथा दरबारी एवं अनैतिक राजनीति को प्रश्रय मिला तथा संविधान की सभी संस्थाओं की स्थिति हेय बन गयी राज्यपाल पद की महत्ता भी सत्तारूढ़ दल के राजनीतिक हितों की रक्षा के लिये यंत्रवत कार्य करने की स्थिति तक सीमित रह गयी । सत्तारूढ़ राजनीतिक दल ने राज्यपालों की नियुक्ति में अपने दलीय हितों को ही प्रमुखता दी जिसमे विपक्ष की भावनाओं व सदस्यओं का कोई महत्व नही था । साथ ही आचरण में संविधान की भावना गौण बन गयी। विवेचना निम्नवत हैं ।

1. राज्यपाल पद पर योग्य, विवेकी तथा सार्वजनिक जीवन में विशिष्ट व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के स्थान पर सक्रिय कांग्रेसजनों की नियुक्ति उन्हें पुरूस्कार की भावना से की जाने लगी। एक सर्वेक्षण के अनुसार स्वतंत्रता के बाद से 1964 तक 45 राज्यपालों की नियुक्तियाँ की गयी, उनमें से 24 सक्रिय कांग्रेसजन थे ।[3]

2. बहुत बार पराजित कांग्रेसी भी इस पर नियुक्ति किये गये । नरहरि विष्णु गाडगिल, पाटस्कर, वी0वी0 गिरि तथा गोपाल स्वरूप पाठक जैसे पराजित कांग्रेसी इस पद पर नियुक्त हुये ।

---

1. संविधान निर्मात्री सभा वाद-विवाद खण्ड-4 पृ0 588-89
2. संविधान निर्मात्री सभा वाद-विवाद खण्ड-8 पृ0 455
3. डा0 सरदार रणजीत सिंह, धर्मचन्द्र जैन (राज्यपाल की नियुक्ति आलोचना का नया तूफान) लोकतन्त्र समीक्षा वर्ष-8 अंक-3, जुलाई-सितम्बर 1976.

3. स्वतंत्रता के बाद विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों को राज्यपाल के पद पर प्रतिष्ठित किया गया । उदाहरणार्थ आंध्र प्रदेश में श्री नीलम संजीव रेड्डी को जगह देने के लिये श्री बी0गोपाल रेड्डी को राज्यपाल का पद देकर आंध्र प्रदेश की राजनीति से हटा लिया गया जिससे कि राज्य में सत्तारूढ़ दल में आन्तरिक संघर्ष की स्थिति से बचा जा सके ।

4. पराजित व पद निवृत और सक्रिय राजनीति में भाग लेने वाले केन्द्रीय मंत्री भी इस पद पर नियुक्त किये गये । ए0जे0 जोन, अजीत प्रसाद जैन, हरि कृष्ण महताब व सत्य नारायण सिन्हा आदि ।

5. राज्यपाल के पद पर उन व्यक्तियों को भी सुशोभित किया गया जो प्रशासन में अपनी दक्षता प्रदर्शित कर चुके थे तथा शासक दल के प्रति जिनकी भक्ति थी । उदाहरणार्थ – सर्वश्री धर्मवीर, वी0एन0 चक्रवर्ती, अनन्तशयनम् आयंगर तथा सरदार हुकम सिंह इत्यादि।

6. पद निवृत मुख्यमंत्रियों को भी राज्यपाल नियुक्त किया गया उदाहरणार्थ डा0 सम्पूर्णानन्द व मैसूर में श्री मोहन लाल।

7. प्रधानमंत्री द्वारा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के वहिष्कृत व तिरष्कृत सदस्यों से छुटकारा पाने के लिये भी इस पद का उपयोग किया गया ।

8. विशिष्ट कांग्रेसीजन जैसे श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित, बी0के0 नेहरू तथा श्री शान्ति स्वरूप धवन को राज्यपाल नियुक्त किया गया ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सत्तारूढ़ दल द्वारा अपने ही दल के सदस्यों को राज्यपाल पद पर नियुक्त किया गया न कि प्रतिपक्ष के ।

<u>राज्यपाल की नियुक्ति और राज्य सरकार से सलाह :</u>

चतुर्थ आम चुनाव के पूर्व केन्द्रीय और सभी राज्यों में एक ही दल की सरकारें थी । अतः राज्यपालों की नियुक्ति में मुख्यमंत्री या राज्य सरकार की सलाह का प्रश्न ही नही उत्पन्न हुआ किन्तु 1967 के पश्चात् केन्द्र व राज्यों में कांग्रेस के एकाधिकार समाप्त हो गया (1) तथा संविद सरकारें अस्तित्व में आयी परिणाम स्वरूप राज्यपाल का पद केन्द्र व राज्यों के बीच अवांछित दबाव व संघर्ष का केन्द्र बना । और यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या केन्द्रीय सरकार राज्यपालों की नियुक्ति में राज्य सरकार से सलाह या परामर्श लें। व्यवहार में ऐसा नही हुआ परिणाम स्वरूप समय समय पर अनेक राज्यों में, जहाँ केन्द्र के विपरीत सरकार थी, इस प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हुयी – उदाहरणार्थ – सन् 1967 ई0 में हरियाणा में श्री भगवत दयाल शर्मा की कांग्रेसी सरकार के पतन के बाद श्री राव वीरेन्द्र सिंह के नेतृत्व में प्रथम बार गैर कांग्रेसी सरकार संविद का निर्माण हुआ । इस गैर कांग्रेसी सरकार और केन्द्र की कांग्रेसी सरकार के बीच राज्यपाल की नियुक्ति को लेकर सर्वप्रथम कटुता का वातावरण उत्पन्न हुआ । मुख्यमंत्री श्री राव वीरेन्द्र सिंह ने केन्द्र से यह अनुरोध किया कि वह राज्यपाल पद पर नियुक्ति के ~~लिये~~ के दो या तीन व्यक्तियों का "पैनल" बनाये।

---

1. 1967 के राज्य चुनाव परिणामों के आधार पर

जिसे केन्द्र ने स्वीकार नही किया तथा एक ही व्यक्ति का नाम प्रस्ताविक किया न कि अनेक व्यक्तियों का "पैनल" (1)

दूसरा विवाद प्रथम अकाली जनसंघ संविद के मुख्यमंत्री सरदार गुरूनाम सिंह द्वारा राज्य के राज्यपाल पद के लिए केन्द्र द्वारा प्रस्तावित दो व्यक्तियों के पैनल का रहा इसमें मुख्यमंत्री ने केन्द्र द्वारा प्रस्तावित होने के कारण विरोध किया ।(2)

इसी प्रकार वर्ष 1967 में उत्तर प्रदेश में नई संविद सरकार के गठन के पूर्व ही श्री वी0 गोपाल रेड्डी की राज्यपाल पद पर नियुक्त की घोषणा हुयी इस सन्दर्भ में श्री एस0एम0 बनर्जी ने लोकसभा में गृहमंत्री से पूछा कि "क्या राज्यपाल की अन्तिम रूप से नियुक्ति के पूर्व संविद के मुख्यमंत्री श्री चरण सिंह से सलाह ली जायेगी?"(3) उत्तर नकारात्मक रहा तथा श्री चरण सिंह का भी मत था कि वे इस प्रश्न पर केन्द्र सरकार से परामर्श करने का विचार नही रखते है ।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि राज्यपाल की नियुक्त की सम्बन्ध में केन्द्र व केन्द्र के विपरीत दल वाली राज्य सरकारों के मध्य जो भी विवाद उत्पन्न हुये वे संवैधानिक न होकर दलगल राजनीति से प्रेरित रहे तथा संशय व अविश्वास की राजनीति इन मामलों में हावी रही। तथा सद्भावना व विचार विर्मश के स्थान पर आरोप प्रत्यारोप को प्रोत्साहन मिला इसका एक प्रमुख कारण यह रहा है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल ने इस पद पर अपने चहेते लोगों को ही प्रतिष्ठित किया । विभिन्न विद्वत्जनों ने भी समय समय पर ऐसा ही भाव व्यक्त किया है – उदाहरणार्थ –प्रसोपा के स्वर्गीय नाथपाई का विचार था कि नियुक्ति सम्बन्धी केन्द्र सरकार के मापदण्डों ने इस पद का ही अवमूल्यन कर दिया है (4) मार्क्सवादी नेता श्री नम्बोदरी पाद ने इस पद की समाप्ति की ही मॉग की(5) सीतलवाड़ अध्ययन दल ने भी अपने निष्कर्ष में ही यही विचार व्यक्त किये । राज्यपाल पद को राजनीतिज्ञों के लिए प्रसाद स्वरूप उपयोग किया जाता है(6) श्री पी0के0 देव ने लोक सभा में कहा कि पराजित व्यक्तियों की इस पद पर नियुक्ति नही की जानी चाहिए।

राज्यपाल पद को केन्द्र व राज्य के बीच एक सम्पर्क कड़ी के रूप में विकसित करने व दलगत भावनाओं से पृथक रखने के लिए विद्वतजनों ने अपने कुछ सुझाव व्यक्त किये है विवेचना निम्नवत् है– स्वर्गीय श्री नाथपाई का विचार था कि राज्यपाल की नियुक्ति संसद की सहमति से की जानी चाहिए(7) किन्तु यह सुझाव व्यवहारिक नही है क्यों कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का

---

1. दैनिक ट्रिब्यून, 19 अगस्त 1967
2. तदैव
3. लोकसभा वाद–विवाद भाग–2, 1967 कालम 2794
4. तदैव भाग 9, 1967 कालम 2792
5. स्टेट्समैन मार्च 23, 1967
6. तदैव दिसम्बर 15, 1967
7. लोकसभा वाद–विवाद भाग–2, 1967 कालम 2793

बहुमत होता है और संसद सदस्य अपने दलीय आदेशों का पालन करते हैं अतः कोई प्रयोजन सिद्व नही हो सकता । प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल का सुझाव था कि राज्यपाल की नियुक्ति के पूर्व सम्बन्धित राज्य सरकार की सलाह लेनी चाहिए (1) यही मंतव्य संविधान निर्माताओं का भी था किन्तु यह सुनिश्चत ढ़ंग से व्यक्त नही किया गया कि सलाह का आयास क्या है? सलाह केवल सलाह के लिए है तो इसका कोई ठोस महत्व नही है और यदि मुख्यमंत्री की सहमति अनिवार्य है तो यह विवाद को जन्म देगा ।

श्री अटल बिहारी बाजपेयी का मत है कि एक पैनल मुख्यमंत्री के समक्ष प्रस्तावित हो[2] किन्तु केन्द्र द्वारा प्रस्तावित व्यक्तियों में हो सकता है कि सभी का झुकाव केन्द्र सरकार के प्रति हो। डा0 राम सुभग सिंह के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति निष्पक्ष सलाहकारों के परामर्श के बाद राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए[3] किन्तु निष्पक्ष सलाहाकारों के सम्बन्ध में कोई ठोस व्यवस्था नही है ।

वास्तव में भारत की संघात्मक व्यवस्था में राज्यपाल पद की अपनी विशिष्ट और महत्वपूर्ण भूमिका है अतः मूल प्रश्न इस पद्धति को बदलने या परिवर्तित करने का नही है अपितु इस पद की उपयोगिता स्वीकार करने का है। इस पद के महत्व को पुर्नस्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति इस पद को ग्रहण करें वे स्वय भी अपने आपको इस पद के अनुरूप समझे इस पद को गौरव प्रदान करने के लिए निम्न सुझाव है–प्रथम, राज्यपाल पद पर नियुक्ति के सम्वन्ध में मेरिट व्यवस्था को अपनाया जाना चाहिए तथा ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो सार्वजनिक जीवन में स्वच्छ व्यक्तित्व रखते हों और जिनका आचरण अनुकरणीय हो । ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति का निर्णय करते समय दलगल राजनीति से ऊपर उठकर निर्णय लिये जाने चाहिए । दूसरे, केन्द्र सरकार को अपने ही दल के पराजित किसी नेता को ऐसे राज्य का राज्यपाल बना कर नही भेजना चाहिए जहाँ विरोधी दलों का शासन हो। तीसरे राज्यपाल की नियुक्ति में जहाँ तक सम्भव हो सकें सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री की इच्छा का सम्मान किया जाना चाहिए ताकि विपक्ष की राज्यपाल के प्रति विश्वसनीयता बढें। चौथे, इस पर ऐसे महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की नियुक्ति नही की जानी चाहिए जो अपने विवेकाधीन शक्तियों से आगे बढ़कर कार्य करने की इच्छा रखते हो ।

---

1. स्टेट्समैंन, दिसम्बर 15, 1967
2. स्टेट्मैंन, नवम्बर 17, 1967
3. इण्डियन एक्सप्रेस 30 नवम्बर 1970

(ख) राज्यपाल का अभिभाषण व विपक्ष:

संविधान के अनुच्छेद 175(1) द्वारा राज्यपाल को दो सदन वाले राज्य विधान मण्डल के दोनों सदनों को संयुक्त रूप से अथवा पृथक – पृथक अभिभाषित करने का अधिकार है तथा अनुच्छेद 176(1) में विधानसभा के प्रत्येक सामान्य निर्वाचन के उपरान्त प्रथम सत्र के प्रारम्भ में तथा प्रतिवर्ष प्रथम सत्र के आरम्भ में राज्य विधान मण्डल के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में राज्यपाल के अभिभाषण का प्राविधान संविधान में किया गया है इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में संविधान निर्माताओं द्वारा इग्लैण्ड का अनुसरण करते हुये यह व्यवस्था की गई थी कि प्रत्येक सत्र का प्रारम्भ राज्यपाल के सम्बोधन से ही होगा परन्तु यतः राज्यपाल का अभिभाषण सरकार द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें सदन के कार्यक्रमों के साथ साथ प्रमुखतः शासन द्वारा अनुसरित व प्रस्तावित नीतियों की घोषणा की जाती है अतः यह अनुभव किया गया कि प्रति सत्र सम्बोधन में अनावश्यक रूप से विषयों के पुनरावृत्ति होगी ही, फलस्वरूप 1951 में प्रथम संविधान संशोधन द्वारा केवल प्रारम्भ में उल्लेखित अवसरों पर ही राज्यपाल द्वारा संयुक्त रूप से समवेत सदनों (द्विसदनात्क राज्य विधान मण्डल की अवस्था में) को सम्बोधित किये जाने की व्यवस्था की गयी।

उ0प्र0 विधानसभा में कई ऐसे अवसर आये जब वर्ष के प्रारम्भ में नया सत्र हुआ किन्तु इस परम्परा का पालन नही हुआ । उदाहरणार्थ – तीन फरवरी 1958 को विधानसभा की वर्ष में प्रथम बैठक का शुभारम्भ राज्यपाल के अभिभाषण के बिना, बजट अधिवेशन के रूप में हुआ [1] इसके विरूद्व प्रतिपक्ष ने अनुच्छेद 176(1) के अधीन वैधानिक आपत्ति उठाते हुये बैठक को तुरन्त विसर्जित करने की मॉग की तथा कहा कि अभिभाषण के साथ बजट अधिवेशन का श्रीगणेश किया जाय लेकिन इस वैधानिक आपत्ति को अस्वीकार करते हुये मुख्यमंत्री ने कहा कि नये वर्ष का पहला अधिवेशन अभी शुरू नही हुआ। विधानसभा की यह बैठक गत दिसम्वर के अधिवेशन का अंग है[2] इस पर समाजवादी नेता श्री राज नारायण ने वैधानिक आपत्ति उठाते हुये कहा कि यदि यह बजट 1958 का है तो बजट के पूर्व राज्यपाल का अभिभाषण होना जरूरी है और यदि यह पिछले वर्ष का ही सत्र है जैसा कि मुख्यमंत्री ने कहा है तो एक वर्ष में दो वजट रखने की रूपरेखा 1957 के राज्यपाल के अभिभाषण में नही रखी गयी अतः बजट अनुचित है, लेकिन उपाध्यक्ष ने विपक्ष की इन आपत्तियों को स्वीकार नही किया [3]

अध्ययनाधीन काल में 34 बार राज्यपाल द्वारा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशनों को अभिभाषित किया गया तथा उ0प्र0 राज्य विधान मण्डल के समक्ष राज्यपाल द्वारा दिये गये किसी भी अभिभाषणों के सम्बन्ध में राज्यपाल व मंत्रिमण्डल के मध्य कोई मतभेद उत्पन्न नही हुआ तथा मंत्रिमण्डल द्वारा तैयार किये गये अभिभाषण को ही राज्यपाल द्वारा पढ़ा गया ।

सदन के समक्ष राज्यपाल का अभिभाषण एक गरिमामय कार्यवाही माना जाता है। ऐसे अवसरों पर सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे राज्यपाल के पद की प्रतिष्ठा एवं गौरव को ध्यान

---

1. 1959 व 1960 तथा अन्य वर्षो में भी राज्यपाल का अभिभाषण नये वर्ष की प्रथम बैठक में नही हुआ। 2. 'आज' 4 फरवरी 1958
3. यहॉ पर ज्ञातव्य है कि सरकार की इस सम्बन्ध में नीति तथा विरोध पक्ष की आपत्ति पर उपाध्यक्ष की व्यवस्था, दोनों संगति संविधान के अनुच्छेद 176 (1) से नही होती है। अतः विपक्ष की मॉग औचित्यपूर्ण थी किन्तु सरकार ने इसे नही माना।

में रखते हुये सदन की गरिमा बनाये रखें किन्तु अब तो प्रायः प्रत्येक विधान मण्डल के दौरान बाधा उपस्थित करने की घटनायें मानों संसदीय परिपार्टी के अंग के रूप में स्थापित होती जा रही है। वैसे इस सन्दर्भ में कांल एवं शक्धर ने लिखा है —"संसद के दोनों सदनों के सामने राष्ट्रपति का अभिभाषण संवधान के अन्तर्गत सबसे गम्भीर एवं औपचारिक कार्यवाही है । इस अवसर पर बड़ी शालीनता व गरिमा से कार्य लिया जाना है । यदि कोई सदस्य ऐसा काम करे जिससे इस अवसर की सौम्यता भंग होती हो या गड़बड़ी पैदा करें तो यह सभा जिसका वह सदस्य है। उसके विरूद्व कार्यवाही कर सकती है । साथ ही यह परिपाटी भी है कि जिस समय राष्ट्रपति भाषण दे रहा हो कोई सदस्य सेन्ट्रल हाल से उठकर नही जाता"।[1]

किन्तु प्रदेश का विधान मण्डल हो या संसद, कहीं भी इस शिष्टाचार का पालन नहीं हो रहा है। तथा सत्ता व प्रतिपक्ष दोनो ने इस पर सम्मिलित प्रहार किये है यद्यपि विपक्ष में बैठने वाले विभिन्न विरोधी दलों ने राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के सम्बोधन के समय बाधा उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त की है और अपने माननीय सदस्यों को इस तरह के कृत्यों से विरत रहने पर भी आग्रह किया है लेकिन उन दलों के सदस्य अपने दल के विनिश्चयों पर अमल नही करते और किसी न किसी बहाने बाधा उपस्थिति करने व सदनत्याग तथा वहिष्कार की महामारी तेजी से फैल रही है ।

इस प्रकार की घटनायें उ0प्र0 विधानसभा में कई बार हुयी जब प्रतिपक्ष ने सदन त्याग व बहिष्कार किया – प्रथम विधान सभा में यह अवसर 1954 में आया, जब प्रतिपक्ष के 22 सदस्यों ने, समाजवादी दल के नेता श्री राजनारायण के नेतृत्व में 3 फरवरी 1954 को घटित कुम्भ घटना के सम्बन्ध में सदन त्याग किया[2] इसमें प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अतिरिक्त भारतीय साम्यवादी दल तथा स्वंतत्र दल का एक एक सदस्य शामिल था। इस घटना के सम्बन्ध में शेष विपक्ष का रूख इतना उग्र था कि उनकी मॉग पर सरकार को इस घटना की जॉच के लिये एक समिति गठित करनी पड़ी। न केवल विधान मण्डल में अपितु संसद में भी राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय भारतीय साम्यवादी दल व हिन्दू महासभा के सदस्यों ने इस घटना के विरोध में सदन त्याग किया।[3] द्वितीय विधानसभा में राज्यपाल श्री वी0वी0गिरि द्वारा 1958-[4] -1959 में अभिभाषण अंग्रेजी में दिये जाने के विरोध में समाजवादी दल के सदस्यों ने सदन त्याग किया। लेकिन 1961 में विधानसभा के इतिहास में पहली बार अभिभाषण के समय कांग्रेसी सदस्यों की बेंचे खाली दिखाई दी। इन असन्तुष्ट कांग्रेसियों की बेंचे खाली दिखाई देने का कारण यह था कि जिस तरीके से श्री चन्द्रभानु गुप्त मंत्री मण्डल सत्तारूढ़ किया गया तथा उसका विस्तार किया गया व जिस तरीके से वह कार्य कर रहा था उससे वे असन्तुष्ट थे । प्रतिपक्षी खेमे में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय जनसंघ और साम्यवादी दल ने अभिभाषण का बहिष्कार किया जबकि साम्यवादी दल के सदस्यों ने ब्रिटेन की महारानी के स्वागत में भारी अपव्यय करने,

---

1. कॉल एवं शक्धर,'संसदीय प्रणाली व व्यवहार' पृ0 175
2. उ0प्र0 विधानसभा की कार्यवाही खण्ड 129 पृ0 52-53
3. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 16 फरवरी 1954
4. उ0प्र0 विधानसभा का॰ खण्ड 195 पृ0 5

अध्यादेश जारी करने तथा हिन्दी को पर्याप्त स्थान न दिये जाने के विरोध में सदन त्याग किया[1] । नव गठित विधानसभा (तृतीय) के प्रथम अभिभाषण का समाजवादी दल के सदस्यों ने खर्चीले मंत्रि मण्डल के प्रति अपना विरोध व्यक्त करते हुये सदन का त्याग किया[2]। 1964 में समाजवादी दल के सदस्यों ने अभिभाषण को अंग्रेजी में दिये जाने के विरोध में सदन त्याग किया[3]। हॉलाकि राज्यपाल अभिभाषण के पूर्व विपक्षी दलों के नेताओं से हिन्दी में अभिभषाण करने की अपनी असमर्थता व्यक्त कर चुके थे [4]। 1965 में चार विपक्षी दलों. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय साम्यवादी दल, रिपब्लिकन .. पार्टी व निर्दलीय दल ने खाद्य संकट, मूल्य वृद्धि व शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरोध में अपने पूर्व निश्चय, जिसमें इन दलों के नेताओं ने रिपब्लिकन पार्टी के नेता श्री हलीमुद्दीन राहत मौलाई की अध्यक्षता में हुयी 7 फरवरी 1965 की बैठक में राज्यपाल के अभिभाषण का वहिष्कार करने का निर्णय कर लिया था[5] –के अनुसार अभिभाषण का वहिष्कार किया[6]। भारतीय जनसंघ के सदस्यों ने शासन विरोधी वक्तब्य तो दिये किन्तु सदन त्याग नही किया। अगले दिन जब राज्यपाल ने विधान सभा के सभी दलों के नेताओं को बातचीत के लिए आमंत्रित किया तो बहिर्गमन करने वाले संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय साम्यवादी दल, रिपब्लिकन पार्टी व निर्दलीय दल के नेताओं ने इस निमंत्रण का भी बहिष्कार किया और इसमें भाग लेने वाले राजनैतिक दलों का विरोध भी किया।[7]

उ0प्र0 विधान सभा में न केवल बहिष्कार या बहिर्गमन अपितु विपक्षी दलों द्वारा अनेक व्यवधान व दुर्व्यवहार पूर्ण आचरण किया गया, उदाहरणार्थ–"26 फरवरी 1970को प्रारम्भ होने वाले प्रथम सत्र में उ0प्र0 के राज्यपाल डा0 बैजवाड़ा गोपाल रेड्डी ने अभिभाषण किया तो इस अभिभाषण के दौरान कुछ माननीय विपक्षी सदस्यों ने सदन की परम्परा व मर्यादा के विपरीत उनके भाषण में बाधा व व्यवधान उपस्थित किये जो कि विरोध प्रकट करने का नितान्त गैर लोकतांत्रिक तरीका था । यह व्यवधान इतना अधिक था कि अध्यक्ष महोदय स्वयं उस भाषण को ठीक प्रकार से नही सुन सकें तथा जनसंघ के सदस्यों द्वारा राज्यपाल के हाथ से माइक ले लिया गया"।[8] इसी प्रकार 19 मार्च 1974 को जब राज्यपाल

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 218 अंक 1 पृ01
2. उ0प्र0 विधानसभा की कार्यवाही खण्ड 298 पृ0 29
3. -तदैव- खण्ड 245 पृ0 81–4फरवरी 1964
4. 'दि हिन्दूस्तान टाइम्स,' 4 फरवरी 1964
5. 'आज', 9 फरवरी 1965
6. 'एशियन रिकार्डर'-1965, पृ0 6382
7. इस बैठक में राज्यपाल ने स्पष्ट किया कि बहिर्गमन करने वाले दलों के प्रतिनिधियों ने मुझसे वर्तमान सरकार को वर्खास्त कर देने का आग्रह किया तो मैंने इस गैर संवैधानिक कार्य को करने से इंकार किया, इसी से रूष्ट होकर मेरे अभिभाषण का बहिष्कार किया–"आज"9 फरवरी 1955
8. उ0प्र0 विधासभा कार्यवाही खण्ड 280 अंक 1 पृ040

एक साथ समवेत सदनों को सम्बोधित करने के लिए सभा मण्डल में पधारें तो विपक्ष के सदस्यों द्वारा माननीय राज्यपाल के हाथों से अभिभाषण की प्रति छीन ली तथा डायस पर चढ़ कर असंसदीय व्यवहार किया व कागज के पुलन्दें बनाकर फेकें [1]। 17 मार्च 1978 को जब कि विधानमण्डल के एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष राज्यपाल अपना अभिभाषण पढ़ रहे थे तभी माननीय सदस्य श्री सुन्दर लाल दीक्षित सहित कुछ सदस्यों ने राज्पाल के समक्ष माइक तोड़ कर फेंकना शुरू कर दिया तथा कुर्सी चलाई गई । इसी दौरान चोट लगने से एक राज्य मंत्री श्री राजबली तिवारी तथा सिन्हा का सिर फट गया । आधे दर्जन सदस्य घायल को गये । कांग्रेस (ई) के 21 सदस्यों को गिरफतार कर जेल में भेंज दिया तथा इस सम्पूर्ण प्रकरण की जॉच के लिये एक समिति 11 सदस्यों की गठित की गई लेकिन 10 महीनें बीत जाने के बाद भी उक्त समिति विना कोई रिपोर्ट दिये स्वतः समाप्त हो गयी।[2]

इसी प्रकार 23 फरवरी 1980 को राज्यपाल के अभिभाषण का उपाध्यक्ष द्वारा आशिंक पाठ किये जाने पर कांग्रेस (ई) विपक्ष के सदस्यों ने काले झण्डे दिखाये तथा घोर व्यवधान की परम्मरा अपनाते हुये सदन का परित्याग किया[3]

26 जनवरी 1981 को राज्यपाल द्वारा दोनों सदनों के सम्मुख अभिभाषण का विरोध पक्ष जनता पार्टी ने वहिष्कार किया तथा इसके पश्चात अभिभाषण शुरू होने के पश्चात अभिभाषण के मध्य में बहिर्गमन के उपरान्त पुनः सदन में आने का प्रयास किया जिसे कि विधानसभा रक्षकों ने रोका । विपक्षी सदस्यों ने राज्यपाल के आगमन पर "राज्यपाल वापस जाओ" के नारे लगाये तथा असंसदीय व्यवहार किया । विरोध पक्ष के कुछ सदस्य बाहर गये, कुछ सचिव की मेज के पास पहुँच गयें और शोर मचाते हुये कागज फाड़ कर फेंकने लगे । इसके बाद बाहर गये, फिर लौटे, बार-बार आते-जाते थे।[4]

इसी प्रकार 1 फरवरी **1983** को जब राज्यपाल श्री सी0पी0एन0 सिंह ने सम्वोधन किया तो विपक्षी दलों ने हंगामापूर्ण स्यिति में बहिष्कार किया अतः उन्होंने सम्बोधन भाषण का प्रथम व अन्तिम वाक्य पढ़ दिया व अभिभाषण स्पीकर महोदय को पढ़ने के लिये दे दिया।[5]

---

1. उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 306 पृ0 60 अंक 2, 19 मार्च 1974
2. तदैव खण्ड 330 अंक 1 पृ0 6
3. तदैव – खण्ड 343 पृ0 3
4. तदैव – खण्ड 348 अंक 1 पृ0 6
5. तदैव – खण्ड 359 पृ0 6

इसी प्रकार की घटना 13 फरवरी 1984 को विधान मण्डल के समक्ष हुयी जब राज्यपाल भाषण करने पधारें तो एक गम्भीर स्थिति पैदा हुयी । उस समय विरोध पक्ष द्वारा एक विरोध भाषण अभिभाषण के पूर्व ही पढ़ा जाने लगा । इस अभिभाषण में अवरोध करने में अग्रणी सदस्य मुहम्मद आजम खाँ थे । मुहम्मद आजम खाँ की आचरण की जाँच के लिये एक समिति उ0प्र0 विधान सभा में गठित की किन्तु इस समिति ने कहा कि "मोहम्मद आजम खाँ राज्यपाल के संवैधानिक कृत्यों में बाधा पहुँचाने व राज्यपाल व अध्यक्ष तथा सदन के प्रति अनादर का भाव दर्शानें के दोषी हैं किन्तु वर्णित परिस्थितियों में समिति उनके प्रति किसी प्रकार की कार्यवाही की आवश्यकता नही समझती है । समिति ने यह आशा अवश्य की सदस्यगण अपने संवैधानिक कृत्यों एवं दायित्वों को समझें तथा इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने दें [1]।

वास्तव में प्रतिपक्षी दलों के इस आचरण से न केवल राज्यपाल की प्रष्तिठा को धक्का लगा वरन् उनके अभिभाषण देने के संवैधानिक अधिकार के समक्ष प्रश्न चिन्ह लग गया । विपक्षी सदस्यों का ऐसा आचरण न तो वांछनीय था और न ही संसदीय मर्यादाओं के अनुकूल था, क्यों कि राज्यपाल के अभिभाषण का प्रारूप सरकार द्वारा तैयार किया जाता है तथा मंत्री परिषद द्वारा स्वीकृत किया जाता है।[2]

"मेंने अपनी पुस्तक संसदीय प्रक्रिया में लिखा है कि संसद में किये गये किसी भी आचरण के विरूद्व संसद को अपने सदस्यों के विरूद्व कार्यवाही करने का पूरा अधिकार है अर्थात यदि राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान विपक्षी सदस्यों द्वारा अवरोध उत्पन्न किया जाता है तो विधान मण्डल को उसे दण्डित करने का अधिकार अक्षुण्ण है।[3]

विधानसभा में माननीय सदस्यों के विरूद्व ऐसी परिस्थितियों में दण्डात्मक कार्यवाही करने की एक निशिचित प्रक्रिया निर्धारित है । ऐसा इस लिए है ताकि कि निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ अन्याय न हो सकें व वे अपने विधायी अधिकारों का निर्भयतापूर्वक निष्पादन कर सकें, इसलिए माननीय अध्यक्ष व सदन में निहित दण्डात्मक प्रावधानों से माननीय सदस्यों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की गई है किन्तु बहुधा यह देखने में आया है कि प्रदेश विधानसभा में इस प्रकार के मामलों में विधान सभा व राज्यपाल का विपक्षी सदस्यों के प्रति रूख नमनीय रहा ।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 364 अंक 1 पृ0 6–7
2. बैक ग्राउन्ड पेपर्स, 2nd ओरियेन्टेशन सेमीनार फार लेजिस्लेचर्स, दि इन्स्टीट्यूट आफ कानस्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंन्टरी स्टडीज' पृ041.
3. इर्सकिन में 'पार्लियामेन्ट्री प्रैक्ट्रिस' पृ0 60

फिर भी इस सम्पूर्ण विवेचन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि विधानसभा इतने प्राविधान होने के बावजूद राज्यपाल के सम्बोधन भाषण के अवसर पर शालीनता की व्यवस्था बनाये रखने की समस्या गम्भीर होती जा रही है । किन्तु इसका विकल्प क्या है । इस सम्बन्ध में अधिकांश लोगों का मत यह रहा है कि इस व्यवस्था को समाप्त ही कर देना चाहिए और यदि, "ये प्रथा किसी तरह चलाये रखना ही है तो उक्त समारोह की शालीनता और व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व किसी न किसी के जिम्मे हो।"[1]

इस सम्बन्ध में विधान सभा प्रक्रिया नियमों में कोई विशेष व्यवस्था नही की गई किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रक्रिया नियमावली में ऐसे मामलों के सन्दर्भ के प्रावधान शामिल करने की वजाय यह अच्छा होगा कि राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान सदस्यों द्वारा पालनीय नियम निम्नवत् रक्खें जाये–[2]

1. राज्यपाल के अभिभाषण के समय सदस्यों द्वारा किसी प्रकार का अव्यवस्थिति आचरण राज्यपाल, सदन तथा उसके सदस्यों के सम्मान के प्रतिकूल माना जाय।

2. राज्यपाल का भाषण सरकारी नीतियों का उद्घोष होता है ऐसे अवसरों पर गम्भीरता, मर्यादा व शालीनता के साथ आचरण होना चाहिए ।

3. चूँकि राज्यपाल का अभिभाषण एक संवैधानिक दायित्व है इसलिए शिष्टता व मर्यादा के साथ उन्हें सुना जाये ।

4. संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार राज्यपाल भी विधान मण्डल के अंग है अतः सदस्यों से उन्हें उचित सम्मान मिलना चाहिए ।

5. यदि सदस्य अपने द्वारा ली गयी शपथ के विपरीत अमर्यादित आचरण करता है तो सदन ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है ।

6. जब राज्यपाल विधान मण्डल के समक्ष उपस्थिति हो तो उस समय कोई सदस्य अभिभाषण के पूर्व या उसके पश्चात भाषण द्वारा अथवा औचित्य का प्रश्न उठाकर सदन त्याग करता है अथवा अन्य किसी रीति से बाधा उत्पन्न करता है तो ऐसे कार्य को घोर आपत्तिजनक व अमर्यादित कृत्य की संज्ञा दी जानी चाहिए। और सदन को ऐसे मामलों में उचित कार्यवाही हेतु पूरा अधिकार है ।

---

1. मोहन सिंह: "राज्यपाल का अभिभाषण व विपक्ष द्वारा व्यवधान की परम्परा," पृ0 34–35, विधानसभा के 32 वर्ष, उ0प्र0 सचिवालय प्रकाशन,उ0प्र0लखनऊ
2. 'प्रिविलेज डाइजेस्ट' वाल्यूम 6 ,अक्टूबर 1971 पृ0 63

किन्तु विधान सभा की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह रही है कि इस तरह की आचार संहिता का पालन करने के लिए बहुत से सदस्य तैयार नहीं है । विधान सभा एवं संसद की अनेक समितियों की राय के बावजूद अभी तक कोई संवैधानिक परिर्वतन नही किया गया । राज्यपाल के पद पर अपनी निजी अनुभव के आधार पर श्री श्री प्रकाश जी ने स्वयं लिखा है-- "कि आज की मौजुदा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये अब संविधान को इस बात को स्पष्ट कर देना चाहिए कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के सम्बोधन भाषण में समारोह का अध्यक्ष कौन होगा ? यह बात अनुचित लगती है कि राष्ट्रपति व राज्यपाल अपने भाषण में बाधा उपस्थिति करने के आरोप में किसी सदस्य को मार्शल की सहायता से स्वयं निकाल बाहर करें । ये अति उत्तम रहेगा कि समारोह में व्यवस्था स्थापित रखने का दायित्व, जिन राज्यों में दो सदन है वहॉ विधान परिषद के सभापति व जहॉ एक सदन हो वहॉ का उत्तरदायित्व अध्यक्ष विधान सभा के जिम्मे हो । और वे ही सदन की व्यवस्था रखने के उत्तरदायी हो।"[1]

राज्यपाल के अभिभाषण को लेकर देश की संघीय व्यवस्था में एक नया अन्तर विरोध भी देखने को मिलता है। खास तौर पर 1967 के बाद, जब देश के विभिन्न प्रान्तों में केन्द्र विरोधी सरकारें अथवा विपक्षी दलों की संविद सरकारें गठित हुयीं तो केन्द्र सरकार के विरूद्व कुछ राज्यों में विपक्ष की सरकारें धारा 176 का उपयोग केन्द्र सरकार की आलोचना के रूप में करने लगी । चूँकि अधिकतर राज्यों में विभिन्न मतों एवं परस्पर विरोधी विचारधारा के न्यूनतम कार्यक्रमों के ऊपर आधारित राज्य सरकारें बनने लगी । इसलिए सरकार गठित करने वाले विभिन्न घटकों द्वारा इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि राज्यपाल के सम्बोधन भाषणों में उनके दल की विचारधारा की झलक स्पष्ट दिखाई दें किन्तु यह बात न्यायसंगत नही कही जा सकती ।

---

1. श्री श्री प्रकाश: 'राज्यपाल व विधान मण्डल में विपक्ष' पृ0 80
पुस्तक "स्टेट गवर्नर्स इन इण्डिया" से उद्धत

(ग) राज्यपाल के अभिभाषण पर बहस व विपक्ष

राज्यपाल के अभिभाषण के उपरान्त विधान सभा के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष द्वारा सदन को अभिभाषण पढ़ कर सुनाया जाता है।[1] संविधान के अनुच्छेद 176(2) के अनुसरण में विधान सभा अध्यक्ष, नेता सदन के परामर्श से राज्यपाल के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियम करते है जो साधारणतया चार दिन होताहै परन्तु कोई दिन राज्यपाल के अभिभाषण पर चर्चा के लिए नियत होते हुये भी उस दिन सदन में अभिभाषण पर चर्चा आरम्भ होने या जारी होने के पूर्व अन्य औपचारिक कार्य किया जा सकता है।[2]

राज्यपाल के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों पर सदन में चर्चा एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत तथा अन्य सदस्यों द्वारा समर्पित धन्यवाद के प्रस्ताव पर आरम्भ होती है।[3] धन्यवाद के प्रस्ताव में ऐसे संशोधन प्रस्तुत किये जा सकते है जिसे अध्यक्ष उचित समझे ।[4] ऐसे प्रस्ताव या उस पर संशोधन प्रस्तुत करने के लिए किसी सूचना की आवश्यकता नही होती है परन्तु संशोधन के लिए आवश्यक है कि वह मूल प्रस्ताव के अन्त में शब्द जोड़ने के रूप में हो।[5] विधान सभा द्वारा संशोधन सहित अथवा संशोधन रहित धन्यवाद प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा राज्यपाल को अर्पित किया जाता है और उस पर प्राप्त राज्यपाल के उत्तर को सदन में पढ़कर सुनाते है।[6]

अभिभाषण समारोह वर्ष का तथा नवगठित विधान सभा का वह पहला अवसर होता है जब सदन को सरकार की भावी नीतियों से अवगत कराया जाता है । सामान्यतः अभिभाषण का मसौदा सरकार के द्वारा तैयार किया जाता है अतः इसके लिए सरकार ही जिम्मेदार होती है । 1959 में जब राज्यपाल ने अपने अभिभाषण में नेहरू की विदेश नीति पर प्रकाश डाला तब वहस के समय अध्यक्ष ने इसे असंवैधानिक बताते हुये यह व्यवस्था दी कि राज्यपाल के सम्भाषण का वह अंश जिसमें भारत सरकार की या प्रधानमंत्री की विदेश नीति की सराहना की गई है, अवैधानिक है तथा राज्य सरकार से आग्रह किया गया कि भविष्य में वह ऐसे विषय शामिल न करें जिनका राज्य से सम्बन्ध नही हो। बाद में अध्यक्ष ने प्रतिपक्ष को भी इस विषय पर वहस करने की अनुमति दी ।

---

1. नियम 19 (2) – उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली
2. नियम 19(3) तदैव–
3. नियम 19 (4)
4. नियम 19 (5)
5. नियम 19 (6)
6. नियम 11 (7 व 8)

ब्रिटिश परम्परानुसार राज्यपाल के अभिभाषण में कुछ ही मुख्य चीजों का ज़्रिक किया जाता है तथा नियमानुसार सदस्य केवल उन्ही विषयों पर अपना भाषण दे सकते है जिनका अभिभाषण में उल्लेख रहता है । लेकिन सदस्य गण संशोधन पेश करके, भाषण के विषय क्षेत्र को विस्तृत कर सकते हैं । अपने इस अधिकार का प्रयोग कर प्रतिपक्ष ने अध्ययनाधीन काल में सभी अभिभाषणों की इस आधार पर आलोचना की कि राज्याल ने अभिभाषण में अमुक विषय पर प्रकाश नहीं डाला । ये विषय सामान्यतः निम्न लिखित थे :– कानून व्यवस्था की खराब स्थिति, मूल्य वृद्धि, बेराजगारी, न्याय विभाग का प्रशासन से पृथक्करण, क्षेत्रीय असन्तुलन, प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, फिजूल खर्ची, स्थानीय संस्थाओं के चुनाव का विषय, कृषकों की समस्यायें, अलाभकर जोतों से लगान समाप्त करने, विकास योजनाओं में त्रुटियाँ व अव्यवस्था, पूर्वी जिलों की दयनीय स्थिति, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, खाद्य नीति, पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि। प्रायः सभी बहसों में प्रस्तुत संशोधन प्रस्तावों में विपक्ष ने प्रदेश में कानून व्यवस्था की स्थिति ठीक न होने के आधार पर राज्य सरकार की आलोचना की, उदाहरणार्थ – राज्यपाल के अभिभाषण 1972 पर धन्यवाद प्रस्ताव नेता विपक्ष श्री कल्पनाथ सिंह ने अपना संशोधन प्रस्तुत करते हुये कहा कि प्रदेश में हरिजन स्त्रियों व अन्य हरिजनों को अत्याचार से बचानें में यह प्रशासन विफल रहा है तथा प्रदेश में लोकतांत्रिक निरकुंशवाद की स्थापना हो गई है[1]। वर्ष 1966 के धन्यवाद प्रस्ताव में नेता विपक्ष श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने अपने संशोधन में कहा कि प्रदेश में बढ़ते हुये अपराधों पर सरकार ने चिन्ता व्यक्त करने तथा उनको रोकने के लिए कोई प्रभावी कदम नही उठाये हैं।[2]

मूल्य वृद्धि व बढती हुयी मँहगाई पर समय समय पर चिन्ता व्यक्त की गई उदाहरणार्थ – 22 मार्च 1962 को श्री यादवेन्द्र दत्त, नेता विरोधी दल, ने अपना संशोधन प्रस्तुत करते हुये कहा – कि प्रदेश में मूल्यों में भयानक वृद्धि हो रही है किन्तु अभिभाषण में इस विषय का जरा भी उल्लेख नही है कि किसानों की गिरती हुयी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए लगान आधी की गयी । इसी प्रकार 4 फरवरी 1964 को धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुये नेता विपक्ष श्री शारदा भक्त सिंह ने सरकार की आलोचना करते हुये कहा कि बढ़ती मंहगाई से अल्प वेतनभोगी कर्मचारियों के रक्षार्थ एक स्थाई बोर्ड का निर्माण करने, न्यूनतम वेतन रू0 125/- प्रतिमाह निर्धारित करने तथा अन्तरिम भत्ते की व्यवस्था की ओर सरकार ने कोई प्रयास नही किया है।[3] वर्ष 1967 के अभिभाषण पर विचार व्यक्त करते हुये श्री राम चन्द्र विकल ने कहा – आज पूरे प्रदेश की जनता जिस चीज से सर्वाधिक तबाह हो रही है वह है मंहगाई और इसीसे तमाम आन्दोलनों का उभार हो रहा है।[4]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 269 पृ0 376, 28 मार्च 1972
2. तदैव – खण्ड 262 पृ0 143
3. तदैव – खण्ड 228 पृ0 29 तथा खण्ड 238, 5 जनवरी 1963 एवं खण्ड 245 पृ0 81, 4 फरवरी 1964
4. तदैव – खण्ड 271 अंक 4 पृ0 205

बेरोजगारी की समस्या विचार करते हुये श्री कल्पनाथ सिंह ने अपना संशोधन 28 मार्च 1972 को प्रस्तुत करते हुये कहा कि सरकार बेरोजगारी रोकने में विफल रही है और नही ही संवधान के खण्ड 41 के अनुसार प्रत्येक बूढ़ों को पेंशन, बीमार व विकलांगों को आर्थिक सहायता देने में सफल हुयी है ।[1]

प्रदेश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी समय समय पर विचार व्यक्त हुये । उदाहरणार्थ दि0 4 फरवरी 1964 को विपक्ष के श्री शारदा भक्त सिंह ने कहा कि – खेद है कि प्रशासन व्यय में व्याप्त अपव्यय को रोकने का सरकार द्वारा कोई प्रयास नही किया गया [2] तथा 18 मार्च 1969 को विपक्ष के श्री चरण सिंह ने सरकार की प्रशासनिक अकुशलता पर प्रहार करते हुये कहा – कि प्रदेश के प्रशासन व सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के विरोध व उन्मूलन का कोई ज़िक्र तक इस अभिभाषण में नही हुआ और न ही प्रशासन की कुशलता और सुरक्षा की व्यवस्था को सुधारने की ओर कोई ध्यान दिया गया। [3] इसी प्रकार वर्ष 1975 में 18 फरवरी को श्री चौधरी चरण सिंह ने प्रशासन में प्रत्येक स्तर पर भ्रष्टाचार व्याप्त होने का आरोप लगाते हुये कहा कि ऐसे व्यक्तियों को मंत्रीमण्डल में ले लिया है जो भ्रष्ट माने जाते थे । मंत्री परिषद के भ्रष्टाचार का जो दुष्प्रभाव प्रशासन की हर इकाई तथा प्रत्येक नागरिक जीवन में पड़ा है वह कल्पना के बाहर है एवं प्रशासन ने प्रत्येक स्तर पर भ्रष्टाचार इसलिए है कि कांग्रेसजन द्वारा हस्तक्षेप के कारण ईमानदार लोग अपने कर्तव्य का पालन नही कर पा रहे हैं।[4] फिजूल खर्ची पर भी प्रतिपक्ष द्वारा अपने संशोधनों के माध्यम से ध्यान दिलाया गया, उदाहरणार्थ 6 फरवरी 1961 विपक्ष के श्री राजनारायण ने कहा –"कि हम देख रहे है कि हमारे प्रदेश में ब्रिटेन की रानी का स्वागत अपार धन के अपव्यय से किया जा रहा है । जिससे कि हमारे प्रदेश की प्रतिष्ठा व सम्मान गिरता है"[5]/ 27 मार्च 1962 को श्री यादवेन्द्र सिंह ने मंत्री मण्डल के विस्तार को अपव्यय व फिजूलखर्ची की संज्ञा देते हुये कहा – कांग्रेस दल के नेता ने इतना विशाल काय मंत्री मण्डल बनाया है जिसका असह्य बोझ कम करने का नाममात्र उल्लेख अभिभाषण में नही है ।[6]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 259 पृ0 316, 28 मार्च 1972, खण्ड 218 7 फरवरी 1961, खण्ड 245, 4 फरवरी 1964
2. तदैव – खण्ड 245 पृ0 81, 4 फरवरी 1964
3. तदैव – खण्ड 276 अंक 2 पृ0 40, 18 मार्च 1969
4. –तदैव– खण्ड 313 पृ0 88, 18 फरवरी 1975
5. –तदैव– खण्ड 218 अंक 1 पृ0 1
6. –तदैव– खण्ड 228, 27 मार्च 1962 पृ028–29

कृषि, कृषक तथा भूमि सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर भी सरकार का ध्यान दिलाया गया, उदाहरणार्थ – 26 फरवरी 1970 को श्री गिरधारी लाल ने राज्यपाल का ध्यान 6 एकड़ तक की बिना बचत की जोतों से मालगुजारी खत्म करने के अध्यादेश को तुरन्त अधिनियम न बनाये जाने की तरफ आकर्षित किया है ।[1] इसी प्रकार 17 मार्च 1978 को श्री रियासत हुसैन ने अपने संशोधन के माध्यम से प्रदेश के गन्ना किसानों की समस्या की ओर ध्यान दिलाते हुये कहा कि चुनावों में जनता पार्टी ने प्रचार किया था कि गन्ना उत्पादकों को गन्ने की कीमत मिलेगी किन्तु अब प्रदेश के 2 फीसदी व्यपारियों व मिल मालिकों के हित के लिए– ये कह कि हमारे पास पर्याप्त स्टाक है – किसानों के गले पर छुरी चला दी है।[2] इसी प्रकार वर्ष 1981 में किसानों की समस्या बहस का प्रमुख मुद्दा रही। नेता विपक्ष श्री राजेन्द्र सिंह ने कहा– विगत एक वर्ष में किसानों की लूट बढ़ी है तथा खेती में काम आने वाले वस्तुओं के मूल्य तेजी से बढ़े हैं, की ओर तथा बिजली व पानी किसानों को नही उपलब्ध कराया गया है, की ओर न कोई जिक्र किया, न ही समाधान की कोई नीति बतलाई ।[3]

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी विशिष्ट समस्यायें थी जिन्हें प्रतिपक्ष ने समय व परिस्थिति के अनुसार सदन में उठाया – उदाहरणार्थ, चुनावों के समय जैसे 1952, 1957, 1962, 1967 व अन्य में प्रतिपक्ष ने चुनाव में धांधलेबाजी व अनियमितताओं का आरोप लगाते हुये जॉच समिति गठित किये जाने की मॉग की, उदाहरणार्थ 27 मार्च 1962 को श्री यादवेन्द्र दत्त ने चुनावों में सत्तारूढ़ दल पर अवैध तरीकों का आरोप लगाते हुये कहा– सत्तारूढ़ दल ने 1962 के सामान्य निर्वाचन में सरकारी साधनों का दुरूपयोग किया है तथा अनुचित साधनों से चुनाव जीतने का प्रयास किया है।[4] इसी प्रकार वर्ष 1971 में लोकसभा चुनावों में प्रदेश की संविद सरकार की आलोचना व श्री टी0एन0 सिंह मुख्य मंत्री द्वारा चुनाव हार जाने के प्रकरण पर सरकार की आलाचना हुई तथा वर्ष 1977 के चुनावों में कांग्रेसियों प्रत्याशियों के प्रदेश में लोकसभा चुनाव सभी सीटों पर हार जाने को बहस का प्रमुख मुद्दा बनाया गया ।

समसामयिक समस्याओं में दंगें, गोली कॉड व दुर्घटनाओं को मुद्दा बनाया गया जैसे 1954 में कुम्भ घटना के सम्बन्ध में व्यापक स्तर पर चर्चा हुयी।[5] तथा एक सीमा तक उसने शासक दल को प्रभावित करने का प्रयास किया । जैसे 1954 में बहस के

---

1. उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 280 अंक 1, पृ0 40, 27 फरवरी 1970
2. –तदैव– खण्ड 330 पृ0 91, 17 मार्च 1978
3. –तदैव– खण्ड 348 अंक 1 पृ0 6
4. –तदैव– खण्ड 228 पृ0 75
5. –तदैव– खण्ड 129, 12 व 13 फरवरी 1954, पृ0 52–53

समय प्रतिपक्ष की उग्र मॉग की बजह से सरकारकोकुम्भ घटना की जॉच के लिए एक समिति नियुक्त करनी पड़ी। 1956 में विन्ध्य प्रदेश व उ0प्र0 के एकीकरण पर जोरदार चर्चा हुयी ।[1] 1958 में उ0प्र0 तथा बिहार के सीमा विवाद को ऊभारा गया।[2] 1959 में रिहन्द बांध से उत्पादित बिजली सस्ती दर पर सरकार द्वारा बिरला को दिये जाने की समस्या को ऊभारा गया।[3] 1960 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी द्वारा शस्त्र अधिनियम समाप्त करने के सम्बन्ध में संशोधन रखा गया।[4] 1963 में गोरखपुर गोली कॉण्ड की घटना जॉच की मॉग करते हुये प्रतिपक्ष ने सरकार की आलोचना की ।[5] 1966 में चौथी पंचवर्षीय योजना की अर्न्तगत प्रदेश में कर बढ़ाये जाने का प्रतिपक्ष द्वारा विरोध किया गया।[6] वर्ष 1969 में भ्रष्टाचार का सार्वजनिक जीवन से उन्मूलन के लिये सरकार द्वारा प्रयासरत न होने के लिये सरकार की निन्दा की गई ।[7] वर्ष 1970मेंपूर्ण वाद–विवाद चौधरी चरण सिंह द्वारा संविद शासन के काल में लगान व सीलिंग न मानने की नीति तथा वर्तमान में मुख्यमंत्री बन जाने पर लगान व सीलिंग मान लेने की नीति पर आधारित रहा।[8] वर्ष 1971 में प्रदेश में अलीगढ़, इलाहाबाद तथा अन्य स्थानों पर सामप्रदायिक दगों को रोकथाम तथा पीढ़ित व्यक्तियों की सहायता एवं क्षतिपूर्ति में प्रदेश सरकार की असफलता पर प्रकाश डाला गया।[9] वर्ष 1974 में सम्पूर्ण वाद–विवाद चुनावी असन्तोष व चुनावी अव्यवस्था पर निर्भर रहा तथा प्रतिपक्ष द्वारा सरकार पर दोषपूर्ण निवार्चन प्रणाली तथा चुनाव में अनियमितता वरत कर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया।[10] वर्ष 1975 में अधिकांश वाद–विवाद दल–बदल की समस्या व इमेर्जेन्सी के कारण उत्पन्न आतंकित माहौल की समस्या पर केन्द्रित रहा । [11] 1977 में इमेर्जेन्सी समाप्त होने के पश्चात जनता दल सत्ता पर आयी थी अतः वाद–विवाद का सम्पूर्ण केन्द्र बिन्दु राष्ट्रीय व जनहित के मुद्दे न होकर कांग्रेस पक्ष द्वारा इमेर्जेन्सी के काल में किये गये अत्याचारों व पूर्व नीतियों पर केन्द्रित रहा था ।[12] वर्ष 1980 में भी वाद–विवाद लोकसभा चुनावोंमेंकी गई धाँधली पर आरोप एवं प्रत्यारोप तक सीमिति रहा ।[13] वर्ष 1981 में अभिभाषण में मुख्य मुद्दा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के पूर्णतया विफल होने तथा आवश्यक सामग्रियों के वितरण में राज्य की कोई समग्र नीति न होने पर खाद्यन्नों में आयी तेजी पर आधारित रहा।[14] वर्ष 1980

---

1. उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 165, 21 फरवरी 1956
2. –तदैव– खण्ड 195, 22 जुलाई 1958
3. –तदैव–205, 28 जुलाई 1959
4. –तदैव– खण्ड 214, 26 जुलाई 1960
5. –तदैव– 238 पृ0 68
6. –तदैव– खण्ड 262 पृ0 152
7. –तदैव– खण्ड 276 अंक 2 पृ0 40, 18 मार्च 1969
8. –तदैव–खण्ड 280 अंक 1 पृ0 40, 26 फरवरी 1970
9. –तदैव– खण्ड 288 अंक 2, 23 मार्च 1971
10. –तदैव– खण्ड 306 पृ0 358
11. –तदैव– खण्ड 313 पृ088
12. –तदैव– खण्ड 325 अंक2 पृ0132
13. –तदैव– खण्ड 345 पृ05
14. –तदैव– खण्ड 348 पृ0 157 व 158

में अभिभाषण पर बहस के समय अधिकांश सदस्यों ने बागपत काण्ड पर अपने विचार व्यक्त करते हुये सरकार की आलोचना की ।[1]

विपक्ष ने जहाँ समसामयिक समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराया वही अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिए या समय न मिल पाने के कारण अपनी बात न कह सकने पर सदन त्याग भी किया उदाहरणार्थ वर्ष 1966 में श्री रियासत हुसैन ने यह कहते हुये कि तीन दिन से हमारी पार्टी को बोलने का मौका नही मिला है अतः मैं सदन त्याग करता हूँ इसी प्रकार भगवान दास यादवेन्दु ने भी समय न मिलने के कारण सदन त्याग किया ।[2] वर्ष 1969 में नेता विपक्ष चन्द्रभानु गुप्त द्वारा सरकारी नीतियों की आलोचना करते हुये प्रदेश में लॉ एण्ड आर्डर की बिगड़ी स्थिति के कारण आक्रोश व्यक्त करते हुये सदन त्याग किया जब कि श्री नसीमुद्दीन ने यह कहते हुए कि मुझे मेरी पार्टी को समय नही मिला, सदन का त्याग किया।[3] वर्ष 1970 में विधानसभा में सदन त्याग बहीष्कार की एक अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न हो गयी। 4 मार्च 1970 को घोर वाद-विवाद के पश्चात अनन्तराम जायसवाल के संशोधन प्रस्ताव पर मतदान होने के प्रश्न पर अध्यक्ष ने व्यवस्था दी कि वोटिंग सदन में होगी और इसके लिए सदन में 2 बक्से रखें जायेगें, किन्तु विपक्ष दल लाबी में मतदान कराये जाने की माँग कर रहे थे, जिसे अस्वीकृत किये जाने पर विपक्षी सदस्यों द्वारा "तानाशाही नहीं चलेगी" तथा "गवर्नर महोदय ने बेईमानी का तरीका अपनाया है"-के नारे लगाये गये। तत्पश्चात एक सदस्य (विपक्ष) ने हाँ के पक्ष में वोट डालने वाला बक्सा उठा लिया। विरोधी पक्ष की ओर ले जा कर उसे तोड़ डाला। इसके पश्चात् अत्यन्त शोर-गुल व अभूतपूर्व व्यवधान के वातावरण के मध्य मतदान हुआ । अत्यन्त शोर गुल के बीच अध्यक्ष ने घोषणा कि श्री जायसवाल द्वारा प्रस्तुत संशोधन प्रस्ताव गिर गया है व मूल मतदान नहीं होगा।

तत्पश्चात 5 मार्च 1970 को वाद-विवाद के पश्चात मूल प्रस्ताव पर मतदान हुआ जिसका विरोधी दलों ने बहीष्कार किया तथा मतदान में भाग नहीं लिया। विपक्ष की अनुपस्थिति में मूल प्रस्ताव पर मतदान हुआ, जो स्वीकृत हुआ [4]

वर्ष 1977 में राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलने के लिए जब नेता विरोधी दल श्री नारायण दत्त तिवारी खड़े हुये तो सत्ता पक्ष की ओर से व्यवधान किया गया अतः नेता विपक्ष श्री नारायण दत्त तिवारी ने यह कहते हुये, कि "जो कुछ भी हो रहा है इसके विरोध में- अभी विपक्ष की भावनायें शासन पक्ष में हैं, यही कारण

---

1. उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 344 पृ076
2. -तदैव- खण्ड 262 पृ0 398
3. -तदैव- खण्ड 276 पृ040, 18 मार्च 1969
4. -तदैव- खण्ड 280 पृ0 704

है कि शासक दल में किस प्रकार बैठना चाहिए उसका पूरा अन्दाजा नही है" – कहकर (शोर व्यवधान के मध्य) इसके विरोध में सदन त्याग किया तत्पश्चात् श्री ऊदल ने कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के साथ यह कहते हुये सदन त्याग किया– कि मान्यवर मैं कल बहुत शिष्ट भाषा में बोल रहा था। बीसियों बार व्यवधान डाला व आज भी डाल रहे हैं। सत्तापक्ष में बैठकर कैसी भूमिका निभायी जाये यह उन्होंने नही सीखा हैं। इसलिये इनको ठीक करने के लिए ताकि यह सीख जायें, मैं भी सदन का त्याग करता हूँ।[1]

वर्ष 1980 में जब धन्यवाद प्रस्ताव की स्वीकृत का प्रश्न उपस्थित हुआ तब विपक्ष के श्री गुलाब सेहरा यह कहते हुये कि–"यह माइनारिटी गवर्नमेन्ट है" सदन त्याग किया ।[2]

वर्ष 1980के आम चुनावों के पश्चात गठित विधानसभा के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के समय नेता विपक्ष श्री राजेन्द्र सिंह ने बागपत काण्ड पर विचार व्यक्त करते हुये कहा – कि माननीय नेता सदन इस घृणित कार्य पर भी मौन हैं; सदन आश्वासन देने में असमर्थ है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ दबाव में है, इसलिये मेरी बात पर कुछ विचार नही किया।इस कारण मैं और मेरा दल सदन त्याग करता हूँ। श्री राजेन्द्र सिंह ने अपने दल के सदस्यों सहित सदन त्याग कर दिया । दूसरी तरफ विपक्ष के अन्य सदस्यों ने सदन में मुख्यमंत्री व कैबिनेट मंत्रियों की अनुपस्थिति व उदासीनता के विरोध में सदन त्याग किया–क्यों कि राज्यपाल के अभिभाषण पर बहस के दौरान सदन की परम्परा रही है कि मुख्यमंत्री व नेता सदन अथवा कोई कैबिनेट स्तर का मंत्री सदन में उपस्थिति रहे। 7 जुलाई 1980 को श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त ने इसे संसदीय परम्पराओं की अवहेलना व सदन का अपमान बताते हुये सदन त्याग दिया तत्पश्चात श्री ऊदल व श्री रियासत हुसैन भी अपने दल के सदस्यों तथा श्री खैरूल बशर व जयशंकर ने सदन का त्याग किया।[3]

स्पष्ट है प्रतिपक्ष के सदस्यों ने जहाँ एक ओर समसामयिक व प्रमुख ज्वलन्त समस्याओं पर सदन का ध्यान आकर्षित कर अपने ससंदीय दायित्व की पूर्ति की, वहीं सदन त्याग के बारे में उनका कृतित्व मिश्रित रहा । सदन त्याग के सन्दर्भ में प्रायः प्रतिपक्ष ने समय न मिल पाने या फोरम की समस्या पर, बेवजह सदन परित्याग किया क्यों कि अन्य सदस्यों के माध्यम से विचार अभिव्यक्ति तो हो ही रही थी । वही यह भी

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 325 अंक 2 पृ0 709
2. –तदैव– खण्ड 343 पृ0 578, 4 फरवरी 1980
3. –तदैव– खण्ड 344 पृ0 106 4 फरवरी 1980.

उदाहरण मिलते है कि उन्होंने सदन त्याग के माध्यम से सत्तापक्ष की विपक्ष के प्रति उदासीनता व सत्तापक्ष के असंसदीय आचरण तथा संसदीय व्यवस्थाओं का हनन करने व राज्य की ज्वलन्त समस्याओं पर समुचित कार्यवाही न किये जाने के प्रति अपना आक्रोश प्रकटकरसच्चे अर्थो में राज्य की जनता के प्रति अपने संसदीय नेतृत्व का परिचय दिया।

अभिभाषण पर बहस के दौरान विपक्ष दल द्वारा स्वयं आपस में झड़पें व आरोप प्रत्यारोप भी लगाये गये उदाहरणार्थ – 1960 में स्वतंत्र प्रगतिशील विधायक दल के श्री अवधेश प्रताप सिंह ने भारतीय साम्यवादी दल की आलोचना करते हुये कहा कि भारत में साम्यवाद की दुर्दशा हो जायेगी । हम मार्क्स व लेनिन के नाम पर देश को नही बेंच सकते[1]। श्री राजनारायण ने 1961 में स्वतंत्र पार्टी को 'तथा कथित स्वतंत्र पार्टी' कहा तो कुंवर श्री पाल सिंह ने उन पर अनापशनाप बकने का आरोप लगाया।[2] वर्ष 1963 में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी व भारतीय साम्यवादी दल के मध्य आरोप - प्रत्यारोप के स्वर ध्वनित हुये तथा नेता विरोधी दल श्री यारवेन्दु दत्त दुबे द्वारा कम्युनिष्ट पार्टी पर इन्टेलीजेन्सी का आरोप लगाते हुये कहा गया कि – आपके इन्टेलीजेन्स ब्यूरो की जो रिपोर्ट निकलती है उसमें था कि कम्युनिष्ट पार्टी के लोग चीनी सरकार के लिये इन्टेलीजेन्सी का कार्य कर रहे हैं।[3]1965 में भी भारतीय जनसंघ के श्री शारदा भक्त सिंह ने भारतीय साम्यवादी दल की कड़ी आलोचना करते हुये उस पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की मॉग की । राज्यपाल के अभिभाषण के समय यह सर्वमान्य संसदीय परम्परा रही है कि जिस समय गवर्नर महोदय प्रेसीडेन्ट या क्वीन का अभिभाषण, जैसी भी स्थिति में हो, सम्बोधन हो, उस समय जो राजनीतिक दल या व्यक्ति विशेष हैं, वे अपने व्यक्तिगत मतभेद व राजनीतिक दलों के मतभेदों के प्रदर्शन का अवसर उसे नही बनायें क्यों कि एक दूसरे पर आरोप व प्रत्यारोप सदन की गरिमा का उल्लंघन है तथा एक स्वस्थ राजनीतिक परम्परा जिसमें विपक्ष स्वयं सामूहिक रूप से सरकार पर अंकुश का कार्य करता है, का विरोध करता है।

उ0प्र0 विधान सभा में न केवल विपक्ष ने समस्याओं पर संशोधन रखकर सदन का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया अपितु सत्तापक्ष द्वारा भी संशोधन प्रस्ताव रखने के मामले प्रकाश में आये। उदाहरणार्थ – वर्ष 1957 में सत्तापक्ष के कुछ सदस्यों ने भी संशोधन दिये इस पर प्रतिपक्ष द्वारा प्वाइंट आफ आर्डर का प्रश्न उठाया गया कि दूसरे सदस्य, जिनका एजेन्डे में नाम नही है,कोबोलने का अवसर दिया जा रहा है। श्री अधिष्ठाता ने कहा –"कि जितने संशोधन प्रतिपक्ष से आये है, उनको पेश करने की अनुमति दे दी गयी

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 214, 29 जुलाई, 1961 पृ0 364
2. –तदैव– खण्ड 218, पृ0 367, दि0 8 फरवरी, 1961
3. –तदैव– खण्ड 238 पृ0 306, 6 फरवरी, 1963

और अब मैं देखता हूँ कि कुछ कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने भी संशोधन दिये; अगर यह संशोधन की प्रथा चालू रही तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी वाद विवाद करने में। इस वास्ते मैं इन संशोधनों को पेश करने की अनुमति नहीं देता । मगर जिन सदस्यों ने संशोधन किये है उनको बोलने का मौका मिलेगा।" इस प्रकार उन्होने संशोधन प्रस्तुत करने के विपक्ष के अधिकार को सुरक्षित रखा ।

प्रतिपक्ष के अधिकांश सदस्यों ने अभिभाषण को समय-समय पर शासन व सत्तारूढ़ दल की नीतियों का प्रशंशापत्र बताया । उदाहरण के लिये वर्ष 1957 में श्री चन्द्रजीत यादव (भारतीय साम्यवादी दल) ने कहा कि "मुझे अभिभाषण ऐसा लगा जैसे राज्याल सरकार को अभिनन्दन पत्र समर्पित कर रहे हों।"[1] एक अन्य प्रतिपक्षी सदस्य आचार्य दीपंकर ने कहा – "इस सदन को राज्यपाल के इस अभिभाषणपरकतई धन्यवाद नही देना चाहिये क्यों कि इसके द्वारा हमें गुमराह किया गया है। यह बहुत भ्रम और विभ्रमों से भरा हुआ है।"[2] वर्ष 1962 में नेता विरोध दल श्री यादवेन्द्र दत्त ने कहा कि "अगर एक शब्द में कहा जाये तो अनुचित नही होगा कि वह एक एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्टथीजिसमें कुछ पिछले कार्यकलापों का गुणगान था"।[3] वर्ष 1974 में नेता विरोधी दल श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने अपना संशोधन पेश करते हुये कहा कि "इस राजनैतिक समाज० व आर्थिक वायुमण्डल में जो यह अभिभाषण है वह बिलकुल सारहीन है, निर्जीव है, और उस परिपेक्ष्य में कोई दिशा प्रदान नही करता"।[4] वर्ष 1980 में श्री मोहन सिंह ने कहा कि "महामहिम राज्यपाल का अभिभाषण इस प्रदेश की अफसरशाही, समान्तशाही तथा गरीब जनता के साथ षड़यन्त्र का काला चिठ्ठा है और उसकी निन्दा होनी चाहिए[5]" वर्ष 1987 में श्रीमती गौरी देवी ने कहा कि मान्यवर राज्यपाल का अभिभाषण शासन की नीतियों को दृष्टिगत करता है और यह शासन की एक निधि होता है । लेकिन उन्होंने अभिभाषण से जनता को गुमराह किया है और बहकावा दिया है।[6]

सामान्य रूप से राज्यपाल का अभिभाषण सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों का आलेख होता है। इसलिये ब्रिटिश संसदीय परम्परानुसार अभिभाषण पर उपस्थित धन्यवाद प्रस्ताव सरकार के प्रति विश्वास प्रस्ताव के रूप में होता है और यदि यह विधानसभा द्वारा अस्वीकृत हो जाये अथवा संशोधित रूप में पारित हो जाये तो उसे सरकार के प्रति सदन का अविश्वास माना जाता है। सम्भवतः इसी कारण उ0प्र0 विधानसभा में राज्यपाल

---

1. उ0प्र0 की विधानसभा की कार्यवाही खण्ड 182, 16 अप्रैल 1957, पृ0 164
2. –तदैव– खण्ड 182 पृ0 104, 15 अप्रैल 1957.
5. –तदैव– खण्ड 344, पृ0 180
3. –तदैव–खण्ड 306 पृ029, 27 मार्च 1962
4. –तदैव– खण्ड 306 पृ0 334 21 मार्च 1974
6. –तदैव– खण्ड 364 पृ0 954

के अभिभाषण के लिये प्रस्तुत लगभग प्रत्येक धन्यवाद प्रस्ताव में विपक्षी सदस्यों द्वारा संशोधन उपस्थित किये गये किन्तुदोअवसरों वर्ष 1967 तथा वर्ष 1971 छोड़कर यह संशोधन सदैव अस्वीकृत कर दिये गये ।

राज्यपाल के अभिभाषण के लिये उ0प्र0 विधानसभा में प्रस्तुत धन्यवाद प्रस्ताव में प्रथम बार संशोधन 13 अप्रैल 1967 को (चतुर्थ विधासभा) स्वीकृत हुआ । यह संशोधन तत्कालीन नेता विरोधी दल श्री रामचन्द्र विकल की ओर से आया था किन्तु सदन में उसे उनके द्वारा अधिकृत सदस्य श्री झारखण्डे राय द्वारा प्रस्तुत किया गया । उस पर मत विभाजन हुआ, संशोधन पक्ष में 215 तथा विपक्ष में 198 मतानुसार स्वीकृत हुआ।[1]

इस संशोधन के स्वीकार हो जाने के बाद तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने अपने मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र की घोषणा की तथा अध्यक्ष से सदन के शेष कार्य को स्थगित करने का परामर्श किया अतः सदन स्थगित हो गया।[2] इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि श्री चन्द्रभानु गुप्त की सरकार गिरने का प्रमुख कारण उनके मन्त्रिमण्डलीय सहयोगी चरणसिंह द्वारा अपने 17 साथियों के साथ जन कांग्रेस बना लीगईतथा विभाजन के पूर्व विपक्ष में सम्मिलित हो गये ।

इस बर संशोधन 30 मार्च 1971 को पंचम विधान सभा में श्री त्रिभुवन नारायण सिंह की संविद सरकार के शासनकालन में वर्ष 1971 के प्रारम्भिक सत्र में दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में राज्यपाल द्वारा दिये गये अभिभाषण पर उपस्थित धन्यवाद प्रस्ताव में स्वीकृत हुआ। यह संशोधन कांग्रेस (ई) के श्री नारायण दत्त तिवारी द्वारा उपस्थित किया गया। पहले तो प्रस्ताव ध्वनिमत द्वारा अस्वीकृत होता प्रतीत हुआ किन्तु बाद में विपक्ष के विरोध पर लाबी में मतदान हुआ । जिसमें पक्ष व विपक्ष में क्रमशः 229 व 184 मत आये, फलतः श्री तिवारी का संशोधन सदन द्वारा स्वीकार हो गया।[3] विभाजन का परिणाम घोषित होने के बाद तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री टी0एन0 सिंह द्वारा सदन में त्याग पत्र देने की घोषणा की गयी और तदुपरान्त सदन अनिश्चितकाल के लिये स्थगित हो गया ।[4]

---

1. उ0प्र0 की विधानसभा की कार्यवाही खण्ड 271 पृ0 203–75;441–98
2. –तदैव– खण्ड 271 पृ0 498–500
3. –तदैव– खण्ड 288 पृ0 537–542
4. –तदैव– खण्उ 288 पृ0 544

स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तावित संशोधन प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने से विपक्ष प्रभावी रूप में उभर कर सामने आया व संसदीय माध्यम से लोकतांत्रिक मूल्यों व परम्पराओंकी रक्षा कर विपक्ष ने अपने संवैधानिक दायित्व को पूरा किया वही दूसरी ओर विभिन्न संशोधन प्रस्तावों के द्वारा सरकारी नीतियों की आलोचना कर सरकार पर दवाव शक्ति के रूप में कार्य कियाव सरकार का ध्यान विभिन्न समस्याओं को आकृष्ट करने में सफल रहा ।

(घ) राज्यपाल के कार्यो पर विचार करने की परिसीमायें :

भारत में संघात्मक सरकार की व्यवस्था है जिसमें केन्द्र की भाँति राज्य की कार्य पालिका शक्ति का प्रधान राज्यपाल होता है। संविधान परिषद के भाषणों में साधारणतया इस बात को उचित समझा गया है कि राज्यपाल को संसदात्मक व्यवस्था के ढाँचे के अन्तर्गत ही कार्य करना चाहिये। डा0 अम्बेदकर का मानना था कि " राज्यपाल अपने आपमें कोई कार्य नही करता" ।[1] के0एम0 मुन्शी की यह मान्यता थी कि " राज्यपाल केवल नामधारी दर्शक के रूप में नही रह सकता" लेकिन व यह भी स्वीकार करते थे कि "राज्यपाल सदैव मत्रियों की सलाह पर कार्य करेगा"।[2] दुर्गादास बसु ने भी धारा 163 के विषय में अपनी टिप्पणी करते हुये लिखा है कि "राज्यपाल की स्वविवेकीय शक्तियों का उल्लेख मात्र लिखने की असंयतता है"।[3] प्रो0 एलेक्जेन्डो विज का कहना है कि कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर राज्यपाल का स्थान नाम मात्र का है और पूर्णतया मत्रिमण्डल पर निर्भर करता है ।[4] इसी प्रकार एलेन ग्लेडहिल ने राज्यपाल को नामधारी अस्तित्व वाला बताया है।[5]

वास्तव में स्वतंत्रता के प्रारम्भिक वर्षो में यह धारणा ठीक थी क्यों कि केन्द्र व राज्य दोनों में एक दल का एकाधिकार रहा तथा प्रतिपक्ष अधिक प्रभावी नहीं रहा अतः राज्यपाल को स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग का उतना अवसर प्राप्त था, न ही प्रतिपक्ष द्वारा राज्यपाल पर टीका टिप्पणी करने की जागरूकता, और यह माना जाता रहा

---

1. संविधान सभा वाद विवाद खण्ड 8 पृ0 546
2. संविधान सभा वाद विवाद खण्ड 8 पृ0 542-43
3. दुर्गा दास बसु "कमेन्ट्री आन दि कान्स्टीटयूशन आफ इण्डिया" ए0सी0 सरकार कलकत्ता 1952 खण्ड 2 पृ0 475
4. सी एलेक्जेन्डो बिज "कान्स्टीटयूशनल डेवलपमेन्ट इन इण्डिया" आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस बम्बई 1952 पृ0149-55
5. एलेनग्लेडहिल "दि रिपब्लिक आफ इण्डिया" स्टीवेन्स लन्दन, पृ0 125-27.

कि राज्यपाल राज्य का मात्र संवैधानिक मुखिया है और केवल कुछ ही परिस्थितियों में वह अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। किन्तु वर्ष 1967 के आम चुनावों के पश्चात् राज्यपाल का राज्य शासन व संवैधानिक व्यवस्था के संचालन में योगदान बढ़ गया, परिषाम स्वरूप नयी स्थिति उत्पन्न हुयी। अतः कई महत्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आये जो कि राज्यपाल की अभिभाषण देने के अधिकार, उसके द्वारा विधानसभा का आह्वान तथा विघटन तथा अध्यादेश जारी करने की शक्ति, मुख्यमंत्री की नियुक्ति, राष्ट्रपति शासन से सम्बन्धित रहे । प्रश्न यह है कि क्या राज्यपाल के इन कार्यो को चुनौती दी जा सकती है । विवेचन निम्नवत है :-

1. राज्यपाल का प्रथम कार्य विधानसभा का आह्वान होता है। इस सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 174(1) में कहा गया है कि राज्यपाल समय समय पर राज्य के विधानमण्डल के सदन या प्रत्येक सदन को ऐसे समय तथा स्थान पर, जैसा कि वह उचित समझे, अधिवेशन के लिये आहूत करेगा । किन्तु उसके एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक में 6 माह का अन्तर न होगा ।

सामान्यतया सत्रावसान या विघटन के बाद राज्यपाल विधानसभा का अधिवेशन मुख्यमंत्री के परामर्श से नियत तिथि को आहूत करते हैं ।[1] किन्तु व्यवहार में यह देखने में आया कि वह संविधान द्वारा इसके लिये बाध्य नही है। अतः इस विवाद की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि राज्यपाल की मुख्यमंत्री द्वारा सुझायी तिथि स्वीकार न हो – ऐसा विवाद पंचम विधान सभा के कार्यकाल में उत्पन्न हुआ जब उ0प्र0 में श्री चरण सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस (ई) व मार्क्सवादी क्रान्तिदल की साझा सरकार सत्तारूढ़ थी । राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री के परामर्श से विधानसभा का अधिवेशन बुलाने की तिथि 6 अक्टूबर 1970 निर्धारित की गयी थी। इसी बीच सरकार के साझा दलों में मतभेद इतना तीव्र हो गया कि कांग्रेस (ई) ने सरकार से पृथक होने की घोषणा कर राज्यपाल से मुख्यमंत्री का त्याग पत्र माँगने का अनुरोध किया । राज्यपाल ने मुख्यमंत्री से 28 सितम्बर 1970 की शाम तक त्यागपत्र देने का आग्रह किया किन्तु मुख्यमंत्री ने त्याग पत्र न देकर राज्यपाल से 30 सितम्बर अथवा एक अक्टूबर को विधानसभा का सामना करने का अवसर प्रदान करने का निवेदन किया

---

1. उ0प्र0 विधानसभा प्रक्रिया नियमावली नियम 4 (2)

जिसे अस्वीकार कर राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति से प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू करने तथा विधान सभा को निलम्बित करने की सिफारिश की गयी ।[1]

2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 85(2) (बी) के अनुसार राष्ट्रपति को लोकसभा तथा अनुच्छेद 174(2) (बी) द्वारा राज्यपाल को राज्य विधान सभा को भंग करने का अधिकार प्रदान किया गया है। सामान्यरूप से लोकसभा व राज्य विधान सभा दो दशाओं में भंग होती है– प्रथमतः अपनी कार्य विधि के समाप्त होने पर। द्वितीयतः राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा उन्हें उपर्युक्त अनुच्छेद दो के अन्तर्गत क्रमशः केन्द्र अथवा सम्बन्धित राज्य में संविधान के अनुसार एक स्थायी सरकार के निर्माण की सम्भावनायें समाप्त होने पर अर्थात राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न होने पर उनके कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व ही भंग कर दिया जाये । वर्ष 1977 में दिये गये सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किसी राज्य की विधानसभा को उस राज्य के राज्यपाल की, वहाँ के संविधान तंग की विफलता सम्बन्धी रिपोर्ट प्राप्त होने अथवा न होने की दशा में, स्वविवेकानुसार भंग किया जा सकता है।[3]

साधारणतया राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 174 के अधीन विधानसभा का विघटन मुख्यमंत्री की सलाह पर किया जाता है किन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या राज्यपाल सदैव इस सम्वन्ध में मुख्यमंत्री की सलाह मानने के लिये वाध्य है ? यदि अनुच्छेद 174(2) (बी) का अध्ययन किया जाये तो प्रतिध्वनित होता है कि विधानसभा का विघटन राज्यपाल की एक स्वविवेक शक्ति है[2] किन्तु राज्यपाल द्वारा इस शक्ति का प्रयोग बहुत ही विवादास्पद विषय रहा है:–

भारतीय राज्यों में इस प्रश्न पर गम्भीरतम विवाद प्रमुख रूप से 1967 के निर्वाचन के पश्चात उत्पन्न हुआ क्यों कि इस चुनाव के परिणाम ने कई राज्यों में कांग्रेस के एक दलीय प्रभुत्व को समाप्त कर दिया तथा विभिन्न दलों की मिली जुली संविद सरकारों के नवीन प्रयोग का आरम्भ हुआ।[4] भारतीय राजनीति में प्रतिपक्षी दलों द्वारा प्रस्तुत यह प्रयोग वैचारिक असमानता व नीतिगत असामंजस्य के कारण पूर्णतया असफल रहा तथा दल बदल की राजनीतिको प्रोत्साहन मिला जिससे राज्य में अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गयी । ऐसी परिस्थिति में सम्बन्धित राज्यों के राज्यपालों के समक्ष अनुच्छेद 174(2)

---

4. विवरण अगले पृष्ठ पर– A.

1. इकबाल नारायण (सम्पादक) 'भारतीय सरकार एवं राजनीति" खण्ड 1 लेख-"मुख्यमंत्री का पद: उ0प्र0 के राज्यपाल का राष्ट्रपति के नाम पत्र, पृ0274–83

3. दि पायोनियर, 30 अप्रैल 1977

2. पाइली एम0वी0, दि कान्स्टीटयूशनल गर्वनमेन्अ इन इण्डिया" पृ0 522

(बी) द्वारा शक्ति के स्वविवेक प्रयोग के अवसरों का उत्पन्न होना स्वाभाविक था किन्तु इस शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में कोई सामान संवैधानिक परम्परा न होने के कारण उनमें समरूपता का अभाव रहा । राज्यों में राज्यपालों का आचरण विभिन्न रूप का रहा तथा ऐसा प्रतीत होने लगा कि राज्यपाल अपनी संवैधानिक स्थिति को सुदृढ़ बना रहे है अतः विधि विशेषज्ञों व भारतीय संविधान के अध्येताओं के सम्मुख राज्यपाल पद की भूमिका विशिष्टीकरण का महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुआ–

राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा संसद भंग करने के सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्य विधि शास्त्रियों में मत भिन्नता है – प्रो0 एच0जे0 लास्की का विचार है कि राजा का इस विषय में स्वविवेकनुसार निर्णय का अधिकार नही है– उसे सार्वजनिक दृष्टि में अपने मंत्रियों की सलाह माननी चाहिए[1]। दूसरी ओर प्रो0 कीथ का मत है कि राजा को जनता के हित में संसद भंग करने के मामले में स्वविवेक प्राप्त है।[2] विधि विशेषज्ञों की इस मत विभिन्नता के बावजूद इंग्लैण्ड के संसदीय इतिहास के गत 100 वर्षो में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता हैं जब राजा या रानी द्वारा संसद भंग के प्रश्न पर प्रधानमंत्री की मंत्रणा अस्वीकृत हुयी हो या कोई विवाद उत्पन्न हुआ हो ।

भारत की संविधान निर्मात्री सभा में भी राष्ट्रपति व राज्यपाल की इस शक्ति पर विस्तार पूर्वक चर्चा हुयी थी – भारतीय संविधान के मुख्य प्रणेता डा0 भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि सामान्यतया लोकसभा प्रधानमंत्री की सलाह पर भंग की जा सकती है किन्तु वह आवश्यक रूप से ऐसे प्रधानमंत्री की सलाह मानने के लिये वाध्य नही होंगे जो ऐसी परिस्थिति में लोकसभा भंग करने की सलाह दे रहा हो जब विरोधी नेता सरकार निर्माण हेतु प्रस्तुत हो और वह बिना सदन को भंग किये प्रशासकीय दायित्यों के निर्वहन में सक्षम हो।[3]

जस्टिस महाजन का मानना है कि राज्यपाल के स्वविवेकीय अधिकार पर किसी प्रकार का संवैधानिक प्रतिबन्ध नही है तथा यदि विधानसभा में किसी एक दल का बहुमत नही है तो वह जब से बड़ी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करे तथा तद्पश्चात् वह अपनी शक्ति का परीक्षण विधान सभा के सम्मुख करें।[4]

A. चतुर्थ आम चुनाव के परिणाम – विहार, मद्रास, केरल, उड़ीसा, पंजाब, पश्चिमी बंगाल हरियाणा, उ0प्र0 व मध्य प्रदेश में संविद सरकारें गठित हुयी ।

1. लास्की एच0जे0 "पार्लियामेन्ट्री गर्वनमेन्ट इन इग्लैंण्ड" पृ0 430

3. संविधान निर्मात्री सभा की कार्यवाही, खण्ड 8 पृ0 107

2. कीथ ए0बी0 "किंग एन्ड दि इम्पीरियल क्राउन" पृ0 140

4. दि टाइम्स आफ इण्डिया, सितम्बर 4, 1968.

इसी विषय पर प्रो0 मार्कसिविस का कथन काफी न्याय संगत है कि बहुदलीय पद्धति वाले एक विभाजित सदन में एक अल्पसंख्यक सरकार, पराजित अथवा अपराजित, सदन भंग करने की सलाह देने की अधिकारी नही है। यदि कोई वैकल्पिक सरकार उसी सदन में कार्य करने हेतु सक्षम हो।[1]

जस्टिस गजेन्द्र गड़कर की राय है कि बहुमत के नेतृत्व के स्थान पर विधानसभा में बहुमत होना अति आवश्यक है। यह कथन इस दिशा में और भी महत्वपूर्ण है कि यदि शासक दल आम चुनाव में बहुमत प्राप्त नही कर पाता और विपक्षी दल सरकार बनाने की स्थिति में सक्षम हो तो उसके नेता को राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिये ।[2]

श्री सीतलवाड़ का कथन है कि राज्यपाल को साधारतया उस व्यक्ति को मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिये जिसे कि बहुमत (चाहे वह विधानसभा में अन्य व्यक्तियों तथा दलों की सहायता से प्राप्त हो) हो। उनके अनुसार यह बात भी अधिक महत्वपूर्ण नही है कि वह एक दल अथवा कुछ दलों का समूह जिनका कि निर्माण चाहे चुनाव के पहले अथवा चुनाव के बाद में हुआ हो । लेकिन राज्यपाल को अपने विवेक के प्रयोग में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि वह ऐसे नेता को निमंत्रित करे जो सरकार चलाने में समर्थ हो ।[3]

विधानसभा के विघटन के सम्बन्ध में राज्यपाल के संविधानिक दायित्व के उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ उ0प्र0 विधानसभा में अध्ययनाधीन काल में राज्यपाल द्वारा निभायी गयी भूमिका का विवेचन निम्नवत् है –

प्रथम, द्वितीय व तृतीय विधान सभा में ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हुयी जब राज्यपाल द्वारा इस सन्दर्भ में अपने स्व विवेक के प्रयोग का अवसर आया हो या मुख्यमंत्री द्वारा विधानसभा भंग करने हेतु सलाह दी गयी हो ।

---

3. दि टाइम्स आफ इण्डिया दिसम्बर 3, 1968.
1. मार्कसिनिस वी0एस0-"दि थ्योरी एन्ड प्रैक्टिस आफ रिब्योल्यूशन आफ पार्लियामेन्ट" पृ0 687
2. दि हिन्दुस्थान टाइम्स, नवम्बर 23, 1968

सर्व प्रथम चतुर्थ विधानसभा में संयुक्त विधायक दल के मुख्यमंत्री श्री चौधरी चरण सिंह की सरकार 'संविद' के विभिन्न घटकों के पारस्परिक मतभेदों के कारण 17 फरवरी 1968 को अल्पमत मे आ गयी । मुख्यमंत्री ने 17 फरवरी 1968 को अपना त्याग पत्र राज्यपाल को देकर उन्हें विधानसभा भंग कर मध्यावधि चुनाव कराने की सलाह दी परन्तु राज्यपाल ने अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट भेजकर उनसे वैकल्पिक सरकार की प्रत्याशा में विधान सभा को निलम्बित कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की,फलत्:25 फरवरी 1968 को राष्ट्रपतिकेएक अधि घोषणा द्वारा प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया और विधानसभा निलम्बित हो गयी, किन्तु कुछ समयवाद राजनीतिक परिस्थितियों की निरन्तर अस्थिरता व अनिश्चितता के चलते नयी सरकार बनने की सम्भावनायें क्षीण होती देखकर राज्यपाल की संस्तुति पर 15 अप्रैल 1968 को विधान सभा भंग कर दी गयी ।[1]

प्रदेश में दुबारा राजनीतिक गतिरोध 1970 में उत्पन्न हुआ जब चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व में "भारतीय क्रान्ति दल" व "कांग्रेस (ई)" की साझा सरकार सत्तारूढ़ थी । इस साझा सरकार के तीव्र मतभेदों के कारण 24 सितम्बर 1970 को मुख्यमंत्री ने 13 कांग्रेसी मंत्रियों व 1 भा0 क्रान्तिदल के मंत्री से त्याग पत्र देने का अनुरोध किया तथा उनके द्वारा त्यागपत्र न देने पर राज्यपाल द्वारा उन्हें बर्खास्त किये जाने की सलाह दी। उसी दिन कांग्रेस के नेता पंडित कमलापति त्रिपाठी ने राज्यपाल को पत्र लिखकर उन्हें साझा सरकार से अपने दल का समर्थन वापस लेने की सूचना दी और साथ ही यह अनुरोध किया कि चूँकि चरण सिंह सरकार कांग्रेस (ई) के समर्थन के अभाव में अल्पमत में आ गयी है अतः उनसे त्याग पत्र देने को कहा जाय।[2]

प्रदेश विधान सभा 6 अक्टूबर 1970 को आहूत थी, मुख्यमंत्री को यह आशा थी कि सदन का अधिवेशन आरम्भ होने तक उन्हें अपेक्षित बहुमत प्राप्त हो जायेगा किन्तु एटार्नी जनरल की रायपर राज्यपाल ने मुख्यमंत्री से 28 सितम्बर की शाम तक त्यागपत्र प्रस्तुत करने को कहा। मुख्यमंत्री ने त्याग पत्र न देकर राज्यपाल से 6 अक्टूबर से पूर्व 30 सितम्बर या 1 अक्टूबर को विधान सभा का सामना करने के लिये बैठक आहूत करने की माँग की किन्तु राज्यपाल ने इसे अस्वीकार कर दिया तथा अनुच्छेद

---

1. "उ0प्र0 लेजिस्लेचर, ए हिस्टारिकल स्केच" पृ0 46 उ0प्र0 विधानसभा सचिवालय प्रकाशन लखनऊ
2. "उ० प्र० विधान सभा के 32 वर्ष" - (सम्पादक . भालचन्द्र शुक्ला) - "उ० प्र० में साझा सरकारें" पृष्ठ 36-37

356 के अधीन राष्ट्रपति को प्रेषित अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की सिफारिश की जिसके आधार पर 2 अक्टूबर 1970 से एक राष्ट्रपतीय अधिघोषणा द्वारा उ0प्र0 में विधानसभा . निलम्बित हो गयी व राष्ट्रपति शासन लागू हो गया । [1] यह राष्ट्रपति शासन और विधानसभा का निलम्बन 18 अक्टूबर 1970 को श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के नेतृत्व में संयुक्त विधायक दल मंत्रिमण्डल के निर्माण के साथ समाप्त हुआ ।[2]

पंचम विधान सभा के कार्यकाल में एक बार पुनः 12 जून 1973 को पी0ए0सी0 विद्रोह के कारण तत्कालीन मुख्यमंत्री कमलापति त्रिपाठी ने त्यागपत्र दे दिया और राज्यपाल की रिपोर्ट पर अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया तथा विधानसभा निलम्बित हो गयी ।

यह निलम्बन147 दिन रहा तथा 8 नवम्बर 1973 को पंडित कमलापति त्रिपाठी के स्थान पर श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा के नेतृत्व में कांग्रेस मंत्रिमण्डल का गठन हुआ।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा 3 बार निलम्बित हुयी व राष्ट्रपति शासन लागू हुआ तथा केवल एक बार लगभग 2 माह के निलम्वन के बाद चतुर्थ विधानसभा विघटित हुयी । विधानसभा के विघटन के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि राज्यपाल के इस कार्य में राज्यपाल ने स्वयं अनुच्छेद 174 का प्रयोग नही किया वरन् अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति से सिफारिश की । अतः इसके पक्ष व विपक्ष में कोई टिप्पणी समीचीन नही है क्यों कि यह राज्यपाल का स्वविवेकीय अधिकार था जिसका उसने पालन किया ।

3. राज्यपाल का एक अन्य कृत्य विधानसभा के समक्ष अभिभाषण है जिस पर समय समय पर प्रतिपक्ष द्वारा प्रश्न उपस्थित किये जाते रहे है :-

(क) भारत के संविधान के अनुच्छेद 176 उप-अनुच्छेद के अर्न्तगत राज्यपाल विधान मण्डल के दोनों सदनों के सदस्यों को सामूहिक रूप से सम्बोधित करता है राज्यपाल का अभिभाषण न तो विधानसभा की न ही विधान परिषद की बैठक है। इस प्रकार की संयुक्त उपस्थिति को राज्य के विधान मण्डल के दोनों सदनों

---

1. नारायण इकबाल (सम्पादक) 'भारतीय शासन एवं राजनीतिक' पृ0274-83
2. "उ0प्र0 लेजिस्लेचर - ए हिस्टारिकल स्केच" पृ0 46, उ0प्र0 विधानसभा सचिवालय प्रकाशन, लखनऊ ।
3. - तदैव - पृष्ठ 49

की संयुक्त बैठक नही कहा जा सकता । इस प्रकार के अभिभाषण में विधानसभा/ विधानपरिषद का अध्यक्ष अध्यक्षता नही करते । वास्तव में यह राज्यपाल द्वारा नियंत्रित कार्यवाही है।[1]

राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान अगर कोई भी सदस्य शोरगुल करता है तो राज्यपाल उस सदस्य को वहाँ से हट जाने के लिये निर्देशित कर सकते है तथा इसके इस कृत्य को किसी न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकती है।[2] उ0प्र0 विधानसभा में इसी सन्दर्भ में औचित्य के प्रश्न समय समय पर उठाये जाते रहे है – उदाहरणार्थ – दिनांक 27–1–81 को विपक्षी सदस्यों द्वारा निरन्तर बहिर्गमन व अवरोध किये जाने पर राज्यपाल ने उन्हें सदन से बाहर किये जाने का निर्देश दिया – इस पर विपक्ष के श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता ने औचित्य का प्रश्न उठाया – श्री अध्यक्ष ने इस प्रश्न को अग्राह्य करते हुये कहा कि – संविधान के अनुच्छेद 176 के अनुसार "श्री राज्यपाल के लिये यह आवश्यक है कि वे प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के आरम्भ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में विधानसभा के समवेत सदनों को सम्बोधित करेगें तथा विधानमण्डल को उसके आह्वान का कारण बतायेंगे" इस प्रकार विधानमण्डल के एक अंग के रूप में श्री राज्यपाल के लिये दोनों सदनों को सम्बोधित किया जाना अनिवार्य सवैधानिक कृत्य है जिसकी पूर्ति के बाद ही सदन का सत्र प्रारम्भ होता है। इसी हेतु श्री राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 174 के अर्न्तगत सदनों को आहूत करते है और अनुच्छेद 176 के अर्न्तगत ऐसे अभिभाषण द्वारा उन्हें अपना सत्र प्रारम्भ करने से पूर्व आहूत करने का कारण भी बताते है अतः इस अवसर पर दोनों सदनों का एक साथ समवेत होना किसी एक सदन की बैठक या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक नही कही जा सकती है परन्तु यह तीसरी स्थिति होती है जिसमें दोनों सदनों के सदस्य एक संवैधानिक अनिवार्यता की पूर्ति के लिये एकत्र होते है किन्तु ऐसे सदस्य समूह की अध्यक्षता किसके द्वारा की जाये जो इसका नियंत्रण करे, इसका उल्लेख संविधान में अन्यत्र नही मिलता । बसु ने अपनी पुस्तक "कमेन्ट्री आन रिकान्सटीटयूशन आफ इण्डिया" के वाल्यूम 2 में अनुच्छेद 87 पर जो अनुच्छेद 176 के अनुरूप है अपनी टिप्पणी देते हुये इस बात को स्पष्ट करते हुये कहा है –

---

1. पीठासीन अधिकारियों के श्रीनगर सम्मेलन के उद्धृत (गवर्नर्स एड्रेस) द्वारा भालचन्द्र शुक्ल, संसदीय दीपिका, 1988, जनवरी – मार्च पृ0 81
2. "योगेन्द्रनाथ बनाम राज्य सरकार राजस्थान" A.I.R 1966 राजस्थान पृ.123.

"यह सही अर्थो मे दोनों सदनों की संयुक्त बैठक नही है क्यों कि सत्र तभी आरम्भ होता है जब राष्ट्रपति ने अपना सम्बोधन कर दिया हो... राष्ट्रपति द्वारा इस सम्बोधित की जाने वाली सभा में शान्ति व व्यवस्था भंग को अपने अंगरक्षकों द्वारा रोकने का अधिकारी है।"

यह स्थिति बचायी जा सकती है यदि सभी दलों के सदस्य यह याद रखें कि राष्ट्रपति व राज्यपाल राष्ट्र या राज्य का प्रमुख होता है और उनके द्वारा इस प्रकार के सम्बोधन के अवसर पर किसी प्रकार का अशोभनीय कथन या अन्य हिंसात्मक आचरण राष्ट्र के लिये अपमान है ।

लोकसभा में इन्ही मामलों पर गठित गुरुदयाल सिंह ढिल्लों ने 1971 में समिति में विचार व्यक्त करते हुये इस विषय पर कहा था– कि इस विषय पर अन्तिम रूप से पुनर्विचार होना चाहिये कि "राष्ट्रपति या राज्यपाल क्या कर सकते है? अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति में से किसी को प्राधिकार नहीं है। क्या हम इस प्रकार की अव्यवस्था की दशा देखते रहे और किंकर्तव्यविमूढ़ बने रहें ? राष्ट्रपति धैर्य रखते है किन्तु उसकी एक सीमा है ।"

वर्ष 1971 की समिति ने विचारोपरान्त वर्ष 1972 में अपना प्रतिवेदन सदन को प्रस्तुत किया था और इस सम्बन्ध में संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था के लिये संशोधन की सिफारिश की कि ऐसे अवसरों पर यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल अध्यक्षता करें। समिति ने कुछ मार्ग दर्शक सिद्धान्तों की भी सिफारिश की थी उसमें से मुख्यरूप से निम्नलिखित हैं :–

1. राष्ट्रपति कार्यवाही का संचालन करता है। अपने अभिभाषण के अवसर पर व्यवस्था बनाये रखने के लिये वह पूरी तरह सक्षम है । यदि कोई सदस्य अथवा कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान या बाधा उत्पन्न करता हैं अथवा किसी अन्य ढंग से उस अवसर की गरिमा भंग करता है । तो राष्ट्रपति ऐसे निर्देश दे सकता हे जो उस अवसर की व्यवस्था, गम्भीरता व गरिमा बनाये रखने के लिये आवश्यक समझे।

2. यदि कोई सदस्य अथवा कोई अन्य व्यक्ति सदन में राष्ट्रपति की उपस्थिति में अभिभाषण के पूर्ण, अभिभाषण के दौरान अथवा उसके पश्चात् संसद के किसी सदन अथवा संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण में भाषण अथवा व्यवस्था के प्रश्न पर बर्हिगमन अथवा किसी अन्य ढंग से व्यवधान, बाधा अथवा अनादर सम्बद्व सदस्य अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा

किया गया अत्यन्त अनुचित आचरण समझा जायेगा और इसे सदन का अवमान समझा जायेगा जिस पर बाद में किसी सदस्य द्वारा पेश किये प्रस्ताव के अनुसार कार्यवाही की जायेगी ।

कॉल एवं शंकधर की पुस्तक 'प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ पार्लियामेन्ट' के अंग्रेजी (तृतीय संस्करण के खण्ड (1) के पृष्ठ 149 पर केन्द्रीय विधानसभा के अध्यक्ष श्री अब्दुल रहीम का निर्णय है जिसमें उन्होंने 1936 में सर फैडरिक व्हाइट के निर्णयका उल्लेख करते हुये उसे समर्थित किया – कि सेन्ट्रल हाल में जहाँ राष्ट्रपति एक साथ समवेत दानों सदनों के सदस्यों को सम्बोधित करते है वहाँ एक वार्ड आफीसर मौजूद रहता है। और राष्ट्रपति यदि आवश्यक हो उसकी सेवाओं का उपभोग करके, उन सदस्यों को बल पूर्वक हटाने के लिये कह सकते है जिनको वे नामित करें ।

अतः 27.1.81 को हुयी घटना के सन्दर्भ में मैं इस विवाद में न पड़ते हुये कि कोई ऐसे आदेश राज्यपाल द्वारा हुये है या नहीं, यहाँ इस बात का उल्लेख करना उचित समझूंगा कि राज्यपाल के आदेशानुसार उन सदस्यों को जो बहिर्गमन की घोषणा के बाद भी सदन में रूककर नारेबाजी व व्यवधान कर रहे थे तो सभामण्डप में शान्ति व व्यवस्था के हित में उन्हें रोकना आवश्यक हो गया था ।

अतः मैं उर्पयुक्त तथ्यों व उदाहरणों तथा निर्णयों को देखते हुये उठाये गये औचित्य के प्रश्न को अग्राह्य करता हूँ साथ ही सदन की गरिमा तथा प्रतिष्ठा को देखते हुये तथा इस बात को ध्यान में रखते हुये कि ऐसे अवसर पर राज्यपाल राज्य के प्रमुख ही नहीं वरन् विधानमण्डल के भी अभिन्न अंग है और जब वे अपने संवैधानिक कृत्यों का पालन करते है उस अवसर की गरिमा व महत्व के अनुकूल हमारा व्यवहार एवं आचरण का कोई प्रावधान न होना इस बात का द्योतक है कि संविधान हमसे ऐसे आचरण की अपेक्षा रखता है कि हम अपने आचरण एवं व्यवहार को स्वयं व्यवस्थित व नियंत्रित रखेंगे। यदि हम ऐसा नही करते तो हम दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये कि ऐसे अवसर पर श्री राज्यपाल कार्यवाही का नियंत्रण करेगे तथा शान्ति व व्यवस्था के लिए उचित आदेश दे सकेंगे जिसको मानना सदन के स्टाफ के लिए आवश्यक है। उसके विरूद्ध कोई बात प्रश्न सदन में नही उठाया जा सकता ।[1]

---

1. उ०प्र० विधानसभा कार्यवाही, खण्ड 348, अंक 7 पृ० 1010-11 फरवरी 5, 1981.

(ख) राज्यपाल के अभिभाषण पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी नहीं की जा सकती है ।[1] राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के समय राज्यपाल पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किये जा सकते हैं ।

(ग) राज्यपाल द्वारा लिखित अभिभाषण के अतिरिक्त अपनी तरफ से नहीं जोड़ा जाना चाहिये – प्रतिपक्ष द्वारा राज्यपाल द्वारा लिखित अभिभाषण के अतिरिक्त अपनी तरफ से बाते करने पर वैधानिक आपत्ति का प्रश्न उपस्थित किया गया । दिनांक 12 सितम्बर 1983 को श्री मोहन सिंह तथा कतिपय अन्य व्यक्तियों द्वारा महामहिम राज्यपाल के अभिभाषण पर औचित्य का प्रश्न श्री अध्यक्ष द्वारा सूचित किया गया कि महामहिम राज्यपाल ने राज्य विधानमण्डल के एक साथ समवेत दोनों सदनों को दिनांक 15 जनवरी 1982 को 11.00 बजे सम्बोधित किया था व श्री राज्यपाल ने सम्बोधन के दौरान कतिपय अन्य बातें भी कहीं थी ।इन्हीं अतिरिक्त बातों को लेकर औचित्य के प्रश्न को उपस्थित किया गया तथा अन्य वैधानिक शंकायें प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत की गयी :–

(अ) संविधान के अनुच्छेद 176 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते समय क्या राज्यपाल लिखित भाषण को पढ़ने के अतिरिक्त अपनी ओर से भी कुछ बातें उसमें जोड़ सकते हैं।

(ब) क्या यह सदन श्री राज्यपाल के लिखित अभिभाषण के अतिरिक्त अन्य कही बातों का संज्ञान लेकर उनपर चर्चा कर सकता है । श्री अध्यक्ष ने कहा कि ब्रिटिश प्रणाली के अनुसार सर आइवर जेनिंग्स ने कहा कि – "साम्राज्ञी का अभिभाषण मंत्रिपरिषद की नीतियों का अभिकथन हो जिसके लिये सोवरेन उत्तरदायी नहीं होता । ऐसा भाषण मंत्रिपरिषद के परामर्श का ही परिणाम है और मंत्रिपरिषद ही उसके लिये उत्तरदायी होता है "

जहाँ तक भारतीय संविधान का प्रश्न है उसके अनुच्छेद 175 (1) के अनुसार श्री राज्यपाल प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारम्भ में विधान मण्डल के एक साथ समवेत दोनों सदनों को सम्बोधित करते हैं और न्यायालयों के अनुसार यह एक अनिवार्यता है, इस अनिवार्यता के होते हुये भी ऐसे अवसर आये हैं कि राज्यपाल ने इतर कृत्य किये हैं – वर्ष 1969 में जब पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल ने अभिभाषण के दो पैरा, जिसमें स्वयं उनकी आलोचना की गई थी, को नहीं पढ़ा तो

---

1. योगेन्द्रनाथ बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 1967 राजस्थान पृ0 166

एक संवैधानिक विवाद उठ खडा हुआ था – विधि वेत्ताओं ने इस प्रश्न पर पक्ष व विपक्ष दोनों पर ही अपना अभिमत व्यक्त किया है–विद्वानों के एक गुट के अनुसार राज्यपाल का अभिभाषण गवर्नर्स एड्रेस न होकर गवर्नमेन्ट एड्रेस है अतः श्री राज्यपाल मंत्रिमण्डल द्वारा अभिरचित अभिभाषण में कोई रद्दोबदल नही कर सकते है किन्तु विद्वानों के दूसरे गुट का कहना है कि संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्यपाल को स्वविवेक से कुछ कार्य करने का अधिकार है और यह विवाद उठने पर कि कोई कृत्य विशेष श्री राज्यपाल के विवेकानुसार किया जाना चाहिये अथवा नही, अन्तिम विनिश्चय श्री राज्यपाल का ही होता है। क्यों कि ऐसे समय श्री राज्यपाल स्वयं ही पीठासीन अधिकारी होते है । वर्ष 1969 में पश्चिमी बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल ने दो पैरा नहीं पढ़े और उनका कृत्य विधि सम्मत माना गया तो उसी तर्क के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि राज्यपाल अपने अभिभाषण में अतिरिक्त शब्दावली जोड़ सकते है वशर्ते नीति सम्बन्धी वात न हो ।[1]

नीति सम्बन्धी इसी प्रकार का प्रश्न 29 जुलाई 1959 को उपस्थिति हुआ। 29 जुलाई 1959 को श्री मोती लाल अवस्थी ने राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव में प्रस्तुत संशोधन के लिये टिप्पपी की । श्री अध्यक्ष ने संशोधन के अंशों को अवैधानिक करार देते हुये कहा – जहाँ तक वैधानिकता का प्रश्न है, मैं यह बता देना चाहता हूँ कि श्री राज्यपाल का वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में अपने भाषण में जिक्र करना वैधानिक नही था और उस पर टीका करना, कि वह जो विदेशनीति है केन्द्रीय सरकार की या प्रधानमंत्री की, उससे हित हुआ या अनहित हुआ इस तरह का जिक्र करना या बहस सदन में छेड़ना मैं असंवैधानिक समझता हूँ और इस पर बहस का सदन को अधिकार नही है ।

यदि उन्होंने (श्री राज्यपाल ने) नेहरू जी के बारे में, उनकी नीति के बारे में जिक्र किया तो भी मैं अप्रासंगिक समझता हूँ। और वह वैधानिक दृष्टि से उसमें नही आ सकता है । लेकिन इस तरह का जिक्र अगर हो जाता है केन्द्रीय सरकार की नीति के बारे में; तो राज्यपाल के अभिभाषण के बीच में कोई भी राज्यपाल को टोक नही सकता । लेकिन इस अनुभव से सरकार ने यह महसूस कर लिया होगा कि अभिभाषण में अगर किसी अप्रासंगिक बात का जिक्र आ सकता है तो उस पर टीका करने का अधिकार इक्विटी की दृष्टि से हो सकता है, अगर यह सदन केवल इक्विटी का कोर्ट होता है तो प्रशंसा किसी विषय की, की गयी है तो आपको टीका करने का भी अधिकार है लेकिन

---

1. उ०प्र० विधान सभा अष्टम के वर्ष 1983 के द्वितीय सत्र 1 सितम्बर 1983 से 30 सितम्बर 1983 में कृत कार्यों का संक्षिप्त सिंहावलोकन, पृ० 39-41

चूंकि मैं संविधान से बंधा हूँ और संविधान सर्वश्रेष्ठ है तो इस कारण मैं इजाजत नही दे सकता और उसके सामने इक्विटी का सिद्धान्त नही चल सकता है। यहाँ की सरकार को जिस विषय पर बहस करने का अधिकार नहीं है उस पर न कोई प्रशंसा कर सकता है और न उसके सम्बन्ध में कोई आक्षेप ही किया जा सकता है । आगे अभिभाषण तैयार करते समय सरकार को यह ध्यान रखना चाहिये कि अगर उसके द्वारा किसी बात की प्रशंसा की गयी है तो सदस्य गण भी उसकी टीका का प्रयत्न करेगें । इस लिये ऐसी बात भविष्य में न आवें तो अच्छा है।[1]

(घ) क्या गवर्नर अपना अभिभाषण किसी से पढ़वा सकते है? – यह प्रश्न विपक्ष द्वारा समय समय पर उठाया गया व राज्यपाल द्वारा दूसरे से अभिभाषण पढ़वाये जाने पर औचित्य का प्रश्न उठाया – उ0प्र0 विधानसभा में 19 मार्च 1974; 1 फरवरी 1983 तथा 13 फरवरी 1984 को राज्यपाल महोदय ने अपने अभिभाषण को स्वयं न पढ़कर दूसरे से (अध्यक्ष महोदय से) पढ़वाया। इस पर विपक्ष के सदस्यों ने आलोचना की – इस पर श्री अध्यक्ष ने व्यवस्था दी कि संविधान की धारा 174 के अनुसार—(अ) राज्यपाल जब दोनों सदनों को सम्बोधित करते हैं तो उस समय जो नियम होते है वह राज्यपाल के होते हैं । अध्यक्ष उनके साथ बैठते है अतः व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी राज्यपाल की होती है।

(ब) नियमावली के नियम 289(च) में लिखा है कि राज्यपाल या राष्ट्रपति के ऊपर, उनके आचरण के ऊपर किसी प्रकार की चर्चा नही होगी (आक्षेप नहीं करेगें) अतः श्री राज्यपाल के कार्यो की टीका करना नियम विरूद्ध है अतः मैं अस्वीकार करता हूँ ।[2]

(ड.) गवर्नर द्वारा अधूरा भाषण पढ़ा जा सकता हैं.—

उ0प्र0 में प्रतिपक्ष द्वारा यह प्रश्न भी उठाया गया कि राज्यपाल ने अपने भाषण का प्रथम या अन्तिम पैरा पढ़ दिया। यह स्थिति 1 फरवरी 1983; 13 फरवरी 1984; 19 मार्च 1974 तथा 16 मार्च 1985 को उत्पन्न हुयी । श्री अध्यक्ष ने अपना निर्णय देते हुये कहा – कि राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्य० खण्ड 205 पृ0 173–268
2. उ0प्र0 विधानसभा की कार्यवाही खण्ड 346 पृ0 257–262

विधान सभाओं में हुयी इसी प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में पीठासीन अधिकारियों के निर्णयों के आधार पर निर्णय यह है कि "महामहिम राज्यपाल यहॉं पर आयें और आने के बाद उन्होंने बैठे ही बैठे पहला पैराग्राफ पढ़ा और उसके बाद मुझको अधिकृत कर दिया और अन्तिम उन्होने फिर पढ़ा, तब किसी आपत्ति का प्रश्न नही उठता । जहॉं तक संविधान का प्रश्न है उसमें ऐसा कही नही लिखा कि वह किसी को अधिकृत नही कर सकते ।[1]

4. संविधान के तहत राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने के लिये व्यापक शक्ति प्राप्त है और वह इस प्रयोजन से किसी सदन का सत्रावसान कर सकता है- दिनांक 14 मार्च 1983 श्री राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित कतिपय अध्यादेशों के विषय में दिनांक 15 मार्च 1983 को श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता (जनता पार्टी) ने औचित्य का प्रश्न उठाते हुये3आपत्तियॉं की :-

(क) संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन अध्यादेशों का प्रख्यापन तभी किया जाना चाहिए जब श्री राज्यपाल को यह समाधान हो जाये कि ऐसी परिस्थितियॉं विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्यवाही करना आवश्यक है। इस इमेरजेन्सी की जगह अर्जेन्सी को आधार बना कर अध्यादेश जारी करना अवैधानिक व अप्रजातांत्रिक है।

(ख) विधान परिषद का सत्र चल रहा था और मात्र अध्यादेश जारी करने के उद्देश्य से उसका सत्रावसान करना और फिर सत्र आहूत करना उपयुक्त नही था ।

(ग) दिनांक 14 मार्च 1983 को प्रख्यापित अध्यादेशों को दिनांक 15 मार्च 1983 को सदन के पटल पर न रखकर प्रक्रिया नियमावली के नियम 120 का उल्लंघन किया गया है ।

22 मार्च 1983 को श्री अध्यक्ष ने इस पर निर्णय देते हुये कहा, "संविधान के अनुच्छेद 213 में श्री राज्यपाल को प्राप्त विद्यायिनी शक्ति की व्यापकता पर केवल 2 प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। पहला विधान मण्डल अथवा उसका कोई सदन सत्र में न हो, दूसरा राज्यपाल को यदि समाधान हो जाये कि तुरन्त कार्यवाही करने वाली परिस्थितियॉं विद्यमान हैं। यदि उपरोक्त दोनों शर्ते पूरी हो जाती है तो श्री राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश विधिसम्मत व संवैधानिक समझा जायेगा ।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 346 पृ० 257-62.

"कौल एवं शकधर" ने भी अपनी पुस्तक "संसदीय प्रणाली व व्यवहार" के पृ0587-588 पर लिखा है कि यदि राष्ट्रपति केवल अध्यादेश जारी करने के प्रयोजन से सत्रावसान करें तो उस पर आपत्ति नही उठायी जा सकती ।[1]

5. राज्यपाल पर विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नही उठाया जा सकता – 6 फरवरी 1961 को राज्यपाल द्वारा आहूत बैठक को निरस्त करने के सम्बन्ध में श्री त्रिलोकी सिंह द्वारा उठाये गये विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न पर व्यवस्था देते हुये श्री अध्यक्ष ने कहा –

"राज्यपाल के विरूद्व सदन में कुछ नही कहा जा सकता है अगर राज्यपाल ने आर्डर दे दिया है एवं सचिव की सलाह मानकर और मुख्यमंत्री से नही पूछा और यह भी मान लिया जाये कि उन्होंने संविधान के विरूद्व कार्य किया, तो भी विशेषाधिकार की चारा जोई सदन में नही हो सकती है।"[2]

6. **राज्यपाल पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किये जा सकते** – दिनांक 15 फरवरी 1984 को श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त ने अपनी निजी जानकारी के आधार पर भारत का संविधान अनुच्छेद 187 श्री अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये प्रक्रिया सम्बन्धीकरण के कारण सं0 215 तथा उ0प्र0 विधानसभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'संसदीय प्रणाली एवं शिष्टाचार' के पृ0 10 का उल्लेख करते हुये यह औचित्य का प्रश्न उठाया कि महामहिम राज्यपाल ने मार्शल विधान सभा को बुलाकर प्रताड़ित किया जिससे माननीय अध्यक्ष के अधिकारों का अतिक्रमण हुआ क्यों कि भारत का संविधान के अनुच्छेद 187 के प्रावधानों के अनुसार विधानसभा सचिवालय पूर्णतया माननीय अध्यक्ष के नियन्त्रणाधीन है। श्री गुप्त ने मॉग की कि इस मामले में एडवोकेट जनरल से राय ली जाये जो महामहिम राज्यपाल तथा व्यवस्थापिका के सम्वन्धों को स्पष्ट करें तथा एक समिति बना दी जाये जो यह बताये कि महामहिम राज्यपाल की शक्तियॉ क्या हैं?

उर्पयुक्त प्रश्न पर श्री अध्यक्ष ने प्रक्रिया नियमावली के नियम 289 (2) (च) तथा उ0प्र0 विधान सभा अध्यक्ष द्वारा दिये गये निर्णयों के संकलन से हवाला देते हुये कहा कि राज्यपाल के कार्यो की टीका करना नियम विरूद्व है और वह कार्यवाही का अंग नही बन सकता है अतः श्री अध्यक्ष ने औचित्य के प्रश्न को अस्वीकृत कर दिया ।[3]

---

1. उ० प्र० वि० सभा कार्यवाही, खण्ड 362 अंक 2 पृ० 222
2. उ0प्र0 विधान सभा, अध्यक्ष पद से दिये गये निर्णयों का संकलन 1962 से 1967, पृ0 282
3. उ0प्र0 विधान सभा अष्टम के वर्ष 1984 के प्रथम सत्र 13 फरवरी 1984 से 30 अप्रैल 1984 तक कृत कार्य, पृ0 67

दिनांक 18 फरवरी 1982 को श्री राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर अपने संशोधन के पक्ष में बोलते हुये श्री राजेन्द्र सिंह ने विपक्षी दलों द्वारा लिखित महामहिम राज्यपाल के अभिभाषण का बहिष्कार किये जाने सम्बन्धी एक पत्र श्री अधिष्ठाता की अनुमति से पड़ा ।

श्री अधिष्ठाता ने कहा, "यह जो पत्र महामहिम राज्यपाल को लिखा गया था आपने पढ़ा, हमने इजाजत तो दे दी लेकिन महामहिम राज्यपाल की आलोचना इसमें नही हो सकती इसलिये इसमें जो आलोचना की बातें है, प्रोसीडिंग्स से निकाल दी जायेगी ।[1]

उ0प्र0 विधान सभा में 18 मार्च 1969 को श्री रामधारी ने राज्यपाल पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुये राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुये कहा कि मान्यवर, 1969 के पहले जो हमारे नेता गेंदा सिंह जी थे उनके द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया था तो मैंने सोचा कि मैं धन्यवाद के इस प्रस्ताव का सर्मथन कर दूँ लेकिन राष्ट्रपति शासन काल में जब सीधे राज्यपाल महोदय के हाथ में सत्ता आयी है और इटावा जिले में बकेवर में जो घटना घटी है कि एक माँ के साथ उसके बेटे के द्वारा बद खलाकी करने पर मजबूर किया गया है तो मैंने सोचा कि इस प्रस्ताव का विरोध कर दिया जाये इस पर श्री अध्यक्ष ने निर्णय देते हुये कहा–आप वैयक्तिक हमला राज्यपाल पर न करें।"[2]

इसी प्रकार वर्ष 198 में राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुये – डा0 शिवानन्द नौटियाल ने कहा कि माननीय महामहिम राज्यपाल का अभिभाषण सरकार का आगे आने वाले वर्षो का दिग्दर्शन कराता है, मुझे यह कहते हुये दुख है कि माननीय राज्यपाल महोदय ने जिन बातों का जिक्र किया है..... उसमें उन्होंने अपनी सरकार की ही प्रशंसा की है। उन्होंने प्रशंसा ऐसी की जैसे उन्होंने स्वयं नीति निर्धारित करने का कार्य किया है। इस प्रदेश का दुर्भाग्य है कि सीधे सरीखे गवर्नर इस प्रदेश के राज्यपाल हैं। आज तक कही भी ऐसा एक उदाहरण नहीं होगा कि जहाँ स्वयं राज्यपाल ने अध्यक्ष अपने को चुना हो । मान्यवर, यही सी0पी0 सिंह स्वयं बद्रीनाथ केदारनाथ के अध्यक्ष अपने को चुन लिये है।

---

2. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 276 पृ0 88

1. –तदैव– खण्ड 353 पृ0 127 , अंक 2

इस पर श्री राजकुमार राय ने व्यवस्था का प्रश्न किया कि राज्यपाल... की जिन्दगी के बारे में कोई सदस्य कुछ कह सकता है। श्री अधिष्ठता ने कहा कि नही कह सकता.. मैंने उन्हें टोक दिया कि वह उनके आचरण पर न बोंले ।[1]

5 अगस्त 1980 को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री रमेशचन्द्र श्रीवास्तव के इस्तीफे पर अपने कार्यस्थगन प्रस्ताव की सूचना पर बोलते हुये श्री राजेन्द्र सिंह ने श्री राज्यपाल का नाम लेकर कुछ आपत्तिजनक बातें कही जिन्हें श्री अध्यक्ष के आदेश पर कार्यवाही से निकाल दिया गया ।

श्री अध्यक्ष ने कहा कि मैं श्री राज्यपाल के सम्बन्ध में यहॉ कोई बात नही सुनना चांहता हूँ । यह इनके बारे में कहने का स्थान नही है ।[2]

दिनांक 23 मार्च 1981 को राजभवन से ऐतिहासिक तलवार के चोरी होने के सम्बन्ध में नियम 56 के अन्तर्गत कार्यस्थगन प्रस्तावों की सूचनायें अस्वीकार करते हुये श्री अध्यक्ष ने कहा – जहॉ तक राज्यपाल या उसके किसी क्रियाकलाप का सम्बन्ध है। उस पर यहॉ सदन में किसी प्रकार की चर्चा नही की जा सकती ।[3]

इसी प्रकार वर्ष 1956 को श्री रामनारायण त्रिपाठी द्वारा एक सड़क दुर्घटना के सम्वन्ध में महामहिम राज्यपाल की भर्त्सना पूर्वक टीका टिप्पणी की गयी। श्री अध्यक्ष ने विरोध करते हुये कहा – विधान सभा प्रक्रिया नियमावली के नियम 182 (5) के अनुसार श्री राज्यपाल के कार्यो पर टीका करना निषिद्ध है। इस सम्बन्ध में ईर्सकिन मे ने भी अपनी पुस्तक "पार्लियामेन्ट्री प्रेक्टिस" में पृ0432 तथा पृ0 436 पर कहा है कि बादशाह का नाम अनादर पूर्वक नही लिया जा सकता और न ही उसके प्रतिनिधि पर छींटाकशी की जा सकती है।[4]

---

1. उ०प्र० वि०स० कार्यवाही खण्ड 348 पृ० 559
3. उ0प्र0 विधान सभा का खण्ड 350 अंक 6 पृ0 686–80 एवं अध्यक्ष पद से दिये गये निर्णयों का संकलन 1979–84 पृ0230
4. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 168 पृ0 14–15
2. – तद्वैव – खण्ड 344 पृ० 720-21.

7. **राज्यपाल-सदन का स्थगन–**

प्रतिपक्ष द्वारा राज्यपाल द्वारा सदन स्थगित किये जाने की सूचनाओं पर भी आपत्ति प्रकट की गयी और अध्यक्ष द्वारा व्यवस्था की मॉग की गयी – उदाहरणार्थ – दिनांक 27.1.84 को प्रतिपक्ष ने राज्यपाल द्वारा सदन स्थगित किये जाने के सम्बन्ध में व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया। लोकदल के श्री मोहन सिंह ने कहा कि मैं माननीय अध्यक्ष से राजयपाल के आचरण के सम्बन्ध में इस संविधान की धाराओं के तहत और विधानसभा प्रक्रिया नियमावली के तहत एक व्यवस्था का प्रश्न उठाता हूँ कि संविधान की धारा 174 में साफ लिखा है कि राज्य के विधान मण्डल के सदन या सदनों को प्रतिवर्ष कम से कम दो बार अधिवेशन के लिये आहूत किया जायेगा तथा उनके सत्र की अन्तिम व आगामी बैठक के बीच 6 माह का अन्तर न होगा। इसी के खण्ड 2(1)–(क) में लिखा हुआ है कि सदनों का ऐसे समय तथा स्थान पर जैसा वह उचित समझे अधिवेशन के लिये आहूत कर सकेगा,(ख)सदन या सदनों का सत्रावसान कर सकेगा,(ग) विधान सभा का विघटन कर सकेगा। महामहिम राज्यपाल के अधिकारों के बारे में धारा 174 मे साफ लिखा हुआ है–

इसी वर्ष जो यह सदन बैठा हुआ है, इसके बुलाने में, इसका आह्वान करने में संविधान की इन धाराओं के विपरीत काम लिया गया है जब इस आदरणीय सदन और मंत्रि परिषद के सदस्य श्री बैजनाथ कुरील का देहावसान हो गया तो उनके देहावसान के बाद 27 तारीख को राज्यपाल के आह्वान के अनुसार सब लोग सदन में इकट्ठा हुये तो एक सार्जेन्ट ने आकर सूचित किया कि महामहिम राज्यपाल ने सदन को अग्रेतर सूचना के लिये स्थगित कर दिया है।

श्री मोहन सिंह ने आगे कहा कि सत्र के स्थगन का उनको किसी हालत में अधिकार नही है क्यों कि दिनांक 27 जनवरी की आपकी जो अधिसूचना है, वह नियमानुसार नही है। उसमें संविधान की किसी धारा का हवाला नही दिया गया है अतः यह संसदीय मान्यताओं के विपरीत है क्यों कि इसमें भारत के संविधान के अनुसार काम नही किया गया । अतः मैं तीन व्यवस्था के प्रश्न उठाना चाहता हूँ –(i) कि भारत के संविधान के मुताविक एक सत्र को

स्थगित करने का जो अधिकार है वह केवल आपको (अध्यक्ष को) है। (ii) यह जो विहित प्रक्रिया है इन परिस्थितियों में (जैसा कि कुरील साहब के निधन के बाद उत्पन्न हो गयी थी) उस समय स्पीकर सचिवालय चीफ सेक्रेटरी को सूचित करता फिर कैबिनेट से सहमत होकर सचिव विधानसभा स्पीकर महोदय की ओर से मुख्य सचिव द्वारा राज्यपाल महोदय से अनुरोध करते कि आप का आहूत सत्र निरस्त किया जाये । तो जो कुछ भी हुआ है, अवैध ढंग से हुआ है। राज्यपाल को यह करने का अधिकार नही है।

श्री अध्यक्ष ने इस पर अपना निर्णय देते हुये कहा कि "प्रैक्टिस एन्ड प्रोसीजर्स आफ पार्लियामेन्ट" (कॉल एण्ड शक्धर) में लिखा है कि जिसके द्वारा समन भेजा जाता है, उसी के द्वारा कैन्सिल भी हो सकता है , स्थगित भी हो सकता है , निरस्त करना भी उसमें शामिल है अतः यह कोई असंवैधानिक कार्य नही है; चूँकि इस प्रकार के स्थगन आदेश आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, पंजाब बिहार, लोकसभा व राज्यसभा दोनों में हो चुके है अतः राज्यपाल द्वारा सदन को स्थगित किये जाने के सम्बन्ध में व्यवस्था के प्रश्न को मैं अस्वीकार करता हूँ ।[1]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्यपाल के अपने कुछ अधिकार हैं जिन पर कोई आपत्ति नही उठायी जा सकती है किन्तु सुझावरूप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिपक्ष के सदस्य यह समझते हैं कि यह उनके अधिकारों का हनन करने हेतु राज्यपाल ने इस शक्ति का प्रयोग किया गया है व इसमें सत्तापक्ष का निहित स्वार्थ या लाभ है। इस मानसिकता के चलते प्रतिपक्ष ने निरन्तर व्यवस्था व आपत्ति के प्रश्न उठाये जिन्हें हमेशा अग्राह्य ठहराया गया । इस सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि बहुत से कार्य यथा-सदन का स्थगन, बैठक आहूत करना, अध्यादेश जारी करना इत्यादि, यदि वास्तव में कोई महत्व पूर्ण विधायी कार्य लम्बित न हो, तभी राज्यपाल द्वारा स्वविवेकानुसार ये समस्त कार्य सम्पादित किये जाने चाहिये जिससे प्रतिपक्ष का लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति आस्था व विश्वास दृढ़ हो सकें।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 364 पृ0 269-270

अध्याय – 4, प्रश्नकाल और विपक्ष

(क) अल्पसूचित प्रश्न
(ख) तारांकित प्रश्न
(ग) अतारांकित प्रश्न

–अनुपूरक प्रश्न
–आधे घण्टे की चर्चा

प्रश्नकाल

जनतन्त्र का मूल आधार संसद के द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण रखना है । स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरागाँधी के शब्दों में विधायी निकाय जन इच्छा के भण्डार हैं निर्वाचित संस्थाओं में लोगों का विश्वास बढ़ गया है । इसलिए भारत में लोकतन्त्र की जड़ें मजबूत हो गयी हैं 'लोकतन्त्र को सुरक्षित रखने के लिए संवैधानिक प्रक्रियाओं को महत्व देना अनिवार्य है इसके साथ यह भी आवश्यक है कि समाज की विकासशील आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सही नीति व विधि की रचना की जाये और इसके साथ यह भी अत्यावश्यक है कि उनका क्रियान्वयन भी उसी भावना से होना चाहिए । समुचित क्रियान्वयन के अभाव में विधि के द्वारा उस उद्देश्य की पूर्ति सम्भव नहीं है । सम्पूर्ण प्रशासनिक ढ़ांचें के यह ज्ञान अत्यावश्यक है कि वह संसद के प्रति उत्तरदायी है और इसी कारण उन्हें संस्दीय छानबीन के अन्तर्गत गुजरना पड़ता है । प्रश्न प्रशासन के कार्यकलापों के परीक्षण का एक प्रबल माध्यम है ।

प्रश्नकाल की महत्ता इतनी अधिक है कि सरहरबर्ट बिलियम के अनुसार 'इग्लैंड में प्रजातन्त्र के क्रियान्वयन में प्रश्न की तकनीक सर्वाधिक शक्तिशाली है ।[1] प्रश्नोत्तरकाल विधान सभा के उपवेशन में सजीवता लाने वाला[2] रूचिकर[3] एवं सरकार के लिए चिन्ताजनक काल[4] होता है । यह उन नौकर शाही प्रवृत्तियों पर जिनका प्रत्येक सरकार में उत्पन्न होना निश्चित है , एक प्रभावी नियन्त्रण है । इसके माध्यम से विशेषज्ञ नौसिखियों के प्रति उत्तरदायी रहते हैं'[5] सरकार की प्रशासन में त्रुटियों पर प्रकाश डालने के लिए इससे बढ़कर और कोई विधि नहीं हो सकती है । एक मंत्री सदैव अपने आपसे यह पूँछता है कि उसकी अपनी और उसके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों की गतिविधियाँ वैधानिक हैं या नहीं और प्रश्न पूँछे जाने पर वह संसद में क्या उत्तर दे तथा संसद उस उत्तर को किसतरहलेगी । प्रश्नकाल कर्मचारियों को चौकन्ना रखता है तथा इससे नौकरशाही में उत्पन्न होने वाले अहं पर रोंक लगती है ।[6] इनका प्राथमिक उपयोग आवश्यक सूचनाओं को उद्घटित करना है जो सदन को उसकी कार्यवाही के दौरान निर्देशित करती है परन्तु इनका सबसे अधिक महत्व पूर्ण उपयोग मंत्रियों से यह जानकारी प्राप्त करना है कि उन्होने अपनी कार्यपालिका सामर्थ्य से क्या किया है, क्या नहीं किया है और क्या करना चाहते हैं । दूसरे शब्दों में इनका प्रयोग मंत्रिमण्डल की सामान्य नीति तथा प्रशासनिक कार्यो का निरीक्षण करने के लिए किया जा सकता है ।[7]

1- सर हरबर्ट विलियम ,क्वैश्चन इन पार्लियामेंट पृष्ठ 16

2- मारिस जान्स डब्लू0एच0, पार्लियामेंट इन इण्डिया पृष्ठ 317

3- गुप्ता डी0सी0 ,इण्डियन गर्वनमेंट एण्ड पालिटिक्स ।

4- आयंगर राजगोपाला टी0एस0 , इण्डियन पार्लियामेंट,एक्रिटिकल स्टडी, मैसूर असारंगा 1972, पृ0 91

5- डब्लू0 सी0 मुनरो, गवर्नमेंट आफ यूरोप, पृ0 145

6- अल्वर्ट सी0पार्लियामेंट, पृ0 113, 114

7- कल्विन राल्फ ,पार्लियामेंटरी प्रोसीजर इन साउथ अफ्रीका, पृ0 85

यद्यपि प्रत्यक्षता प्रश्नसूचना प्राप्त करने के लिये किये जाते हैं तथापि प्रश्नों का परोक्ष उद्देश्य सरकार की प्रशासकीय त्रुटियों के सम्बन्ध में उसका (सरकार का) ध्यान आकर्षित करना तथा प्रश्न के रूप में किसी उपचारात्मक कृत्य की वांछनीयता के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना होता है ।[1] इसका चतुर प्रयोग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है, जैसे सरकार के दोषों को प्रकट करना, जनता के दुखों की जानकारी कराना, कुछ कार्यो के सम्बन्ध में सरकार से आश्वासन प्राप्त करना और सरकार को नियंत्रित रखना[2] यह निर्विवाद है कि तथ्यों के प्रकाशन एवं सत्य के अभिज्ञान के लिये प्रश्न प्रति प्रश्न की यह पद्धति अत्यधिक उपयुक्त है । वस्तुतः न्यायालयों में जिरह की प्रक्रिया का प्रचलन इसी उद्देश्य से किया गया है ।

विधायिका में प्रश्न पूँछने की परम्परा की शुरूआत 18वीं शताब्दी (1721) इंग्लैंड में हुयी ।[3] भारत में प्रश्न पूँछने का अधिकार 1861 में जन्में लेजिसलेटिव कौन्सिल के इण्डियन कौन्सिल एक्ट तक नहीं हुआ था । फलस्वरूप कौन्सिल के गैर सरकारी सदस्यों ने कौन्सिल में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने तथा उसको अधिक अधिकार दिये जाने की माँग की और तत्कालीन सरकार ने 1892 में पुनः इण्डियन कौन्सिल एक्ट पास किया । जिसमें कौन्सिल के गैर सरकारी सदस्यों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने व सदस्यों को विधिवत् सूचना के बाद प्रश्न पूँछने का अधिकार दिया गया ।[4]

उक्त एक्ट के अधीन गठित उत्तर प्रदेश लेजिसलेटिव कौन्सिल की प्रथम बैठक 6 दिसम्बर 1893 को हुयी । लेफ्टीनेंट गवर्नर के भाषण के उपरान्त राजा राम पाल सिंह ने प्रदेश के संसदीय इतिहास में प्रथमबार सरकार से प्रथम प्रश्न पूँछा और 1937 में गठित उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाहियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि सर्वप्रथम विधान सभा में प्रश्न पूँछने का शुभारम्भ 1937 (2सितम्बर) में मौलवी अजीज द्वारा किया गया।[5]

सामन्यतः प्रत्येक उपवेशन का पहला घन्टा प्रश्नों के पूँछने व उनको उत्तर देने के लिए नियत होता है ।[6]किसी प्रश्न का उत्तर उसी दिन दिया जाता है जिस दिन वह सदन की कार्यसूची में सूचीबद्ध होता है । यदि सदस्य द्वारा पूँछी सूचना उपलब्ध नहीं हो पाती है तो सदन में मंत्री उस स्थिति से अवगत कराता है और अध्यक्ष उसके उत्तर के लिएकोई दूसरी तिथि नियत करता है ।[7]

1- पचौरी परमात्मा शरण, विधायन प्रणाली उत्तर प्रदेश सूचना विभाग 1959 पृ0 2225

2- मोर एस0एस0 प्रेक्टिश एण्ड प्रोसीजर आफ इण्डियन पार्लियामेंट पृ0 483

प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत कोई भी सदस्य पूर्व सूचना देकर अध्यक्ष की अनुज्ञा से लोक महत्व के ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जिनके लिए शासन उत्तरदायी हो [1] उत्तर प्रदेश विधान सभा के नियम 27 में प्रश्नों को तीन प्रकार से [2]विभाजित किया गया है -

1- अल्पसूचित प्रश्न :- इनका तात्पर्य ऐसे प्रश्नों से है जो अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय से सम्बन्धित हो और जिन पर सरकार द्वारा दिये गये उत्तर से अनुपूरक प्रश्न अध्यक्ष की अनुमति से पूछे जा सकते हैं । इसका विभेद दो तारांक लगाकर किया जाता है ।

2- तारांकित प्रश्न:- प्रश्नों के विभेद की प्रथा 5 सितम्बर 1881 से आरम्भ हुई तत्कालीन अध्यक्ष फैड्रिक व्हाइट ने तत्कालीन स्थाई आदेश 17 द्वारा प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रश्नों के सम्बन्ध में तारांकित प्रश्नों की प्रथा का सूत्र पात किया ।

तारांकित प्रश्न पूछे जाने का मूल प्रयोजन लिखित उत्तर प्राप्त करना है किन्तु चिन्हित प्रश्न अधिकांशतः आलोचनात्मक व अन्य कारणो से भी पूछे जाते हैं तथा उनका प्रमुख उद्देश्य यह है कि वह अपने मतदाताओं को यह स्मरण दिलाने में समर्थ होते हैं कि उनका सदस्य उनके प्रति सजग है और अपने कर्तव्य का निर्वाहन करता है ।[3]

तारांकित प्रश्न वे प्रश्न है जिनपर सरकार द्वारा दिये गये उत्तर से उत्पन्न अनुपूरक प्रश्न अध्यक्ष की अनुमति से पूछे जा सकते हैं एक तारांक लगाकर इनका विभेद किया जाता है ।

3- अतारांकित प्रश्न:- इनका आशय उन प्रश्नों से है जिनका लिखित उत्तर प्रश्नकर्ता सदस्य को दिया जाता है और उस पर अनुपूरक प्रश्न करने की अनुज्ञा नहीं होती ।

1- नियम 26 उत्तर-प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली

2- नियम 26 उत्तर प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया नियमावली

3- फाइनर 'दि ग्रेटर यूरोपियन पावर्स' पृष्ठ 162

अनुपूरक प्रश्न एक ऐसी विशुद्ध संसदीय विधि है। जिसके माध्यम से जन जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न विषयों पर जानकारी प्राप्त हो और कार्यपालिका के कार्यो पर नियन्त्रण रखा जाता है इसका आश्रय लेकर विपक्ष राजनैतिक लाभ प्राप्त करता है अनुपूरक प्रश्नों की उपयोगिता के बारे में मोर का कथन है "मूल प्रश्नों से अनुपूरक प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है प्रस्तुत प्रश्नों से उद्‌भूत यह प्रश्न जिन्हें अध्यक्ष के स्वविवेकानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है मंत्रियों की विभागीय कार्यो की जानकारी और उद्यत बुद्धि का परीक्षण करते हैं[2] अल्पसूचित प्रश्न पूछने के लिए प्रश्नकर्ता सदस्य को तीन दिन की लिखित सूचना सचिव को देनी पड़ती है और सचिव साधारणतयः उसे प्रश्न की ग्रहता के सम्बन्ध में 24 घण्टे के अन्दर अध्यक्ष की आज्ञा प्राप्त करते हैं[3] जबकि तारांकित और अतारांकित प्रश्नों के लिए 20 दिन की पूर्व सूचना दिया जाना आवश्यक है[4] और सचिव द्वारा ऐसे प्रश्न साधारणतयः 5 दिन के भीतर शासन को भेज दिये जाते हैं परन्तु जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश नहीं देते हैं यह प्रश्न उत्तर के लिए तब तक प्रश्न सूची में नहीं रखे जाते जब तक मंत्री या सम्बन्धित विभाग को ऐसे प्रश्नों की सूचना देने के दिनांक 15 दिन समाप्त न हो जायें[5] ।

प्रश्नों की ग्रहता का विनिश्चय अध्यक्ष द्वारा किया जाता है वह किसी प्रश्न को अथवा उसके किसी भाग को अस्वीकार कर सकते हैं जो उनकी राय में नियमों के प्रतिकूल हो अथवा जिससे प्रश्न पूछने के अधिकार का दूरूपयोग होता हो [6] ।

प्रश्न अनुभाग के कर्मचारियों के अनुसार विधान सभा के सदस्यगण प्रायः उनसे प्रश्नों को ग्राहय बनाने हेतु उनके प्रारूप के निर्धारण में सहायता लेते हैं तथा कभी-कभी अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिये अपने प्रभाव का प्रलोभन देने तथा दवाब का भी प्रयास करते हैं विशेषतयः प्रतिपक्ष के सदस्य क्योंकि सत्ताधारी दल की सदस्यों की भाँति न तो अपनी बात सरकार तक पहुँचाने के लिए सदन में बोलने का अवसर मिल पाता है और न ही सत्तारूढ़ दल की बैठकों में ही अतः उनके लिए अपनी अथवा अपने क्षेत्र की समस्याओं को सरकार तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम प्रश्न ही है ।

1- 186 स्पीकर क्यूली, (संसद व विधान सभाओ में प्रश्नकाल से शून्यकाल तक), राजेन्द्र कुमार शुक्ल,पृ022-23
2- मोर एस0एस0 प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ इण्डियन पार्लियामेंट , पृ0 440
3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 29
4- -तदैव-
5- -तदैव - नियम 30 (1) एवं (2)
6- -तदैव- नियम 45

उ0प्र0 विधान सभा में प्रथम सामान्य निर्वाचन के उपरान्त गठित विधान सभा से लेकर अब तक अर्थात 1952 से 1985 तक के प्रश्नों के सम्बन्ध में विवरण तालिका निम्न है:-

तालिका[1]

वर्ष	सत्र	प्राप्तप्रश्न	स्वीकृत	अस्वीकृत	उत्तरित	व्ययगत
प्रथमविधान सभा						
1952					2385	
1953					1709	
1954					5222	
1955					2470	
1956					4520	
द्वितीय विधान सभा						
1957		12665	8103	4562	4262	2667
1958		19470	9464	9906	5459	3883
1959		10176	5541	4635	3600	1789
1960		6587	1552	3768	1396	909
1961	प्रथमसत्र	10477	5869	4608	3010	203
	द्वितीयसत्र	3828	2335	1493	1751	465
तृतीय विधान सभा						
1962	प्रथमसत्र	19418	13954	5464	12566	614
1963	प्रथम सत्र	11124	6915	4209	3217	3698
1964	प्रथमसत्र	10195	6429	3664	3436	2425
	द्वितीयसत्र	8639	5400	3239	1560	3491
1965	प्रथमसत्र	9807	6867	2940	2978	3378
	द्वितीयसत्र	7403	4274	3129	2107	2072
1966	प्रथमसत्र	9021	5786	3235	2921	2834
	द्वितीयसत्र	7283	4637	2647	2360	2143
चतुर्थ विधान सभा						
1967	प्रथमसत्र	7063	2860	4208	1421	1394
1968	निलम्बित	---------राष्ट्रपति शासन			--------------	
पंचम विधान सभा						
1969	प्रथमसत्र	1065	6025	440	29	470
	द्वितीयसत्र	6546	4253	2293	1287	2232
1970	प्रथमसत्र	9893	5536	9357	3660	1570
	द्वितीयसत्र	3775	1612	2163	593	272
1971	प्रथमसत्र	9893	5536	4357	-	-
	द्वितीयसत्र	7977	3984	3988	2176	1679
1972	प्रथमसत्र	8833	5052	3700	3139	1911
	द्वितीयसत्र	8206	5399	2445	4151	1428

वर्ष	सत्र	प्राप्तप्रश्न	स्वीकृत	अस्वीकृत	उत्तरित	व्ययगत
षष्टम विधान सभा						
1973	निलम्बित	--राष्ट्रपति शासन (12 दिसम्बर 1972 से 13 मई 1973 तक)				
1974	प्रथमसत्र	929	462	450	6	67
	द्वितीयसत्र	7909	5551	2358	3819	1605
	तृतीयसत्र	3190	1936	905	232	1954
1975	प्रथमसत्र	5993	4589	1404	1927	2543
	द्वितीयसत्र	2161	1624	537	×	1624
1976	प्रथमसत्र	3340	2508	832	862	1546
	द्वितीयसत्र	3241	2291	950	496	1785
सप्तम विधान सभा						
1977	प्रथमसत्र	1744	1420	313	141	1174
	द्वितीयसत्र	5771	3236	1537	1283	1501
1978	प्रथमसत्र	7991	5210	2742	2682	1257
	द्वितीयसत्र	3894	3215	673	827	2358
	तृतीय सत्र	3940	3343	590	1773	2003
1979	प्रथमसत्र	3296	2093	703	117	1682
	द्वितीयसत्र	4479	3699	1793	2096	923
	तृतीयसत्र	1985	1575	328	322	1310
अष्टम विधान सभा						
1980	प्रथमसत्र	1705	1532	171	698	950
	द्वितीयसत्र	5250	3981	1228	1642	2081
1981	प्रथमसत्र	7652	6316	1376	3523	2721
	द्वितीयसत्र	4878	3752	782	1136	2467
1982	प्रथमसत्र	9294	6078	3219	4546	1171
	द्वितीयसत्र	4783	3551	1207	1359	2043
1983	प्रथमसत्र	10942	8392	2740	5990	1739
	द्वितीयसत्र	6250	4922	1840	1569	3191
1984	प्रथमसत्र	9913	8177	3090	5506	2250
	द्वितीयसत्र	4646	3929	711	1131	2898

तालिका[1] के विवरण में स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन विधान सभाओं में स्वीकृत प्रश्नों की संख्या उनकी प्राप्ति संख्या से काफी कम है इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि सदस्यों द्वारा दी गई प्रश्नों की अधिंकाश सूचनाएं नियमानुसार अग्राहय होगी अतः उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया हो । विधान सभा के प्रश्न अनुभाग के कर्मचारियों से प्राप्त विवरण के अनुसार सदस्यों द्वारा प्रायः प्रक्रिया नियमावली में उल्लेखित प्रश्नों की ग्राहयता सम्बन्धित शर्तो को सम्यक विवेचन व अध्ययन किए बिना ही प्रश्नों की सूचनाएं दे दी जाती हैं । इसलिए जब उन्हें अनेक वर्गो में परिवर्तित करके ग्राहय बनाना सम्भव नहीं होता तो अस्वीकृत कर दिया जाता है । साथ ही जो सदस्य उनकी स्वीकृत हेतु सक्रीय रहते हैं और सचिवालय के अधिकारियों व कर्मचारियो से मिलकर अपने प्रश्नों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करा लेते हैं उनके प्रश्न तो स्वीकृत हो जाते हैं किन्तु जो सदस्य प्रश्नों की सूचना देने के बाद उनके प्रति उदासीन हो जाते हैं उनके प्रश्न बहुधा अस्वीकृत हो जाते हैं ।

अध्ययनाधीन विधान सभा की कार्यवाहियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विरोधी दल के सदस्य भी प्रश्न पूछने में सक्रीय रहे तथा शासन पक्ष से सम्बन्धित सदस्यों ने प्रश्न पूछने में अपेक्षाकृत कम रूचि ली । शासक दल की निष्क्रियता व विपक्ष की प्रश्न काल में सक्रियता का एक स्पष्ट कारण यह हो सकता है कि सत्ता पक्ष के सदस्य अपने ही दल के मन्त्रियों से सदन में प्रश्न पूछकर उन्हें किसी सम्भावित विवाद की स्थिति में डालने की अपेक्षा उनसे अपनी शंकाओं के समाधान व वांछित सूचनाओं की उपलब्धि हेतु व्यैक्तिक सम्पर्क स्थापित करने में सुगमता अनुभव करते होगें । साथ ही दलीय अनुशासन व दलीय हित की दृष्टि से भी ऐसा करना उचित समझते होंगें । साथ ही प्रतिपक्ष ने सरकार की अलोचना को अपने मन्तव्य की पूर्ति में प्रश्नोत्तर के साधन को सुगम व सहायक मानकर इसका प्रचुरता से प्रयोग किया ।

प्रश्नकाल की प्रभावशीलता का ज्ञान प्रश्नों में निहित उद्देश्य के माध्यम से किया जाता है प्रतिपक्ष द्वारा सदन में प्रायः उपस्थित प्रश्नोंपरजो उद्देश्य परिलक्षित हुए उनका विवेचन निम्नवत् है । प्रश्नों का प्रथम एवं प्रमुख उद्देश्य एवं सरकारी नीतियों तथा सरकारी निर्णयों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करना तथा उनके सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही हेतु दबाव डालना होता है । प्रायः प्रश्नकर्ता द्वारा प्रश्न करते समय यह प्रयास किया जाता है कि वे उसके द्वारा शासन से अधिकतम सम्भव सूचनायें प्राप्त करके उत्तर प्रदेश विधान सभा में पूछे अधिंकाश प्रश्नों में प्रतिपक्ष के प्रश्न कर्ताओं के माध्यम द्वारा शासन में किसी विषय की

1- तालिका[1] प्रश्न अनुभाग उत्तर प्रदेश विधान सभा सचिवालय द्वारा प्राप्त सूचनाओं से उद्घृत ।

सूचनाओं के साथ - साथ तत्सम्बन्धित कार्यवाहियों के बारे में जानकारी मांगी गयी उदाहरण स्वरूप 5 मई, 1978 को श्री राम आसरे वर्मा ने प्रदेश में चल रही होम्योपैथिक छात्र आन्दोलन के बारे में सरकार से जानना चाहा कि - 'क्या स्वास्थ्य मन्त्री बतायेंगे कि गत वर्ष से चल रहे होम्योपैथिक छात्र आन्दोलन की प्रमुख मांगें क्या हैं क्या गैर सरकारी होम्योपैथिक कालेजों के प्रान्तीयकरण के सिलसिले में प्रक्रिया सम्बन्धी संस्तुति हेतु एक सात सदस्यीय समिति का गठन किया गया था यदि हाँ तो उक्त समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट शासन को प्राप्त हो गयी है ? वह रिपोर्ट क्या है और उस दिशा में शासन की ओर से क्या कदम उठायें गये हैं'?[1]

इसी प्रकार श्री शिव कुमार शर्मा द्वारा बिजनौर जिलें में पैरेलापेस्टर कीड़ा से हुई गेहूँ की फसल को हुई हानि के बारे में पूछा गया 'कि क्या सरकार को मालूम है कि इस वर्ष बिजनौर जिले में पैरेलापेस्ट द्वारा लगभग 50% गेंहूँ की फसल नष्ट हो गयी है यदि हॉ तो क्या सरकार यह बतानें का कष्ट करेगी कि बिजनौर जिलें में पैरेलापेस्ट को बचाने के लिये क्या-क्या उपाय काम में लाये गये ? यदि नहीं तो उपाय कब किये जायेगें , तथा क्या सरकार यह बतायेगी कि पैरेलापेस्ट से बचने के लिए कोई दवा तैयार की गयी है[2]'।

विपक्षी सदस्यों द्वारा किये प्रश्नों का एक अन्य उद्देश्य सरकार की असफलताओं को सदन के समक्ष लाना होता है, इस उद्देश्य से प्रशासनिक अधिकारी की विफलताओं , उनके द्वारा अपनायी गयी दमन विषयक एवं शोषण की नीतियों तथा सरकारी नीति विषयक दुर्बलताओं व शिथिलताओं आदि के बारे में प्रश्न किये जाते हैं - उदाहरण निम्नवत् हैं :-

23 मार्च , 1954 को पी0डब्लू0डी0 में भ्रष्टाचार को रोकने के उपायों पर श्री नारायन दत्त तिवारी ने प्रश्न पूछा कि क्या सरकार ने पी0डब्लू0डी0 विभाग में भ्रष्टाचार रोकने के लिये कुछ नये नियम बनायें हैं ? अगर हॉ तो भ्रष्टाचार निरोधक कमेटी ने कितनी शिकायतों की जॉच की है, और कितनों को दण्ड दिया है[3] ?

18 मार्च, 1955 को राजा वीरेन्द्र शाह ने प्रश्न पूछा कि क्या सरकार को विदित है कि जिला जालौन के एक डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल ने

1- उत्तर प्रदेश विधान कार्यवाही खण्ड 334 पृष्ठ 1110

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 105 पृष्ठ 14

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 132 पृष्ठ 79 23, मार्च 1954

लगभग रू0 7000/- का गबन किया है , जो रकम जिला नियोजन कमेटी द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों में सहातार्थ दी गयी थी यदि यह विवरण सही है तो क्या सरकार विवरण सहित बतायेगी कि किस स्कूल को कितना रूपया जिला नियोजन कमेटी द्वारा मंजूर हुआ और उसको कितना मिला ?[1]

प्रेदश के गन्ना कर्मचारी संघ के कर्मचारियों के हड़ताल के सम्बन्ध में 9 मई, 1973 को श्री सूबेदार सिंह ने पूछा कि हमारे प्रदेश में आये दिन विभिन्न विभागों में हड़ताल हुआ करती है । विभिन्न विभागों में कर्मचारियों को मिलने वाली सुविधायें भी भिन्न-भिन्न हैं , तो क्या माननीय मन्त्री जी इस बात का आश्वासन देंगें कि सभी विभागों के कर्मचारियों को एक सी सुविधायें मिलें ताकि यह समस्या हमेशा के लिये समाप्त हो जाये ।[2]

प्रश्नों के द्वारा सरकार पर विरोधी दलो के प्रति दमनकारी रीति अपनाये जाने के आरोप लगाये गये उदाहरणार्थ- 5 अगस्त,1958 को राजा यादवेन्दु दत्त दुबे ने प्रश्न पूछा कि क्या सरकार जानती है कि क्या बस्ती जिले की नौगढ़ तहसील में 22, जुलाई 1958 को जिसे समय वहां पर भूख से पीड़ित जनता ने तहसील के सामने अपनी मांग रखी उस समय वहां के अधिकारियों ने उन पर लाठी चार्ज किया । [3]

उत्तर में गृह मन्त्री श्री कमला पति त्रिपाठी ने विरोधी दलों पर आरोप लगाया कि 'हमारे समाजवादी मित्र जो शोसलिस्ट पार्टी के हैं और वह जनसंघ के घेरा डालो आन्दोलन के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है कि सरकारी कार्य असम्भव हो गया था' ।[4]

10 मई, 1973 को श्री नित्यानन्द स्वामी ने प्रश्न किया कि क्या सरकार बतायेगी कि दिनांक 22 मार्च , 1973 को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के आगमन पर जनसंघ प्रदर्शनकारियों को पुलिस ने मारा पीटा और 6 नेताओं को जेल में बन्द कर दिया? क्या यह सही है , कि सैकड़ों जनसंघ कार्यकर्ताओं को मुजफ्फरनगर शहर में घुसने से पूर्व ही रोकर घण्टों बन्द रखा गया ? यदि हां तो क्यों ? क्या सरकार किसी उच्च अधिकारी से इसकी जॉच करायेगी ।[5]

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 151, 18 मार्च 1955

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 305 पृष्ठ 114

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 196, पृष्ठ 13

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 196, पृष्ठ 666

5- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 308 पृष्ठ 232

कई अवसरों पर प्रतिपक्ष ने प्रश्नोत्तर काल में सरकार को ऐसी बातों से अवगत कराया जिनके सम्बन्ध में उसके पास सूचना नहीं थी । 22 मार्च, 1973 को श्री ऊदल ने मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज, गोरखपुर के भण्डार अधिकारी व लेखाधिकारी के पद पर पदोन्नति के सम्बन्ध में तारांकित प्रश्न किया - क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज, गोरखपुर के प्राचार्य ने विद्यालय नियमावली की अवहेलना करते हुए निर्धारित योग्यता व अनुभव न रहते हुए भण्डार अधिकारी व लेखाधिकारी के पद पर क्रमशः 16 अक्टूबर 1971 तथं 10 मई, 1976 को पदोन्नति की ? शिक्षा मन्त्री श्री चरण सिंह ने कहा कि जानकारी नहीं है,सूचना एकत्र की जा रही है ।[1] तथा 16 नवम्बर 1951 को समाजवादी दल के श्री अब्दुल रऊफ लारी ने सूचीबद्ध तारांकित प्रश्न उठाते हुए पूछा कि मेडिकल कालेज लखनऊ के तीसरे तथा चौथे श्रेणियों के कर्मचारियों द्वारा जून के दूसरे सप्ताह में एक दिन की सांकेतिक भूख हड़ताल के क्या कारण थे ? मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने उत्तर देते हुए कहा कि सरकार को इस प्रकार की कोई सूचना नहीं है ।[2]

कई अवसरों पर प्रतिपक्ष द्वारा सरकार कि अनभिज्ञता पर असंतुष्टि व्यक्त की गयी '23 मार्च 1954 को पी0डब्लू0डी0 में भ्रष्टाचार को रोकने के उपाय पर प्रश्न पूछते हुए नारायन दत्त तिवारी ने कहा 'क्या सरकार ने पी0डब्लू0डी0 विभांग में भ्रष्टाचार रोकने के लिये कुछ नये नियम बनाये हैं यदि हाँ तो क्या? निर्माण उपमंत्री श्री चतुर्भज शर्मा ने कहा कि सरकार ने भ्रष्टाचार निरोधक कमेटी बनायी है श्री नारायण दत्त तिवारी के पुनः पूछने पर कि भ्रष्टाचार निरोधक कमेटी ने कितनी शिकायतों की जाँच की है कितनों को दण्ड दिया है श्री शर्मा के यह कहने पर कि सूचना की जरूरत है श्री तिवारी ने कहा 'श्रीमान मैं इसका विरोध करता हूँ इस वात का कि माननीय मन्त्री जी विल्कुल तैयार होकर नहीं आते हैं । इसलिए मैं विरोध स्वरूप प्रश्न नहीं पूछना चाहता हूँ' ।[3]

प्रतिपक्ष द्वारा पूछे प्रश्नों पर कुछ अवसर ऐसे भी आये जब सम्बद्ध मन्त्री ने यह कहकर उत्तर दिया कि इसका उत्तर देना जनहित नहीं होगा । 17 नवम्बर 1961 को समाजवादी दल के श्री मदन पाण्डेय ने अलीगढ़ जेल में हुई फायरिंग सम्बन्धी रिपोर्ट की मुख्य बातें जानना चाहीं कि माननीय मन्त्री डा0 सीताराम ने कहा कि रिपोर्ट विचाराधीन है । इसके सम्बन्ध में कुछ भी बताना जनहित में नही होगा ।[4]

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 330, पृष्ठ 328

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 226, 16 नवम्बर 1961 पृष्ठ 965

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 132 , पृष्ठ 79

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 227, पृष्ठ 29

5 मई, 1978 को श्री राम आसरे वर्मा ने प्रश्न पूछा कि पिछले डेढ़ साल से होम्योपैथिक आन्दोलन चल रहा है , डेढ़ हजार के लगभग शिक्षक व कर्मचारी हैं जिनमें भूखमरी की स्थिति पैदा हो गयी है । वेतन न मिलने के कारण तो उसके बारे में शासन की ओर से क्या कदम उठाये गये हैं तथा समिति की रिपोर्ट की मुख्य संस्तुतियाँ क्या हैं स्वास्थ्य मन्त्री श्री कल्याण सिंह ने कहा कि आज उन संस्तुतियों के बारे में ब्यौरा देना जनहित में नहीं होगा ।[1]

विधान सभा में कभी - कभी ऐसा भी अवसर आया जब सरकार के मन्त्रीगण प्रतिपक्ष द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उचित जवाब नहीं दे सके और अन्त में प्रतिपक्ष द्वारा गलत ठहराये जाने पर मन्त्रीगण द्वारा यह माना गया कि सूचना गलत थी तथा खेद प्रकाशन भी किया गया । 11 मार्च, 1958 को श्री बुलाकी राम (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) द्वारा तारांकित प्रश्न हरदोई डिस्ट्रिक्ट कापरेटिव फेडरेशन को सुपरसीड करने के सम्बन्ध में पूछा गया कि क्या सहकारिता मन्त्री श्री मोहन लाल गौतम यह बतलाने की कृपा करेंगे कि हरदोई सी0डी0एफ0 को कब सुपरसीड किया गया । श्री गौतम ने कहा 15 मई, 1951 को । इस पर दिनांक 11 मार्च , 1958 को ही श्री शिव प्रसाद नागर (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) ने आपति उठायी कि माननीय सहकारी मन्त्री जी का उत्तर गलत है तथा उन्होने 1953 - 54 के बारे में कहा है कि वह सुपरसीड की गयी जब कि वह सन् 1949 में सुपरसीड की गयी --- श्रीमन् इसके लिए मैं प्रिविलेज मोशन लाना चाहता हूँ । तत्पश्चात 12 मार्च 1958 को सहकारिता मन्त्री श्री गौतम ने कहा ---- कि मैने यह बतलाया था कि हरदोई जी0डी0एफ0 1953-54 को सुपरसीड की गयी मुझे खेद है कि सूचना गलत थी , वास्तव में हरदोई सी0डी0एफ0 15 मई 1951 को सुपरसीड की गयी थी ।[2]

अनुपूरक प्रश्नः-

सदस्यों को अल्प सूचित व तारांकित प्रश्नों पर प्रश्नाधीन स्थितियों से सम्बन्धित तथ्यों के अग्रेतर स्पष्टीकरण हेतु सदन में अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार होता है । अनुपूरक प्रश्न वस्तुतः वह प्रश्न होते हैं जो पहले से लिखित रूप में उपस्थित नहीं होते, इनके उत्तर मन्त्री को सोचने होते हैं । क्यों कि इनके उत्तर पहले से लिखे हुए उनके पास मौजूद नहीं रहते इनके सम्बन्ध में सदस्य व मन्त्री दोनों को लिखित प्रश्नों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता रहती है ।[3]

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 334 पृष्ठ 1112

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 192 पृष्ठ 616

3- चेस्टर डी.एन. एण्ड बावरिंग,एन क्वेश्चन्स इन पार्लियामेन्ट, पृष्ठ 551

अनुपूरक प्रश्नों का उद्देश्य यह होता है कि मूल्य प्रश्न के उत्तर में दी गयी सूचना में जो अपूर्णता होती है उसे पूर्ण कर दें । अनुपूरक प्रश्नों के लिये नियमों द्वारा कोई सीमा निर्धारित नहीं है इसलिए एक प्रश्न पर प्रायः कई-कई अनुपूरक प्रश्न सदन में उपस्थित होते हैं ।

अध्ययनाधीन विधान सभा में प्रतिपक्ष द्वारा काफी संख्या में अनुपूरक प्रश्न पूछे गये । यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि सदस्यों द्वारा इतने अधिक अनुपूरक प्रश्न क्यों पूछे गये ? क्या मन्त्रियों द्वारा दिये गये उत्तर अस्पष्ट थे या उनमें दी गयी सूचनायें अपर्याप्त थीं अथवा उनके पीछे अनुपूरक प्रश्नकर्ताओं का मन्तव्य राजनीतिक विरोध व आलोचना से अभिप्रेरित था या वे अनुपूरक प्रश्नों की बौछार से केवल उत्तरदाता मंत्रियों को आकुल करना चाहते थे --- विवेचन निम्नवत् है -

1 मई, 1973 को श्री विश्वनाथ कपूर ने अपने अल्प सूचित तारांकित प्रश्न में पूछा 'क्या वित्त मंत्री बताने की कृपा करेंगें कि नगरों के वर्गीकरण के आधार पर सरकारी कर्मचारियों के लिए भिन्न-भिन्न नगरों के लिए विभिन्न दरों से दैनिक भत्ते निर्धारित किये गये हैं यदि हाँ तो क्यों ?

इसके उत्तर हमें वित्त मन्त्री श्री नारायन दत्त तिवारी ने कहा जी हाँ" दैनिक भत्ते का विवरण संलग्न तालिका में दिया हुआ है । इस उत्तर पर आपत्ति करते हुए प्रश्नकर्ता श्री कपूर ने कहा कि प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर नहीं दिया गया जिसे माननीय अध्यक्ष जी ने भी स्वीकार किया । वित्त मंत्री ने अपने बचाव में यह तर्क प्रस्तुत किया कि 'ओरिजनल फाइल में क्यों' नहीं लिखा हुआ है । उनके इस तर्क के प्रत्युत्तर में प्रश्नकर्ता श्री विश्वनाथ कपूर ने कहा कि ' यह तो एजेण्डे पर ही छपा हुआ है ।' इसके बाद अन्य कोई तर्क न देने हुए वित्त मन्त्री जी ने यह स्वीकार किया कि हो सकता है कि छपने में कुछ गलती हो गयी हो अध्यक्ष द्वारा पूछने पर कि क्या आपको सूचना की आवश्यकता है वित्त मन्त्री ने कहा 'मैं पूरे प्रश्न का जवाब दे दूँगा'

सदस्यो द्वारा किये गये अनुपूरक प्रश्नों का माननीय मन्त्री अधिक संतोषजनक उत्तर न दे सके इसीलिए अन्त में अध्यक्ष ने यह कहते हुए कि 'प्रतीत होता है कि डेफनेट कुछ नहीं बता सकते' इस प्रश्न को समाप्त कर दिया ।[1]

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खाण्ड- 304 पृष्ठ 733-35

17 मार्च 1955 को श्री मुन्नू लाल द्वारा गृह उद्योगों पर बिक्रीकर के एक तारांकित प्रश्न पर सरकार की ओर से उत्तर दिया गया कि नोटिस की आवश्यकता है तत्पश्चात श्री ब्रजभूषण मिश्र ने पूरक प्रश्न किया- कि क्या माननीय मन्त्री जी यह बतलाने की कृपा करेगें कि कालीन में लगने वाले ऊन पर सेल टैक्स लिया जाता है या नहीं श्री मन्त्री जी ने कहा कि नोटिस की आवश्यकता है । पुनः अनुपूरक प्रश्नों पर मन्त्री जी बार-बार यह कहते रहे कि 'सूचना की आवश्यकता है' । बहुत शीघ्र जानकारी उपलब्ध करा दी जायेगी आदि-आदि । अन्त में मन्त्री जी के अस्पष्ट उत्तरों के कारण प्रश्नकर्ता सदस्य को कहना पड़ा कि 'आज कोई सूचना नहीं तो क्या इस प्रश्न को अन्य किसी दिन के लिए स्थगित करने की कृपा करेंगें' ।[1]

इसी प्रकार बिजनौर जिले में रोडवेज की प्रादेशिक समिति के बारे में श्री शिव कुमार शर्मा द्वारा पूछे गये तारांकित प्रश्न तथा उस पर किये गये अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर में बार-बार परिवहन मंत्री द्वारा यह कहा गया कि आवश्यक सूचना नहीं है अथवा सूचना एकत्र की जा रही है ।[2]

18 मार्च 1955 को जिला जालौन के एक डिप्टी इन्स्पेक्टर द्वारा गबन के राजा वीरेन्द्र शाह द्वारा रखे गये तारांकित प्रश्न पर पूछे गये अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में मन्त्रीगण द्वारा यह कहा गया कि 'अभी सूचना एकत्र की जा रही है' और पूर्ण सूचना एकत्र होने पर ही इन प्रश्नों का उत्तर दिया जायेगा' श्री सत्य सिंह राणा ने कहा 'जब इसके सम्बन्ध में सूचना ही नहीं थी तो फिर इस प्रश्न को रखने की क्या आवश्यकता थी' ।[3]

सदन में हुए उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष द्वारा ज्यादातर अनुपूरक प्रश्न सम्बन्धित मन्त्रियों द्वारा दिये गये उत्तरों में अधूरी सूचनायें होने अथवा दी गयी सूचनाओं में समुचित स्पष्टता न होने के कारण ही पूछे गये कभी - कभी उत्तरदाता मंत्रियों द्वारा प्रश्नों को टालने का भी प्रयास किया जाता है जो सदस्यों को अनुपूरक प्रश्नों हेतु प्रायः उत्तेजित करता है, एक अन्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आता है कि बहुधा मंत्रीगणों द्वारा उत्तरों की पूर्ण जानकारी व तैयारी के बिना ही सदन में आ जाने तथा 'सूचनायें एकत्रित की जा रही हैं अथवा जांच की जा रही है' आदि अति संक्षिप्त उत्तरों द्वारा

1- उत्तर प्रदेश विधानसभा कार्यवाही खण्ड 151 पृष्ठ संख्या 317

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 104 पृष्ठ 5-6

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 151 पृष्ठ 380

किसी प्रकार प्रश्नकाल को व्यतीत करने का प्रयास किया गया जो कि अनुचित है । साथ ही अनुपूरक प्रश्न करने वाले विरोधी सदस्यों द्वारा प्रायः शासन की विफलताओं और दोषों को परिलक्षित करने वाले प्रश्नों को ही बार-बार घुमा फिरा कर पूछा गया प्रश्नकर्ता सदस्यों के इस दृष्टिकोण को भी उचित नहीं कहा जा सकता । प्रश्नों के उद्देश्य व प्रभावशीलता के उपयुक्त विवेचन के पश्चात यह तथ्य विचारणीय है कि प्रश्नों का क्षेत्र वैयक्तिक वर्गीय या स्थानीय हितों तक ही सीमित था या उसका विस्तार प्रादेशिक व राष्ट्रीय हित तक भी था । अध्ययनाधीन विधान सभा में पूछे गये प्रश्नों में बहुधा प्रश्न स्थानीय व क्षेत्रीय हितों से सम्बन्धित थे । जिसमें प्रश्न कर्ताओं में अपने निर्वाचन क्षेत्र या किसी क्षेत्र विशेष की समस्याओं के विषय में सरकार से जानकारी मांगी --- 5 जून, 1978 को श्री देव कुमार (निर्दलीय) ने प्रश्न किया कि कृपया खेल कूद मन्त्री बतायेंगे कि अक्टूबर 1973-74, 75-76, तथा 77-78 में बाँदा जनपद के बालक-बालिकाओं के कौन से खेल प्रशिक्षण शिविर हुए अथवा नहीं ? --- यदि नहीं तो क्यों ?[1] तथा श्री राम आसरे वर्मा द्वारा इसी दिन लक्ष्मी कोल्ड स्टोरेज हरदोई के श्रमिक कर्मचारियों की हड़ताल के बारे में प्रश्न किया ।[2]

इसके पश्चात वर्ग विशेष जैसे किसान मजदूर , छात्र कर्मचारियों व अध्यापकों की समस्याओं व कठिनाइयों के विषय में किये गये प्रश्न आते हैं उदाहरणार्थ- श्री नारायन दत्त तिवारी ने 7 जुलाई 1952 को गोरखपुर रेलवे कर्मचारियों द्वारा गोली चलाये जाने पर हुई व्यक्तियों की मृत्यु व घायलों के बारे में प्रश्न पूछा ।[3] श्री गेन्दा ने 3 फरवरी , 1958 को प्रश्न पूछा 'क्या सरकार यह बतायेगी कि राष्ट्रपति गोरखपुर व बनारस आगमन पर छोटे कृषकों व भूमि हीन मजदूरों को रोजी-रोटी देने के लिए टेस्ट वर्क्स खोलने व माल गुजारी वसूली के सम्बन्ध में आश्वासन दिये गये थे ? यदि हाँ तो उन पर क्या कार्यवाही हुई[4] 4 मई 1973 को श्री आनन्त राम जायसवाल ने उत्तर प्रदेश नर्सिंग एशोसियेशन की माँगों के बारे में प्रश्न पूछा प्रश्न सदन में उपस्थित हुआ[5] श्री जगदीश गाँधी ने 3 मई 1973 को राजकीय विद्यालयों के कर्मचारियों तथा अध्यापको के स्थाईकरण तथा शिक्षा विभाग के लिपिकों एव चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के स्थायीकरण से सम्बन्धित दो प्रश्न पूछे[6] ।

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 334 अंक 10 पृष्ठ 1117

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 33 पत्रांक 10 पृष्ठ 1126

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 102 पृष्ठ 262

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 191 पृष्ठ 275

5- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 304 पृष्ठ 1131

6- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 304 पृष्ठ 1017

व्यक्ति विशेष की कठिनाइयों व समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्न भी प्रायः सदन में प्रस्तुत हुए । उदाहरणार्थ- 17 दिसम्बर, 1957 को श्री गौरी शंकर राय द्वारा समाजवादी नेता डा0 राम मनोहर लोहिया का लखनऊ जेल में स्वास्थ्य तथा उनसे व अन्य बन्दियों से मिलने से रूकावट के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा ।[1] श्री हलीमुद्दीन राहत मौलाई तथा श्री रियासत हुसैन ने श्रीमती आलिया खाँ, सहायक अध्यापिका, कन्या बेसिक विद्यालय , राजेन्द्र नगर गोण्डा के बिना पूर्व सूचना के निलम्बन के विषय में 10 मई 1973 को शासन से प्रश्न किया[2] तथा इसी प्रकार 4 मई 1973 को श्री मोहम्मद इसरार अहमद, श्री राम जियावन व श्री राम प्रसाद देशमुख द्वारा श्री अवधेश कुमार श्रीवास्तव की बाँदा कलेक्ट्रेट में नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया[3] ।

राज्य के हितों से सम्बन्धित नीतियों के बारे में भी प्रश्न सदन में बहुधा प्रस्तुत हुए , उदाहरणार्थ- श्री गुलाब सेहरा ने प्रश्न पूछा कि क्या सरकार ने गत वर्ष की तुलना में बिजली की दरों में वृद्धि की है यदि हाँ तो कब , कितनी, व वे कौन से कारण हैं जिनसे बिजली की दरों में वृद्धि करनी पड़ी तथा वृद्धि से विद्युत परिषद को कितना लाभ हुआ[4] । तथा श्री श्याम धर मिश्र , कांग्रेस (आई) ने 20 मार्च, 1978 को सरकारी नियन्त्रण में संचालित चीनी मिलें व हानि के विवरण के बारे में प्रश्न पूछा[5], 9 मई 1973 को श्री मोहम्मद असरार अहमद तथा श्री शफीक अहमद ने चीनी मिलों के राष्ट्रीयकरण हेतु श्री वीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षयता में गठित समिति के प्रतिवेदन के सम्बन्ध में प्रश्न किया [6] । इसी दिन श्री रामपाल यादव ने अपने एक तारांकित प्रश्न के द्वारा सेन्ट्रल बाढ़ नियन्त्रण बोर्ड की 14 दिसम्बर 1970 को नई दिल्ली में हुई बैठक में उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में की गई संस्तुतियों के सम्बन्ध में सिंचाई मंत्री से जानकारी माँगी [7] ।

प्रतिपक्ष द्वारा कभी-कभी ऐतिहासिक व पुरातत्व महत्व के विषयों पर प्रश्न पूछे गये - 21 मार्च 1955 को श्री गंगा धर मैठाणी द्वारा गोपेश्वर जिला गढ़वाल में श्री बुद्धनाथ जी के बहुत प्राचीन मन्दिर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था व उसके रख-रखाव में अव्यवस्था के बारे में सरकार से प्रश्न किया गया[8] ।

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 189 पृष्ठ 624

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 305 पृष्ठ 237

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 304 पृष्ठ 1148

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 334 पृष्ठ 1098

5- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 330 अंक 2 पृष्ठ 153

6- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 305 पृष्ठ 109

7- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 305 पृष्ठ 132

8- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 152 पृष्ठ 12

व्यापक राष्ट्रीय हितों से सम्बन्धित कोई प्रश्न इस अवधि में विधान सभा में प्रस्तुत नहीं हुआ , क्योंकि सामान्यतः प्रदेश के शासन के क्षेत्राधिकार के बाहर कोई प्रश्न विधान सभा में नहीं पूछा जा सकता ।

उत्तर प्रदेश विधान सभा में सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों से सम्बन्धित उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं -

1- अधिकांश सदस्यगण प्रश्नों के वर्ग भेट को समुचित रूप से नहीं समझ सके । क्योंकि उनके द्वारा अभिसूचित अल्पसूचित तारांकित प्रश्नों को बहुधा तारांकित अथवा अतारांकित प्रश्नों के रूप में और तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्नों के रूप में स्वीकार किया गया ।

2- प्रश्न पूछने वालों में अग्रणी प्रति पक्ष के कुछ प्रमुख सदस्य ही रहे । ये विभिन्न राजनीतिक दलों के अग्रिम पंक्ति के सदस्य थे ।

3- सदस्यों की प्रश्नों से सम्बन्धित शंकाओं के समुचित समाधान में मंत्रियों की प्रायः असमर्थता और विरोधी सदस्यों का येनकेन प्रकरेण सरकार की आलोचना करने का मन्तव्य, सदन में अनुपूरक प्रश्न पूछने का प्रमुख कारण रहा ।

4- प्रमुख रूप से प्रश्न सरकार की नीतियों व सरकारी निर्णयों के सम्वन्ध में पूछे गये कुछ प्रश्न विभिन्न राजकीय दलों के द्वारा उनकी अपनी विचार धाराओं पर आधारित विभिन्न दृष्टिकोणों से पूछे गये हैं जो उनकी नीतियों से मेल खाते थे ।

5- सदस्यों द्वारा ज्यादातर प्रश्न क्षेत्रीय व स्थानीय मामलों से सम्बन्धित थे जो कि सदस्यों के निर्वाचन क्षेत्र से सम्बन्धित थे ।

इस प्रकार प्रतिपक्ष विशिष्ट मामलों में जनमत को ही व्यक्त करता है । कभी कभी विशिष्ट अवसर पर विरोधी दल सरकार को प्रभावित करके जनता में अपनी छवि को सुधारना चाहते हैं । इस प्रकार के प्रश्नों से सम्बन्धित मामलों के सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट करवाना तथा यथा सम्भव नीति स्पष्ट करवाना प्रमुख लक्ष्य होता है जिससे कि नीति विशेष के पक्ष में विपक्ष द्वारा जनमत तैयार होता रहे ।

प्रश्नों के माध्यम से प्रतिपक्षी सदस्यों को ऐसी जानकारी इकट्ठी करने में भी मद्द मिलती है जो कि उन्हें अपने स्त्रोतो अथवा प्रेस के माध्यम से प्राप्त नहीं हो पाती है साथ ही स्थानीय स्तर की विशिष्ट जानकारी विशिष्ट सदस्य जानना चाहें व सदस्य प्रश्नों के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं ।

आधे घण्टे की चर्चा -

लोक महत्व के ऐसे विषय, जो हाल ही में सदन में प्रश्नोंत्तर का विषय बन चुके हों लेकिन सदस्य सदन में दिये गये उत्तरों से पूर्णतया सन्तुष्ट न हो अथवा उस विषय पर पूर्ण स्पष्टीकरण चाहते हों तो वह प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली में निहित प्राविधान के अनुसार उस विषय पर आधे घण्टे की चर्चा उठा सकता है ।[1] जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दे यह समय साधारणतया सदन के उपवेशन के दौरान मंगलवार या बृहस्पतिवार को सामान्य कार्य की समाप्ति के उपरान्त नियत किया जाता है ।[2] इस हेतु विवाद चाहने के दिन से 3 दिन पूर्व एक लिखित सूचना सदन को भेजनी पड़ती है जिसमें वाद-विवाद का विषय , उससे सम्बन्धित प्रश्न संख्या तथा संक्षेप चर्चा कराने का कारण स्पष्ट रूप से उल्लेखित होना आवश्यक है ।[3] इस चर्चा के लिये सदन में कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता है और न मत लिये जाते हैं । जिस सदस्य द्वारा सूचना दी जाती है वह एक संक्षिप्त वक्तव्य द्वारा उस विषय का पुरः स्थापन करते हैं । और सम्बद्ध मंत्री संक्षेप में उत्तर देते हैं , तत्पश्चात अध्यक्ष द्वारा अन्य सदस्यों को किसी तथ्य विषय के अतिरिक्त स्पष्टीकरण के प्रयोजन से प्रश्न पूछने की अनुज्ञा दी जाती है । विषय पुरः स्थापित करने वाले सदस्य को उत्तर देने के लिए दूसरी बार बोलने की अनुज्ञा दी जा सकती है और सम्बद्ध मंत्री के अन्तिम कथन के साथ चर्चा समाप्त हो जाती है ।[4]

उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्ययनाधीन काल(1952 से 1985 तक) प्राप्त आधे घण्टे की सूचनाओं का विवरण निम्नवत् है[5]-

---

1- नियम 49 उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली
2- नियम 49 (2) उत्तर प्रदेश विधान प्रक्रिया नियमावली
3- नियम 49 (3) उत्तर प्रदेश विधान प्रक्रिया नियमावली
4- नियम 49 (5) उत्तर प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया नियमावली
5- उत्तर प्रदेश विधान सभा संक्षिप्त सिंहावलोकन से प्राप्त विवरण

तालिका

विधान सभा	आधे घण्टे की चर्चाओं हेतु प्राप्त सूचनायें	स्वीकृत आधे घण्टे की चर्चाओं की संख्या
प्रथम	अज्ञात	22
द्वितीय	अज्ञात	43
तृतीय	अज्ञात	26
चतुर्थ	11	1
पंचम	223	49
षष्टम	59	15
सप्तम्	69	14
अष्टम्	63	16

उत्तर प्रदेश विधान सभाओं के अध्ययनाधीन काल में प्राप्त होने वाली आधे घण्टे की चर्चाओं में से प्रथम द्वितीय व तृतीय की प्राप्ति चर्चाओं की निश्चित संख्या बताने में विधान सभा सचिवालय असमर्थ रहा । विधान सभा कार्यवाहियों को देखने से पता चलता है कि अध्ययनाधीन काल में 186 आधे घण्टे की चर्चायें स्वीकृत हुई[1] प्राप्त सूचनाओं की संख्या देखने से ऐसा लगता है कि यद्यपि सत्ता पक्ष सहित विपक्षी सदस्यों ने काफी संख्या में सूचनायें दी परन्तु सम्भवतः उनके पर्याप्त लोक महत्व न होने के कारण अथवा अन्य किसी प्रकार से अनियमित होने के कारण अध्यक्ष ने उन्हें अस्वीकार कर दिया ।

अध्ययनाधीन विधान सभा में हुई आधे घण्टे की चर्चाओं का सम्यक् विवेचन निम्नवत् है -

समान्यतयः नियत दिन की कार्य सूची आधे घण्टे की एक ही चर्चा रहती है लेकिन कुछ अवसरों पर अध्यक्ष ने विपक्ष की गम्भीरता एवं महत्व को देखते हुए सम्बन्धित सदस्यों के अग्रह पर एक दिन में दो सूचनाओं[2] पर आधे घण्टे की चर्चा की अनुमति प्रदान कर विपक्ष को कर्तव्य वहन के लिए प्रेरित किया उदाहरणार्थ- 8 मई 1957 को श्री शिव प्रसाद नागर द्वारा 18 अप्रैल,1957

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही (1952 से 1984) तक से संकलित

2- नियम 49 (4) उत्तर प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया नियमावली

को पूछे गये अल्पसूचित प्रश्न संख्या 1 व 2 के उत्तर से उत्पन्न विषय जो पश्चिमी जिलों में गन्ना पिराई से सम्बन्धित था पर प्रजा समाजवादी दल के श्री गेण्दा सिंह के प्रस्ताव पर आधे घण्टे की चर्चा हुई और उसी दिन (8 मई 1957) को श्री त्रिलोकी सिंह नेता विरोधी दल द्वारा 30 अप्रैल 1957 को पूछे गये अल्पसूचित प्रश्न खण्ड के उत्तर से उत्पन्न कानपुर मेडिकल कालेज में की गयी नियुक्तियों के विषय पर त्रिलोकी सिंह के प्रस्ताव पर चर्चा हुई[1] इसी प्रकार 3 सितम्बर 1959 को प्रथक् श्री राज नारायन द्वारा उठायी गयी चर्चा सरकार द्वारा हिन्दुस्तान अल्युमिनियम कार्पोरेशन को रिहन्द डैम की बिजली देने के विषय में, दूसरी उतरौली जिला अलीगढ़ में पुलिस अधिकारियों की कथित ज्यादतियों द्वारा श्री नेक राम शर्मा दो आधे घण्टे की चर्चा हुई । इसी संदर्भ में 4 अप्रैल 1963 तथा 9 मार्च 1965 , 12 मार्च 1958 , 28 अगस्त 1969, 18 जून 1970 , 26 अगस्त 1971 तथा 8 मई 1972 को दो विषय पर चर्चा कराई गयी[2] ।

आधे घण्टे की चर्चायें स्वीकृत विषय पर विवाद यदि समय से पहले समाप्त न हो जाये, तो प्रारम्भ होने के आधे घण्टे बाद स्वतः समाप्त हो जाता है । लेकिन कुछ अवसरों पर अध्यक्षासन ने सदन की अनुमति से विपक्षी की समयवृद्धि की माँग को भी स्वीकार किया उदाहरणार्थ- 12 सितम्बर 1957 को पलिया खीरी में एक सुगर मिल स्थापित करने के विषय पर 8 सितम्बर 1964 को प्रदेश में अंग्रेजी भाषा में बनाया गया अधिनियमों के हिन्दी अनुवाद के विषय पर होने वाली चर्चा का समय क्रमशः 10-5 मिनट बढ़ाया गया ।

कुछ उदाहरण ऐसे भी देखने को मिले , जब अध्यक्ष ने विषय के महत्व के आधार पर आधे घण्टे की चर्चा के बाद विपक्ष की माँग पर उस विषय पर अन्य नियमों के अन्तर्गत विवाद जारी रखा उदाहरणार्थ- 14 फरवरी 1958 को भूख से मृत्यु और उससे बचने के उपाय से सम्बन्धित विषय पर चर्चा के समय प्रजा समाजवादी दल के श्री नारायन दत्त तिवारी ने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए आधे घण्टे की चर्चा के बाद उस पर नियम 52 के अन्तर्गत चर्चा के माध्यम से विवाद जारी रखने की माँग की[3]। सत्ता पक्ष की सहमति से उपाध्यक्ष ने इसे स्वीकार किया । इसी प्रकार 24 अगस्त 1961 को जनसंघ के श्री गोविन्द सिंह विष्ठ द्वारा उठाये गये 'आगामी आम चुनाव में मत पत्रों में उर्दू में भी नाम अंकित होने तथा सरकारी सचिवालय में हिन्दी के प्रयोग से सम्बन्धित विषय

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाहियों का संक्षिप्त सिंहावलोकन 1957 प्रथम सत्र
2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाहियों के संक्षिप्त सिंहावलोकनों से प्राप्त विवरण
3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही दि० 14 फरवरी 1958.

पर आधे घण्टे की चर्चा में पूर्ण जानकारी देने में जब मुख्य मंत्री ने असमर्थता व्यक्त की तो अध्यक्ष ने इस चर्चा के बाद श्री विष्ट के अग्रह पर इसी विषय को नियम 52 के अन्तर्गत चर्चा दो घण्टे हेतु स्वीकार किया[1] । इस प्रकार विपक्ष ने महत्वपूर्ण विषयों पर अधिकारिक चर्चा कराने में अपनी भूमिका निभायी लेकिन कुछ अवसर ऐसे आये जब विपक्ष की उदासीनता के कारण उठाये गये विषय पर या तो चर्चा न हो सकी या चर्चा अधूरी रह गयी । उदाहरणार्थ- 28 मई, 1953 को सदस्य की अनुपस्थिति के कारण विवाद न हो सका, तथा अगस्त 1969 को आई0टी0आई0 गोण्डा में मशीन इत्यादि आई0टी0आई0 सीतापुर ले जाते समय बाराबंकी में ट्रक उलट जाने की दुर्घटना के सम्बन्ध में चर्चा माननीय सदस्यों की अनुपस्थिति के कारण न हो सकी[2] । इसी प्रकार 30 अप्रैल 1970 को 'उप कन्ट्रोलर इस्पात रिश्वत के आरोप में निलम्बन की आज्ञा के बावजूद उन्नति पाकर कार्य कर रहें हैं" पर चर्चा सदस्यों की अनुपस्थिति के कारण नहीं हो सकी[3] । एवं 19 अक्टूबर 1955 को गणपूर्ति के अभाव में तथा 18 जून 1970 को गणपूर्ति के अभाव में व 15 दिसम्बर 1978 को तथा 22 मार्च 1983 को गणपूर्ति के अभाव में चर्चा न हो सकी[4] कुछ चर्चायें समय के अभाव के कारण या बैठकें समाप्त हो जाने के कारण न हो सकी- उदाहरणार्थ- 3 जून 1970, 9 जून 1970 को समय अभाव के कारण चर्चा न हो सकी तथा 2 जुलाई 1970 को श्री विश्वनाथ कपूर द्वारा उठायी गई चर्चा । जुलाई 1970 को विधान सभा की बैठकें समाप्त हो जाने के कारण नहीं हो सकी ।

अनेक अवसरों पर उत्तर प्रदेश विधान सभा में प्रतिपक्ष ने ऐसे विषयों को भी आधे घण्टे की चर्चा का विषय बनाने में सफलता प्राप्त की, जो सदन में प्रश्नोत्तर का विषय नहीं बनी थी ऐसे विषयों पर विपक्ष का दृष्टिकोण सम्भवतः सरकार से जानकारी प्राप्त करना सदन व सरकार को सम्बन्धित समस्या से अवगत कराना अथवा उस पर मात्र वाद-विवाद कराना था । उदाहरणार्थ- 2 सितम्बर 1965 को उठाया गया राप्ति नदी के पुल टूटने सम्बन्धित जांच समिति की रिपोर्ट पर दोषी पाये गये अधिकारियों के विरूद्ध की गयी कार्यवाही से सम्बन्धित विषय , 9 सितम्बर 1965 को गल्ले का बफर स्टाक बनाने तथा गॉव की दुकानों को देने के सम्बन्ध में , 7 मार्च 1963 को प्रदेश के विभिन्न जिलों में सुरक्षा कोष के धन में कथित गड़वड़ी की शिकायतों के सम्बन्ध में

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही २५ अगस्त १९८१.

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही संक्षिप्त सिंहावलोकन पंचम विधान सभा द्वितीय सत्र (1969)

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा संक्षिप्त सिंहावलोकन पंचम विधान सभा 1970 प्रथम सत्र

4- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 335 अंक -6 पृष्ठ 42।

10 फरवरी 1966 को प्रदेश के राज्य कर्मचारियों को वेतन वृद्धि तथा आन्तरिक सहायता देने के सम्बन्ध में तथा 4 अगस्त 1966 को प्रदेश में सीमेन्ट की चोर बाजारी तथा उसमें मिलावट के सम्बन्ध में , इन सभी विषयों को अध्यक्ष ने सार्वजनिक महत्व का मानकर आधे घण्टे की चर्चा करायी । सदन में हुई आधे घण्टे की चर्चाओं को प्रतिपक्ष द्वारा उठाने का प्रमुख कारण सदन में पूछे गये प्रश्नों के सम्बन्ध में मंत्रियों द्वारा दिये गये उत्तरों से प्रश्न कर्ताओं का पूर्णतया सन्तुष्ट न होना था और उनका चर्चा के समय सदस्यों द्वारा बहुधा यह आरोप लगाया गया कि प्रश्नों का उत्तर देते समय सम्बन्धित विषयों पर सरकार ने पर्दा डाला है अथवा तथ्यों को छिपाया गया है - ऐसे विषयों पर होने वाली चर्चाओं में कभी कभी प्रतिपक्ष के तथ्यों से सरकार ने सहमति भी व्यक्त की । उदाहरणार्थ- 18 फरवरी 1953 को श्री गेन्दा सिंह (प्रजा समाजवादी दल नेता) ने चावल की खरीद पर प्रश्न पूछा मंत्री महोदय द्वारा दिये गये उत्तर से असन्तुष्ट श्री गेन्दा सिंह उत्तर के विरोधाभास की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा कि 'मुझे जो प्रतिलिपि मिली है और जो माननीय अन्न मन्त्री जी ने कहा है वह उससे भिन्न है' इस बात को श्री अध्यक्ष महोदय ने भी स्वीकार किया- वाद-विवाद के अन्त में अन्न मंत्री श्री बनारसी दास ने स्वीकार किया कि 'यह उत्तर पहले प्रश्न संख्या 36 के जवाब में डिपार्टमेन्ट की तरफ से दिया गया था लेकिन अब जो मैने उत्तर दिया है वह सही है' 25 अप्रैल 1956 को नेशनल इण्टर कालेज, मौदहा, जिला हमीरपुर से सम्बद्ध विषय पर सरकार ने कालेज में होने वाले गबन से सहमति व्यक्त की तथा तीखी बहस के बाद अन्ततः विपक्ष के इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि कालेज के प्रिंसिपल व मैनेजर भाई-भाई हैं[2] जबकि प्रारम्भ में सरकार इस सच्चाई से मुकर रही थी । 28 अगस्त 1958 को तो सिंचाई कर्मशाला मण्डल कानपुर के कृषि अभियन्ता द्वारा किये गये कार्य मे गबन से सम्बन्धित विषय पर सिंचाई राज्य मंत्री ने प्रक्रिया सम्बन्धित गलती को स्वीकार करते हुए सदन से माफी माँगी[3] ।

चर्चा के समय जब भी सत्ता पक्ष ने विपक्ष से पूर्ण असहमति व्यक्त की या उस विषय को गम्भीरता से नहीं लिया तो विपक्ष द्वारा इस पर कड़ा रोष व्यक्ति किया गया- उदाहरणार्थ- 24 सितम्बर 1953 को श्री जगन्नाथ मल्ल द्वारा 'पड़रौना मिल में चीनी की विक्री' के बारे में हुई आधे घण्टे की चर्चा में प्रस्तावक श्री मल ने चीनी विक्री के सम्बन्ध में जिलाधीश व नियोजन

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 118 पृष्ठ 99

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही खण्ड

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 197 पृष्ठ 337

मन्त्री के परस्पर विरोधी बयानों की तरफ सदन का ध्यान आकृष्ट किया व जॉच किये जाने की मॉग की किन्तु सत्ता पक्ष द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर उन्होने कड़ा रोष व्यक्त करते हुए कहा - 'जो गलती मिल मालिकों ने की, वही डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट को करना क्या यह उचित है और ऐसा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट कि वह इतने कम दाम में चीनी बेचता है पार्लियामेन्ट में कुछ कहता है यहाँ पर कुछ कहता है फिर माननीय मन्त्री जी डिफेन्ड करते हैं तो माननीय अध्यक्ष मैं माननीय चन्द्र भानु गुप्त , बनारसी दास व डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट पर प्रिविलेज का प्रश्न उठाना चाहता हूँ ----- मुझे बड़ा दुख है कि सरकार अपने उन आदमियों को डिफेन्ड करती है जो गलत काम करते हैं और इसलिए इस सरकार का अब और चलना मुश्किल है' [1] 10 दिसम्बंर 1957 को डाक्टर लोहिया के स्वास्थ्य और उनसे मुलाकात करने की सुविधा से सम्बन्धित विषय पर सत्ता पक्ष द्वारा असहमति व्यक्त किये जाने पर श्री राजनारायन (नेता समाजवादी दल) ने रोष व्यक्त करते हुए -- 'उनसे मिलने की इजाजत न देकर सरकार ने सिद्ध किया है कि सरकार की मन्शा निश्चित रूप से डा0 लोहिया हत्या करने की है' तथा 'सरकार की ओर से जो बार बार यह कहा जा रहा है कि हमने उनके स्वास्थ्य की पूरी परीक्षा ली है यह बिल्कुल निराधार है इसका कारण यही मालूम देता है कि सरकार डा0 लोहिया से अपने को खतरा समझती है वह चाहती है कि उनसे जल्द से जल्द पिण्ड छूटे, अगर मंत्रियों और सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियों पर अटैम्प आफ मर्डर का केस चलाने की इजाजत दी जाये तो मैं उसे भी चलाऊँ[2]'

प्रतिपक्ष द्वारा आधे घण्टे की चर्चा में सत्ता पक्ष के उत्तरों से असन्तुष्टि व्यक्त करने के लिए सदन त्याग का मार्ग भी अपनाया दिनांक 30 दिसम्बर 1980 को इटावा जनपद में परिचालकों के चयन और चयन के बाद प्रशिक्षण पूर्ण कर लेने के बाद चयन सूची निरस्त कर दिये जाने के सम्बन्ध में वाद-विवाद के अन्तर्गत प्रतिपक्ष ने माँग की कि जिन अधिकारियों ने अनियमिततायें की हैं उनके विरूद्ध त्वरित कार्यवाही की जानी चाहिये - परिवहन मंत्री श्री वीर बहादुर के कहने पर की जॉच पड़ताल हो रही है- श्री रियासत हुसैन इत्यादि सदस्यों ने यह कहते हुए कि मंत्री जी नियम विरूद्ध कार्यवाही करने वाले अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही करने से झिझक रहें हैं सदन का परित्याग किया[3] । दिनांक 30 अगस्त 1982 को खाद्य एवं वस्तु निगम के अध्यक्ष के पद पर श्री जगदीश मिश्र उर्फ बाल्टी बाबा के विरूद्ध लगाये गये आरोपों के विषय

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 152 अंक 5 पृष्ठ 341 (31 मार्च 1955)

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 189 पृष्ठ 648-649

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 347 , 30 दिसम्बर 1980 पृष्ठ 160

में दिनांक 26 अगस्त 1982 को पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या 8 के सम्बन्ध में आधे घण्टे की चर्चा में प्रतिपक्ष ने श्री जगदीश मिश्र को पद से हटाने की मांग की मुख्य मंत्री श्री श्रीपति मिश्र ने जाँच कराये जाने के बाद ही कार्यवाही किये जाने की बात कही- प्रतिपक्ष ने यह कहते हुए कि आप साइड-टेकिंग कर रहें हैं सम्पूर्ण विपक्ष ने सदन त्याग दिया । तथा प्रतिपक्ष की अनुपस्थिति में अन्ततः चर्चा समाप्त हो गयी[1] ।

बहुधा प्रतिपक्ष द्वारा सरकार द्वारा प्रश्नों में वांछित सूचनाओं के अभाव के कारण आधे घण्टे की चर्चा के प्रश्न उठाये गये - चतुर्थ विधान सभा में 18 जुलाई 1967 को सहकारिता विभाग के एक अधिकारी श्री के0के0 सिंह को उनके विरूद्ध सर्तकता आयोग द्वारा की जा रही जाँच के बावजूद, पदोन्नति देने के सम्बन्ध में 12 जुलाई 1967 को श्री नवल किशोर द्वारा पूछे गये 2 तारांकित प्रश्नों के विषय में आधे घण्टे की चर्चा हुई । चर्चा के प्रस्तावक श्री नवल किशोर ने कहा कि प्रश्नोत्तर के दौरान 'सहकारितामंत्री ने सही वाक्यात हाउस के सामने पेश नहीं किये' उन्होने अपने भाषण के अन्त में सहकारिता मन्त्री से सही तथ्यों को प्रस्तुत करने का अनुरोध किया अन्त में सहकारिता मंत्री श्री गंगा भक्त सिंह ने सभी तथ्यों को विस्तार में प्रस्तुत किया[2] ।

सदन में हुई आधे घण्टे की चर्चा के उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इन चर्चाओं को उठाने का मूल कारण सदन में पूछे गये प्रश्नों के सम्बन्ध में मंत्रियों द्वारा दिये गये उत्तरों से प्रश्न कर्ताओं का पूर्णतया सन्तुष्ट न होना था और इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विधान सभा में ऐसी स्थितियाँ भी कभी - कभी उत्पन्न हुई कि मंत्रीगण प्रश्नों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी के अभाव में अथवा वांछित सूचना के अभाव में प्रतिपक्ष की शंकाओं का समाधान करने में पूर्णतया असमर्थ रहे ।

प्रतिपक्ष द्वारा आधे घण्टे की चर्चाओं का प्रयोग अधिकतर सरकार की अलोचना के साधन के रूप में किया गया इसका उद्देश्य सरकार की नीतियों में परिवर्तन नहीं रहा वरन् इसका उददेश्य कुछ प्रमुख मुद्दों को उजागर कर उन पर स्पष्टीकरण मांगना रहा है और जनमत विशेष के मामलों पर सरकारी नीति क्या है यह भी स्पष्ट करना रहा है इस प्रकार विरोधी दलों ने प्रश्नकाल व आधे घण्टे की चर्चाओं के माध्यम से 'विरोधीदल सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क सूत्र की भूमिका निभाते हैं' को चरितार्थ किया है तथा प्रतिपक्ष ने जनता के हितचिन्तक के रूप में प्रश्नकाल के माध्यम से अपना दबाव सदन में सरकार पर बनाये रखा है ।

1- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड 358 पृष्ठ 1422

2- उत्तर प्रदेश विधान सभा कार्यवाही खण्ड पृष्ठ 336-42

अध्याय – 5, कार्यपालिका पर नियंत्रण के विभिन्न प्रावधान: विभिन्न प्रस्ताव व विपक्ष

(क) कार्यस्थगन प्रस्ताव
(ख) अविश्वास प्रस्ताव
(ग) निन्दा प्रस्ताव
(घ) अन्य– विशेषाधिकार प्रस्ताव

कार्यपालिका पर नियंत्रण के विभिन्न प्रावधान

विभिन्न प्रस्ताव व विपक्षः–

भारतीय संविधान में केन्द्र व राज्यों के शासन हेतु संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है जो मुख्यतः ब्रिटिश पद्धति के अनुरूप है। संसदात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमण्डल होता है, जिसके सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और वे व्यवस्थापिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं तथा व्यवस्थापिका के विश्वास पर ही मंत्रि मण्डल का अस्तित्व निर्भर करता है।[1]

मंत्रिमण्डल के व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होने का अर्थ यह है कि व्यवस्थापिका को मंत्रि मण्डल के कृत्यों पर नियंत्रण रखने का अधिकार होता है । व्यवस्थापिका द्वारा यह नियंत्रण विभिन्न संसदीय साधनों द्वारा स्थापित किया जाता है । जे.एस. मिल के शब्दों में "प्रतिनिधि सभा का उपयुक्त कार्य...शासन की निगरानी करना और उनका नियंत्रण करना है । शासन के कार्यों को पूर्ण प्रकाश में लाना है । उसके जिन कार्यों में किसी को सन्देह हो उनके स्पष्टीकरण और उनको युक्ति युक्त प्रमाणित करने के लिये बाध्य करना है, यदि शासन के कार्य अनुचित हो तो तो उनकी निन्दा करना एवं भर्त्सना करना है और यदि वे व्यक्ति जिनपर शासन का कार्यभार है, अपनी शक्ति का दुरूपयोग करें अथवा जनता के प्रति विश्वासघात करें अथवा शासन का कार्य इस प्रकार चलायें जो कि राष्ट्र की विचार युक्त और अभिव्यक्त स्पष्ट इच्छा के विरूद्ध व प्रतिकूल हो तो इन व्यक्तियों को अपदस्थ कर उनके स्थान पर स्पष्टतः अथवा वस्तुतः उनके उत्तराधिकारियों को नियुक्त करना है"[2]

मंत्रि मण्डल पर नियंत्रण के व्यवस्थापिका के उपर्युक्त अधिकारों के प्रयोग हेतु उ0प्र0 विधान सभा के प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत स्वीकृत साधनों में प्रश्नकाल प्रस्ताव तथा संकल्प आदि प्रमुख हैं । प्रस्ताव व साधन के अन्तर्गत कार्य स्थगन प्रस्ताव, निन्दा व अविश्वास प्रस्ताव, विशेषाधिकार प्रस्ताव आते हैं, आदि प्रमुख हैं । प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ पंचम व षष्टम सप्तम व अष्टम विधान सभाओं के कार्यकाल में इन साधनों में प्रस्ताव साधन की प्रयुक्ति व प्रभावशीलता निम्नवत् है ।

व्यवस्थापिका द्वारा विचार हेतु उपस्थित विषयों के सम्बन्ध में विवादोपरान्त लिये गये निर्णय वास्तव में उसकी इच्छा अथवा मत की अभिव्यक्ति होते हैं ।[3] यह विषय सामान्यतयः सदन के समक्ष प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत होते हैं । प्रस्ताव अत्यन्त साधारण

---

1. द्विसदनात्मक व्यवस्थापिकाओं में साधारणतः यह अधिकार निम्न सदन को होता है (देखे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) व 164(2)
2. मिल जे0एस0:आन लिबर्टी एण्ड कंसी डेरेशन्स आन रिप्रजेन्टेटिव गवर्नमेंट. पृष्ठ–172
3. मोर एस०एस०: प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ इण्डियन पार्लियामेंट, पृष्ठ–228

भाषा में "उस प्रस्थापना को कहते हैं जो सदन के विचारार्थ प्रस्तुत की जाये और जिस पर सदन का निर्णय मांगा जाये ।[1] व्यापक अर्थ में प्रस्ताव शब्द का अर्थ किसी ऐसे प्रस्ताव से है जिसके बारे में सदन का निर्णय जानने के लिये उसे सदन में पेश किया जाता है । सदन का एक मुख्य कर्तव्य विभिन्न मामलों में अपनी इच्छा निश्चित करना है । इस अभिप्राय से जिस प्रश्न के बारे में भी सदन को निर्णय करना होता है उसे किसी सदस्य द्वारा सदन में प्रस्तावित किया जाना चाहिये । वस्तुतः प्रस्ताव ही संसदीय कार्यवाहियों का मूलाधार है ।[2]

वर्तमान प्रथा के अनुसार जिस रूप में किसी प्रस्ताव पर सदन में मतदान होता है उसे उस प्रस्ताव का प्रस्तावक पेश करता है। प्रस्ताव उपस्थित किये जाने के पश्चात सदस्य उस प्रस्ताव के विचारार्थ विषय के अन्तर्गत ही उस पर चर्चा करते हैं और फिर बाद में यदि उसको प्रस्तावक वापस न ले ले सदन उस प्रस्ताव को इसके पूर्ण मूल रूप में रद्द कर देता है अथवा कुछ संशोधनों को स्वीकार करता है ।[3]

किसी प्रस्ताव पर बहस की 3 अवस्थायें होती हैं अर्थात प्रस्ताव तैयार करना, प्रस्तुत करना तथा प्रस्ताव पर मतदान । प्रस्ताव का प्रस्तावक इसे इस रूप में निर्मित करता है जिस रूप में वह इसे सदन द्वारा पारित देखना चाहता है और जिस पर बड़ी सुविधा से मतदान किया जा सकता है । इस तर्क के आधार पर जो सदस्य किसी प्रस्ताव को उसके मूल रूप से भिन्न देखना चाहता है इसे अध्यक्ष द्वारा मूल प्रस्ताव के प्रस्तावित होने के पश्चात इस आशय से संशोधन प्रस्तुत करने चाहिये इस प्रकार के संशोधन भी इस रूप में होने चाहिये जिसमें संशोधित रूप में वह प्रस्ताव सदन द्वारा पारित हो सके और वह अवश्य ही मुख्य प्रस्ताव की विषय वस्तु पर आधारित होना चाहिये ।[4]

विधान सभा के कार्य संचालन व प्रक्रिया नियमावली के अधीन कुछ विशिष्ट नियम हैं जिन्हें विभिन्न प्रस्तावों की स्वीकृति, आकार तथा रूप एवं इनके प्रस्तावित किये जाने के तरीकों पर लागू किया जाता है । ये संसद व राज्य विधान सभाओं की प्रक्रिया नियमावली में वर्णित होते हैं ।

(क) **कार्य स्थगन प्रस्ताव:-**

किसी लोक महत्व के अविलम्बनीय विषय पर सदन में यथाशीघ्र चर्चा करने के उद्देश्य से सदन के कार्य स्थगन का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का प्रावधान ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स की भाँति भारतीय व्यवस्थापिकाओं के प्रक्रिया नियमों

---

1. पचौरी परमात्मा शरण, संसदीय पद्यति, पृ0-125
2. कौल, शकधर: इन्डियन पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर, पेज- 157
3. -पूर्वोक्त-पृ0- 158
4. कौल एवं शकधर: इण्डियन पार्लियामेंट्री प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर, पेज- 159

में भी किया गया है। "में" नें कार्यस्थगन प्रस्ताव को परिभाषित करते हुये लिखा है – स्थगन प्रस्ताव वस्तुतः सदन को विभिन्न मामलों पर बिना किसी निर्णय को अभिलेखित किये विचार का अवसर देने के उद्देश्य से खोजा गया विशिष्ट साधन है ।[1]

यह सदन के स्थगन के लिये मूल प्रस्ताव के रूप अर्थात स्वतंत्र रूप से नकि किसी अन्य प्रश्न पर हो रही चर्चा के दौरान प्रस्तुत किया गया एक ऐसा प्रस्ताव है जो सदन की बैठक की दैनन्दिन कार्यवाहियों के पूर्व निर्धारित कार्यक्रम में रुकावट पहुँचाने के आशय से विशेष रूप से अपनाई गयी एक प्रक्रिया है ।[2]

लोक सभा के प्रथम अध्यक्ष श्री मावलंकर ने स्थगन प्रस्ताव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये अभिमत व्यक्त किया था कि-"स्थगन प्रस्ताव वास्तव में एक अत्यन्त अपवादित बात है । स्थगन प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य सभा के सामान्य कार्य को रोकर अविलम्बनीय लोक महत्व के सुस्पष्ट विषयों पर चर्चा करने के प्रयोजन से सदन के कार्य को स्थगित करना होता है । किन्तु किसी ऐसे विषय पर चर्चा की अनुमति देना जिसके सम्वन्ध में पूर्व सूचना न दी गयी हो और जो विषय सूची में उल्लिखित न किया गया हो अनेक सदस्यों के लिये अन्याय कारक है । इसी लिये यह प्रथा रही है कि उस दिन की कार्य सूची में तब तक किसी बाह्य विषय को सम्मिलित नहीं किया जायेगा जब तक कि वह अत्यन्त गम्भीर स्वरूप का तथा इस प्रकृति का न हो जो सम्पूर्ण प्रदेश, उसकी सुरक्षा, उसके हित तथा प्रदेश में हो रही बातों को प्रभावित करता हो और सदन को उस पर तत्काल ध्यान देना आवश्यक हो । केवल तभी स्थगन प्रस्ताव की परिकल्पना की जा सकती है । स्थगन प्रस्ताव कार्य सूची में तब तक शामिल नहीं किया जायेगा जब तक कि विषय की व्यापकता उसके लोक महत्व एवं गंभीरता की दृष्टि से ऐसा करना उचित न हो ।"[3]

सिद्धान्ततः इन प्रस्तावों का प्रमुख उद्देश्य किसी तात्कालिक महत्व पूर्ण विषय के सम्वन्ध में तत्परता से कार्यवाही हेतु सरकार को अभिप्रेरित करना होता है । व्यवहार में कार्य स्थगन प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव के काफी निकट होता है क्योकि इनके माध्यम से सामान्यतः सरकार की प्रशासनिक व नीति विषयक अक्षमताओं की आलोचना तथा उसके कृत्यों की निन्दा की जाती है । इग्लैंड

---

1. "मे"–पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस, पृष्ठ– 271
2. "मे" पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस, पृष्ठ– 262
3. 'लोक सभा वाद – विवाद' खण्ड– 2 पृष्ठ– 112 दिनांक 22.2.55

में यदि हाउस आफ कामन्स द्वारा कोई कार्य स्थगन प्रस्ताव पारित हो जाये तो सरकार को आवश्यक रूप से पद त्याग करना पड़ता है ।[1] इस लिये संसदीय साधन के जन्मदाता इंग्लैण्ड में इनका बहुत ही कम प्रयोग होता है । जबकि भारत में इसके विपरीत, इसका बहुधा विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाता है।[2]

उत्तर प्रदेश विधान सभा के प्रक्रिया नियमों मे अविलम्बिनीय लोक महत्व के विषयों पर कार्य स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का प्राविधान करते हुए यह कहा गया है कि "जिस दिन कार्य स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करना हो उस दिन का उपवेशन आरम्भ होने के कम से कम 1 घण्टा पूर्व उसकी द्विप्रतिक सूचना सचिव को दी जायेगी ।[3] ऐसे प्रस्तावों को सदन के समक्ष अध्यक्ष की सहमति से प्रस्तुत किया जा सकता है और इसकी ग्राह्ता का निर्धारण निम्नलिखित निर्बंधनों के अधीन होता है ।

1. एक ही उपवेशन में एक से अधिक प्रस्ताव न प्रस्तुत हों ।
2. एक ही प्रस्ताव द्वारा एक से अधिक विषयों पर चर्चा न हो ।
3. प्रस्ताव हाल ही में घटित किसी निर्दिष्ट विषय तक ही निर्बद्ध हो
4. प्रस्ताव द्वारा विशेषाधिकार का प्रश्न न उठाया जाये ।
5. प्रस्ताव द्वारा ऐसे किसी विषय पर पुनः चर्चा न हो । जिसपर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी हो ।
6. प्रस्ताव में ऐसा कोई विषय न हो जो पहले से सदन के विचारार्थ निर्धारित किया जा चुका हो ।
7. प्रस्ताव का विषय ऐसा न हो जिसपर कोई संकल्प प्रस्तुत किया जा सकता हो।[4]

8. विभिन्न अवसरों पर अध्यक्ष द्वारा दिये गये निर्णयों के अनुसार केन्द्रीय सरकार से संबन्धित विषयों, वार्षिक आय–व्यय के समय विवादान्तर्गत आने वाले विषयों तथा राज्यपाल के अभिभाषण पर प्रस्तुत धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के संबन्ध में कार्य स्थगन प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता है । [5]

---

1. मोर एस.एस.-प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ इण्डियन पार्लियामेंट, पृ0– 464
2. माल्या एन.एन., इण्डियन पार्लियामेंट, पृ0–112
3. उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली –56
4. नियम –57 एवं 58 (उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम)
5. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड–253, पृ0–98–99, खण्ड–263 पृ0 627 खण्ड–295 पृ0 441

न्यायाधिकरण व आयोग आदि के विचाराधीन विषयों पर चर्चा के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति अध्यक्ष द्वारा यदि उसे समाधान हो जाये कि उससे संबन्धित न्यायालय अथवा आयोग पर किसी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका नहीं है, दी जा सकती है।[1]

अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्ताव को सदन के समक्ष उपस्थित करने के लिए सदन की अनुज्ञा लेनी होती है जिसके लिए कम से कम तात्कालिक सदन के कुछ सदस्यों के द्वादशांस का समर्थन आवश्यक है।[2]

सामान्यतः ऐसा कोई भी कार्य सदन के अध्यक्ष की अनुमति के बिना सदन की किसी बैठक में पेश नहीं किया जा सकता है जिसे उस दिन की कार्य सूची में शामिल न किया गया हो। फिर भी अगर अध्यक्ष की सहमति हो तो स्थगन प्रस्ताव को सदन के समक्ष प्रस्तावित करके और नियमित संसदीय कार्य को रोक करके अविलंबनीय लोक महत्व के विषय पर चर्चा की जा सकती है।[3]

कार्य स्थगन प्रस्ताव सदन की अनुज्ञा की प्राप्ति के बाद चर्चा हेतु प्रायः दिन के कार्य के समाप्त होने के लिए नियत समय से एक घण्टा पूर्व उपस्थित होते हैं और इन पर चर्चा यदि पहले न समाप्त हो जाये, आरम्भ होने से दो घण्टे पूरे होने पर आपसे आप समाप्त हो जाती है। [4]

इन प्रस्तावों पर भाषणों का समय अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है परन्तु कोई भाषण 15 मिनट से अधिक अवधि का नहीं हो सकता है।[5]

स्थगन प्रस्ताव का प्राथमिक उद्देश्य किसी अविलंबनीय लोक महत्व के विषय पर सरकार का ध्यान आकर्षित करना है ताकि किसी आवश्यक मामले पर जिसके संबन्ध में यदि कोई प्रस्ताव अथवा संकल्प पेश किया गया हो और उसके लिए उपयुक्त नोटिस की औपचारिकता का ध्यान रखा गया तो उसमें काफी देरी हो जायेगी और सरकार के निर्णय को प्रभावित किया जा सकेगा।

---

1. नियम 59, उ0प्र0 विधान सभा प्र0नि0
2. उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली नियम–60
3. कौल व शकधर, इण्डियन पार्लियामेंट्री प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर, पृ0 157
4. नियम 61 तथा 62 (1) उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली
5. नियम 62 (2) उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली।

उ0प्र0 विधान सभा में प्रतिपक्ष नें स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से लोक महत्व के अविलंबनीय विषयों पर चर्चा उठाने के इस महत्वपूर्ण अधिकार का प्रयोग समय-समय पर किया है । विधान सभा में उपस्थित कार्य स्थगन प्रस्ताव के अध्ययन हेतु निम्नांकित तालिका में प्रथम से अष्टम विधान सभा के कार्यकाल 1952 से 1986 तक प्राप्त ऐसे प्रस्तावों की सूचनाओं और उनमें से स्वीकृत प्रस्तावों की संख्या का उल्लेख किया जा रहा है । [1]

तालिका-

विधान सभा	कार्यस्थगन प्रस्तावों की प्राप्त सूचनाओं की संख्या	स्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्तावों की सं0
प्रथम	356	-
द्वितीय	733	10
तृतीय	427	11
चतुर्थ	89	2
पंचम	219	-
षष्टम	628	-
सप्तम	316	2
अष्टम	233	-

स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन विधान सभाओं में बड़ी संख्या में कार्य स्थगन प्रस्तावों की सूचना सदस्यों द्वारा दी गयी किन्तु स्वीकृत प्रस्तावों की संख्या अपेक्षाकृत अत्याधिक कम है । प्रथम विधान सभा में 356 सूचनाएं प्राप्त हुयीं किन्तु एक भी सूचना स्थगन प्रस्ताव के रूप में अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत नहीं हुयी । यही स्थिति पंचम तथा षष्टम विधान सभा के कार्यकाल में रही । द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ व सप्तम विधान सभा में क्रमशः 10,11,2,2 कुल 25 सूचनायें सम्पूर्ण अवधि में अध्यक्ष द्वारा अंगीकृत हुई । अस्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्तावों को अधिकांशतः अध्यक्ष नें महत्वपूर्ण न होने के कारण अथवा अनिश्चित होने के कारण अथवा अन्य किसी प्रकार से नियम संगत न होने के कारण अग्राह्य घोषित किया । उदाहरणार्थ- अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत कुछ कार्य स्थगन प्रस्तावों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है -

दिनांक 21 मई 1952 को श्री नारायण दत्त तिवारी उप नेता विरोधी दल द्वारा प्रस्तुत कार्य स्थगन प्रस्ताव को जो कुमायूँ डिवीजन में कतिपय भागों में ओलावृष्टि आदि से उत्पन्न होने वाली असाधारण परिस्थिति पर विचारार्थ

---

1. उ0प्र0 विधान सभा के कार्यों के संक्षिप्त सिंहावलोकन (वर्ष 1957 से 1986) से प्राप्त विवरण ।

भेजा गया, को अस्वीकृत करते हुए माननीय कार्यकारी अध्यक्ष नें कहा- "एक तो काम रोको प्रस्ताव एक निश्चित विषय पर होना चाहिए उसमें एक या दो या तीन चीजें एक साथ नहीं मिलाई जानी चाहिए इसमें एक साथ तीन चीजें हैं, एक जगह पानी की ज्यादती, ओलों का पड़ना, दूसरी जगह पानी की कमी तथा इलाका भी अलग-अलग है। अतः इस प्रस्ताव को अध्यक्ष की अनुमति नहीं मिल सकी।[1]

अलीगढ़ जिले में पुलिस के अत्याचारों पर विचारार्थ कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना अध्यक्ष को 21 मई 1952 को प्राप्त हुयी। श्री अध्यक्ष नें उसे अस्वीकृत करते हुए कहा कि "इसमें अलीगढ़ जिले में पुलिस के अत्याचार हो रहे हैं उनका जिक्र किया गया है, इसका उद्देश्य उनके विवरण पर विचार करने के लिए कार्यक्रम के अनुसार कार्य स्थगित करना है। यह काम रोको प्रस्ताव ऐसा है जो कोई बात ऐसी स्पष्ट नहीं बताता कि जिससे यह मालूम हो कि यह बहुत अर्जेन्ट है, इसमें स्पष्टीकरण नहीं किया गया कि किस प्रकार के अत्याचार या कौन से अत्याचार हो रहे हैं बल्कि पुलिस के अत्याचार के बारे में एक आम राय दी गयी है। इसलिए और इसके कारण भी हैं कि इस प्रश्न के ऊपर गवर्नर साहब यानी की महा मान्य राज्यपाल का अभिभाषण हुआ है, उसमें विचार किया जा सकता है, मैं इसको स्वीकार नहीं कर सकता।"[2]

पहाड़ी क्षेत्र में कम्युनिटी प्रोजेक्ट जारी करने के अमरीकी साम्राज्यवाद का प्रभाव पड़ने के संबन्ध में कार्य स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए प्रस्तावक श्री झारखण्डे राय (कम्युनिस्ट पार्टी) नें कहा कि " उन्हें आशंका है कि अमरीकन लोगों का उसमें प्रभाव अधिक हो जायेगा तथा वह स्टेट्रेजिक स्थान है तो अमरीकी साम्राज्यवाद का काफी प्रभाव बढ़ेगा। इस प्रकार ये उनके कारण हैं। अतः सदन पर विचार करने के लिए सदन का काम रोका जाये। अध्यक्ष नें उन्हें अनुज्ञा न देते हुए कहा कि यह प्रश्न केन्द्रीय सरकार की परराष्ट्र नीति से संबन्धित है, अतः अनुमति नहीं दी जा सकती।[3]

17 दिसम्बर 1963 को सर्व श्री गेंदा सिंह, कल्पनाथ सिंह तथा रियासत हुसैन के काम रोको प्रस्ताव जो पश्चिमी उ0प्र0 के मुख्य उत्पादन गुड़, राब, सीरा तथा खाड़सारी शक्कर को प्रदेश से बाहर ले जाने पर लगाई गयी रोक के विरूद्ध प्रज्ञा सोसलिस्ट पार्टी द्वारा संचालित सत्याग्रह में कतिपय संसद व

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-101 पृ0-14 दिनांक 21 मई 1952
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-101, पृ0-48,49 दिनांक 21 मई 1952
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-112, पृ0-276

विधान सभा सदस्यों की गिरफ्तारी से संबन्धित था, को अस्वीकृत करते हुए अध्यक्ष नें कहा....... अगर कोई गिरफ्तारी कानून के विरूद्व कार्य करने पर होती है तो उसके संबन्ध में कार्य स्थगन प्रस्ताव नहीं आ सकता है ।[1]

राज्य कर्मचारियों के आन्दोलन संबन्धी काम रोको प्रस्ताव की सूचनायें जो श्री काशी नाथ मिश्र तथा श्री उग्रसेन द्वारा दी गयीं थी, की अस्वीकृति का कारण बताते हुए 6 मई 1966 को अध्यक्ष नें सदन में कहा कि इसी विषय पर कुँवर श्रीपाल सिंह का असरकारी संकल्प विचाराधीन है । अतः इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है । [2]

30 जून 1970 को श्री नित्यानंद स्वामी द्वारा दी गयी कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना जिसमें उन्होने उ0प्र0 की चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से संबन्धित पब्लिक सेक्टर के उद्योगों के लिए कम धनराशि रखे जाने का प्रश्न उठाया था को अस्वीकार करते हुए उपाध्यक्ष नें कहा कि इसकी कोई तात्कालिकता व अविलम्बता नहीं है ।[3]

कार्य स्थगन के कुछ प्रस्तावों को कभी-कभी अध्यक्ष द्वारा कार्य स्थगन के रूप में न स्वीकार करके ध्यानाकर्षण प्रस्तावों अथवा अल्प कालिक चर्चा के प्रस्तावों के रूप में स्वीकार किया गया । उदाहरणार्थ खाद्यान्नों के मूल्य में बृद्धि तथा उनकी अनुपलब्धता के संबन्ध में श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी द्वारा दी गयी कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना को अध्यक्ष नें 20 फरवरी 1964 को थोड़े समय की चर्चा के प्रस्ताव के रूप में[4] तथा म्योर मिल कानपुर में तालाबंदी के संबन्ध में झारखण्डे राय के कार्य स्थगन प्रस्ताव को 5 मार्च 1964 को ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किया ।[5] इसी प्रकार प्रदेश में बाढ़ के संबन्ध में शम्भू नाथ चौधरी द्वारा दी गयी कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना को 16 सितम्बर 1971 को अध्यक्ष द्वारा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किया गया।[6]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-243 पृ0-1380
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-266, पृ0-645-46
3. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 284 पृ0-1123-24
4. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-245, पृ0-933
5. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-246, पृ0-758
6. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-292, पृ0-680

ऐसे अनेक उदाहरण अध्ययनाधीन विधान सभाओं की कार्यवाहियों में प्राप्त होते हैं ।

उ0प्र0 विधान सभा मे ऐसे अवसर भी आये जब प्रतिपक्ष के अल्प संख्यक होने के कारण कुछ प्रस्तावों को अध्यक्ष की अनुमति तो प्राप्त हुयी लेकिन अल्पमत के कारण सदन की अनुज्ञा न प्राप्त हो सकी । ऐसा बहुधा प्रथम विधान सभा में हुआ क्योंकि प्रतिपक्षी सदस्यों की सं0 मात्र 47 थी । ऐसे ही एक प्रस्ताव की सूचना बस्ती जिले के पटवारियों की हड़ताल के संबन्ध में श्री झारखण्डे राय (कम्युनिस्ट पार्टी) द्वारा दी गयी । इसे अध्यक्ष नें अपनी अनुमति दी तथा इन आर्डर करार देते हुए उसे सदन की इजाजत के लिए पेश किया – इसकी अर्जेन्सी पर बोलते हुये श्री झारखण्डे राय नें कहा कि "इस प्रस्ताव की अर्जेसी इस कारण है कि इसका दायरा बढ़ सकता है और सूबे, और हिस्सों में ये हड़ताल फैल सकती है क्योंकि पटवारियों का जो संगठन है वह प्रांतीय आधार पर है । अतः मैं चाहता हूँ कि इस प्रस्ताव पर बहस होने की अनुमति मिले ताकि मांगे मंजूर हो सकें" अध्यक्ष की अनुमति मिलने पर इस पर मतदान हुआ जिसके पक्ष में केवल 15 मत आये । अतः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।[1]

ऐसा ही एक प्रस्ताव अनशनकारी अध्यापकों पर कथित बल प्रयोग के संबन्ध में कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना के अन्तर्गत दिया गया जिसे अध्यक्ष की अनुमति मिली तथा सदन की अनुज्ञा के लिए 36 सदस्यों की स्ट्रैन्थ के लिए कहा गया । इस पर प्रतिपक्ष के नेता श्री राज नारायण नें कहा कि हमारी इतनी स्ट्रैग्थ नहीं है कि 35, 36 आदमी खड़े हों । इस पर अध्यक्ष नें कहा कि जब तक नियम सस्पेंड न किया जाये यही स्थिति रहेगी तो श्री राज नारायण नें कहा कि "ऐसी स्थिति में हमारा यहाँ बैठना बेकार है तथा सदन का क्रमशः सभी उपस्थित विरोधी दलों नें त्याग कर दिया ।[2]

एक अन्य प्रस्ताव 17 दिसम्बर 1956 को श्री गेंदा सिंह नें प्रदेश के पूर्वी भाग में अन्न संकट के उत्पन्न हो जाने के संबन्ध में पेश किया । श्री अध्यक्ष नें इसे डेफिनिट करार देते हुए कहा कि डैफिनिटनेश इतनी है कि लोग भाग रहे हैं वड़ी संख्या में, क्योंकि सरकार की ओर से सहायता कार्य नगण्य हैं । यह महत्व का विषय है, अतः मैं इसे बैध करार देता हूँ इसके

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड–116, पृ0–185,186
2. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड–120, पृ0–13

पश्चात अध्यक्ष नें इसे सदन की अनुमति के लिए प्रस्तुत किया और कहा कि जो सदस्य इसके पक्ष में हों, खड़े हो जायें । मात्र 24 सदस्य खड़े हुए जबकि सदन की अनुज्ञा हेतु 36 सदस्य होने चाहिए थे । अतः सदन की अनुमति नहीं मिल सकी व प्रस्ताव गिर गया ।[1]

कार्य स्थगन प्रस्तावों से संबन्धित उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हैं कि प्रायः प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा प्रक्रिया नियमों के अनुसार विषय की तात्कालिकता, अविलम्बनियता तथा अर्न्तनिहित लोक महत्व का समुचित अध्ययन किये बिना ही कतिपय अनियंत्रित व असंयमित रूप से इन प्रस्तावों की सूचनायें दी गयी जो अन्ततः अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत हुयीं तथा प्रतिपक्ष की अल्प संख्या के कारण भी प्रस्ताव सदन की अनुज्ञा न प्राप्त कर सके ।

स्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्तावों की प्रकृति :-

प्रथम से अष्टम विधान सभा कार्यकाल में अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत तथा सदन द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कार्य स्थगन प्रस्ताव निम्नवत रहे ।[2]

परिशिष्ट में तालिका सं0-1 से स्पष्ट है कि इन प्रस्तावों के सभी प्रस्तावक विपक्षी दलों से संबन्धित थे और एक ही विषय पर अक्सर कई सदस्यों द्वारा प्रथक-प्रथक अथवा सम्मिलित रूप से उनकी सूचनायें दी गयीं जिन्हें एक साथ स्वीकार कर अध्यक्ष द्वारा सदन की अनुज्ञा हेतु उपस्थित किया गया । अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्तावों को सदन के समक्ष रखे जाने पर अधिकांशतः सदन द्वारा अनुज्ञा प्रदान की गयी किन्तु तीसरी विधान सभा में श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (ज.सं.नेता विरोधी दल) द्वारा अभिसूचित कार्य स्थगन प्रस्ताव जो बनारस विश्व विद्यालय के छात्रों की पुलिस द्वारा पिटाई से संबन्धित था । 4 फरवरी 1966 को जब सदन के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो प्रस्तावक तथा अन्य विरोधी दलों के सदस्यों ने सरकार से घटना की हाई कोर्ट जज से जाँच कराने की मांग की किन्तु मुख्य मंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी नें कहा - "अभी सारे फैक्ट्स ज्ञात नहीं हैं, सारे फैक्ट्स ज्ञात हो जाने पर यह निर्णय लिया जायेगा कि किस प्रकार की इन्क्वारी हो........"[3]

मुख्य मंत्री के इस कथन पर सदन में अत्यन्त रोष पूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया तथा विरोधी सदस्यों ने प्रस्ताव को तुरन्त लेने की मांग करते हुए सदन के कार्यों में बार-बार बाधायें उत्पन्न की । फलतः अध्यक्ष को दो बार सदन को आधे-आधे घण्टे के लिए स्थगित करना पड़ा, यद्यपि अध्यक्ष

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-181, पृ0 29-30
2. विस्तृत जानकारी के लिए परिशिष्ट तालिका सं0-1 देखें ।
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-262, पृ0-603

नें तीसरी बार सदन के बैठने पर शाम को 4 बजे इस काम रोको प्रस्ताव को लेने की अपनी व्यवस्था दी किन्तु विपक्ष सरकार से जाँच का स्पष्ट आश्वासन देने की मांग कर रहा था जिसे मुख्य मंत्री नें स्वीकार नहीं किया । फलतः सम्पूर्ण विपक्ष नें क्रमिक रूप से सदन का त्याग कर दिया और उक्त काम रोको प्रस्ताव पर सदन की अनुज्ञा न प्राप्त की जा सकी ।[1]

तालिका-1 में उल्लिखित प्रस्तावों के विषयों कि विवेचना से स्पष्ट है कि इनमें से अधिकांश का संबन्ध प्रशासन व पुलिस से है जिनमें मुख्य रूप से पुलिस द्वारा किये गये लाठी चार्जों व गोली काण्डों की ही चर्चा की गयी है और इन चर्चाओं के दौरान विपक्ष द्वारा सरकार की कटु आलोचना की गयी। तथा ज्यूडीशियल इन्क्वारी की मांग की गयी किन्तु सरकार द्वारा इस मांग को अस्वीकार कर दिया गया – उदाहरणार्थ – 4 अगस्त 1958 को लखनऊ नगर में छितवा पुर पुलिस चौकी के करीब पुलिस का अकारण विद्यार्थियों पर गोली चलाना और उसके द्वारा आहत व्यक्तियों कि चिकित्सा का प्रबन्ध करने में असफलता से सबन्धित थीं, में प्रतिपक्ष के नेता श्री त्रिलोकी सिंह नें ज्यूडीशियल इन्क्वारी की मांग करते हुए कहा– "मैं यह इल्जाम लगाता हूँ कि इस सरकार के ऊपर और इसके कर्मचारियों के ऊपर जिन्होनें अकारण गोली चलाई, बिना प्रोवेशन के चलाई...... इस गोली कांड की जाँच होनी चाहिए । मैं आशा करता हूँ कि माननीय नेता सदन से, उ0प्र0 के मुख्य मंत्री से जिनके ऊपर इस प्रदेश के काम को चलाने की जिम्मेदारी है कि एक ओर मेरा कथन है, एक ओर सरकारी कथन है, जिला मजिस्ट्रेट मेरे कथन के विपरीत बात कहते हैं । इनकी सफाई के लिए वे जाँच करायेंगे और जाँच ऐसे अधिकारी से करायेंगे जिसको हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस नें मुकर्रर किया हो । सरकार की तरफ से चीफ जस्टिस को निवेदन किया जाये कि वे जजेज में से ही किसी को मुकर्रर करें जो मौके पर भी जाये और देखे और मामले में निर्णय दे की गोली कैसे चली? इसकी जिम्मेदारी किसपर है ? गोली जस्टीफाइड थी या नहीं"[2] किन्तु तत्कालीन गृह मंत्री श्री कमला पति त्रिपाठी नें ज्यूडीशियल इन्क्वारी की इस मांग को अस्वीकार करते हुए काम रोको प्रस्ताव का घोर विरोध किया । अन्त में अध्यक्ष के कार्य स्थगन प्रस्ताव प्रश्न उपस्थित किये जाने पर प्रश्न पक्ष में 72 तथा विपक्ष में 233 के मतानुसार अस्वीकृत हुआ ।[3] उल्लेखनीय है कि यह काम रोको प्रस्ताव एक ऐसा प्रस्ताव था जिसका मुख्य मंत्री द्वारा विरोध न करके अपितु उसे अर्जेन्ट बताते हुए सदन की अनुज्ञा में सहमति प्रदान की गयी थी[4] जोकि विधान सभा के संसदीय इतिहास की परम्परा में प्रथम बार हुआ ।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–262, पृ0–602–19
2. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–196, पृ0–62
3. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–196, पृ0–85–86
4. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड–195, पृ0–807–808

एक कार्य स्थगन प्रस्ताव जिसे श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी व श्री उग्रसेन द्वारा स्थानी निकायों के चुनावों के स्थगन के संबन्ध में 7 मई 1964 को सदन के समक्ष उपस्थित किया गया था, परिचर्चा के दौरान विरोधी सदस्यों ने सत्ता रूढ़ कांग्रेस दल पर अपने दलीय हित में चुनाव स्थगित कराने का आरोप लगाया । प्रस्तावक श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी नें इस पर सदन में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा "कि सरकार को अपनी पिछली करनी से डर है और उसे विश्वास नहीं है कि वह इलेक्शन में जीत सकेगी ।"[1]

केवल 7 कार्य स्थगन प्रस्ताव जिनमें से 4 द्वितीय विधान सभा, 2 तीसरी विधान सभा तथा 1 चौथी विधान सभा में चर्चा हेतु प्रस्तुत हुए, अपेक्षाकृत लोक महत्व के प्रस्ताव थे, इनमें पूर्वी उ0प्र0 में भुखमरी की स्थिति, वर्षा के असमय समाप्त होने के कारण प्रदेश की विशेषकर पूर्वी अंचल में खरीफ की फसल नष्ट होने और उसी कारण रबी की बुआई ठीक समय पर न हो सकने तथा इस संकट से मुकाबला करने के लिए सरकार द्वारा सिचाई के साधन उपलब्ध करा सकने में असमर्थता से उत्पन्न भयंकर स्थिति, राज्य के खाद्यान्न मूल्यों के तेजी के साथ बढ़ने के कारण जनता में व्याप्त असंतोष, स्थान-स्थान पर गल्ले की दुकाने लूटी जाने के कारण प्रदेश की शान्ति व व्यवस्था में गड़बड़ी होने की आशंका, तथा हाथरस जिले में बाढ़ व मंहगाई से उत्पन्न अराजक स्थिति अवर्षण के कारण प्रदेश में उत्पन्न अकाल व सूखे की स्थिति प्रदेश के अराजपत्रित कर्मचारियों द्वारा कार्य के बहिष्कार से उत्पन्न स्थिति तथा प्रदेश में भाषा विधेयक संबन्धी आन्दोलन में हुयी धन व जन की क्षति की चर्चा की गयी ।

अध्ययनाधीन विधान सभाओं में उपस्थित कार्य स्थगन प्रस्तावों के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं ।

1. कार्य स्थगन प्रस्तावों की प्राप्त सूचनाओं की तुलना में अध्यक्ष द्वारा चर्चा हेतु स्वीकृति सूचनाओं की संख्या इतनी कम है कि उन्हें नगण्य ही कहना उपयुक्त होगा ।

2. अध्यक्ष द्वारा कार्य स्थगन प्रस्तावों को अस्वीकार करते हुए उल्लिखित कारणों से यह ज्ञात होता है कि प्रस्तावक सदस्यों द्वारा सम्बन्धित नियमों का समुचित रूप से अध्ययन नहीं किया गया ।

3. अध्यक्ष द्वारा अमान्य कार्य स्थगन प्रस्तावों के सम्यक विवेचन से स्पष्ट है कि विपक्ष ने अपने इस महत्वपूर्ण अधिकार का प्रयोग करने में गम्भीरता नहीं बरती

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-262, पृ0-602-19

अतः विपक्ष को निश्चय ही आत्म निरीक्षण करके कि क्या कोई विषय वास्तव में लोक महत्व का है और यदि है तो भी क्या लोक महत्व का होते हुए भी अविलंबनीय भी है या नहीं, की धारणा को स्पष्ट करना चाहिए था ।

4. अधिकांश कार्य स्थगन प्रस्तावों की चर्चा का विषय व्यापक लोक महत्व वाली शासन की नीतिगत विफलताओं की अपेक्षा पुलिस व प्रशासनिक अधिकारियों का दोष पूर्ण आचरण रहा है, जिसके आधार पर प्रतिपक्ष द्वारा सरकार की कटु आलोचना की गयी और बहुधा विरोध स्वरूप सदन त्याग भी हुए । अतः यह कहना अनुचित न होगा कि विपक्ष के इस आचरण को देश के लोक तंत्रीयव्यवस्था में कम से कम दुराग्रह पूर्ण तो कहा ही जा सकता है । साथ ही इस आचरण को गम्भीरता विहीन व अनुत्तरदायित्व पूर्ण समझा जा सकता है । इस प्रकार लोक महत्व के विषयों के चयन के प्रति उनके प्रस्तावों का दृष्टिकोण कतिपय संकुचित रहा ।

(ख) **अविश्वास प्रस्तावः—**

जनतंत्रीय शासन व्यवस्था में यह आवश्यक है कि शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा हो और वे अपनी सरकार बनाकर जनहित को ध्यान में रखते हुए शासन को चलायें साथ ही यह भी आवश्यक है कि शासन करने वाली सरकार पूर्णतया नियंत्रित भी हो क्योकि नियंत्रण के अभाव में यह पूर्णतया निरंकुश भी हो सकती है । प्रसिद्व दार्शनिक जे.एस. मिल नें कहा था कि "प्रतिनिधि सभा का मुख्य कार्य शासन की निगरानी व अनुशासन करना होता है यदि शासन के काम गलत हों तो उसकी निंदा करना भी इसी का कार्य है यदि वह व्यक्ति जो शासन करे और अपनी शक्ति का दुरूपयोग करे या विश्वासघात करे तो उन व्यक्तियों को अपदस्थ करना तथा उनके स्थान पर वैकल्पिक व्यवस्था करना भी इनका कार्य है"।[1]

इसका अर्थ यह है कि विरोधी दलों का पूर्ण रूप से सरकार पर नियंत्रण बना रहे, पर नियंत्रण का यह मतलब नहीं है कि सरकार के हर कामोंमें अड़चन लगाये, बल्कि समय – समय पर उसकी आलोचना करके और उसके स्थान पर नयी सरकार बना सकना यही पूर्ण नियंत्रण का मतलब है ।

यद्यपि भारत में संसदीय सरकार की स्थापना 1950 के संविधान के अन्तर्गत की गयी है लेकिन अविश्वास प्रस्ताव की प्रक्रिया का आरम्भ व्रिटिश भारत में स्वशासित प्रान्तीय सरकारों में हो चुका था । अविश्वास प्रस्ताव का

---

1. जे0एस0 मिल,–स्वतंत्रता व प्रतिनिधि शासन, हिन्दी अनु0पी0सी0 जैन, पृ–256

प्रथम प्रयोग 1923[1] में स्वराज पार्टी के द्वारा बंगाल की प्रांतीय कार्यकारिणी के विरूद्ध किया गया था । तत्पश्चात् बंगाल व्यवस्थापिका के नियम 12 अ[2] रखा गया । इसके साथ ही साथ स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में अनेक प्रान्तों में सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव रखे गये थे । 14 मार्च 1935 में विधान मण्डल में श्री सुब्बा रमण जोकि विधान मण्डल में विरोधी दल के नेता थे, ने अविश्वास प्रस्ताव को विरोध का प्रथम चिन्ह बताया । उन्होने कहा कि "विरोधी दल तब तक विरोधी दल नहीं रह सकता जब तक उन्हें हटाने का अवसर न प्राप्त हो"[3]

स्वतंत्रता से पूर्व भी अविश्वास के प्रस्ताव के प्रयोग के कारण कई स्थानों पर कई मंत्रियों को त्याग-पत्र देने पर मजबूर होना पड़ा था, स्वतंत्रता के पूर्व इस प्रकार का प्रस्ताव मंत्री विशेष के विरूद्ध केवल हस्तांतरित विषयों पर ही किया जाता रहा है फिर भी 1923 में प्रस्तावित नियमों का स्थान 1952 की संसद में नियम 198 के अंतर्गत रखा गया है ।

1950 की संविधान की धारा 75 (3) के अर्न्तगत भी अविश्वास के प्रस्ताव को रखकर इस बात को स्पष्ट किया गया कि किस प्रकार का प्रस्ताव हो, कब रखा जाये, उसकी शर्तें क्या हों, चर्चा के समय विरोधी दल एवं शासक दल के मध्य कैसा विभाजन हो; इन सब बातों का उत्तर संवैधानिक प्राविधान 75[4] के अधीन बने लोक सभा कार्यवाही नियम 198 में विस्तृत तौर पर बताया गया है ।

यह जानने के बाद कि अविश्वास के प्रस्ताव की नीव कब पड़ी एवं इसे संविधान के द्वारा किस तरह से अपनाया गया, यह जानना भी नितान्त आवश्यक है कि वास्तव में यह अविश्वास प्रस्ताव होता क्या है व किन परिस्थितियों में इसे लाया जा सकता है ?

संसदीय शासन व्यवस्था में मंत्रि मण्डल पर व्यवस्थापिका के नियंत्रण का सर्वाधिक प्रभावकारी व प्रत्यक्ष साधन "अविश्वास प्रस्ताव" है । जिसके प्रयोग का अधिकार सामान्यतः निम्न सदन को होता है । भारतीय संविधान में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि केन्द्र व राज्यों में मंत्रिमंडल सामूहिक रूप

---

1. मित्रा नरेन्द्र नाथ, इण्डियन क्वाटरली, रजिस्टर खण्ड-1, दि एनुअल रजिस्टर आफिस कालेज स्ट्रीट मार्केट, कलकत्ता, 1927 पृ0-58
2. बोस एस0एम0, दि बर्किंग कांस्टीट्यूशनल इन इण्डिया, नियम 12 हम्फ्री मिल फोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1939, पृ0-57-58
3. मित्रा नरेन्द्र नाथ, इण्डियन एनुअल रजिस्टर, अंक 1 जनवरी, 1934 कलकत्ता, पृ0-239
4. भारतीय संविधान अनुच्छेद-75 (3)

से क्रमशः लोक सभा व विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे जिसका आशय यह है कि यदि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के विरूद्ध लोक सभा और राज्यों में मंत्रिमण्डल के विरूद्ध वहाँ की विधान सभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे तो उन्हें त्यागपत्र देना आवश्यक होगा।

सामूहिक जिम्मेदारी दो सिद्धान्तों के कारण कही जाती है प्रथम इसलिये क्योंकि किसी भी मंत्री का चयन बिना प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री की सहमति के नहीं हो सकता, साथ ही साथ यह भी होता है कि यदि कोई मंत्री अपने मंत्रि परिषद के विचारों या नीति व निर्णय को नहीं मानता या सहमत नहीं होता तो उसे स्वयं अथवा त्याग–पत्र देना होता है।

विधान सभा के प्रति मंत्रि परिषद के सामूहिक उत्तर दायित्व का अर्थ यह है कि न केवल मुख्यमंत्री बल्कि पूरी मंत्रि परिषद के सदस्यों में से ज्यादातर विधान सभा के सदस्यों से ही मंत्रि मण्डल में लिये जायेंगे लेकिन यदि मुख्य मंत्री चाहे तो उसे पूरा अधिकार है कि वह विधान परिषद के सदस्यों को भी मंत्रि मण्डल में शामिल कर सकता है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि लोक सभा का सदस्य भी राज्य में मुख्यमंत्री बनकर आ सकता है परन्तु उसे 6 महीने के अन्दर ही राज्य विधान मण्डल के दोनों सदनों में से किसी एक का सदस्य चुन लिया जाना चाहिये तभी चुनाव संवैधानिक होगा।[1]

मंत्रि परिषद के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पूर्ण रूपेण सरकार के खिलाफ आता है किसी भी मंत्री के खिलाफ नहीं क्योंकि सदन के प्रति मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है नकि व्यक्ति विशेष।

अविश्वास प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव से एकदम भिन्न होता है। निन्दा प्रस्ताव में वे आरोप व आधार लगाये जाते हैं जिन पर वह आधारित होता है, उसे सरकार की कुछ नीतियों या कार्यवाहियों के कारण उसकी निन्दा करने के स्पष्ट प्रयोजन से पेश किया जाता है। लेकिन अविश्वास प्रस्ताव में कारण बताने की आवश्यकता नहीं होती, जिनके कारण यह प्रस्ताव रखा जा रहा हो। यदि किसी अविश्वास प्रस्ताव में कारण बताये भी गये हों और सभा में पढ़ कर सुनाये भी गये हों, तो भी वह अविश्वास प्रस्ताव का अंग नहीं बनते।[2]

लोक सभा व राज्य विधान सभाओं में सम्बन्धित मंत्रि परिषदों के प्रति अविश्वास व्यक्त करने वाले प्रस्ताव की प्रस्तुति, उनके तद् विषयक प्रक्रिया नियमों के ही अधीन सम्भव है जिसका उल्लेख उनकी प्रक्रिया नियमावली में प्राप्त होता है।

---

1. उदाहरणार्थ – श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह उ0प्र0 में 9.6.80 को मुख्यमंत्री बनकर आये और बाद में राज्य विधान परिषद के सदस्य चुने गये।
2. कौल एवं शकधर,-संसदीय प्रणाली व व्यवहार, पृ0 657–658

उ0प्र0 विधान सभा के प्रक्रिया नियम 275 (1) के अनुसार "मंत्रि परिषद में विश्वास का अभाव प्रकट करने का प्रस्ताव अध्यक्ष की सम्मति से निम्न लिखित निर्बन्धनों के साथ किया जा सकेगा अर्थात–

(क) प्रस्ताव करने की अनुज्ञा प्रश्नों के अनन्तर या दिन की कार्यवाही प्रारम्भ होने के पूर्व मांगी जायेगी;

(ख) अनुज्ञा मांगने वाले सदस्य को उस दिन का उपवेशन आरम्भ होने से पूर्व सचिव को उस प्रस्ताव की जिसे कि वह प्रस्तुत करना चाहता है एक लिखित सूचना देनी होगी ।"

यदि अध्यक्ष की राय में किसी सदस्य द्वारा सूचित अविश्वास का प्रस्ताव नियमानुकूल होता है तो वह उसे सदन की अनुज्ञा हेतु प्रस्तुत करते हैं जो सदन के समस्त सदस्यों के कम से कम पंचमांश के समर्थन पर ही प्राप्त होती है और अनुज्ञा प्राप्ति के अधिक से अधिक 10 दिन के भीतर किसी ऐसे दिन जो अध्यक्ष नियत करे, वह प्रस्ताव विचार हेतु लिया जाता है ।[1]

ज्ञातव्य है कि इंगलैण्ड के हाऊस आफ कामन्स में मंत्रि मण्डल के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये सदन की अनुज्ञा आदि का कोई प्रतिबंध नहीं है ।[2]

प्रक्रिया नियमों में प्रस्ताव की ग्राह्यता की जिन शर्तों का उल्लेख किया गया है उनमें एक प्रमुख शर्त यह है कि "उसमें ऐसे विषय पर फिर से चर्चा नहीं उठायी जायेगी जिस पर उसी सत्र में अथवा पिछले 6 माह के भीतर, जो भी समय पहले पड़ता हो, चर्चा हो चुकी हो"।[3] यह शर्त अविश्वास के प्रस्ताव पर लागू नहीं होती है । इस सम्बन्ध में 15 नवम्बर 1961 को श्री राम स्वरूप वर्मा द्वारा प्रस्तुत मंत्रि मण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर निर्णय देते हुए अध्यक्ष नें कहा."...... मैं छः महीने और तीन महीने को उतना महत्व नहीं देता जितना कि इस विषय को देता हूँ और सरकार को इसके लिए हरदम और हर समय तैयार रहना चाहिये"[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार के विरूद्ध प्रतिपक्ष द्वारा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये समय सीमा का कोई प्रतिबंध नहीं है ।

---

1. नियम 275 (2) उ0प्र0 वि0 सभा प्रक्रिया नियमावली ।
2. मुखर्जी ए0आर0,-पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इण्डिया, पृ–136
3. नियम 105 (5) उ0प्र0 वि0सभा0 प्रक्रिया नियमावली
4. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड–266, पृ0–889–93

सामान्यतया राज्यपाल के अभिभाषण पर उपस्थित धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान और आय–व्ययक पर विचार के समय सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि धन्यवाद प्रस्ताव में विपक्ष द्वारा प्रस्तावित संशोधन और अनुदानों पर चर्चा के अवसर पर विरोध पक्ष द्वारा पेश किये गये कटौती प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर सरकार का स्वतः पतन हो जाता है । तृतीय विधान सभा में 17 फरवरी 1965 की कार्य मंत्रणा समिति की सहमति से एक अविश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुये अध्यक्ष द्वारा उक्त मत को व्यक्त किया गया ।[1] परन्तु इस परम्परा का सदैव अनुसरण नहीं किया गया । पंचम विधान सभा में श्री टी0एन0 सिंह मंत्रि मण्डल के विरूद्ध तत्कालीन नेता विरोधी दल श्री कमलापति त्रिपाठी द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव को अध्यक्ष की स्वीकृति से 25 मार्च 1971 को उस समय सदन की अनुज्ञा प्राप्त हुई जब राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव के ऊपर चर्चा चल रही थी ।[2] यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इस अविश्वास प्रस्ताव पर वाद विवाद के लिये 31 मार्च 1971 की तिथि निश्चित की गयी थी किन्तु वाद विवाद प्रारम्भ होने के एक दिन पूर्व ही 30 मार्च 1971 को राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव में विपक्ष द्वारा प्रस्तुत संशोधन स्वीकृत हो जाने के कारण उक्त सरकार का पतन हो गया तथा अविश्वास के प्रस्ताव पर चर्चा होने की नौबत ही न आई ।

सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के सन्दर्भ में लार्ड मोर्ले ने कहा है कि "एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में शासनिक नीति का प्रत्येक महत्वपूर्ण अंग सम्पूर्ण मंत्रि परिषद का दायित्व है तथा उसके सदस्य एक साथ खड़े होते व गिरते हैं अथवा एक साथ तैरते हैं" अविश्वास प्रस्ताव के संदर्भ में इस उक्ति के अनुरूप किसी मंत्री विशेष के कार्य अविश्वास के प्रस्ताव का कारण हो सकते हैं किन्तु अविश्वास का प्रस्ताव सम्पूर्ण मंत्रि मण्डल के विरूद्ध ही प्रस्तुत किया जा सकता है नकि किसी एक मंत्री विशेष के विरूद्ध क्योंकि संविधान यह व्यवस्था करता है कि मंत्रि मण्डल संयुक्त रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी है ।[3] ऐसी ही व्यवस्था तृतीय उ0प्र0 विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा 23 अप्रैल 1963 को श्री काशी नाथ मिश्र सदस्य विधान सभा द्वारा सदन में उपस्थित एक अविश्वास के प्रस्ताव जो सम्पूर्ण मंत्रि मण्डल के विरोध में न होकर केवल गृह मंत्री के विरोध में था, पर दी गई थी ।[4] किन्तु इसका अपवाद भी उ0प्र0 विधान सभा में इस व्यवस्था से पूर्व देखने को मिलता है "प्रथम विधान सभा में 25 मार्च 1954 को एक अविश्वास प्रस्ताव को जिसे श्री जगन्नाथ मल्ल द्वारा तत्कालीन स्वायत्ता शासन मंत्री श्री मोहन लाल गौतम के विरूद्ध पेश किया गया था, अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया था

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड– 253, पृ0– 907
2. उ0प्र0 विधान सभा, कार्यकारिणी खण्ड–288, पृ0–544
3. मुखर्जी ए0आर0, पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इण्डिया, पृ0–136
4. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–257, पृ0–434–37

किन्तु सदस्यों के आवश्यक समर्थन के अभाव में प्रस्ताव को सदन की अनुज्ञा नहीं प्राप्त हुई ।[1] केवल एक मंत्री के विरूद्ध प्रति पक्ष द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव को ग्राह्य किये जाने का यह उदाहरण उ0प्र0 विधान सभा के अब तक के इतिहास में अद्वितीय व अनूठा है ।

अविश्वास प्रस्ताव का प्रारूपः–

अविश्वास प्रस्ताव का प्रारूप कैसा हो अर्थात वह अविश्वास के कारणों का उल्लेख करने वाला विस्तृत प्रस्ताव हो अथवा सरकार के प्रति सदन के अविश्वास की घोषणा करने वाला मात्र एक पंक्ति का प्रस्ताव हो, इस सम्बन्ध में उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली पूर्णतया मौन है । अध्ययनाधीन विधान सभाओं की कार्यवाहियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इनके कार्यकाल में उपस्थित 32 अविश्वास प्रस्तावों में से अधिकांश द्वितीय कोटि के थे जिनमें बिना कोई कारण बताये सरकार के प्रति अविश्वास व्यक्त किया गया था । विपक्षी सदस्यों द्वारा कारण सहित विस्तृत प्रस्ताव की अपेक्षा कारण रहित संक्षिप्त प्रस्ताव को वरीयता देने का कारण सम्भवतः यह था कि प्रथम प्रकार का प्रस्ताव सदस्यों के भाषण क्षेत्र को सीमित कर देता है क्योंकि उन्हें प्रस्ताव में उल्लिखित कारणों पर ही मुख्य रूप से बोलना होता है । जबकि दूसरी प्रकार के प्रस्ताव सदस्यों को शासन के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में बोलने की व्यापक स्वतंत्रता प्रदान करता है।

अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा समाप्त हो जाने के उपरान्त अध्यक्ष उसे सदन के विनिश्चय हेतु प्रस्तुत करते हैं जिस पर मत आवाजों द्वारा या विभाजन द्वारा यदि सदस्य ऐसा चाहें, लिये जाते हैं ।[2] सामान्यतः अविश्वास के प्रस्तावों पर विनिश्चय हेतु लाबी में मतदान की प्रक्रिया अपनाई गयी किन्तु उ0प्र0 विधान सभा के इतिहास में पहली बार 27 जुलाई 1967 को अध्यक्ष द्वारा अविश्वास के प्रस्ताव पर विभाजन की विशेष पद्धति अपनायी गई । 25 जुलाई 1967 को सिंचाई विभाग की अनुदान की मांगों पर विभाजन के समय सदस्यों में हुये पारस्परिक संघर्ष के कारण उत्पन्न तनाव पूर्ण स्थिति को देखते हुए अध्यक्ष द्वारा 27 जुलाई 1967 को अविश्वास के प्रस्ताव पर विभाजन के लिये लाबी में मतदान की सामान्य पद्धति को अस्वीकार कर दिया गया है और यह घोषणा की गई कि सदन के बीच में हाँ या नहीं अंकित दो बक्से रखे जायेंगे जिनमें वर्ण क्रमानुसार बुलाये गये सदस्य एक एक करके आकर दिये गये कार्ड पर अपने हस्ताक्षर कर उसे अपनी इच्छा के बक्से में डालेंगे । मतदान की इस प्रणाली की वैद्यता को तत्कालीन नेता विरोधी दल तथा विरोधी दलों के अन्य सदस्यों द्वारा चुनौती दिये जाने पर इस पर

---

1. उ0प्र0 विधान सभा का0 खण्ड–130, पृ0– 265–66
2. नियम 298, उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया एवं कार्यवाही का संचालन नियमावली।

पर महाधिवक्ता उ0प्र0 की राय ली गयी । उन्होने अपनी राय में इस पद्धति को वैद्य बतलाते हुये उसे लाबी में हुये मतदान प्रणाली के समान बताया । इस घटना के अतिरिक्त अविश्वास के प्रस्ताव पर विभाजन हेतु सदैव लाबी में मतदान की प्रणाली को ही अपनाया गया ।

उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्तावों का एक विश्लेषण:–

उ0प्र0 विधान सभा के अध्ययनाधीन काल में 32 अविश्वास प्रस्तावों की सूचना प्राप्त हुई । इनमें से कुछ प्रस्ताव ऐसे थे जिन्हें अध्यक्ष द्वारा ग्राह्य किया गया किन्तु उन्हें सदन में सदस्यों के आवश्यक समर्थन के अभाव में सदन की अनुज्ञा प्राप्त नहीं हो सकी । शैष प्रस्तावों को सदन की अनुज्ञा प्राप्त हुई व सदन में चर्चा तथा मतदान हुआ । विवरण निम्नवत है:–

तालिका (क)

विधान सभा	प्राप्त सूचनायें	अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत	सदन द्वारा अनुज्ञा प्राप्त नहीं हुई	वापस	जिनपर चर्चा हुई	अन्य विवरण
प्रथम	6	3	3	–	–	–
द्वितीय	8	–	3	–	5	–
तृतीय	7	–	1	2	4	
चतुर्थ	1	–	–	–	1	
पंचम	4	–	–	1	2	
षष्टम	1	–	–	–	1	
सप्तम	1	–	–	–	1	
अष्टम	1	–	–	–	1	

अध्यक्ष द्वारा अग्राह्य तथा सदन द्वारा अनुज्ञा न प्राप्त होने वाले अविश्वास प्रस्तावों का का विवरण निम्नवत् है :–

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों द्वारा प्राप्त विवरण से संकलित ।

दिनांक 19 तथा 22 अगस्त को श्री राज नारायण द्वारा प्रस्ताव लाया गया कि "श्री सम्पूर्णा नन्द की सरकार के विरूद्ध, उनकी कृषि, औद्योगिक, सामान्य प्रशासन, बाढ़ की रोकथाम आदि की जो अपूर्ण नीति रही है उनके विरोध में यह सदन अविश्वास का प्रस्ताव रखता है " इस पर निर्णय देते हुये माननीय अध्यक्ष ने कहा –नियमों में 79 वें नियम का पालन इस प्रस्ताव में नहीं किया गया है। प्रस्ताव में दिये गये कारण ऐसे हैं जिनको कि मैं उचित नहीं समझता कि सदन के सामने पढ़े जायें क्योंकि प्रस्ताव में यह भी कारण बताया गया है कि इस आदरणीय सदन ने जो यहाँ विधेयक उपरिचत होने पर अधिनियम पास किये, वह लांछनीय हैं । प्रस्ताव से यह भी ध्वनि निकलती है कि मानो सरकार के हुक्म से सदन चलता है। यह सब सदन की प्रतिष्ठा के विरूद्ध है" अतः प्रस्ताव के फार्म, शक्ल तथा विषय को देखते हुये उसको अवैध करार दिया गया और पेश करने की इजाजत नहीं दी गई ।[1]

इसी प्रकार 16 जुलाई 1956 को श्री राज नारायण द्वारा एक अन्य प्रस्ताव कि "उ0प्र0 सरकार ने टैक्स लगाने और बढ़ाने का जो पूँजीवादी तरीका (प्रारम्भिक अंश ही पढ़ा गया) को अग्राह्य ठहराते हुये माननीय अध्यक्ष ने वापस कर दिया कि वह उसको ठीक शक्ल में प्रस्तुत करें क्योंकि उसमें बहुत से आरगूमेंट्स, बहुत सी चीजें आ गई हैं ।"[2] एक अन्य प्रस्ताव श्री राजनारायण द्वारा दिनांक 25.3.57 को मुख्यमंत्री सम्पूर्णानन्द की सरकार के विरूद्ध प्रस्तुत किया गया। इसे भी अध्यक्ष ने अग्राह्य किया क्योंकि विधान सभा का चुनाव घोषित हो चुका था व सदन ज्यादा समय बैठने वाला नहीं था । नियमानुसार 10 या 15 दिन चाहिये तब तक मंत्रि मण्डल भी खत्म हो जायेगा ।[3] ऐसा ही एक अन्य प्रस्ताव 30 अप्रैल 1965 तृतीय विधान सभा के कार्यकाल में जब विधान सभा का सत्रावसान होने वाला था । श्री काशी नाथ मिश्र द्वारा उपस्थित किया गया, माननीय अध्यक्ष नें यह कहा कि सत्रावसान होने वाले दिन ऐसा प्रस्ताव ग्राह्य नहीं है" प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया ।[4]

अविश्वास प्रस्तावों से सम्बन्धित उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रायः प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा प्रक्रिया नियमों का समुचित अध्ययन किये बिना ही असंयमित रूप से सूचनायें दी गई जो अन्ततः अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत हुई ।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड– 154, पृ0–330
2. संसदीय दीपिका, दिसम्बर 1976, खण्ड–1 अंक 1–4, पृष्ठ– 51 उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय प्रकाशन ।
3. संसदीय दीपिका, दिसम्बर 1976 खण्ड–1 अंक 1–4, पृ0–52
4. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड– 257, पृ0– 1056

1952 से 1986 तक प्राप्त अविश्वास प्रस्तावों में से ऐसे अविश्वास प्रस्ताव जिन्हें अध्यक्ष द्वारा ग्राह्य किये जाने के बाद भी सदन में सदस्यों के आवश्यक समर्थन के अभाव में प्रस्तुत किये जाने की अनुज्ञा नहीं मिली – विवरण इस प्रकार है :-

तालिका (ख)

प्रस्तावक सदस्य	मुख्यमंत्री जिनके कार्यकाल में प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ	प्रस्तुत किये जाने की तिथि	अनुज्ञा के लिए प्राप्त मतोंकी संख्या	आवश्यक संख्या
1. श्री राजनरायण	डा0 सम्पूर्णानन्द	25.8.1955	23	86
2. श्री राजनारायण	"	24.7.1956	16	"
3. श्री शारदा भक्तसिंह	"	20.12.1956	23	"
4. श्री राम स्वरूप वर्मा	"	28.8.1957	80	"
5. श्री देवनारायण भारतीय	"	9. 9.1960	17	"
6. श्री राम स्वरूप वर्मा	"	15.11.1961	28	"
7. श्री रक्षपाल सिंह ट्रम्बेश्वर प्रसाद व अन्य	श्रीमती सुचेता कृपलानी	17. 2.1965	कुछ भी नहीं	"

इन अस्वीकृत अविश्वास प्रस्तावों में एक विशेष बात यह है कि किसी भी प्रस्तावक को न तो नेता विरोधी दल का दर्जा प्राप्त था और न ही तत्कालीन नेता विरोधी दलों का समर्थन ही । ये प्रस्ताव अपेक्षाकृत छोटे विरोधी दल की ओर से अथवा निर्दलीय सदस्य के रूप में रखे गये यही कारण है कि उन्हें अपने प्रस्तावों के पक्ष में अनुज्ञा हेतु पर्याप्त मत नहीं मिले ।

प्रथम विधान सभा में केवल 40 सदस्यों के अत्यन्त अल्पमत में रहने के कारण विरोध पक्ष कदाचित स्वतः ही यह आशा नहीं करता था कि उसे सदन ऐसे प्रस्तावों को पेश किये जाने की अनुज्ञा देगा किन्तु द्वितीय विधान सभा में जहाँ विरोध पक्ष बढ़कर 144 की संख्या में पहुँच गया था प्रस्तुत किये जाने की अनुज्ञा इस लिये नहीं मिली क्योंकि इन प्रस्तावों पर उनमें परस्पर एकता नहीं रही ।

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों से प्राप्त विवरण से संकलित

तृतीय विधान में प्रस्तुत एक अविश्वास प्रस्ताव जिसे श्री ट्रम्बेश्वर प्रसाद तथा अन्य सदस्यों द्वारा सूचित किया गया था । 18 फरवरी 1965 को जब सदन के पटल पर अनुज्ञा हेतु उपस्थित हुआ उस समय सदन में काफी शोरगुल व्यवधान व सदन त्याग के दृश्य उत्पन्न हुये क्योंकि प्रस्तावक श्री ट्रम्बेश्वर प्रसाद ने कहा कि उनका प्रस्ताव अन्य विरोधी दलीय सदस्यों के प्रस्ताव के साथ 23 फरवरी को अनुज्ञा हेतु पेश किया जाये, अन्य विपक्षी सदस्यों ने भी यही मांग की किन्तु अध्यक्ष ने इसे स्वीकार नहीं किया, फलतः श्री ट्रम्बेश्वर प्रसाद के साथ जन संघ दल के सदस्य सदन छोड़कर चले गये और अनुज्ञा हेतु कोई सदस्य खड़ा नहीं हुआ इस प्रकार इस प्रस्ताव को सदन की अनुज्ञा प्राप्त नहीं हो सकी ।[1]

उ0प्र0 विधान सभा में ऐसे अवसर भी आये कि विपक्षी सदस्यों ने अविश्वास प्रस्ताव सूचित किये जाने के पश्चात स्वयं उन पर बल नहीं दिया । 1982 में जब मुख्यमंत्री पद पर श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह थे तब माननीय सदस्य श्री मोहन सिंह व श्री राम आसरे वर्मा ने मंत्रि परिषद में अविश्वास प्रस्ताव को प्रथक प्रथक अभिसूचित किया था। उक्त प्रस्तावों को सदन की अनुज्ञा हेतु रखे जाने के लिये स्वयं सदस्यों द्वारा ही बल नहीं दिया गया अतः ये प्रस्ताव सूचना स्तर पर ही रह गये ।[2]

उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव जिन पर सदन में चर्चा हुई:-

तालिका (ग) से प्राप्त आकड़ों से ज्ञात होता है सब से ज्यादा अविश्वास के प्रस्तावों की सूचनायें द्वितीय व तृतीय विधान सभा में सत्तारूढ़ कांग्रेस सरकार के विरूद्ध प्राप्त हुईं। चतुर्थ विधान सभा की 18 दिवसीय कांग्रेस सरकार के विरूद्ध तो अविश्वास का प्रस्ताव आने का अवसर ही नहीं आया क्योंकि तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्र भानु गुप्त ने अपने मंत्रि मण्डल के सदस्य चरण सिंह द्वारा दल बदल किये जाने के तुरन्त बाद अपना त्यागपत्र दे दिया था, तत्पश्चात श्री चरण सिंह के नेतृत्व में गठित संविद सरकार के विरूद्ध केवल एक अविश्वास का प्रस्ताव सदन में उपस्थित हुआ । पंचम विधान सभा की पाँच सरकारों में से 4 के विरूद्ध जिनके मुख्यमंत्री क्रमशः चौधरी चरण सिंह, श्री टी0एन0 सिंह, पं0 कमला पति त्रिपाठी थे अविश्वास प्रस्ताव पेश किये गये तत्पश्चात् छठी विधान सभा में मुख्यमंत्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा मंत्रि परिषद के विरूद्ध एक प्रस्ताव पेश हुआ । इसके बाद नियुक्त मुख्यमंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी के कार्यकाल में कोई अविश्वास प्रस्ताव प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया । सातवीं विधान सभा में श्री राम नरेश यादव के मुख्य मंत्रित्व काल में भी एक भी अविश्वास प्रस्ताव प्रतिपक्ष

---

1. उ0प्र0 वि0सभा का0 खण्ड-253, पृ0-1035-41
2. उ0प्र0 विधान सभा 1982 के प्रथम सत्र में कृत कार्यों का संक्षिप्त सिंघावलोकन 19 जनवरी 1982 से अप्रैल 1982

द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया, बाद में श्री बनारसी दास मंत्रि मण्डल के विरूद्ध 1 अविश्वास प्रस्ताव सदन में उपस्थित हुआ । आठवीं विधान सभा में श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के कार्यकाल में प्राप्त 2 प्रस्ताव मात्र सूचना स्तर तक रहे । श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे देने के बाद श्री श्रीपति मिश्र ने 19 जुलाई 1982 से 2 अगस्त 1984 तक मुख्यमंत्री का पद ग्रहण किया । श्री मिश्र के कार्यकाल मं 1 अविश्वास प्रस्ताव उपस्थित हुआ । एवं 3 अगस्त 1984 को केन्द्रीय मंत्रि मण्डल से श्री नारायण दत्त तिवारी को मुख्यमंत्री पद ग्रहण हेतु भेजा गया । तत्पश्चात मार्च 1985 में पुनः कांग्रेस मंत्रिमण्डल के मुख्यमंत्री होने पर श्री तिवारी मंत्रि मण्डल के खिलाफ 1 भी अविश्वास प्रस्ताव नहीं आया ।

इस प्रकार अध्ययनकालीन उ0प्र0 विधान सभा के इतिहास में अब तक 13 मुख्य मंत्रियों ने 21 बार अपनी मंत्रिपरिषद गठित की इसमें प्रथम श्री गोविन्द वल्लभ पन्त एवं श्री नारायण दत्त तिवारी, श्री राम नरेश यादव के अलावा कोई भी मुख्यमंत्री विपक्षी दलों के इस प्रहार से अछूता नहीं बच सका है – विवरण निम्नवत है ।

तालिका (ग)

उ0प्र0 में मुख्यमंत्रियों के विरूद्ध प्रतिपक्ष द्वारा दिये गये अविश्वास प्रस्ताव 1952–1986 तक

मुख्यमंत्रियों के नाम	प्रस्तावों की संख्या	सदन का निर्णय
डा0 सम्पूर्णानन्द	12	सभी अस्वीक
श्री चन्द्र भानु गुप्त	5	सभी अस्वीकृत
श्रीमती सुचेता कृपलानी	5	दो अस्वीकृत तीन वापस
चौधरी चरण सिंह	3	अस्वीकृत
श्री टी0एन0 सिंह	1	चर्चा नहीं
पं0 कमला पति त्रिपाठी	1	अस्वीकृत
श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा	1	अस्वीकृत
श्री नारायण दत्त तिवारी	कोई नहीं	–
श्री राम नरेश यादव	कोई नहीं	–
श्री बनारसी दास	1	अस्वीकृत
श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह	2	वापस
श्री श्रीपति मिश्र	1	अस्वीकृत
श्री नारायण दत्त तिवारी	कोई नहीं	–

द्वितीय विधान सभा में जिन अविश्वास प्रस्तावों की चर्चा हुई उनमें सर्वाधिक महत्व पूर्ण 31 जुलाई 1959 को विपक्ष के नेता श्री त्रिलोकी सिंह द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव था । विपक्ष द्वारा प्रस्तुत इस अविश्वास प्रस्ताव की सार्थकता का विश्लेषण करने से यह तथ्य सामने आया कि शासनारूढ़ दल के सदस्यों ने शासन की एक स्तर तक आलोचना की लेकिन उन्होने खुलकर मत विभाजन की स्थिति में प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के पक्ष में मत नहीं दिया । इस ऐतिहासिक घटना का विवरण निम्न है ।

दिनांक 31.7.59 को नेता विरोधी दल श्री त्रिलोकी सिंह द्वारा डा0 सम्पूर्णानन्द मंत्रि मंण्डल के विरूद्ध प्रस्तुत एक अविश्वास प्रस्ताव,"विधान सभा की यह बैठक उ0प्र0 मंत्रि परिषद पर अविश्वास प्रकट करती है" को सदन की अनुज्ञा 103 मतों से प्राप्त हुई । 6 व 7 अगस्त को जब सदन में मंत्रि मण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी सत्ता पक्ष के 97 सदस्यों ने हस्ताक्षर करके अध्यक्ष को एक लिखित ज्ञापन दिया जिसमें डा0 सम्पूर्णा नन्द सरकार की खुलकर आलोचना की गई थी और इन असन्तुष्टों द्वारा एक प्रकार से सरकार पर अविश्वास व्यक्त किया गया था । इन सदस्यों ने इतना होते हुये भी न केवल प्रस्ताव के पक्ष में मत न देने का लिखित आश्वासन दिया वरन् उन्होने मत विभाजन में अपने शासक दल का साथ दिया, फल स्वरूप प्रस्ताव गिर गया । इन लोगों ने प्रस्ताव के वाद-विवाद में भी भाग नहीं लिया । इन असन्तुष्टों की ओर से आचार्य जुगुल किशोर द्वारा सदन में पढ़कर सुनाया गया ज्ञापन इस प्रकार था :

"मंत्रि मण्डल में अविश्वास प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो बहस विधान सभा में चल रही है उसमें इच्छा होते हुये भी हम लोग भाग नहीं ले सकते ।....
हमारी राय में डा0 सम्पूर्णानन्द जिस प्रकार से शासन चला रहे हैं वह आम जनता व साधारण कांग्रेस की आशाओं के अनुकूल नहीं है......

अब कुछ दिनों से सरकार कांग्रेस दल की सरकार की हैसियत से काम नहीं कर रही है, बल्कि अपने आपको दल के अन्दर एक गुट की सरकार मानती है । सरकारी मशीनरी का खुलकर अथवा बिना किसी हिचकिचाहट के अपने गुट के हित में प्रयोग किया जा रहा है । ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि इस सरकार को हमारा विश्वास प्राप्त है । इस आशा से कि अन्त में सुबुद्धि से काम लिया जायेगा हम विरोधी दल द्वारा प्रस्तावित इस अविश्वास प्रस्ताव के हक में अपना मत नहीं दे रहे हैं"।[1]

सदन में विभाजित होने पर पक्ष में 112 तथा विपक्ष में 285 मत पड़े अतः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ किन्तु यह सम्पूर्ण विवरण से ज्ञात होता है कि भले ही विपक्ष

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड- 205 पृ0- 849-50

सरकार को गिराने में अक्षम रहा किन्तु सत्तापक्ष के सदस्यों द्वारा अपरोक्ष रूप से प्रस्ताव का समर्थन प्रतिपक्ष की नैतिक विजय थी ।

तृतीय विधान सभा में जिन अविश्वास प्रस्तावों पर सदन में चर्चा हुयी उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव श्री शारदा भक्त सिंह और कुछ अन्य सदस्यों का था जिस पर सदन में 29 जुलाई 1964 को चर्चा हुई । इस प्रस्ताव की प्रमुख विशेषता यह थी कि यह सरकार की खाद्यनीति के विरूद्ध ही मुख्य रूप से उपस्थित किया गया था और सदन का वाद-विवाद भी खाद्य विषयक समस्याओं व कठिनाइयों पर ही अधिकांशतः केन्द्रित रहा । प्रतिपक्ष के अतिरिक्त शासक दल कांग्रेस के भी कुछ सदस्यों ने इस प्रस्ताव पर बोलते हुये प्रदेश की विषम खाद्य स्थिति के लिये सरकार की आलोचना की । कांग्रेसी सदस्य श्री कृष्ण चन्द्र वर्मा ने सदन में अपना भाषण देते हुये कहा कि "...... आज जो विषम परिस्थिति है, उसमें उनकी नौकरशाही और प्रशासन अधिकांशतः तथा मूलतः जिम्मेदार है ।[1]

चार दिन के तीव्र वाद-विवाद के पश्चात 3 अगस्त 1964 को यह प्रस्ताव सदन में मतदान हेतु उपस्थित हुआ जिसमें पक्ष में 102 तथा विपक्ष में 239 मत पड़े फलतः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।[2]

चतुर्थ विधान सभा का ऐतिहासिक अविश्वास का प्रस्ताव श्री चन्द्रभानु गुप्त (नेता विरोधी दल) द्वारा 26 जुलाई 1967 को सदन में प्रस्तुत किया गया। इस समय प्रदेश में संयुक्त विधायक दल का शासन था, जिनके पारस्परिक मतभेद व विचारों की भिन्नता तथा सदन में कांग्रेस व संविद के सदस्यों की संख्या के मध्य अधिक अन्तर न होना इस संभावना के लिये पर्याप्त था कि शायद यह अविश्वास प्रस्ताव सदन में स्वीकृत हो जाये । शासक दल व विरोधी कांग्रेस दल अधिक से अधिक सदस्यों को अपने अपने पक्ष में करने का भरसक प्रयास कर रहे थे । सरकार के समक्ष भी यह अत्यन्त कठिन व निर्णायक स्थिति उत्पन्न हो गई थी । दोनों पक्षों द्वारा अपनी विजय की आशाओं व संभावनाओं को व्यक्त किया जा रहा था ।

अन्ततः दो दिन के उग्र वाद-विवाद के बाद 27 जुलाई 1967 को यह प्रस्ताव सदन में मत हेतु प्रस्तुत किया गया विभाजन होने पर प्रस्ताव के पक्ष में 200 व विपक्ष में 220 मत आये, फलतः केवल 20 मतों से सरकार विजयी हुई ।[3]

---

1. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड- 250 पृ0- 267
2. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड-250, पृ0- 508-11
3. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड- 275, पृ0-94

पंचम विधान सभा में कांग्रेस ई0 व भारतीय क्रांति दल की साझा सरकार के शासन काल में तत्कालीन नेता विरोधी दल चौधरी गिरधारी लाल ने सरकार की नीति सम्बन्धी विफलताओं का विस्तार से उल्लेख करते हुये एक महत्वपूर्ण अविश्वास का प्रस्ताव सदन के समक्ष उपस्थित किया । जिसमें कहा गया था -- "क्योंकि इस मंत्रि परिषद ने सवा छः एकड़ तक की बिना बचत की जोतों के लगान खत्म करने की नीति को अस्वीकार किया है, वृत्तिकर (प्रोफेशन टैक्स) को दोबारा प्रदेश पर लादा है, सहायता प्राप्त गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षण एवं गैर शिक्षण कर्मचारियों को नियमित रूप से वेतन दिये जाने की जिम्मेदारी लेने से इन्कार किया है, हरिजनों की सरकारी नौकरियों में उनके संरक्षण कोटे की पूर्ति के समय तक के लिये 45 प्रतिशत की भर्ती की नीति को ठुकरा दिया है, आबपाशी की दरों को नहीं घटाया है सरकारी काम काज व अदालतों में अंग्रेजी हटाकर हिन्दी को लागू करने तथा उर्दू के उचित विकास की नीति नहीं अपनाई है तथा दमन पर उतारू है । अतः यह सदन वर्तमान मंत्रि परिषद में विश्वास का अभाव प्रकट करता है ।"[1]

इस समय प्रदेश विधान सभा में दल बदल के प्रवाह के कारण राजनीतिक दलों की शक्ति काफी अस्थिर व अनिश्चित थी, अतः इस प्रस्ताव के भविष्य के बारे में विभिन्न अटकलें लगायी जा रही थी परन्तु इस प्रस्ताव ने भी प्रदेश के अविश्वास प्रस्ताव सम्बन्धी भूतकालीन इतिहास को यथावत् रखा और 21 फरवरी 1970 को विभाजन होने पर इसके पक्ष में 169 तथा विपक्ष में 236 मत आये, फलस्वरूप यह प्रस्ताव सदन द्वारा अस्वीकृत हुआ ।[2]

पंचम विधान सभा में चर्चा हेतु उपस्थित दूसरे अविश्वास प्रस्ताव की सूचना श्री जयराम वर्मा, श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी, श्री कल्पनाथ सिंह व श्री अनन्तराम जायसवाल द्वारा संयुक्त रूप से दी गई थी जिसमें प्रस्तावकों द्वारा अविश्वास के कारणों का कोई उल्लेख नहीं किया गया था । इस प्रस्ताव को 27 जुलाई 1972 को सदन द्वारा अनुज्ञा प्रदान की गई और इस पर 2 व 3 अगस्त को सदन में चर्चा हुई । चर्चा के दौरान सदस्यों द्वारा सरकार की विभिन्न नीतियों, प्रशासन में व्याप्त अक्षमता, भ्रष्टाचार, जातिवाद व पक्षपात आदि के तीखे शब्दों में आलोचना की गयी किन्तु अन्त में मत विभाजन होने पर यह प्रस्ताव 115 के विरूद्ध 256 मतों से अस्वीकृत हो गया ।[3]

---

1. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड- 281 पृ0- 279
2. उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही खण्ड-281, पृ0-482-86
3. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड-299, पृ0-818-81 व 942-1035

छठी विधान सभा में प्रस्तुत एक मात्र अविश्वास प्रस्ताव जिसे तत्कालीन नेता विरोधी दल चौधरी चरण सिंह नें 1 जनवरी 1975 को प्रस्तुत किया था, अभूतपूर्व दृश्य देखनें को मिलता है । इस प्रस्ताव को 135 सदस्यों के मत से अनुज्ञा प्राप्त हुई । दिनांक 2.3. जनवरी 1975 को परम्परागत ढंग से गरमागरम चर्चा हुई किन्तु जब मत विभाजन का अवसर आया तो सम्पूर्ण विरोधी सदस्य बर्हिगमन कर गये । माननीय अध्यक्ष नें कहा– "यह संसदीय इतिहास में, मैं केवल इतना कहूँगा कि यह तो अविश्वास का प्रस्ताव लाये और इस प्रकार वाक् आउट किया, यह अभूतपूर्व है।" प्रश्न उपस्थित किया गया व अस्वीकृत हुआ ।[1]

सातवीं विधान सभा में एक अविश्वास प्रस्ताव तत्कालीन नेता विरोधी दल श्री नारायण दत्त तिवारी (कांग्रेस ई0) द्वारा प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव को अनुज्ञा प्राप्त हुई तथा वाद–विवाद के पश्चात प्रस्ताव पर मतदान हुआ। प्रस्ताव के पक्ष में 192 तथा विपक्ष में 219 मत पड़े जिनमें 5 मत अवैध घोषित हुये अतः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।[2]

आठवीं विधान सभा में मुख्य मंत्री श्रीपति मिश्र के कार्यकाल में दिनांक 2 सितम्बर 1983 को एक अविश्वास प्रस्ताव तत्कालीन नेता विरोधी दल श्री राजेन्द्र सिंह, राजेन्द्र गुप्त, रियासत हुसैन व मोहन सिंह व कई अन्य सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किया गया । इस प्रस्ताव पर अनुज्ञा प्राप्त हुई तथा उसी दिन चर्चा हुई । चर्चा लगभग 4 घण्टे चलती रही । अन्ततः प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।[3]

प्रतिपक्ष का दृष्टिकोणः–

अध्ययनाधीन विधान सभाओं के कार्यकाल में प्रस्तुत अविश्वास प्रस्तावों के उपर्युक्त विवेचन के बाद स्वतः यह प्रश्न उतपन्न होता है कि इन प्रस्तावों के पीछे विपक्ष का दृष्टिकोण व उद्देश्य क्या था ? क्या वे वास्तव में सत्तारूढ़ सरकार को गिराने ओर उसके स्थान पर वैकल्पिक सरकार की स्थापना के उद्देश्य से उपस्थित किये गये थे।

सिद्धान्ततः अविश्वास का प्रस्ताव विपक्ष के पास एक ऐसा प्रमुख शस्त्र है जिसके द्वारा वह सरकार को गिराकर उसके स्थान पर वैकल्पिक सरकार के गठन का अवसर प्राप्त कर सकता हे । परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति उसी अवस्था में सम्भव है

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–254 पृ0–132–143
2. संसदीय दीपिका खण्ड–1 अंक 1–4, पृ0– 52
3. संसदीय दीपिका खण्ड–1 अंक 1–4 पृ0–53

जब सदन में शासक व विरोध पक्ष की शक्ति में बहुत अधिक अन्तर न हो, अर्थात विरोधी दल विकल्प के रूप में सरकार बनाने की स्थिति में हो किन्तु उ0प्र0 विधान सभा में स्थिति इस सिद्धान्त से पूर्णतया भिन्न रही है । अध्ययनाधीन विधान सभाओं में विरोधी दलों द्वारा सबसे अधिक अविश्वास प्रस्ताव द्वितीय व तृतीय विधान सभा में उपस्थित किये गये जिसमें कांग्रेस का स्पष्ट बहुमत था और विपक्षी दल किसी भी प्रकार से वैकल्पिक सरकार बनाने की स्थिति में नहीं थे । पंचम विधान सभा में भी चर्चा हेतु उपस्थिति दो अविश्वास के प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव श्री जयराम वर्मा व अन्य 4 सदस्यों द्वारा उस समय उपस्थित किया गया जब कांग्रेस के विभाजन व अत्याधिक दल बदल के कारण कांग्रेस (ई0) को सदन में स्पष्ट बहुमत प्राप्त था और प्रदेश में श्री कमलापति त्रिपाठी के मुख्य मंत्रित्व में सरकार प्रतिष्ठित थी ।

केवल दो अविश्वास प्रस्ताव जिन्हें चतुर्थ व पंचम विधान सभाओं क्रमशः श्री चन्द्रभानु गुप्त व चौधरी गिरधारी लाल द्वारा प्रस्तुत किया गया था, पर चर्चा के समय सम्भवतः प्रतिपक्ष नें बैकल्पिक सरकार की स्थापना की बात सोची हो क्योंकि उस समय शासक दल व विरोधी दलों की शक्ति में बहुत अधिक अन्तर नहीं था और क्रमशः 20 व 67 मतों से ही तत्कालीन सरकारें अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकीं । इन दोनों प्रस्तावों के अतिरिक्त प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्टम, सप्तम व अष्टम विधान सभा में कोई भी अविश्वास का प्रस्ताव 100 से कम मतों से अस्वीकृत नहीं हुआ ।

इस प्रकार प्रतिपक्ष को सदनों में सत्तारूढ़ दल की शक्ति का आभास होते हुये भी अविश्वास प्रस्तावों की प्रस्तुति इस तथ्य को प्रकट करती है कि उनका उद्देश्य वैकल्पिक सरकार का गठन न होकर केवल सरकार की नीतियों की निन्दा व उसके कार्यों का विरोध करना था । जिसे विरोधी दल सामान्यतः अपना प्रमुख कर्तव्य मानते हैं । इस तथ्य को स्वयं विरोधी दल के नेताओं ने भी अविश्वास प्रस्तावों पर चर्चा के दौरान अपनी वक्तृताओं में स्वीकार किया है । उदाहरणार्थ – पंचम विधान सभा में 2 अगस्त 1972 को अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये तत्कालीन नेता विरोधी दल श्री चरण सिंह ने कहा – "मैं इस मुगालते में नहीं हूँ कि हमारी किसी कोशिश से इस गर्वनमेंट का पतन हो सकता है .... मै तो केवल अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहता हूँ ओर इसी लिये मैने यह प्रस्ताव पेश किया है ।"[1]

इन प्रस्तावों के द्वारा वस्तुतः सरकार की नीतियों व कार्यों में सदन का अविश्वास व्यक्त किया जाता है । यह अविश्वास तभी न्याय संगत होगा जब सरकार को कुछ

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड– 299, पृ0– 819

समय तक कार्य करने का अवसर प्राप्त हो चुका है और साथ ही उसके कुछ निश्चित कारण बताये गये हों किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य जनक है कि अध्ययनाधीन विधान सभाओं में प्रायः सरकार के गठन के तत्काल बाद प्रारम्भ हुये विधान सभा के सत्र में अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया । उदाहरणार्थ तृतीय विधान सभा में मार्च 1962 में गठित सरकार के विरूद्ध दो अविश्वास के प्रस्तावों की सूचना क्रमशः अप्रैल 1962 व अगस्त 1962 में प्राप्त हुई, चतुर्थ विधान सभा में 3 अप्रैल 1967 को श्री चरण सिंह ने संविद सरकार के मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की और 26 जुलाई 1967 को उनके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पेश हुआ । इसी प्रकार पंचम विधान सभा में भी 18 फरवरी 1970 को बनी कांग्रेस (ई) व भारतीय क्रान्ति दल की साझा सरकार के विरूद्ध पहला अविश्वास का प्रस्ताव 13 मार्च 1970 को, श्री टी0एन0 सिंह के नेतृत्व में 2 अक्टूबर 1970 को निर्मित संविद सरकार के विरूद्ध 25 मार्च 1971 को तथा पण्डित कमलापति के मुख्यमंत्रित्व में 4 अप्रैल 1971 को गठित कांग्रेस सरकार के विरूद्ध जुलाई 1972 को अविश्वास के प्रस्ताव प्रस्तुत हुये । इसके अतिरिक्त 32 अविश्वास प्रस्तावों में से 18 अविश्वास प्रस्तावों में किसी कारण विशेष का उल्लेख नहीं किया गया था । परिणाम स्वरूप प्रतिपक्ष को सरकार की आलोचना की अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता थी जिसका उन्होने पूरा-पूरा उपयोग किया और मंत्रिमण्डल के सदस्यों व प्रशासनिक अधिकारियों पर अनेकों आरोप लगाते हुये यथा सम्भव कटुतम शब्दों में भर्त्सना व निन्दा की ।

उपर्युक्त तथ्यों से ऐसा लगता है कि प्रतिपक्ष ने सरकार के विरोध की अपनी प्रवृत्ति के कारण ही बहुधा विधान सभा के प्रत्यंक सत्र में अविश्वास प्रस्तावों को प्रस्तुत किया नकि सही अर्थों में सरकार की नीतियों व कार्यों में सदन का अविश्वास व्यक्त करने के लिये उनका प्रयोग किया गया । साथ ही विपक्षी सदस्यों द्वारा प्रस्तुति के जो आधार बताये गये वे लगभग एक से थे । प्रायः सभी चर्चाओं में सम्बन्धित सरकारों के विरूद्ध भ्रष्टाचार, अक्षमता, दूषित प्रशासन, जातिवाद, भाई भतीजाबाद, गरीबी व बेकारी आदि समस्याओं के समाधान में असफलता के आरोप लगाये गये ।

अतः ऐसा लगता है कि सरकार के विरूद्ध इस असाधारण व महत्वपूर्ण साधन का विपक्ष द्वारा गम्भीरता पूर्ण प्रयोग नहीं किया गया और यह कहना अनुचित न होगा कि विरोधी सदस्यों द्वारा अक्सर अविश्वास प्रस्तावों को उपस्थित कर उनकी प्रभावशीता को ही कम कर दिया गया । क्योंकि अध्ययनाधीन विधान सभा में प्रस्तुत अविश्वास प्रस्तावों के इस अध्ययन में दो अवसरों (चतुर्थ विधान सभा में 26 जुलाई 1967 को श्री चन्द्रभानु गुप्त तथा पंचम विधान सभा में चौधरी गिरधारी लाल द्वारा 21 मार्च 1970 को प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव) के अतिरिक्त कभी इनके प्रति शासक दलों में अपने दृढ़ बहुमत के कारण कोई भय अथवा चिन्ता परिलक्षित नहीं हुई बल्कि प्रायः सरकार की ओर से इन प्रस्तावों पर यथाशीघ्र चर्चा हेतु तत्परता दिखाई गयी ।

विरोधी सदस्यों द्वारा सरकार को गिराने में अपनी असमर्थता को भी भलीभाँति जानते हुये भी बार-बार अविश्वास के प्रस्तावों को प्रस्तुत कर सदन का समय ही नष्ट किया गया क्योंकि इन अविश्वास प्रस्तावों के माध्यम से उनके द्वारा सरकार की जो आलोचना आदि की गयी वह प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत प्राप्त अन्य अवसरों पर सुगमता से की जा सकती थी।

अविश्वास प्रस्तावों के महत्व को देखते हुये यह आवश्यक है कि सदस्यों के इस अधिकार को कुछ नियंत्रित किया जाये, इसके लिये प्रस्ताव के ग्राह्यता सम्बन्धी नियमों में निम्न संशोधन श्रेयस्कर व उपयोगी हो सकते हैं।

1. प्रस्ताव सामान्यतः नेता विरोधी दल द्वारा ही प्रस्तुत किया जाना चाहिये क्योंकि उससे ही सरकार के पतन की अवस्था में बैकल्पिक सरकार के निर्माण की अपेक्षा होती है।

2. सरकार में विश्वास का अभाव प्रकट करने वाले एक पंक्ति के अविश्वास के प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये इसकी ग्राह्यता हेतु स्पष्ट कारणों का उल्लेख आवश्यक होना चाहिये।

3. प्राक्‌दर्शन में यदि अध्यक्ष को ऐसा लगे कि प्रस्तुत आरोपों के आधार पर अविश्वास का प्रस्ताव उठाया जाना आवश्यक व नियम संगत है तभी उसे उठाये जाने की अनुमति दी जानी चाहिये।

4. राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के समय, आय-व्ययक पर सामान्य विवाद के समय तथा उसकी विभिन्न मदों पर हो रही चर्चा के समय अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए क्योंकि धन्यवाद के प्रस्ताव में विपक्ष द्वारा उपस्थित संशोधन और अनुदान के किसी भी मद पर कटौती प्रस्ताव की स्वीकृति मंत्रिमण्डल के पतन का स्वतः कारण बन जाती हे।

5. प्रस्ताव पर सदन की अनुज्ञा हेतु सदस्यों के पंचमांश की अपेक्षा तृतीयांश का समर्थन आवश्यक होना चाहिये क्योंकि जब प्रस्ताव के पारित होने के लिये आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन आवश्यक है तो उनकी अनुज्ञा हेतु मात्र पंचमांश के समर्थन का कोई औचित्य ही नहीं दिखाई देता है।

इन सुझावों के अनुपालन से निश्चित रूप से सदस्यों द्वारा इस अधिकार के दुरूपयोग की सम्भावनायें कम होंगी। और सदन का इनके वाद-विवाद में नष्ट होने

वाले समय का आवश्यक विधायी कार्यों में उपयोग किया जा सकेगा ।

(ग) **निन्दा प्रस्तावः-**

निन्दा प्रस्ताव मंत्रि परिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव से भिन्न है, निन्दा प्रस्ताव में उन अभियोगों के आधार का निर्धारण आवश्यक होता है जिन पर यह आधारित होता है और इसका प्रस्ताव सरकार की कतिपय नीतियों व कार्यों की निन्दा के प्रयोजन से किया जाता है ।

निन्दा प्रस्ताव पेश करने के लिये सदन की अनुमति को आवश्यकता नहीं है, यह सरकार के विशेषाधिकार पर है कि वह इसके लिये समय निकाले और इस पर चर्चा के लिये तारीख नियत करे। विधान सभा नियमावली में कोई विशिष्ट उपबन्ध नहीं है कि निन्दा प्रस्ताव किस प्रकार से पेश किया जाना है । इस प्रकार के प्रस्तावों में वे नियम लागू होते हैं जो साधारणः प्रस्तावों पर लागू होते हैं और उन्हें अनियत दिवस वाले प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ।[1]

निन्दा प्रस्ताव को मंत्री अथवा मंत्रियों द्वारा कोई कार्य करने अथवा न करने के लिये अथवा उसकी नीति के कारण मंत्रि परिषद अथवा किसी एक मंत्री के विरूद्ध अथवा मंत्रियो के समूह के विरूद्ध पेश किया जा सकता है और उसमें मंत्री अथवा मंत्रियों की किसी कार्य को न करने की वजह से उसमें सदन द्वारा खेद, आश्चर्य अथवा ग्लानि व्यक्त की जा सकती है । प्रस्ताव विशिष्ट और स्वतः सिद्ध होना चाहिये ताकि उसमें निन्दा के कारणें को संक्षेप में और परिशुद्धता से अभिलिखित किया जा सके । इस बारे में अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम स्वीकार किया जायेगा कि वह प्रस्ताव व्यवस्थाओं के अनुसार है अथवा किसी कारण से व्यवस्थानुसार नहीं है ।[2]

उ0प्र0 विधान सभा कार्य संचालन नियमावली में "सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की मान्यताओं" के कारण ही एक मंत्री या कई मंत्रियों के विरूद्ध निन्दा या अविश्वास का प्रस्ताव लाने का प्रावधान नहीं पाया जाता किन्तु सामान्य प्रस्ताव के माध्यम से ऐसे प्रश्न पर चर्चा सदन में होती देखी गई है । यहाँ तक कि प्रथम विधान सभा के कार्यकाल में किसी एक मंत्री के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लोने का प्रावधान नियमों में न होते हुये भी इस प्रस्ताव को ग्राह्यता प्रदान की गई जिसे निन्दा प्रस्ताव ही कहा जा सकता है ।

---

1. कौल शकधर-संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार पृ0- 657
2. कौल एवं शकधर-संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार, पृ0- 658

उ0प्र0 विधान सभा में उपर्युक्त धारणा के अनुरूप कई बार प्रतिपक्ष ने मंत्रि मण्डल के मंत्री विशेष के प्रति सदन में रोष खेद, आश्चर्य व निन्दा प्रकट की है । एवं मंत्रियों के विरूद्ध आरोपों की जाँच हेतु सदन में समितियों के गठन की भी मांग की है जिससे मंत्री विशेष के कदाचार को सदन के सम्मुख लाया जा सके । विवरण निम्नवत् है –

उ0प्र0 विधान सभा में सर्व प्रथम एक मंत्री के विरूद्ध प्रस्ताव श्री जगन्नाथ मल्ल ने स्वायत्त शासन मंत्री श्री मोहन लाल गौतम के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव के रूप में पेश किया । इस प्रस्ताव को मंत्रि मण्डल के केवल 1 सदस्य के विरूद्ध होते हुये भी श्री अध्यक्ष ने इसे वैद्य करार दिया और सदन की अनुज्ञा के लिये प्रस्तुत किया। प्रस्ताव में स्वायत्त शासन मंत्री श्री मोहन लाल गौतम की नीतियों व कार्यों को ही आलोचना का केन्द्र बनाया गया – यह प्रस्ताव निम्न प्रकार था "यह सदन श्री मोहन लाल गौतम, मंत्री स्वायत्त शासन विभाग उ0प्र0 की नीति व कार्यों के सम्बन्ध में अपना अविश्वास प्रकट करता है क्योंकि –

1. गत 3 फरवरी 1954 का कुम्भ के महान पर्व के अवसर पर कुम्भ मेला में सरकार की ओर से जैसा समुचित प्रबन्ध करना चाहिये था उसे मंत्री जी ने नहीं किया ।

2. वी0आई0पी0 कैम्प की स्थापना कराकर माननीय मंत्री जी नें राजकोष का दुरूपयोग कराया और इन्हीं की सुख सुविधा के प्रबन्ध में साधारण तीर्थ यात्रियों की पूर्ण उपेक्षा की गयी ।

3. कुम्भ मेला क्षेत्र का 3 फरवरी के पूर्व निरीक्षण करने पर भी माननीय मंत्री जी ने बांध के पास का बड़ा गढ्ढा जिसमें हजारों आदमी फंसे और हजार के ऊपर मरे उसे पटवाने की व्यवस्था नहीं की ।

4. 3 फरवरी के पूर्व घटना का निरीक्षण करने के बाद प्रबन्ध का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा जिससे बड़ी भीड़ मेला में एकत्र हुयी ।

5. इतनी बड़ी भीड़ को नियंत्रण कर स्थान के लिये जाने और आने का समुचित मार्ग विलगाव नहीं कराया ।

इसके अतिरिक्त....... स्वायत्ता शासन व्यवस्था के सभी अंगों को केन्द्रित कर मंत्री जी ने जनतंत्र में सत्ता के केन्द्रीकरण की नीति अपनायी जिससे सारे प्रान्त

में अव्यवस्था, अन्याय व कुनबापरस्ती बढ़ी है।"[1]

उपर्युक्त विवरण से यह एक प्रस्ताव एक मंत्री विशेष के विरूद्ध निन्दा प्रस्ताव का दृश्य उत्पन्न करता है किन्तु अध्यक्ष महोदय ने विधान सभा प्रक्रिया नियमावली में ऐसा उपबन्ध न होते हुये भी प्रस्ताव को अविश्वास प्रस्ताव के रूप में ग्राह्यता प्रदान की व सदन की अनुज्ञा हेतु प्रस्तुत हुआ जिसमें अनुज्ञा के पक्ष में केवल 14 सदस्य खड़े हुये अतः अनुमति नहीं मिली।

इसी क्रम में एक अन्य अविश्वास गृहमंत्री श्री हरगोविन्द सिंह के विरूद्ध 23 अप्रैल 1965 को सदन में प्रतिपक्षी सदस्य श्री काशी नाथ, श्री रतीपाल आदि ने प्रस्तुत किया किन्तु सामूहिक उत्तदायित्व के सिद्धान्त की मान्यताओं के आधार पर अध्यक्ष ने इसे उठाने की अनुमति नहीं दी। [2]

माननीय अध्यक्ष ने इस पर व्यवस्था देते हुए कहा कि "अविश्वास का प्रस्ताव एक मंत्री के विरूद्ध नहीं आ सकता चूँकि हमारे ध्यान में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है यद्यपि सेंश्योर मोशन का विधान 'मे'ज पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस में मिलता है, लेकिन ऐसा कोई विधान हमारे यहाँ नहीं है। पहले भी समय-समय पर यह प्रश्न हमारे सामने आता रहा है कि मंत्री विशेष के सम्बन्ध में असन्तोष हो तो ऐसा कोई प्रावधान हमारे नियमों में होना चाहिये कि जिसके द्वारा हम किसी एक मंत्री विशेष के विरूद्ध अविश्वास या निन्दा प्रस्ताव ला सकें। जब तक हमारे नियमों में ऐसा परिवर्तन न हो जाये तब तक हम किसी मंत्री विशेष के विरूद्ध ऐसा प्रस्ताव स्वीकार कर पाने में असमर्थ हैं।[3]

इस पर प्रतिपक्ष के श्री नेकराम शर्मा व काशीनाथ मिश्र तथा कुंवर श्रीपाल सिंह द्वारा यह कहे जाने पर कि "यदि एक मंत्री पद का दुरूपयोग अपने व्यक्तिगत व जातीय लाभ के लिये करता है, और सारी की सारी सरकार व सारे राज्य को बदनाम करे तो हमारे सामने क्या रास्ता रह जाता है। श्री अध्यक्ष नें कहा "हमारे संविधान या रूल्स में कोई स्पष्ट धारा या अनुच्छेद ऐसी नहीं मिलती जिसके अन्तर्गत किसी मंत्री विशेष के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया जा सके। उसमें केवल यह है कि कलेक्टिव रेस्पान्सिबिलिटी, अर्थात सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्रि परिषद का रहेगा और नियम 264 में है कि मंत्रि परिषद में विश्वास का अभाव प्रकट करने का प्रस्ताव अध्यक्ष की सम्मति से निम्नलिखित निर्वन्धनों के साथ किया जा सकेगा तो मंत्रि परिषद के विरूद्ध जो अविश्वास

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-130 दिनांक 25 फरवरी 1954, पृ0-264-266
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-257, दिनांक 23 अप्रैल 1965 पृ0- 433
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड- 257, पृ0-435

प्रस्ताव का प्राविधान है, किन्तु किसी मंत्री विशेष के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने की कोई प्रक्रिया इस उपबन्ध में नहीं है..... आप इस किस्म का सुझाव दें तो फिर नियम समिति के समक्ष उस पर विचार किया जा सकेगा । इस प्रकार यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।[1]

स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष नें मंत्री विशेष के कार्यों व नीतियों की निन्दा करने हेतु प्रस्ताव रखा किन्तु उसे अविश्वास प्रस्ताव के रूप में रखने के कारण अनुमति नहीं मिल सकी । यदि प्रतिपक्ष ने इन प्रस्तावों को साधारण प्रस्ताव या भर्त्सना प्रस्ताव के अन्तर्गत विधान सभा प्रक्रिया नियमावली के अधीन रखा होता तो संभवतः प्रतिपक्ष के प्रस्तावों को रखने का उद्देश्य प्रभावी ढंग से पूर्ण होता । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्ष द्वारा कार्य संचालन नियमावली की अनभिज्ञता ही प्रस्तावों के गिर जाने का कारण बनी ।

उ0प्र0 विधान सभा में निन्दा प्रस्ताव की उपर्लिखित धारणा के अनुरूप खेद प्रस्ताव भी पेश किये गये जिसमें मंत्री विशेष के कार्यों के प्रति खेद व्यक्त किया गया।

30 अगस्त 1978 को श्री गुलाब सेहरा ने प्रस्ताव किया कि "श्रीमान मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि सदन को खेद है कि राज्य सरकार के राज्यमंत्री श्री सत्यदेव त्रिपाठी ने 24 जून 1978 को तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री श्री राजनारायण के साथ हिमांचल प्रदेश की राजधानी शिमला में लगी धारा 144 को तोड़कर एक सार्वजनिक सभा में भाग लिया और तत्पश्चात् ऐसे वक्तव्य दिये जिसे हिमांचल प्रदेश की सरकार व जनता के पारस्परिक सम्बन्ध विगड़े और उ0प्र0 शासन की प्रतिष्ठा गिरी । इस सदन को खेद है कि मुख्यमंत्री जी ने इस सम्बन्ध में राज्य मंत्री श्री सत्यदेव त्रिपाठी के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है ।"[2]

ज्ञातव्य है कि श्री सत्यदेव त्रिपाठी के साथ श्री राजनारायण भी गये थे अतः केन्द्र में प्रधान मंत्री मोरार जी देसाई ने यह कह कर कि "मंत्रि मण्डल का समूहिक उत्तरदायित्व होता है और अगर कोई निषेधाज्ञा को भंग करता है तो मैं उसका इस्तीफा लूँगा" –श्री राज नारायण से इस्तीफा देने के लिये कहा था । किन्तु उत्तर प्रदेश राज्य विधान सभा में ऐसाकोई कदम नहीं उठाया गया ।

प्रतिपक्ष के सदस्यों ने इसे प्रधान मंत्रीके संसदीय आचरण व निर्देश की उपेक्षा मानते हुये सदन में श्री सत्यदेव त्रिपाठी के इस्तीफे की मांग की व मुख्यमंत्री की इस प्रस्ताव के माध्यम से कटु भर्त्सना की । इस प्रस्ताव पर अध्यक्ष ने इसे अनियत दिन

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड– 257 पृ0– 436
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड– 334 पृ0– 1057

के प्रश्न के रूप में नियम 105 के अन्तर्गत उपस्थित किया व मौखिक मतदान के लिये कहा–प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ ।

स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष अपने इस निन्दा करने के प्रयास में सफल रहा किन्तु बहुमत के अभाव में प्रभावी नहीं हो सका ।

उ0प्र0 विधान सभा में सदन में सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाये बिना किसी मंत्री के कतिपय अनुचित कृत्यों व नीतियों की निन्दा करने के प्रावधान के अनुरूप सामान्य तथा नियम 200 के अन्तर्गत भी ऐसे प्रश्नों पर सदन में चर्चा होती दिखी जिसमें मंत्री विशेष के कार्यो की भर्त्सना के साथ–साथ आरोपों की जाँच के लिये एक संसदीय समिति के गठन का माननीय अध्यक्ष से निवेदन किया गया –

"21 अप्रैल 1975 को श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी द्वारा राजस्व मंत्री श्री स्वामी प्रसाद सिंह पर आरोप लगाया कि " कल स्वामी प्रसाद सिंह जी ने राकेश त्रिपठी को जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय का इलेक्शन लड़ रहे है, एक चिठ्ठी लिखी कि तुम इलेक्शन लड़ों। तुम्हारे चुनाव के खर्च के लिये 10 हजार रू0 भेज रहा हूँ आप पूरी तैयारी करें और आवश्यकता हो तो...एस0एस0पी0 से भी सर्म्पक कर लेना। हमारी शुभकामनायें तुम्हारें साथ है तुम भारी बहुमत से जीत कर कांग्रेस के हाथ मजबूत करो और उ0प्र0 में हो रहे जे0पी0 आंदोलन का मुह तोड़ जबाब दो।[1]

इस पर श्री त्रिपाठी ने मुख्यमंत्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में होने वाले चुनाव में सरकारी हस्तक्षेप के सम्वन्ध में जाँच की माँग की। और राजस्व मंत्री श्री स्वामी प्रसाद की कटु भर्त्सना की ।

श्री स्वामी प्रसाद सिंह ने वक्तव्य किया कि उन्होने ऐसा कोई पत्र नही लिखा है तथा चर्चा बिना मत लिये समाप्त हो गई।

इसी प्रकार नियम 200 के अन्तर्गत 4 व 5 अप्रैल को वन मंत्री के खिलाफ मोती लाल देहलवी ने एक प्रस्ताव के रूप में दिया किन्तु अध्यक्ष ने इसे प्रस्ताव के रूप में स्वीकार नही किया बल्कि "ग्राम मधरवॉ चिन्हट, जिला लखनऊ की भूमि का वन मंत्री के कुटुम्ब के सदस्यों के नाम कराने के सम्वन्ध में श्री मोती लाल देहलवी द्वारा दी गयी सूचना पर वन मंत्री का स्पष्टीकरण" के रूप में स्वीकार किया। दिनांक 29 अप्रैल 1975 को इस पर सदन में वन मंत्री श्री अजीत प्रताप सिंह ने वक्तव्य देते हुये आरोप

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 316 पृ0 23 विधान सभा

को गलत बताया और चर्चा बिना मत लिये समाप्त हो गयी।[1]

दिनांक 26 अप्रैल 1975 को ऐसा ही नियम 200(1) के अन्तर्गत प्रस्ताव सर्वश्री मलखान सिंह, सर्वश्री मुलायम सिंह यादव, सत्यप्रकाश मालवीय तथा बेनी प्रसाद वर्मा द्वारा दिया गया– जिसे प्रारम्भ में माननीय अध्यक्ष द्वारा अस्वीकार कर दिया गया किन्तु उसी तरह का एक प्रस्ताव नेता विरोधी दल के खिलाफ सदन में भर्त्सना प्रस्ताव के रूप में नियम 200 के अन्तर्गत आ चुका था तो माननीय अध्यक्ष ने यह कहते हुये कि "यद्यपि श्री मलखान सिंह द्वारा किया गया प्रस्ताव नियमानुकूल है फिर भी किसी सदस्य या मंत्री के इस प्रकार के कदाचार के अरोपों की जॉच के लिये इस सदन की समिति की नियुक्ति उपयुक्त नही कही जा सकती लेकिन चूँकि अचानक नियम 200 के अन्तर्गत नेता विरोधी दल के खिलाफ स्वीकार किया जा चुका है इसलिये मेरा कोई चारा नही है अतः मैं अपवाद के रूप में माननीय श्री मलखान सिंह को प्रस्ताव की इजाजत देता हूँ।[2]

तब डा0 मलखान ने प्रस्ताव किया–"मान्यवर मैं आपकी आज्ञा से प्रस्ताव करता हूँ कि यह सदन माननीय उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक पांच सदस्यीय समिति का गठन करता है जो कि मंत्रि परिषद के सदस्य श्री राज मंगल पाण्डेय (परिवहन मंत्री) के विरूद्ध भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थो की पूर्ति के लिये अपने पद का दुरूपयोग किये जाने सम्बन्धी आरापे पत्र जो कि दिनांक 14 अप्रैल 1975 को उ0प्र0 जनसंघर्ष समन्वय समिति द्वारा माननीय मुख्यमंत्री को दिया गया है– की जॉच करके अपना प्रतिवेदन एक माह के भीतर प्रस्तुत कर दे।[3]

श्री मलखान सिंह ने परिवहन मंत्री के विरूद्ध आरोपों को व्यक्त करते हुये कहा कि वर्ष 1973 में जब माननीय मंत्री मंत्रिमण्डल में सम्मिलित थे और इनके पास परिवहन विभाग था तो इस विभाग में परिचालकों की कुछ जगह निकली और उन 110 जगहों में भर्ती में जो नियुक्ति पत्र दिये गये उनमें से 80 उम्मीदवारों के पते थे–"द्वारा श्रीमती मालती पाण्डेय 110 अशोक नगर लखनऊ" इस प्रकार अनेक गम्भीरतम आरोप माननीय मंत्री जी पर प्रतिपक्ष द्वारा लगाये गये और मॉग की कि इनके विरूद्ध पद के दुरूपयोग के आरोपो की जॉच करने के लिये एक समिति गठन करें जो जॉच के बाद अपना प्रतिवेदन 1 माह के भीतर प्रस्तुत कर दे।[4]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 316 अंक 2 पृ0 70
2. –तदैव– खण्ड 316 अंक 8 पृ0 78
3. –तदैव– खण्ड 318 अंक 8 पृ0 78
4. –तदैव– खण्ड 316 अंक 8 पृ0 80

तत्पश्चात श्री अध्यक्ष ने प्रश्न किया– "प्रश्न यह है कि यह सदन माननीय उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक 5 सदस्यीय समिति का गठन करता है .... जो अपना प्रतिवेदन एक माह के भीतर प्रस्तुत कर दे । प्रश्न उपस्थित हुआ व अस्वीकृत हुआ और इस के पश्चात प्रतिपक्षी दलों के सदस्यों ने यह कहते हुये कि "सार्वजनिक जीवन में ये लोग स्वच्छता नहीं चाहते," सदन का दल सहित त्याग किया ।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भले ही निन्दा प्रस्ताव के रूप में मंत्रिमण्डल के सदस्यों की भर्त्सना के प्रसताव सदन में नहीं आये तथापि सामान्य प्रस्तावों के माध्यम से प्रतिपक्ष सदन में मंत्री विशेष की भर्त्सना करता रहा है, ये प्रस्ताव प्रायः प्रतिपक्ष द्वारा ही उठाये गये जिनका आशय यह निकलता है कि विपक्षी दल ही लोकतंत्र व सदन की गरिमा की रक्षा के लिये अधिक सजग रहे तथा सत्तापक्ष ने इस विषय पर न कोई विशेष ध्यान दिया और न ही प्रभावपूर्ण कार्यवाही की । यह भी प्रतीत होता है कि प्रतिपक्ष ने सत्तापक्ष को कटघरे में खड़ा करके अपने इस अधिकार का निष्प्रभावी उपाय के रूप में उपयोग किया क्योंकि सत्तापक्ष का दृष्टिकोण सदस्यों के प्रति बचावकारी ही रहा ।

(घ) अन्य "विशेषाधिकार प्रस्ताव"–

विशेषाधिकार छूट का असाधारण अधिकार है ।[2] संसदीय भाषा में यह शब्द सामूहिक रूप से संसद के प्रत्येक सदन और व्यक्तिगत रूप से दोनों सदनों के प्रत्येक सदस्य के कुछ ऐसे अधिकारों और उन्मुक्तियों के लिये प्रयुक्त होता है जिसके बिना वह अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकता है और दूसरी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के अधिकारों व उन्मुक्तियों से अधिक है ।[3] इस प्रकार सदन व इसके सदस्यों द्वारा संवैधानिक कृत्यों के निर्वहन के लिये आवश्यक उनके मूल अधिकारों को विशेषाधिकार कहा जा सकता है ।[4]

संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य संसद की स्वतंत्रता, अपने प्राधिकार, गरिमा तथा स्वतंत्रता की रक्षा करना है ।

सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में संसद की साधारण विधि (लैक्स पार्लियामेन्ट्री) के अंग के रूप में संसदीय विशेषाधिकारों की विधि का प्रार्दुभाव हुआ ।[5] कालान्तर में अन्य देशों में विशेषाधिकार प्रस्ताव को संविधान में स्थान दिया गया । भारत के संविधान निर्माताओं ने इंग्लैण्ड की संसद का अनुसरण करते हुये अनुच्छेद 105 द्वारा संसद के दोनों सदनों तथा अनुच्छेद 194 द्वारा राज्य विधान मण्डलों व उनके सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार व उन्मुक्तियाँ प्रदान की है । प्रथम सदन में भाषण की स्वतंत्रता, द्वितीय कार्यवाही के प्रकाशन का अधिकार अनुच्छेद 105 (2) तथा अनुच्छेद 194 (2) में की गयी व्यवस्था के अनुसार संसद तथा राज्य विधान मण्डल या उनकी किसी समिति में कही गयी किसी बात अथवा दिये गये किसी मत के विषय में उनके

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड– 316, अंक–8, पृष्ठ–86.
2. पाकेटला लेमिस्कान पृष्ठ– 298, उद्धृत कॉल एवं शकधर "संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार" पृष्ठ– 186.
3. में इरस्किन पृष्ठ–42, उद्धृत कॉल एवं शकधर "संसदीय प्रणाली व व्यवहार" पृष्ठ– 186.
4. ए0आई0आर0 1954 इलाहाबाद 319, पृष्ठ– 325.
5. पचौरी पी0एस0: ला आफ पार्लियामेन्ट्री प्रिविलेज इन यू0के0 एण्ड इन इण्डिया, 1971.

सदस्यों के विरूद्ध मानहानि अथवा अन्य किसी प्रकार का दीवानी अथवा फौजदारी वाद नही चलाया जा सकता ।[1] तथा सदन के प्राधिकार के द्वारा तथा अधीन किसी प्रतिवेदन पत्र, मतो या कार्यवाहियों के प्रकाशन के विषय में न्यायालय द्वारा कोई कार्यवाही नही की जा सकती है ।[2] इन दो विशेषाधिकारों के अतिरिक्त भारतीय संसद तथा राज्य विधान मण्डल को वे शक्तियॉ व विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियॉ प्राप्त है जो संविधान के लागू होने के समय ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स, उसकी समितियों व सदस्यों को प्राप्त थी व हैं।

उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली के नियम 63 के अनुसार – किसी सदस्य के अथवा सदन के अथवा उसकी किसी समिति के विशेषाधिकार भंग अथवा अवमान के प्रश्न को अध्यक्ष की सम्मति से ।

(क) किसी सदस्य की ओर से शिकायत द्वारा।

(ख) सचिव की ओर से प्रतिवेदन द्वारा

(ग) याचिका द्वारा

(घ) समिति के प्रतिवेदन द्वारा उठाया जा सकता है।

परन्तु यदि विशेषाधिकार अथवा अवमान सदन का प्रत्यक्ष ही हुआ हो तो सदन अध्यक्ष की सम्मति से बिना किसी शिकायत ~~के~~ ~~ही~~ कार्यवाही कर सकता है।(1) जो सदस्य विशेषाधिकार हनन का प्रश्न उठाना चाहता है उसे सचिव को लिखित सूचना देनी पड़ती है (2) यदि अध्यक्ष प्रश्न को ग्राह्य समझता है तो वह उस मामले को सदन की राय की बिना विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट कर सदन को इसकी सूचना देता है 3

उर्पयुक्त नियमों के अनुसार उ0प्र0 विधान सभा में विपक्षी सदस्यों द्वारा प्रथम विधान सभा की अवधि में 28 विशेषाधिकार के प्रश्न उठाये गये इसमें केवल 3 को विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया। द्वितीय विधान सभा में 88 विशेषाधिकार के मामलों की सूचना दी गयी जिसमें मात्र 5 को विशेषाधिकार समिति को भेजा गया ।

---

1. अनुच्छेद 105 (2) तथा 194 (2)
2. –तदैव–
3. उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली 1959 पृ0823

तृतीय विधान सभा में 74 विशेषाधिकार के प्रश्नों की सूचना दी गयी जिसमें 21 को विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया । चतुर्थ विधान सभा में 17 विशेषाधिकार के अवहेलना व सदन के अवमान के प्रश्न उपस्थिति हुये जिसमें 15 को अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत अथवा प्रस्तावक द्वारा वापस कर दिया गया केवल 2 प्रश्न विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट हुये । पंचम विधान सभा में 58 प्रश्न उपस्थिति हुये इसमें 44 अस्वीकृत तथा 14 विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गये। छठी विधान सभा में 142 प्रस्ताव विशेषाधिकार समिति के समक्ष उपस्थित हुये जिसमें 7 विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गये तथा 135 प्रस्ताव केवल प्राग्दर्शन के आधार पर ही अस्वीकृत हो गये । सप्तम विधानसभा में 230 प्रस्ताव समिति के लिये आये उनमें से 223 अस्वीकृत हुये व 7 प्रस्ताव विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट हुये । अष्टम विधान सभा में 150 प्रस्ताव प्रस्तुत हुये जिसमें 140 अस्वीकृत व 10 प्रस्ताव विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट हुये इस प्रकार अध्ययनाधीन विधानसभा में 787 विशेषाधिकार प्रस्ताव सदन में प्रस्तुत हुये इनमें से 718 अस्वीकृत व 69 प्रश्न विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट हुये ।

तालिका (क)

विधानसभा	उपस्थिति विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन के अवमान के प्रश्न	अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत अथवा प्रस्तावक द्वारा वापस प्रश्न	विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट
प्रथम	28	25	3
द्वितीय	88	83	5
तृतीय	74	53	21
चतुर्थ	17	15	2
पंचम	58	44	14
षष्टम	142	135	7
सप्तम	230	223	7
अष्टम	150	140	10
योग	**787**	**718**	69

सदन में प्रस्तुत विशेषाधिकार प्रस्तावों की संख्या अधिकतम 230 व न्यूनतम 17 रही व प्रतिवर्ष औसत 10.2.75 रहा सबसे अधिक विशेषाधिकार प्रस्ताव सप्तम विधान सभा में व सबसे कम चतुर्थ विधान सभा में रहे सप्तम विधान सभा में 230 प्रश्नों की दीर्घ संख्या को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि सदस्यगण अपने विशेषाधिकारों व सदन की गरिमा के प्रति काफी सचेत रहे और इसी लिये वे सदन के

समक्ष ऐसे प्रश्नों उपस्थित करते रहे परन्तु पीठासीन अधिकारी की दृष्टि में वे शायद विशेषाधिकार अवहेलना के गम्भीर प्रश्न नही थे अतः प्रस्तुत करने की अनुमति नही प्रदान की गयी । अध्ययनाधीन विधान सभाओं में प्रस्तुत विशेषाधिकार प्रस्तावों के सम्यक विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि इसमें अधिकांश प्रश्न ऐसे थे जिन्हें ग्राह्ता की शतें न पूरी करने के कारण अथवा प्राग्दर्शन में विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न होने के कारण अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया यह स्वयं प्रस्तावक ने उन्हें वापस ले लिया । अथवा सम्मबन्धित व्यक्ति द्वारा सदन में खेद व्यक्त किये जाने पर अध्यक्ष ने संसदीय मर्यादा के प्रति आरोपित पक्ष को आगाह करते हुये अस्वीकृत कर दिया ।[1] उदाहरण निम्नवत् है।

7 सितम्बर 1964 को जनंसघ के श्री शारदा भक्त सिंह ने शिक्षा मंत्री के विरूद्ध सरकारी नीति की घोषणा पहले सदन के बाहर करने के आधार पर विशेषाधिकार अवहेलना का प्रस्ताव उठाया लेकिन शिक्षा मंत्री ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुये सदनसे माफी माँगली तो अध्यक्ष ने श्री सिंह के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया ।[2] 6 अप्रैल 1972 को श्री विश्वनाथ कपूर द्वारा उद्योग राज्य मंत्री श्री देवकी नन्दन विभव पर सदन को गुमराह करने का आरोप लगाते हुये उनके विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उपस्थिति किया जिसे श्री विभव के लिखित स्पष्टीकरण के बाद उपाध्यक्ष महोदय ने अस्वीकृत कर दिया [3] अध्ययनाधीन विधान सभाओं में विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गये मामलों पर विस्तृत विवेचन आवश्यक है क्यों कि वस्तुतः ये वे प्रश्न थे जो पीठासीन अधिकारी की दृष्टि में ग्राह्य्यता की शतों को पूर्ण करने वाले थे । विवरण तालिका 3 (परिशिष्ट में उद्घृत है)

परिशिष्टतालिका-2 में उल्लिखित प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्टम सप्तम व अष्टम में विधान सभा के कार्यकाल में विशेषाधिकार को निर्दिष्ट मामलों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मामला केशव सिंह का था जिसने भारतीय संसदीय विशेषाधिकारों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा। इस मामले की सक्षिप्त चर्चा यहाँ समीचीन होगी ।

यद्यपि इस मामलें का प्रारम्भ एक विशेषाधिकार की अवहेलना की साधारण मामले के रूप में हुआ किन्तु इसका अन्त मौलिक अधिकारों व संसदीय विशेषाधिकारों के पारस्परिक सम्बन्धों के एक अत्यन्त विवादास्पद मामलें के रूप में हुआ जिसमें उ0प्र0 विधान सभा और प्रदेश के उच्च न्यायालय में प्रत्यक्ष टकराव की स्थिति हो गयी और जो अन्ततोगत्वा उच्चत्तम न्यायालय में विचारार्थ प्रस्तुत हुआ ।

---

1. उ0प्र0 विधान सभा के कार्यो के संक्षिप्त सिंहावलोकन व विधानसभा कार्यवाहियों से संकलित विवरण पर आधारित ।
2. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही अधिकृत विवरण 7 सितम्बर 1964 खण्ड254
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही 6 अप्रैल 1972

इस मामलें का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि 7 मार्च 1963 को संयुक्त समाजवादी दल के श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय ने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाते हुये शिकायत की जिला गोरखपुर के कुछ समाजवादी कार्यकर्ताओं सर्व श्री श्याम नारायण सिंह, केशव सिंह हुब लाल दुबे तथा महातम सिंह ने 5 मार्च 1963 को सदन के बाहर एक पर्चा (पम्फेलेट) जिसका शीर्षक था -"श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय के काले कारनामों का भंडाफोड" छपवा कर वितरित करवाया। इसमें श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय की सदन की सदस्य के रूप में आचरण की निन्दा की गयी है और इसका उद्देश्य उन्हें बदनाम करना व जनता की निगाह में गिराना है और इस प्रकार यह सदस्य के विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन के अवमान का प्रश्न है ।

अध्यक्ष ने इस प्रश्न को विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट कर दिया।[1] समिति ने अपने प्रतिवेदन में जिसे 23 सितम्बर 1963 को सदन में पेश किया गया जिसमें श्री महातम सिंह के अतिरिक्त श्री केशव सिंह, श्री श्याम नारायण मिश्र तथा श्री हुबलाल दुबे को विशेषाधिकार की अवहेलना के लिये दोषी ठहराया तथा सिफारिश की कि उक्त तीनों व्यक्तियों की सदन में शास्ति की जाये।[2]

सदन में 18 दिसम्बर 1963 को समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर अभियुक्तों की शास्ति केलिये सदन के समक्ष उपस्थिति होने के लिए आहूत किया परन्तु केवल श्री श्याम नारायण सिंह और हुबलाल दुबे 19 फरवरी 1964 को सदन के समक्ष प्रस्तुत हुये और उनकी शास्ति हुयी तथा श्री केशव सिंह को अनुपस्थिति रहने के कारण 3 मार्च 1964 को सदन में आने का आदेश दिया गया इसके बावजूद श्री केशव सिंह निशिचित तिथि को उपस्थिति नही हुये तो अध्यक्ष ने वारन्ट जारी कर 18 मार्च या उससे पूर्व सदन में उपस्थिति होने की बात कही । अध्यक्ष के इस निर्णय के विरूद्ध सोशलिस्ट सदस्य श्री उग्रसेन, श्री राधेश्याम शर्मा, लखखी सिंह, शिवनाथ सिंह व राम आसरे ने सदन से वाकआउट किया और कहा कि श्री सिंह के पास लखनऊ आने के लिय पैंसे नही थे जिसे सदन का अवमान मान कर अध्यक्ष ने विशेषाधिकार समिति को इस विचार हेतु निर्देश दिया । यद्यपि समिति ने इन सदस्यों को सदन के अवमान का दोषी तो ठहराया लेकिन उन्हें कोई दण्ड देने की अनुशंसा न करते हुये यह अपेक्षा की कि सदस्य गण भविष्य में उचित व्यवहार करेगें ।[3]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 240 पृ0 143.7 मार्च 1963
2. तृतीय विधान सभा की विशेषाधिकार समिति का चतुर्थ प्रतिवेदन
3. तृतीय विधान सभा की विशेषाधिकार समिति तेरहवां प्रतिवेदन

11 मार्च 1964 को श्री केशव सिंह ने अध्यक्ष के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सदन द्वारा की गयी शास्ति की सजा का यह तर्क देते हुये विरोध किया कि उन्हें विशेषाधिकार समिति के समक्ष निर्दोष सिद्ध होने के लिये सभी बातों को कहने का मौका नही दिया गया। श्री केशव सिंह ने पर्चे में श्री पाण्डेय के विरूद्ध छपी बातों को सत्य बताते हुये पत्र में यह भी लिखा कि "किराया ट्रेन गोरखपुर से लखनऊ आने का न होने की सत्यता बताने पर नादिरशाही फरमान वारन्ट जारी करके जनतंत्र में घोर कुठाराघात किया गया है इसलिये विशेषाधिकार समिति का विरोध करता हूँ।" 14 मार्च 1964 को श्री केशव सिंह को गिरफ्तार कर शास्ति हेतु सदन में उपस्थित किया गया किन्तु शास्ति की प्रक्रिया के समय उन्होने सदन के प्रति असम्मान पूर्ण व्यवहार किया फलस्वरूप मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेताकृपलानी के प्रस्ताव पर सदन ने उन्हें सात दिन का साधारण कारावास देने का प्रस्ताव स्वीकृत किया ।[1]

19 मार्च 1964 को श्री केशव सिंह ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ बेंच के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के अन्तर्गत अध्यक्ष उ0प्र0 विधानसभा, मुख्यमंत्री उ0प्र0 व जेल अधीक्षक लखनऊ के विरूद्ध एक याचिका प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने यह कहा कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अनुसार उनके बन्दीकरण का आदेश अवैध करार दिया जाय और याचिका पर निर्णय होने तक उन्हें जमानत पर रिहा किया जाय । याचिका पर सुनवाई उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री एन0यू0बेग व श्री जी0डी0 सहगल द्वारा की गयी । याचिका स्वीकार करते हुये माननीय न्यायाधीशों ने केशव सिंह के जमानत पर रिहायी के आदेश प्रदान किये और केशव सिंह को जेल से छोड़ दिया गया इस प्रकार श्री केशव सिंह ने कारावास की अवधि पूरी होने से पहले ही न्यायालय की शरण लेकर विधान सभा तथा न्यायालय के मध्यम अधिकार क्षेत्र के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक विवाद को जन्म दिया ।

20 मार्च 1964 को साम्यवादी दल के श्री चन्द्रजीत यादव तथा श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय ने सदन द्वारा दण्डित श्री केशव सिंह को करावास की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही जमानत पर रिहा होने के आधार पर लखनऊ के उक्त दोनों न्यायाधीशों तथा श्री सिंह के अधिवक्ता के विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाया । कांग्रेस के श्री बी0बी0 सरन के प्रस्ताव, कि श्री केशव सिंह को तुरन्त अभिरक्षा में ला कर दण्ड की शेष अवधि के लिये जिला जेल लखनऊ में बन्दी रखा जाय तथा श्री एन0यू0बेग श्री जी0डी0 सहगल तथा श्री वी0 सोलोमन को अभिरक्षार्थ न लाकर सदन में उपस्थिति किया जाय तथा जब श्री केशव सिंह की कारावास की अवधि पूरी हो जाय तो उन्हें 19

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 247, पृ0 4-8

मार्च 1964 को सदन का पुनः अवमान करने के अपराध में सदन में उपस्थिति किया जाये ।[1] मतदान हुआ अन्ततः यह प्रस्ताव 19 के विरूद्ध 129 विरूद्ध मतों से स्वीकृत हुआ ।[2]

इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन को रोकने के लिये 23 मार्च 1964 को न्यायाधीश श्री जी0डी0 सहगल व न्यायाधीश श्री एन0यू0 बेग ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में याचिकायें प्रस्तुत की और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 28 न्यायाधीशों की पूर्णपीठ ने उक्त याचिकाओं के निस्तारण होने तक के लिये रोधनादेश (स्टे आर्डर) पारित कर दिया । और यह आदेश दिया कि उन्हें हिरासत में लेने के लिये कोई आदेश अथवा वारन्ट जारी न किया जाय और यदि कोई आदेश पहले ही जारी हो चुका हो तो वह विधान सभा के अध्यक्ष, उ0प्र0 सरकार के मुख्य सचिव तथा विधान सभा के मार्शल द्वारा स्वयं अथवा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा कार्यान्वित नही किया जायेगा।

इस प्रकार इस मामले ने उ0प्र0 विधान सभा व उच्च न्यायालय के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर नागरिकों के मौलिक अधिकार व संसदीय विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में एक अत्यन्त गम्भीर संविधानिक विवाद पैदा कर दिया । अतः राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 144 (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग करते हुये इस पर उच्चतम न्यायालय का मत आमंत्रित किया । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के पक्ष में निर्णय दिया तथा कालान्तर में 10 मार्च 1965 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्री केशव सिंह की याचिका को रद्द करते हुये कहा कि– केशव सिंह की गिरफ्तारी व बन्दीकरण वैध था और किसी भी प्रकार से संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के प्रतिकूल नही था । न्यायालय ने अपने निर्णय में यह भी कहा कि "यह न्यायालय विधान सभा के ऐसी शक्तियों के सम्बन्ध में अपील नही सुन सकता जिन्हें प्रयुक्त करते हुये अपील कर्ता को सदन के अवमान के लिये दण्डित किया गया हो ।[3]

उ0प्र0 विधान सभा की विशेषाधिकार समिति ने इस मामलें में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुये कहा कि " राज्य के दोनों महत्वपूर्ण अंगों अर्थात विधानमण्डल तथा न्यायतंत्र के मिल–जुल कर काम करने के महत्व और हाल के न्यायिक निर्णयों को ध्यान में रखते हुये यह समिति समझती है कि यदि सदन इस मामले में अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करें तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जायेगा और सदन की गरिमा की रक्षा हो जायेगी

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 248, 21 मार्च 1964, पृ0170
2. –तदैव– खण्ड 248, 21 मार्च 1964, पृ0 175–76
3. ए0आई0आर0 (52) 1965, पृ0 350

तद्नुसार समिति की यह सिफारिश है कि की सदन की अप्रसन्नता को अभिव्यक्त कर दिय जाये ।[1] इस प्रकार मामला समिति की सिफारिश पर समाप्त हुआ ।

उर्पयुक्त मामले के अतिरिक्त कोई भी प्रश्न अध्ययनाधीन विधान सभाओं में व्यवस्थापिका व न्यायपालिका के मध्य संघर्ष उत्पन्न करने वाला नही उपस्थित हुआ अन्य मामलें जो इस अवधि में विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गये वे साधारण प्रकृति के थे ओर उनका समाधान भी समिति व सदन द्वारा सामान्य रूप में किया गया । विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये प्रश्नों का अधिकांशतः किन लोगों से सम्बन्ध था इस तथ्य का विवेचन निम्नवत् है:-

तालिका (ख)

जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्टम	सप्तम	अष्टम
सरकारी अधिकारी	3	1	6	-	8	4	3	7
प्रेस	-	-	1	-	2	-	-	-
साधारण नागरिक	-	-	5	-	3	1	-	-
विधानसभा के सदस्य	-	3	6	2	1	2	2	-
न्यायालय से मॉगे गये लेखों के सम्बन्ध में	-	1	3	-	-	-	1	1
योग	**3**	**5**	**21**	**2**	**14**	**7**	**6**	**8**

तालिका (ख) से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन विधान सभाओं के कार्यकाल में विशेषाधिकार समिति को प्रतिवेदन हेतु निर्दिष्ट होने वाले 66 मामलों में से 32 सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध थे । शिकायत के मुख्य कारण सरकारी पदाधिकारियों द्वारा शिकायतकर्ता को अपमानित करना व उनके साथ दुर्व्यवहार करने या उनके प्रति अश्लील भाषा के प्रयोग की बात कही गयी । कुछ मामलों (लगभग 10) विधायकों की गिरफ्तारी की सूचना

---

1. 18वा प्रतिवदेन तृतीय विधान सभा
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यो के सक्षिप्त सिंहावलोकन, कार्यवाहियों व विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदनों से संग्रहित आंकड़े

समय से व विहित प्रपत्र में विधान सभा अध्यक्ष के पास न भेजने के कारण भी सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध उठाये गये। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध दुर्व्यवहार की शिकायत करने वाले सदस्यों में से अधिकांश विरोधी दलों के सदस्य थे । ऐसी शिकायतों का विशलेषण करने से पता चलता है कि इनके पीछे शिकायतकर्ताओं का प्रमुख उद्देश्य सरकारी अधिकारियों को आतंकित करने के लिये उनके विरूद्ध छोटी-छोटी बातों को लेकर विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाकर सरकार की आलोचना करना व स्वयं को प्रकाश में लाना था । उदाहरणार्थ - अष्टम विधान सभा में विपक्षी सदस्य श्रीमती गौरा देवी (जनता जे0पी0) ने 23 मार्च 1981 को जिला मजिस्ट्रेट गोरखपुर के विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना की सूचना देते हुये कहा कि "माननीय राजस्व मंत्री द्वारा 12 मार्च 1981 को जिला मजिस्ट्रेट गोरखपुर के पास एक मामले में जॉच एवं नियमानुसार कार्यवाही के लिये एक टेलेक्स संदेश भेजा गया था। जब दिनांक 19 मार्च 1981 को माननीय सदस्या ने जिला अधिकारी से फोन पर सम्पर्क किया तो वे बिगड़ गये और कहा कि उनके पास कोई टेलेक्स नही आया है । इस पर माननीय सदस्या अपने निर्वाचन क्षेत्र के कुछ लोगों के साथ उपरोक्त टेलेक्स दिखाने जिला अधिकारी के घर पहुँची तो जिला अधिकारी ने प्रतिलिपि पढ़ने के उपरान्त उसे फैक दिया व कहा कि मैं नेतागिरी पसन्द नही करता । अभी बन्द करवा दूगां" इसकी सूचना मैंने तार द्वारा मान्यवर अध्यक्ष को भी कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि "आप एम0एल0ए0 लोग रोज यह खुराफात एसेम्वली में करते है मैं इससे डरता नही आप लोगो का यह पेशा बन गया है इसके बाद चपरासी से फोन करवा कर पुलिस को बुला लिया व खुद भाग गये...।[1]

अध्यक्ष ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया समिति ने यह निर्णय दिया कि समस्त संगत तथ्यों एवं साक्ष्यों पर विचारोपरान्त समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि डा0 सूर्य प्रकाश तत्कालीन जिला अधिकारी गोरखपुर के विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का आरोप नियम और परम्पराओं के अनुसार सिद्ध नही होता है अतः इस मामलें को समाप्त किया जाना उचित होगा ।[2]

विपक्ष द्वारा उठाये गये विशेषाधिकार मामलों में अधिकारियों की वाद सबसे अधिक मामले स्वयं विधान सभा सदस्यों के विरूद्ध है सरकारी अधिकारियों तथा प्रेस, साधारण नागरिकों व अन्य वाहरी संस्थाओं द्वारा सदस्यों के विशेषाधिकारो की अवहेलना व सदन

---

1. उ0प्र0 अष्टम विधान सभा के विशेषाधिकार समिति का छठा प्रतिवेदन
2. उ0प्र0 अष्टम विधानसभा की विशेषाधिकार समिति का छठा प्रतिवेदन

का अवमान सम्भाव्य है क्यों कि हो सकता है कि उन्हें इन विशेषाधिकारों का सम्यक बोध न हो किन्तु स्वयं विधान सभा सदस्यों द्वारा विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन का अव मान आश्चर्यजनक है क्यों कि सदस्यों को विशेषाधिकारों का समुचित ज्ञान न होने की बात हर दृष्टि से औचित्य के परे है साथ ही जब कभी उनके दल के सदस्यों के विरूद्ध विशेषाधिकारों के उल्लघंन के आरोप लगाये गये तब वे दलीय भावना से प्रेरित हो सदन के विशेषाधिकारों के प्रति न केवल अनुत्सुक दिखाई पड़े वरन् अपने सहयोगियों को बचाने के लिये प्रयत्नरत भी रहे । इससे उनके दोहरे आचरण का आक्षेप लगाया जा सकता है ।

विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन व उनकी अवाप्तियॉ–

अध्ययनाधीन विधान सभा की विशेषाधिकार समितियों को जो प्रश्न निर्दिष्ट हुये उनमें उनकी संस्तुतियॉ व अवाप्तियॉ क्या रही इसका विवेचन महत्वपूर्ण है । विशेषाधिकार की अवहेलना का कोई प्रश्न जब विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया जाता है तो नियम 266 के अनुसार उसे मुख्यतः 2 बातो के सम्बन्ध में प्रतिवेदन देना होता है –

1. विशेषाधिकार भंग किये जाने की शिकायत कहॉं तक ठीक है अर्थात कथित घटना से किसी सदस्य अथवा सदन के विशेषाधिकारों का हनन हुआ है या नही ?

2. यदि हॉं, तो दोषी व्यक्ति को क्या दण्ड देना उचित है?

निम्न तालिका में अध्ययनाधीन अवधि में विशेषाधिकार समिति की अवाप्तियों व संस्तुतियों के विवरण तालिका (ग) में उल्लेखित है। तालिका से स्पष्ट है कि विशेषाधिकार समिति में अपने प्रतिवेदनों में दोषी व्यक्तियों के लिये दण्ड की संस्तुति करने में काफी उदार दृष्टिकोण अपनाया । अध्ययनाधीन विधानसभाओं में केवल 10 मामलों में प्रथम में 2 द्वितीय में 2, तृतीय में 5 तथा अष्टम विधान सभा में एक मामलें में समिति द्वारा दण्ड की संस्तुति की गयी केवल दो मामले द्वितीय[1] व पंचम[2] विधान सभा में निलम्बन की सिफारिश से सम्बन्धित थे । 5 मामले सदन में रिप्रिमान्ड या शास्ति से सम्बन्धित थे शास्ति से सम्बन्धित मामलों का विवरण निम्नवत् है –

---

1. द्वितीय विधान सभा का प्रतिवेदन 22.2.59
3. पंचम विधान सभा का 12वां प्रतिवेदन

तालिका (ग)

विधानसभा	विशेषा0की अवहेलना हुयी,दण्ड की संस्तुति	विशेषा0 की अवहेलना का दोषी पाया किन्तु दण्ड की संस्तुति नही	विशेषा0 की अव0 नही	अव0 हुयी किन्तु दोषी व्यक्ति द्वारा खेद प्रकट-क्षमा	किसी अन्य कारण से समाप्त	अन्य विषयों के सम्बन्ध में संस्तुति
प्रथम	2	–	1	–	–	–
द्वितीय	2	1	1	–	–	1
तृतीय	5	4	4	5	–	3
चतुर्थ	–	–	1	–	1	–
पंचम	–	–	5	6	3	–
षष्टम	–	–	2	3	2	–
सप्तम	–	–	–	4	1	1
अष्टम	1	–	3	–	3	1

(उ0प्र0 विधानसभा विशेषाधिकार समिति के प्रतिवदेनों से प्राप्त विवरण)

प्रथम विधान सभा में 4 मार्च 1954 को प्रजा समाजवादी दल के श्री गेंडा सिंह ने अध्यक्ष को विशेषाधिकार की अवहेलना की प्रश्न को देवरिया के जेल अधीक्षक व जिला मजिस्ट्रेट के विरूद्ध दी कि " 7 फरवरी 1953 को मुझे व श्री राजवंशी राय को गिरफतार कर 15 दिन रिमाण्ड में रखने के बाद 6 दिन अवैध रूप से जेल में रखा ताकि बजट अधिवेशन में भाग न ले सकें । अध्यक्ष ने मामलें को विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये जाने का निर्णय दिया [1] समिति ने जेल अधीक्षक को निर्दोष व सरकारी वकील श्री लक्ष्मी नारायण मेहरोत्रा को गलत दस्तावेज पेश करने का दोषी ठहराया तथा प्रतिवेदन में सिफारिश की कि श्री मेहरोत्रा को सदन में बुलाकर उनकी भर्त्सना की जाय[2] 2 दिसम्बर 1954 को समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया गया तथा तय किया गया कि श्री मेहरोत्रा की भर्त्सना की जाय । 20 दिसम्बर 1954 को श्री मेहरोत्रा को सदन में लाया गया अध्यक्ष ने उन्हें विशेपाधिकार उल्लघंन के लिय चेतावनी दी । श्री मेहरोत्रा ने अध्यक्ष के सम्मुख सिर झुकाया तत्पश्चात सदन के बाहर चलें गये [3]

1. उ0प्र0 विधानसभा कार्यवाही खण्ड 131, 13 मार्च 1954, पृ0 433
2. उ0प्र0 विशेषाधिकार समिति प्रथम विधान.सभा,तृतीय प्रतिवेदन.
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 147, 20 दिसम्बर 1954, पृ0 26 तथा "आज" 22 दिसम्बर

द्वितीय विधान सभा में 2 मामले सदन में सम्बन्धित सदस्यों की शास्ति से सम्बन्धित रहे। 13 मार्च 1958 को श्री शान्ति प्रबल शर्मा ने श्री गेंदां सिंह के विरूद्ध इस बात की विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाया कि उनके द्वारा 21 फरवरी 1958 को पूछे गये कुछ अल्पसूचित तारांकित प्रश्नों के सम्बन्ध में उन्होंने सदन व श्री अध्यक्ष को भ्रम में डालने की चेष्टा की थी इसके पूर्व 12 मार्च 1958 को इन्ही प्रश्नों के सम्बन्ध में श्री पद्माकर लाल श्रीवास्तव ने भी विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाना चाहा था । 14 मार्च 1958 को श्री अध्यक्ष ने शान्ति प्रबल शर्मा की उक्त नोटिस पर अपना निर्णय दिया। उन्होंने श्री शान्ति प्रबल शर्मा द्वारा दी गयी नोटिस को अवैध करार देते हुये उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया नियमावली के नियम 6 अर्न्तगत इस मामले की जॉच तथा रिपोर्ट के लिये इसे विशेषाधिकार समिति के सुपुर्द कर दिया। समिति ने इन्हें विशेषाधिकार की अवहेलना का दोषी पाया, तत्पश्चात् सदन में श्री गेंदा सिंह की भर्त्सना हुयी ।[1]

दिनांक 9 सितम्बर 1959 को श्री शिवराज सिंह तथा जगदीश शरण अग्रवाल ने उन 12 व्यक्तियों के विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न की सूचना दी जिन्होंने 8 सितम्बर 1958 को सदन के मार्शल के कर्तव्य पालन में बाधा डाली। श्री अध्यक्ष ने कहा कि क्यों कि अभी तक सम्बन्धित सदस्यों को इस प्रश्न की सूचना नही मिली है इसलिये वे उसे उस दिन लेंगे जब सबको इसकी सूचना मिल जायेगी और वे सदस्य सदन में उपस्थित होगें ।

नियम 54 के अर्न्तगत सचिव विधानसभा ने उल्लिखित सदस्यों से सम्बन्धित अपनी रिपोर्ट सदन के सम्मुख प्रस्तुत की जिसमें यह शिकायत की गयी कि श्री राजनारायण को बाहर ले जाने में उक्त सदस्यों ने मार्शल के कार्य में बाधा डाली। इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में श्री अध्यक्ष ने यह आदेश दिया कि वे इस से सम्बन्धित फैसला सदस्यों की सूचना मिल जाने के उपरान्त देंगे ।

दिनांक 9 फरवरी 1959 को श्री अध्यक्ष ने इस मामलें को विशेषाधिकार समिति को उसकी जॉच करने व अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये निर्दिष्ट कर दिया । सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों के विरूद्ध सदन के अवमान के सम्बन्ध में विधानसभा की विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन 22.2.59 को प्रस्तुत हुआ। समिति ने सदस्यों को विशेषाधिकार की अवहेलना का दोषी पाया। प्रतिवेदन में की गयी दण्ड की सिफारिश को अधिक आंशिक अनुकूलन के साथ स्वीकार किया गया ।[2]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा विशेषाधिकार समिति का प्रतिवदेन 15 सितम्बर 1958 तथा 1958 द्वितीय विधान सभा प्रथम सत्र कार्य 21 जुलाई 1958, 8 अप्रैल 1959 तक खण्ड 3.
2. –तदैव– दि0 22.2.1959

तृतीय विधान सभा में 5 मामलों में विधान सभा समिति द्वारा दण्ड की संस्तुति की गयी। इसमें केवल 3 मामलों में समिति द्वारा दण्ड की संस्तुति की गयी। इसमें केवल 3 मामलों में समिति ने कुछ कठोर रूख अपनाया और अपने चौथे तथा उन्नीसवें प्रतिवेदन जो क्रमशः 7.3.63 को नरसिंह नारायण पाण्डेय द्वारा श्याम नारायण सिंह, केशव सिंह व हुब लाल दुबे के विरूद्ध तथा 24.2.1965 को श्री सूबेदार सिंह द्वारा जी०के०बाजपेयी पुलिस अधीक्षक फरूर्खाबाद के विरूद्ध अभिसूचित किया गया था। दोषी व्यक्तियों को सदन के समक्ष शास्ति की सिफारिश की तथा बारहवें प्रतिवेदन में अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट श्री चन्द्रबली सिंह सदस्य विधान सभा के सदन से 15 दिन के निलम्बन की सिफारिश की। दसवें व पन्द्रवें प्रतिवेदन में दण्ड की संस्तुति करते समय समिति उदार रही और शास्ति की सिफारिश के साथ यह शर्त जोंड़ दी कि यदि विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन का अवमान के लिये दोषी पाये गये व्यक्ति अपने कृत्यों के लिये खेद करते हुये क्षमायाचना करे तो मामलें को समाप्त कर दिया जायेगा। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या अभियुक्त द्वारा क्षमायाचना उसके रिहा कर देने के लिये पर्याप्त है- समिति का इस सम्बन्ध में शायद सकारात्मक दृष्टिकोण था ।

अध्ययनाधीन विधान सभाओं में विशेषाधिकार समिति द्वारा निर्णीत 69 विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन के अवमान सम्बन्धी मामलों में 18[1] के सम्बन्ध में समिति की यह राय थी कि उनमें किसी विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन के अवमान सम्बन्धी प्रश्न निहित नहीं है। इसी अवधि में विशेषाधिकार समिति ने विधान सभा के समक्ष 18[2] प्रतिवेदन जिनमें 5 तृतीय विधानसभा तथा 6 पंचम विधान सभा 3 षष्ठम व 4 सप्तम विधानसभा से सम्बन्धित थे ऐसे प्रस्तुत किये जिनमें समिति का यह मत था कि विशेषाधिकार की अवहेलना की जो शिकायत की गयी है वह सही है लेकिन दोषी व्यक्तियों द्वारा खेद प्रकाशन व क्षमायाचना के कारण उन्हें माफ कर दिया जाये । प्रथम, तृतीय , सप्तम व अष्टम विधान सभा के 6 मामलें न्यायालय द्वारा माँगे गये विधान सभा से सम्बन्धित लेखों को उपस्थिति करने के सम्बन्ध में थे। जिनमें समिति ने यह सिफारिश की कि उसमें किन किन लेखों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।[3]

10 मामलों (1 चतुर्थ वि0स0, 3 पंचम वि0स0,2 षष्ठम,1 सप्तम, 3 अष्टम विधान सभा से सम्बन्धित) थे। समिति ने विभिन्न कारणों के प्रश्न को समाप्त किये जाने की संस्तुति की उदाहरणार्थ- चतुर्थ विधान सभा में श्री नरदेव सिंह, प्रेमदत्त व बसन्त

---

1. उ0प्र0 विधान सभा विशेषाधिकार समिति प्रतिवेदन वर्ष 1952-85
2. उ0प्र0 विधान सभा विशेषाधिकार समिति प्रतिवेदन वर्ष 1952-85 से प्राप्त विवरण के आधार पर
3. उ0प्र0 सभा विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन वर्ष 1952-82 से प्राप्त विवरण दूसरा प्रतिवेदन (चतुर्थ विधान सभा)

सदस्यगण विधान सभा के साथ अन्य सदस्यों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार का मामला समिति को विचारार्थ निर्दिष्ट किया गया था । परन्तु स्वयं श्री सिंह, श्री दत्त व श्री बसन्त लाल न तो समिति के समक्ष साक्ष्य के लिये उपस्थिति हुये और न ही लिखित बयान दिया अतः पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में समिति को यह प्रश्न समाप्त करना पड़ा।[1]

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हैं:–

1. विरोधी दलों द्वारा प्रस्तुत विशेषाधिकार की अवहेलना के अनेकों प्रश्नों को अध्यक्ष द्वारा ग्राह्यता की शर्तें न पूरी करने के कारण अस्वीकृत कर दिया गया इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिपक्ष ने अनेक अवसरों पर वास्तविक तथ्यों से अवगत हुये बिना निराधार अथवा हल्के आरोपों के आधार पर तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों की पूर्ण जानकारी के बिना विशेषाधिकार के प्रश्न उठाकर सदन के बहुमूल्य समय को नष्ट किया ।

2. विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्नों को उपस्यित करने मे विपक्षी दल बहुत सक्रिय रहें और साथ ही विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन के अवमान के दोषी भी अधिकतर विपक्षी सदस्य पाये गये । इन प्रश्नों को उठाने में विपक्षी दलों का उद्देश्य केवल यह नही रहा कि वे अपने विशेषाधिकारों की रक्षा हेतु अधिक सचेत व सदन की गरिमा के प्रति अधिक जागरूक थे वरन् उनका उद्देश्य राजनैतिक व वैयक्तिक अधिक था।

3. उन्होंने इस साधन का प्रयोग मुख्यतः सरकार का विरोध व सदन में गतिरोध उत्पन्न करने के लिये किया । किन्तु उनका उद्देश्य इन प्रश्नों के माध्यम से सदन व प्रेस में चर्चित होना और अपने व्यक्तिगत स्वार्थो के कारण अपने विरोधी व सरकारी अधिकारियों को बदनाम करना रहा ।

4. प्रतिपक्ष ने विशेषाधिकारों की अवहेलना के प्रश्न उठाने में जितनी उत्सुकता दिखाई उतनी आरोपित पक्ष को दण्ड दिलाने में नही दिखलाई । आरोपित पक्ष द्वारा खेद व्यक्त कर दिये जाने व क्षमायाचना कर लिये जाने पर अथवा विशेषाधिकार समिति द्वारा कार्यवाही न किये जाने की संस्तुति पर प्रतिपक्ष की कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया नही रही । ऐसे में यह अनुचित प्रभाव हो सकता है कि केवल खेद

---

1. दूसरा प्रतिवेदन (चतुर्थ विधान सभा)

प्रकट व क्षमायाचना से मुक्ति मिल सकती है। वस्तुतः ऐसी धारणा का विकास संसदीय विशेषाधिकारों की महत्ता के लिये घातक होगा ।

इसमें सन्देह नही कि संसदीय विशेषाधिकार विधायकों के पवित्र अधिकार हैं। लेकिन इन की पवित्रता को बनाये रखने का उत्तरदायित्व जितना साधारण नागरिकों पर है उससे कम दायित्व स्वयं विधायकों पर नही है । आवश्यकता इस बात की है कि विधायकों द्वारा छोटी छोटी बातों को विशेषाधिकार का प्रश्न न बनाना चाहिये और उस समय तक विशेषाधिकार का प्रश्न न उपस्थित करना चाहिये जब तक उन्हें इस बात का विश्वास न हो जाये कि वास्तव में यह मामला ऐसा है जिसमें विशेषाधिकारों का प्रश्न निहित है और जिससे सदन की गरिमा को ठेस पहुँची है ।

उपसंहारः—

उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत प्रस्तावों के उर्पयुक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि कार्यपालिका पर नियंत्रण के विभिन्न प्रावधानों के रूप में ये प्रस्ताव सदन में सरकार के बहुमत एवं शासक दल के संसदीय अनुशासन के कारण मंत्रिमण्डल पर नियंत्रण स्थापित करने के संसदीय साधन के रूप में प्रायः असफल सिद्ध हुये। उदाहरणार्थ – अध्ययनाधीन काल में विपक्ष की संख्यात्मक कमी तथा सरकार का समर्थन न मिल पाने के कारण कोई भी प्रस्ताव सदन में पारित नही हो सका । यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब दलीय बहुमत के कारण वस्तुतः मंत्रिमण्डल का व्यवस्थापिका पर नियंत्रण होता है तो इन नियंत्रण कार्य संसदीय साधनों की उपयोगिता क्या है? उत्तर यह है कि जनतांत्रिक व्यवस्था में अन्तिम प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है और जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व प्राप्त बहुमत का अल्पमत दल वास्तव में जनता के प्रति ही उत्तरदायी होते है इसलिये उपरोक्त संसदीय साधनों का प्रयोग कर कमजोरियों व बुराइयों को उजाकर शासन की रीतिनीति की आधार मूलक तथा तथ्यपरक आलोचना कर, तथा सरकार की कमजोरियों को सदन की कार्यवाहियों और समाचार पत्रों के माध्यम से जनता तक पहुचना ही इन साधनों की सच्ची उपयोगिता व सार्थकता है। वास्तव में कार्य पालिका (सरकार) को नियंत्रण में रखने का यही सर्वोत्तम साधन है क्यों कि सरकार जनमत के बल पर बनती तथा स्थायी रहती है अतः जनमत के भय से सरकार अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करेगी । इस परिप्रेक्ष्य में अगर इन प्रस्तावों की सार्थकता को देखा जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि भले ही प्रस्तावों के माध्यम से विपक्ष सरकार गिराने में असफल रहा हो किन्तु संसदीय पद्धति की भावना के अनुकूल विपक्ष नें इन प्रस्तावों का सरकार को नियंत्रित करने के साधन के रूप में सार्थक उपयोग किया है एवं सरकार की नीतिगत, प्रशासनिक शिथिलताओं को जनता के समक्ष उद्घाटित करके संसदीय व्यवस्था के अन्तर्गत प्राप्त इस साधन का सदुपयोग कर जनकल्याण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

अध्याय – 6, विधायन और विपक्ष

(क) सरकारी विधेयक
(ख) गैर सरकारी विधेयक
(ग) विपक्षी विधेयक

विधायन और विपक्ष

भारत के संविधान में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है जिसके अनुसार विधि निर्माण का अधिकार संसद व राज्य विधानमण्डल दोनों को प्राप्त है । इसके लिये संविधान में तीन सूचियों का विवरण मिलता है ।[1] संघसूची[2] राज्य सूची[3] समवर्ती सूची । संघ सूची में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार संसद को तथा राज्य सूची में उल्लिखित विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार राज्य विधान मण्डलों को प्राप्त है जबकि समवर्ती सूची में विधि निर्माण का अधिकार संसद व राज्यों के विधान मण्डल दोनों को प्राप्त है ।[1]

संविधान के प्रावधानों के अनुसार केन्द्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा निर्मित अधिनियम प्रारम्भ में संसद के किसी सदन अथवा राज्य विधान मण्डल के किसी सदन में विधेयक के रूप में पुनः स्थापित होता है तथा दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाने के बाद वह राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल की स्वीकृति हेतु उपस्थित होत है । जिसकी प्राप्ति के पश्चात् ही वह अधिनियम का रूप ग्रहण करता है ।

राज्य विधान मण्डल की विधायी प्रक्रिया का उल्लेख करते हुये संविधान के अनुच्छेद 197 में कहा गया है कि यदि विधान सभा द्वारा पारित कोई विधेयक (साधारण) विधान परिषद द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाये अथवा ऐसा विधेयक तीन माह के अधिकतम समय तक बिना परित हुये परिषद के समक्ष लम्बित रहे या विधान परिषद द्वारा उसे ऐसे संशोधनों के साथ पारित कर दिया जाये जिनसे विधान सभा सहमत न हो तो विधान सभा उसे दोबारा पहले कीभाँति अथवा परिषद द्वारा स्वीकृत संशोधनों के साथ पारित कर सकतीहै और इस प्रकार पुनः पारित विधेयक परिषद की स्वीकृति के बिना भी एक माह के अवधि व्यतीत हो जाने पर दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है ।

दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राज्य के समक्ष उनकी अनुमति हेतु उपस्थित किया जाता है जो या तो उस विधेयक पर अपनी अनुमति दे देता है या उसे रोक देता है अथवा उसे राष्ट्रपति के बिचारार्थ रक्षित कर लेता है । राज्यपाल अपने समक्ष प्रस्तुत विधेयक यदि वह धन विधेयक नही है, को अपने संदेश के साथ पुनर्विचार हेतु राज्य विधान मण्डल को वापस कर सकता है किन्तु यदि रज्य विधानमण्डल पुनः विचार करने

1- भारत का संविधान भाग-11 संघ व राज्यों के सम्बन्ध अध्याय (1) विधायी सम्बन्ध ।

के बाद उसे राज्यपाल के सन्देश में सुझाये गये संशोधनों सहित या रहित पारित कर दें तो राज्यपाल को उस पर अनुमति देना आवश्यक होता है ।[1] उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय के अधिकारियों की जानकारी के अनुसार राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित कोई विधयेक कभी राज्यपाल द्वारा वापस नहीं किया जायेगा ।

राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति हेतु रक्षित विधेयक (धन विधयक के अतिरिक्त) को राष्ट्रपति अपने संदेश के साथ राज्य विधान मण्डल को वापस कर सकता है । ऐसा सन्देश मिलने की तारीख से 6 माह की कालावधि के अन्दर राज्य विधान मण्डल को उस विधेयक पर पुनः विचार करना होता है । राज्य विधान मण्डल द्वारा राष्ट्रपति के संदेश में सुझाये गये संशोधन या संशोधनों के साथ अथवा बिना किसी संशोधन के पहले की ही भांति दोबारा पारित वह विधेयक पुनः राष्ट्रपति के समक्ष उसकी अनुमति के लिये उपस्थित किया जाता है । इस प्रकार दोबारा पारित विधेयक पर अनुमति देने के लिये राष्ट्रपति संविधान द्वारा बाध्य है अथवा नहीं है । इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 201 मौन है अतः इस प्रकार दोबारा प्रस्तुत विधेयक को अस्वीकृत न करना ही राष्ट्रपति का कर्तब्य हो जाता है ।[2]

विधान सभा अथवा विधान परिषद में किसी विधेयक का पुरः स्थापन या तो मंत्रिमण्डल के किसी सदस्य द्वारा किया जाता है अथवा सदन के किसी अन्य सदस्य द्वारा किया जाता है । इनमें से प्रथम प्रकार के विधेयक "सरकारी विधेयक व द्वितीय प्रकार के विधेयक गैर सरकारी विधेयक" कहलाते हैं । सरकारी विधेयकों के पुरः स्थापन की अनुज्ञा की सूचना हेतु ऐसी कोई कालावधि निर्धारित नहीं है केवल नियम 123 के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि सरकारी विधेयकों की पुरः स्थापना की अनुज्ञा का प्रस्ताव प्रस्तुत करने के एक दिन पूर्व सदस्यों को विधेयक की प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हो जायें।

परम्परा यह है कि किसी विधेयक की पुरः स्थापना की अनुज्ञा के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय विपक्ष द्वारा कोई वाद-ब्विाद नहीं होता है केवल सम्बन्धित मंत्री अथवा प्रस्तावक सदस्य विधेयक के सम्बन्ध में बिना किसी वक्ता के तद्विषयक औपचारिक प्रस्ताव सदन के समक्ष उपस्थित करते हैं । परन्तु यदि ऐसे प्रस्ताव का विरोध किया जाये तो अध्यक्ष, यदि वह ठीक समझे, प्रस्तावक व प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य को संक्षिप्त व्याख्यात्मक वक्तव्य दिये जाने की अनुज्ञा प्रदान कर सकते हैं ।[3]

1- भारत का संविधान अनुच्छेद 200

2- भारत का संविधान अनुच्छेद 201, शुक्ला वी0एन0 कांस्टीट्यूशन आफ इण्डिया पृ0 339.

3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली व कार्यवाही कर संचालन नियम 123(2)

नियमों में यह भी व्यवस्था है कि जब प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया जाये कि वह विधेयक ऐसे विधान का सूत्रपात करता है जो सभा की विधायिनी क्षमता के परे है तो अध्यक्ष उस पर पूर्णरूपेण चर्चा की अनुमति दे सकते हैं ।[1] ऐसे अवसर पर विपक्ष को वाद-विवाद का अवसर प्राप्त हो सकता है ।

इस सम्बन्ध में कोई वैधानिक आपत्ति उसके पुरः स्थापन की अनुज्ञा प्राप्ति के पश्चात विचार के किसी अन्य प्रक्रम में नहीं उठायी जा सकती, उदाहरणार्थ 17 अगस्त, 1964 को उ0प्र0 (विधान मण्डल में कार्य करने की) भाषा विधेयक 1964 पर विचार का प्रस्ताव किये जाने पर कुँवर श्रीपाल सिंह ने उस पर संवैधानिक आपत्ति रखनी चाही । इस पर अध्यक्ष ने अपना निर्णय देते हुये कह कि जिस समय विधेयक पुरः स्थापित हुआ उस समय वैधानिक आपत्ति रखनी चाहिये थी ।[2]

किसी विधेयक के पुरः स्थापन अथवा प्रथम वाचन के उपरान्त द्वितीय वाचन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जो मुख्यतः दो प्रक्रमों में पूर्ण होती है । प्रथम प्रक्रम में विधेयक के सिद्धान्तों और उसके उपबन्धों पर सामान्य चर्चा होती है तथा द्वितीय प्रतिपक्ष द्वारा विचार व्यक्त किये जाते हैं । प्रश्न में विधेयक के खण्ड, अनुसूचियों तथा संशोधनों पर विचार होता है ।

प्रक्रिया नियम 128 में यह उल्लेख मिलत है कि किसी विधेयक के पुरः स्थापन के उपरान्त या किसी अनुवर्ती अवसर पर विधेयक का प्रस्तावक यह प्रस्ताव कर सकता कि उस विधेयक पर विचार किया जाये, अथवा उसे प्रवर समिति या संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाये, अथवा उसे जनमत जानने के लिये प्रसारित किया जाये ।

प्रस्तावक द्वारा उपर्युक्त प्रस्तावों में से किसी प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के बाद उसी दिन अथवा किसी अनुवर्ती दिन जिसके लिये चर्चा स्थगित की जाये विधेयक के सिद्धान्तों और उसके उपबन्धों पर सामान्य चर्चा होती है ।[3] यद्यपि इस प्रक्रम पर विधेयक में संशोधन प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं किन्तु नियम 128 में उल्लिखिंत विकल्पों में से जिस विकल्प का प्रस्ताव प्रस्तावक सदस्य न किया हो उसके अतिरिक्त अन्य विकल्पों को संशोधन रूप में किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है ।[4]

1- उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली व कार्यवाही का संचालन नियमावली नियम 123 (2)

2- उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया कार्यवाही का संचालन नियमावली नियम 123 (2)

3- नियम 129 (1)

4- उ0प्र0 वि0स0 कार्य संचालन प्रक्रिया नियमावली नियम 129(2)

प्रस्तावक सदस्य के मूल प्रस्ताव तथा उसमें उपस्थित संशोधनों पर चर्चा के उपरान्त मूल तथा संशोधन प्रस्तावों को सदन के मत हेतु प्रस्तुत किया जाता है और तद्नुसार विधेयक पर अग्रिम कार्यवाही होती है ।

प्रवर समिति अथवा संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट विधेयक पर यथास्थिति प्रतिवेदन के उपस्थापन के उपरान्त प्रस्तावक सदस्य अथवा अन्य सदस्य जिसमें प्रतिपक्ष के सदस्य भी हो सकते हैं । पुनः उसी अथवा नयी प्रवर संयुक्त प्रवर समिति को परिसीमा के बिना अथवा केवल विशेष खण्डों या संशोधनों के सम्बन्ध में अथवा समिति के विधेयक में कोई विशेष या अतिरिक्त उपबन्ध करने के अनुदेशों के साथ निर्दिष्ट करने का या उस पर जनमत जानने के प्रयोजन से प्रसारित करने का प्रस्ताव कर सकते हैं ।[1]

द्वितीय वाचन में जब यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता हे तो विधेयक विचारार्थ लिया जाता है, तब उस विधेयक के खण्डों व अनुसूचियों आदि पर सदन में विस्तार से विचार किया जाता है ।[2] विधेयक के प्रथम खण्ड, प्रस्तावना, यदि कोई हो तथा शीर्षक पर अन्य खण्डों व अनुसूचियों के विस्तारण के बाद विचार किया जाता है ।[3] विचारा-धीन विधेयक के किसी खण्ड या अनुसूची में किसी सदस्य द्वारा संशोधन उपस्थित किया जा सकता है जिसकी सूचना उसे उस दिन के 36 घण्टे पूर्व देनी आवश्यक होती है जिस दिन कि विधेयक पर विचार किया जाना हो किन्तु ऐसे संशोधनों के लिये जो पूर्णतया शाब्दिक हो, या ऐसे संशोधनों पर जो आनुषंगिक हो, पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं रहती है ।[4] उपस्थित किये गये संशोधनों की ग्राह्यता का निर्णय नियम 140 में उल्लिखित शर्तों के अधीन अध्यक्ष द्वारा किय जाता है ।

प्रस्तावित संशोधनों पर निर्णय हो जाने के बाद जब प्रस्तावना और शीर्षक भी विधेयक के अंग के रूप में स्वीकृत हो जाते हैं तो विधेयक के तृतीय वाचन हेतु प्रसतावक मंत्री या सदस्य तुरन्त अथवा किसी अनुवर्ती अवसर पर विधेयक के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव करते हैं कि विधेयक यदि संशोधन के साथ पारित हुआ है तो यथासंशोधित रूप में अन्यथा मूल रूप में पारित किया जाये । ऐसे प्रस्ताव पर कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं हो सकता है तथा चर्चा विधेयक के समर्थन या उसकी अस्वीकृति के तर्कों तक सीमित रहती है।[5]

1- उ0प्र0 वि0स0 कार्य संचालन व प्रक्रिया नियमावली नियम 132
2- उ0प्र0 वि0स0 कार्यसंचालन व प्रक्रिया नियमावली नियम 136 व 138
3- उ0प्र0 वि0स0 कार्यसंचालन व प्रक्रिया नियमावली नियम 144
4- तदैव नियम 139
5- उ0प्र0 वि0स0 कार्यसंचालन समिति प्रक्रिया नियमावली नियम 145, 146

उक्त प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद प्रस्तुत विधेयक विधान सभा द्वारा पारित घोषित किया जाता है और तदुपरान्त वह पूर्वोलिखित सांविधानिक उपबन्धों के अनुसार विधान परिषद द्वारा पारित होने तथा राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने के बाद अधिनियम का रूप धारण करता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विधेयक की रूपरेखा की तैयारी पूर्णरूप से नौकरशाही द्वारा तैयार की जाती है तथा इसमें विधायिका के चुने हुये सदस्यों (विपक्ष भी शामिल है) की कोई भूमिका नहीं होती है। विधेयक जब सदन पर पुरः स्थापन प्रक्रम पर आता हैं तब तथा प्रथम एवं द्वितीय वाचन के समय विपक्ष को वाद-बिवाद करने का अवसर प्राप्त होता है तथा मूल प्रस्ताव पर मतदान के समय विपक्ष अपनी संख्यात्मक शक्ति का प्रयोग कर विधेयक को पारित होने से रोक सकता है। उ0प्र0 विधान सभा में विधेयकों पर विपक्ष की प्रभावशीलता क्या रही विवरण निम्नवत् हैः-

विधान सभा अथवा विधान परिषद में किसी विधेयक का पुनः स्थापन या तो मंत्रिमण्डल के किसी सदस्य द्वारा किया जाता है अथवा सदन के किसी अन्य सदस्य द्वारा किया जाता है। इनमें से प्रथम प्रकार के विधेयक सरकारी व द्वितीय प्रकार के विधेयक असरकारी विधेयक कहलाते हैं।

(क) सरकारी विधेयक-

राज्य विधान मण्डल के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिकांश विधेयक वे होते हैं जिनका पुरःस्थापन मंत्रि मण्डल के किसी सदस्य द्वारा किया जाता है, ये विधेयक सरकारी विधेयक कहलाते हैं। अध्ययनाधीन विधानसभाओं के कार्यकाल में पुरःस्थापित व पारित सरकारी विधेयकों का विवरण व विश्लेषण निम्नवत् हैः-

विधान सभा	पुरःस्थापित विधेयक	वापस/स्थगित व व्यपगत विधेयक	पारित विधेयक	प्रवर समिति को निर्दिष्ट विधेयक	जनमत हेतु प्रसारित	राज्यपाल द्वारा वापस
प्रथम	105	4	101	36	-	-
द्वितीय	158	2	156	18	-	-
तृतीय	154	4	153	8	-	-
चतुर्थ	11	3	9	-	-	-
पंचम	144	8	136	4	-	-
षष्ठम	163	5	158	6	-	-
सप्तम	113	16	100	2	-	-
अष्टम	163	9	154	1	-	-

संलग्न तालिका से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा में प्रायः वापस, स्थगित व व्यपगत विधेयकों के अतिरिक्त समस्त सरकारी विधेयक पारित हो गये । प्रस्तुत अध्ययनावधि में 48 विधेयक वापस लिये गये अथवा व्यपगत हो गये । व्यपगत व वापस विधेयकों पर प्रतिपक्ष की प्रतिक्रिया का विवरण निम्नवत् है:-

उ0प्र0 विधान सभा में वापस विधेयकों में उ0प्र0 राज्य विधान मण्डल के अधिकारियों सदस्यों, मंत्रियों, उप मंत्रियों व सभा सचिवों के वेतन व भत्तों प्रकीर्ण उपबन्धों का विधेयक सर्वाधिक विवादपूर्ण रहा । इस विधेयक को 2 बार पुरः स्थापित व चर्चा के बाद वापस लिया गया। इसमें वाद-विवाद के दौरान विभक्त एवं विभाजित रहा जहाँ एक ओर प्रजा समाजवादी दल के नेता विपक्ष श्री गेंदा सिंह इसे वापस लेने के समर्थक थे । प्रतिपक्ष के समाजवादी नेता श्री राजनाराण ने इस विधेयक का यह कहते हुये विरोध किया कि इसके लिये जनता की अनुमति प्राप्त की जानी चाहिए ।[1] एक अन्य विधेयक मुस्लिम वक्फ संशोधन विधेयक 1955 इसलिये व्यपगत हो गया क्योंकि 1957 में उक्त विधेयक की अवधि ही समाप्त हो गई थी ।

द्वितीय विधान सभा में उ0प्र0 के मंत्रियों और उप मंत्रियों के वतन और भत्तों का (संशोधन) विधेयक 1962 जिसमें उप मंत्रियों को कार खरीदने हेतु अग्रिम धन की व्यवस्था थी, को मुख्य मंत्री ने बिना कारण बताये वापस ले लिया । इस पर प्रतिपक्ष ने घोर आपत्ति व्यक्त की ।[2] तथा प्रदेश में जिलास्तर पर जिला परिषद के गठन हेतु उ0प्र0 1961 को उ0प्र0 जिला परिषद विधेयक 1959 को स्वायत्त शासन मंत्री श्री विचित्र नारायण शर्मा ने सदन में पेश किया । 5 अगस्त 1959 को स्वायत्त शासन मंत्री श्री विचित्र नारायण शर्मा ने विधेयक को सदन में संयुक्त प्रवर समिति में सौंपने का प्रस्ताव रखा । विपक्षी सदस्यों ने सुझाव देते हुये विधेयक को प्रवर समिति को सौपे जाने का समर्थन किया तथा 12 अगस्त, 1959 कि विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को सौंपा गया । समिति को अपनी रिपोर्ट 12 नवम्बर, 1959 को दे देनी थी लेकिन पूर्ण विचार न हो सकने के कारण यह अवधि दो बार बढ़ायी गयी जिसका प्रतिपक्ष ने विरोध किया ।[3] लेकिन 28 अप्रैल, 1960 को जब स्वायत्त शासन मंत्री ने कार्यसंचालन नियमावली 1958 के नियम 178 के अन्तर्गत विधेयक को वापस लेने की अनुमति मांगी तो विपक्षी सदस्यों ने वैधानिक आपत्ति उठाते हुये कहा कि संयुक्त प्रवर समिति के पास होने पर भी क्या विधेयक वापस लिया जा सकता है ? बाद में विपक्ष की

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 158, पृष्ठ नं0- 204, 28 सितम्बर, 1955

2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 228, 2 अप्रैल, 1962

3- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 211, 24 मार्च 1960 पृष्ठ नं0- 1044

मांग पर सम्बन्धित मंत्री ने कहा कि सत्ता के विकेन्द्रीकरण ब्लाक स्तर पर करने के लिये विधेयक वापस लिया जा रहा है तथा आश्वासन दिया कि इस विधेयक के स्थान पर एक अन्य विधेयक लाया जायेगा । फिर भी विपक्ष ने इसक विरोध किया अन्त में यह विधेयक 21 के विरुद्ध 112 मतों से वापस हो गया ।[1]

तृतीय विधान सभा के वापस या व्यपगत विधेयकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधेयक 1964 का उ0प्र0 (विधान मण्डल में कार्य करने की) भाषा विधेयक रहा- इस विधेयक पर विपक्ष की बड़ी तीखी प्रतिक्रिया रही । प्रस्तावना स्तर पर ही विपक्ष (जनसंघ) के कुंवर श्रीपाल सिंह ने विरोध करते हुये विधेयक को संविधान की भावना के विरूद्ध बताया । संयुक्त समाजवादी दल के श्री उग्रसेन ने विधेयक की तीखी आलोचना करते हुये कहा "यह विधेयक हमारी लाश पर पास होगा" इस विधेयक पर जनसंघ व संयुक्त समजावादी दल, स्वतंत्र पाटी, भारतीय साम्यवादी दल, रिपब्लिकन पार्टी के कुछ सदरयों व कुछ निर्दलीय सदस्यों ने एक संयुक्त विज्ञप्ति में सरकार से विधेयक वापस लेने की मांग करते हुये, शेष मानसून सत्र में सदन का बहिष्कार करने का निर्णय लिया ।[2] लेकिन तत्कालीन मुख्य मंत्री सुचेता कृपलानी के प्रयास से विपक्षी नेताओं के साथ हुई एक बैठक में विपक्ष को बहिष्कार न करने के लिये तैयार किया गया ।[3] अन्त में मुख्य मंत्री श्रीमती कृपलानी ने सदन में घोषणा की कि सरकार विवास्पद "उत्तर प्रदेश विधान मण्डल में कार्य करने की भाषा विधेयक 1964 के पारित कराने पर बल नहीं देगी ।[4] ज्ञातब्य है कि उक्त विधेयक को विधान परिषद में पेश नहीं किया गया हलांकि इसे वापस नहीं लिया गया, लेकिन यह व्यपगत हो गया ।[5]

चतुर्थ विधान सभा के कार्यकाल में 2 विधेयक उसके विघटन के फलस्वरूप अनुच्छेद 196 (5) के अन्तर्गत व्यपगत हो गये तया एक विधेयक प्राविन्सेस कोर्ट आफ वाईस निरसर विधेयक 1967 का पुरः स्यापन तो चतुर्थ विधान सभा की कार्यावधि में 18 दिसम्बर, 1967 को विधान परिषद में हुआ किन्तु द्वितीय व तृतीय वाचन हेतु वह पंचम विधान सभा के गठन के बाद 25 मार्च, 1969 को विधान परिषद में उपस्थित हुआ ।

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 212, पृष्ठ नं0- 1088

2- दि-हिन्दुस्तान टाइम्स, 22 अगस्त, 1964

3- दि-हिन्दुस्तान टाइम्स, 23 अगस्त, 1964

4- दि-हिन्दुस्तान टाइम्स, 8 सितम्बर, 1964

5- दि-टाइम्स आफ इण्डिया, 6 सितम्बर, 1964

पंचम विधान सभा में 6 विधेयक सम्बन्धित मंत्री के वापसी के प्रस्ताव पर सदन की सहमति के पश्चात वापस ले लिये गये । इनमें से एक विधेयक उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय विधेयक 1972 बिना विधान सभा में विचारार्थ प्रस्तुत हुये ही सरकार द्वारा वापस ले लिया गया । यह विधेयक 17 जनवरी, 1972 को विधान परिषद में पुरः स्थापित किया गया था और विधान सभा की 19 जनवरी, 1972 को दी गयी सहमति के बाद विधान परिषद द्वारा 20 जनवरी, 1972 को संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया गया परन्तु इसके बाद विधान परिषद में इस विधेयक पर 19 दिसम्बर, 1972 तक जब सूचना राज्य मंत्री ने "प्रशासकीय सुविधा" के कारण इसकी वापसी का प्रस्ताव विधान परिषद में स्वीकृत हो गया जिसकी सूचना विधान सभा में 20 जनवरी, 1972 को दी गयी तो प्रतिपक्ष ने अपनी रोष पूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की ।

पंचम विधान सभा के 2 विधेयक सदन के विघटन के कारण व्यपगत हुये इन में उ0प्र0 विश्वविद्यालय तथा डिग्री कालेज (छात्र संघ) विधेयक 1970 को वापस लेने का प्रस्ताव शिक्षा मंत्री द्वारा 20 जुलाई, 1971 को सदन में प्रस्तुत हुआ। विपक्ष ने इसका विरोध किया किन्तु इस पर विवाद व मतदान की मांग होने पर विचार स्थगित हो गया व 2 वर्ष तक कोई विचार नहीं हुआ अतः विधान सभा के विघटन के साथ ही विधेयक व्यपगत हो गया ।

छठी विधान सभा में वापस विधेयकों में सबसे महत्वपूर्ण विधेयक उ0प्र0 लोकायुक्त तथा उप लोकायुक्त विधेयक 1974 रहा । इस विधेयक को विचारार्थ लाने के लिये समय-समय पर प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा मांग की जाती रही । दिनांक 26 अप्रैल, 1975 को नेता विरोधी दल श्री चौधरी चरण सिंह ने कहा कि "लोक आयुक्त का कहना है कि बिल मई में आ रहा है और बिल न लाकर इनका यह दृष्टिकोण है कि सदन के बिना भी कानून बन सकता है। मैं और मेरा दल इसके प्रतिरोध में बहिर्गमन करते हैं ।" समय-समय पर विधेयक को न लाने के कारण मुख्य मंत्री के विरूद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रस्ताव भी रखा । किन्तु अध्यक्ष ने इसे अग्राह्य कर दिया ।[1] और दिनांक 28 जुलाई, 1975 को उ0प्र0 लोक आयुक्त एवं उप लोक आयुक्त अध्यादेश 1975 सदन के पटल पर रखा गया तथा उ0प्र0 लोक आयुक्त एवं उप लोक आयुक्त विधेयक 1974 वापस ले लिया गया इस पर प्रतिपक्ष के गोविन्द सिंह नेगी ने कहा कि क्यों वापस ले रहे हैं कारण तो बतायें किन्तु कोई उत्तर न मिला ।[2]

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 317, पृष्ठ नं0- 56

2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 318, पृष्ठ नं0- 15

सप्तम विधान सभा में प्रस्तुत 11 विधेयक राज्यपाल की अनुमति न प्राप्त कर सके अतएव विधान सभा के विघटन के फलस्वरूप व्यपगत हो गये। इनके अतिरिक्त 5 विधेयक सम्बन्धित मंत्रियों के प्रस्ताव पर वापस हो गये । जब कि प्रतिपक्ष इन विधेयकों को वापस लिये जाने के विरूद्ध रहा ।

अष्टम विधान सभा में 9 विधेयक वापस हुये । उ0प्र0 समाज विरोधी तत्व निवारण विधेयक 1980 में पुरः स्थापित हुआ तथा 30-1-81 को वापस लिये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । इसके वापस लेने पर प्रतिपक्ष ने समर्थन किया व इसकी धाराओं की आलोचना करते हुये प्रतिपक्ष के श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने कहा- "यह कांग्रेस सरकार के मस्तिष्क की विकृति का प्रमाण है ।[1]"

उपर्युक्त तथ्य जो विधेयकों की वापसी से सम्बन्धित है, से यह स्पष्ट है कि मुख्यतः सरकार की लापरवाही और शिथिलता के कारण ऐसा हुआ यदि सरकार उक्त विधेयकों के पारण के प्रति सचेत व जागरूक रहती तो शायद वे व्यपगत नहीं होते और यदि उनको प्रस्तुत करने के पूर्व सरकार गम्भीरता व सूक्ष्मता से विचार कर लेती तो शायद उनकी वापसी की आवश्यकता न होती, न ही प्रतिपक्ष की आलोचना सुननी पड़ती और सदन का समय भी व्यर्थ नष्ट न होता । अध्ययनाधीन विधानसभाओं में प्रस्तुत सरकारी विधेयकों में से लगभग सभी विधेयकों पर प्रतिपक्ष की ओर से संशोधन प्रस्तुत किये गये लेकिन उनमें से ज्यादातर संशोधन सरकार को स्वीकार न होने के कारण विधान सभा द्वारा अस्वीकृत हो गये । यद्यपि शासक पक्ष के लोगों ने उसी प्रकार के संशोधन प्रस्तुत किये, जैसे कि विपक्ष ने , तो शासक पक्ष के संशोधन के प्रति सरकार का दृष्टिकोण सहानुभूमिपूर्ण रहा उदाहरणार्थ शीराकन्ट्रोल (संशोधन) विधेयक 1955 पर चर्चा के समय 22 दिसम्बर, 1955 को प्रजा समाजवादी दल के श्री नारायण दत्त तिवारी के एक संशोधन को अस्वीकृत कर दिया और जब ठीक वैसा ही संशोधन कांग्रेस के श्री जगदीश शरण अग्रवाल द्वारा रखा गया तो श्री तिवारी ने इस पर वैधानिक आपत्ति उठायी तथा जब यह संशोधन स्वीकृत हो गया तो विपक्षी नेता श्री गेदा सिंह ने सरकार को आगाह करते हुये भविष्य में ऐसी पुनरावृत्ति न होने देने की मांग की ।[2]

इसी प्रकार तृतीय विधान सभा में 6 अगस्त, 1964 को उ0प्र0 कृषि उत्पादन मण्डी विधेयक 1963 पर चर्चा के दौरान उसी परिभाषाओं में से सम्बन्धित पहले के प्रस्तावक शासक दल कांग्रेस के सदस्य श्री बृजबिहारी थे तथा दूसरे संशोधन के उपस्थितकर्ता विपक्षी

1- उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड- 330, दिनांक 30 जनवरी, 1981

2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 161, 22 दिसम्बर, 1955 पृष्ठ नं0- 212 तथा दैनिक आज 24 दिसम्बर, 1955

समाजवादी दल के सदस्य श्री मुमताज मुहम्मद खान थे । यद्यपि दोनों संशोधन कतिपय शाब्दिक परिवर्तनों से ही सम्बन्धित थे किन्तु पहला संशोधन तो तत्कालीन कृषि मंत्री श्री चरण सिंह द्वारा स्वीकार कर लिया गया किन्तु दूसरे संशोधन को मानने के लिये वह तैयार नही हुये अतः पहला स्वीकृत, दूसरा अस्वीकृत हो गया ।[1] अध्ययनाधीन विधानसभाओं में प्रवर समिति को निर्दिष्ट विधेयकों की संख्या– 75 रही । प्रवर समिति को विधेयक निर्दिष्ट किये जाने का प्रस्ताव विपक्ष द्वारा प्रायः अधिकांश विधेयकों पर रखा गया किन्तु एकाध अपवाद को छोड़कर "जैसे जंगल के संरक्षण हेतु प्रस्तावित अध्यादेश को कानून में परिवर्तित करने के लिये 16 दिसम्बर, 1955 को इण्डियन फारेस्ट (उ0प्र0 संशोधन) विधेयक 1955 विचारार्थ प्रस्तुत हुआ ।विपक्षी नेता श्री गेंदा सिंह ने विधेयक के उद्देश्य का समर्थन करते हुये उसकी कमियों से सरकार को अवगत कराया तथा विधेयक को प्रवर समिति में भेजने का संशोधन रखा जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया ।[2] जैसे विधेयकों के अतिरिक्त किसी विधेयक को विधान सभा की प्रवर समिति को निर्दिष्ट किये जाने की विपक्षी दलों की मांग सरकार की अनिच्छा के कारण सदन की स्वीकृति न पा सकी । क्योंकि समिति को निर्दिष्ट किये जाने का प्रस्ताव सदन के बहुमत से पारित होना चाहिये ; अतः व्यवहारिक रूप से सरकार की सहमति के बिना किसी विधेयक का समिति को निर्दिष्ट किया जाना सम्भव नहीं होता । ऐसा कहा जा सकता है कि सरकार ने उन्हीं विधेयकों को प्रवर समिति/संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जिनमें वह स्वयं विलम्ब कराना चाहती थी । प्रतिपक्ष इसमें प्रभावी भूमिका निर्वाह करने में असफल रहा ।

-तालिका— से यह भी ज्ञात होता है कि द्वितीय वाचन में किसी भी विधेयक को जनमत जानने के लिये प्रसारित नहीं किया जबकि प्रतिपक्षी दलों द्वारा समय–समय पर इसकी मांग की गयी । स्थानीय निकायों तथा संस्थाओं के कर्मचारियों के हड़ताल करने के अधिकार पर प्रतिवन्ध लगाने के उद्देश्य से 30 नवम्बर, 1966 को मुख्य मंत्री के सभा सचिव श्री वंशीधर पाण्डेय ने "उ0प्र0 अत्यावश्यक सेवाओं का अनुरक्षण विधेयक 1966 सदन पर रखा । 5 दिसम्बर, 1966 को इस विधेयक पर चर्चा प्रारम्भ हुयी । चर्चा करते हुये संयुक्त समाजवादीदल के श्री चन्द्रवली सिंह ने विधेयक को जनमत जानने, परिचालित करने का संशोधन रखा तथा विधेयक को काले कानून की संज्ञा दी और कहा कि "जनतंत्र में शान्तिपूर्ण हड़ताल करना, प्रदर्शन करना एक जन्मसिद्ध कानूनी अधिकार है, लेकिन उसका गला दवाकर आपने अपने ही बच्चों को मारने के लिये यह काला कानून रख दिया ।[3] इसी दल के श्री उग्रसेन ने विधेयक को काले कानून का पोषक बताया ।[4]

1– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 250 पृष्ठ सं0– 746

2– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 163, 19 दिसम्बर, 1955

3– उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड 270, 5 दिसम्बर,1966 पृष्ठ सं0–497

4– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 270, पृष्ठ सं0– 518

साम्यवादी दल के श्री भीखालाल ने इसे सरकार के कानून विभाग का दिवालियापन बताया। विपक्षी सदस्यों ने विधेयक का प्रत्येक स्तर पर विरोध किया। अन्त में संशोधन अस्वीकृत हुआ और विधेयक मौखिक मतदान से स्वीकृत हो गया।[1] इसी प्रकार "गृह मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी ने" इण्टर मीडिएट एजूकेशन संशोधन विधेयक 1957 संयुक्त प्रवर को सौपने हेतु 21 दिसम्बर, 1957 को सदन में रखा। प्रजा समाजवादी दल के श्री गोबिन्द नारायण तिवारी ने विधेयक को जनमत जानने हेतु परिचालित करने के लिये एक संशोधन पेश किया, साथ ही आरोप लगाया कि "सरकार शिक्षण समस्याओं में अधिकाधिक हस्तक्षेप करने जा रही है" श्री तिवारी का जनमत से सम्बन्धित उक्त संशोधन 37 के विरूद्ध 131 मतों से अस्वीकृत हो गया।[2] 8 फरवरी 1965 का प्रस्तावित "उ0प्र0 म्युनिस्पैलिटी (संशोधन) विधेयक 1965 पर जब चर्चा हुई तो जनसंघ के श्री हरिनाथ तिवारी ने इसे जनमत जानने हेतु परिचालित करने का संशोधन रखा। संयुक्त समाजवादी दल के श्री कमला सिंह यादव ने संशोधन का समर्थन किया किन्तु यह संशोधन अस्वीकृत व विधेयक सदन द्वारा पारित हुआ।[3]

उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत सरकारी विधेयकों पर विरोध पक्ष ने वर्हिगमन के माध्यम से अपनी असन्तुष्टि व्यक्त की। 8 मई, 1956 को उत्तर प्रदेश बिक्रीकर (संशोधन) विधेयक 1956 सदन की अनुमति से पेश किया गया। श्री कृष्णदत्त पालीवाल ने इसे प्रवर समिति में भेजने हेतु संशोधन रखा किन्तु वह अस्वीकृत हुआ। विपक्षी नेता श्री गेंदा सिंह ने विधेयक का विरोध करते हुये कहा-"मैं इस विधेयक का जितना विरोध कर सकूँ थोड़ा होगा। जिस तरह आर्डिनेन्स द्वारा इस बिल की पैदाइश हुयी है यह जितना ही अलोकतांत्रिक है, उतना ही सरकार के वायदे को तोड़ने वाला है।" विधेयक के प्रथम वाचन पर चर्चा समाप्त करने के उद्देश्य से जब कांग्रेस के एक सदस्य द्वारा एक प्रस्ताव रखा गया तो विपक्ष ने इसका कड़ा विरोध किया तथा जब यह प्रस्ताव 9 के विरूद्द 49 मतों से स्वीकृत हो गया तो विपक्षियों ने इसके विरोध में सदन का त्याग किया। समाजवादी नेता श्री राजनारायण ने विधेयक के विरोध में विधान सभा भवन के सामने 24 घण्टे का अनशन किया तथा सम्पूर्ण विपक्ष ने बर्हिगमन किया तथा विपक्ष की अनुपस्थिति में यह विधेयक पारित हो गया।[4]

हलांकि यह विधेयक सरकार के बहुमत के कारण पारित हो गया लेकिन इसके विरोध में 2 जुलाई, 1956 को राज्य व्यापी हड़ताल तथा विधान सभा के समक्ष प्रदर्शन सत्ता पक्ष के लोगों द्वारा भी की गयी आलोचना तथा सदन में विपक्षी उत्तेजना ने वित्त मंत्री जो नमक, चन्दन, तेल, अखबारी कागज, गल्ला, पुस्तकों, कापियों आदि पर से कर हटाने

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड- 270 पृष्ठ सं0-537

2- उ0प्र0 वि0 स0 का0 खण्ड 190, 3 फरवरी ,1958

3- उ0प्र0 वि0स0 का खण्ड 252, 9 सितम्बर, 1964

4- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 173, 17 मई, 1956, पृष्ठ सं0-281

तथा साइकिल, कृषि के औजारों आदि पर कर में कमी करने के लिये बाध्य कर दिया ।[1]

तृतीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये धन प्राप्ति हेतु नागर क्षेत्र में स्थित भूमि या भवनों के दोनों पूँजीगत मूल्य पर कर लगाने के उद्देश्य से प्रस्तावित "उ0प्र0 (नागर क्षेत्र) भूमि तथा भवन कर निरोध 1962" पर चर्चा के समय विपक्ष ने विरोध व्यक्त किया व कर कम करने का सुझाव व संशोधन दिया जब सरकार की ओर से संशोधन अस्वीकृत हो गया तो विपक्ष मुख्यतया जनसंघ के सदस्यों ने सदन से बहिर्गमन कर दिया ।[2]

इसी प्रकार 24 जुलाई, 1972 को राजस्व मंत्री ने उ0प्र0 भूमि विकास कर 1972 को पुरः स्थापित करने की अनुज्ञा मांगी – श्री कल्पनाथ सिंह ने आपत्ति की कि यह विधेयक सदन की विधायिनी शक्ति के बाहर है अतः नहीं लाया जा सकता । श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा– अगर सरकार इस विधेयक को वापस नहीं लेती तो वे सदन का कार्य नहीं चलने देंगे । इस समय प्रतिपक्ष के अनेक सदस्य अपने अपने स्थान पर खड़े होकर बोलने लगे व व्यवधान का मार्ग अपनाते हुये सदन का त्याग कर दिया। पुनः 4 अगस्त, 1972 की विधेयक पर विचार के समय श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी नेता विपक्ष व श्री जयराम वर्मा नेता भा0 क्रान्तिदल ने दल के सदस्यों के साथ नारेबाजी करते हुये सदन का त्याग किया । अन्त में घोर व्यवधान के मध्य विधेयक पारित हुआ । उ0प्र0 कृषि उत्पादन मण्डी संशोधन विधेयक को पुरः स्थापित करने पर श्री हुकुम सिंह ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 का उल्लेख करते हुये कहा कि कृषकों पर उत्पादन शुल्क नहीं लगाया जा सकता है किन्तु इस विधेयक के द्वारा कृषकों पर कर लगाया जा रहा है तथा न्यायालय के जिस निर्णय के आधार पर विधेयक लाया जा रहा है उस निर्णय की प्रति उपलब्ध नहीं करायी गयी अतएव इस विधेयक को पुरः स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जायेगी किन्तु श्री अध्यक्ष ने उपर्युक्त विधेयक पुरः स्थापित करने की अनुमति दे दी । इस पर नेता विरोधी दल व राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा के सदस्यों के साथ सदन त्याग कर चले गये । तत्पश्चात् सम्पूर्ण विपक्ष ने सदन त्याग कर दिया ।[3]

उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत सरकारी विधेयकों में से कुछ विधेयक ऐसे भी थे जिसमें विपक्षी आलोचना व सुझाओं को सत्तापक्ष के लोगों ने भी समर्थन किया– उ0प्र0

1– नव भारत टाईम्स, 3 जुलाई, 1956

2– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 234, 7 सितम्बर, 1962

3– उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाहियों का संक्षिप्त कार्यवृत अष्टम वि0स0 अष्टम सत्र

कन्ट्रोल आफ सप्लाइज (कन्टीनुएन्स आफ पावर्स) द्वितीय संशोधन विधेयक 1955 पर विपक्षी सदस्यों द्वारा केवल महत्वपूर्ण वस्तुओं पर ही नियंत्रण लगाने का आग्रह किया जिसका सत्तापक्ष द्वारा भी समर्थन किया गया । कांग्रेस के मो0 शाहिद फाखरी ने सीमेन्ट की खराब स्थिति से सरकार को अवगत कराते हुये सीमेन्ट से नियंत्रण हटाने की मांग की अन्त में यह विधेयक बिना किसी संशोधन के पारित हो गया ।[1] 9 अगस्त 1960 को प्रस्तुत "इण्डियन फारेस्ट (उ0प्र0 संशोधन) विधेयक 1960" का विपक्ष ने इस आधार पर कि जंगल की परिभाषा बहुत ही विस्तृत है और जनहित के विरूद्ध है, कड़ा विरोध किया विपक्षी सदस्यों के साथ-साथ सत्तापक्ष के लोगों ने भी विधेयक के विरोध में अपना मत वयक्त किया । सत्ता पक्ष के श्री हरिदत्त काण्डपाल ने जंगल विभाग को समाप्त कर विकेन्द्रीकरण की दिशा में जिला परिषद को अधिकार दिये जाने की मांग करते हुये विधेयक को जनहित पर आघात करने वाला बताया ।[2] सत्ता पक्ष के ही श्री चन्द्र सिंह रावत ने अधिकारियों को असीमित अधिकार दिये जाने की आलोचना करते हुये कहा" जनता की नाम में नकेल डालकर आप जो अधिकार ले रहे हैं उससे जनता का लाभ नहीं होने वाला है ।[3] वनों की विस्तृत परिभाषा को सीमित करने के उद्देश्य से सत्ता पक्ष सहित विपक्षी सदस्यों ने 9 संशोधन रखे, जिनमें स्वतंत्र दल के श्री वीरेन्द्र शाह ने समाज कल्याण मंत्री के इस आश्वासन पर कि यदि आवश्यकता हुयी तो संशोधन को कानून में सम्मिलित कर लेंगे अपना संशोधन वापस ले लिया । अन्त में यह विधेयक विपक्ष के विरोध के बावजूद मौखिक मतदान से स्वीकृत हो गया ।[4] इसी प्रकार उ0प्र0 राजभाषा संशोधन विधेयक 1984 के पु स्थापन के समय ही प्रतिपक्ष ने इसका घोर विरोध किया। भारतीय जनता पार्टी के श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त ने इसे सदन की विधायिनी क्षमता से परे बताते हुये कहा- "यह हिन्दी को पीछे ढकेलने का प्रयास है इसके साथ ही इसको बचाने में कुछ अलगाववादी और विघटनकारी तत्वों को इससे बढ़ावा मिलेगा ।" अन्त में घोर व्यवधान के मध्य यह पुरः स्थापित हुआ । इसके पुरः स्थापन के समय आवकारी मंत्री श्री वासुदेव सिंह ने कहा- मैं संवैधानिक रूप से उर्दू को इस प्रदेश की राजभाषा बनाने का विरोधी हूँ इस पर सत्तापक्ष व विपक्ष दोनों की ओर से तालियाँ बजायी गयी तथा संसदीय कार्य मंत्री ने भी इसका समर्थन किया । अतः प्रतिपक्ष ने इसे संयुक्त उत्तरदायित्व के विपरीत बताते हुये औचित्य का प्रश्न उठाया । श्री अध्यक्ष ने कहा कि उन्होंने शैक्षणिक स्तर पर भाग लेकर अपना मत जाहिर किया है किन्तु मतदान में वे पक्ष में वोट देंगे अतः औचित्य का

1- उ0प्र0 वि0स0 खण्ड 164, 10 जनवरी, 1956

2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 215, 22 अगस्त, 1960 पृष्ठ सं0- 523

3- उ0प्र0 वि0स0 क0 खण्ड 215, पृष्ठ सं0- 534

4- -तदैव- खण्ड 216, पृष्ठ सं0- 160, 29 अगस्त, 1960

प्रश्न गलत है। अतः ये विधेयक मौखिक मतदान द्वारा पारित हो गया।[1]

उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत सरकारी विधेयकों में से कुछ विधेयक ऐसे भी रहे जिनमें विपक्ष का मत भिन्न-भिन्न रहा और उन्होंने न केवल मत वैभिन्न अपितु एक दूसरे की दलीय नीतियों की भी आलोचना की- उदाहरणार्थ 20 अगस्त, 1959 को उ0प्र0 अधिकतम जोत सीमा आरोपण विधेयक 1959 को न्याय मंत्री द्वारा सदन में पेश किया गया। प्रस्तावना स्तर पर स्वतंत्र प्रगतिशील विधान सभाई दल के श्री अवधेश प्रताप सिंह ने विधेयक को विधान सभा के अधिकार क्षेत्र से परे बताते हुये इसे अवैधानिक व मौलिक अधिकारों के विपरीत बताया, लेकिन विपक्षी नेता श्री त्रिलोकी सिंह ने इससे असहमति व्यक्त की।[2] 27 अगस्तको न्याय मंत्री ने विधेयक संयुक्त प्रवर समिति में निर्दिष्ट किये जाने का संशोधन रखा। विपक्ष की मांग पर विधेयक की वैधानिकता के प्रश्न पर महाधिवक्ता की दो बार राय ली गयी।[3] संशोधन पर चर्चा के समय भी विपक्षी दलों ने भूमि की अधिकतम जोतसीमा निर्धारित करने के प्रश्न पर अलग-अलग मत दिये- जनसंघ ने कम से कम जोत सीमा 5 एकड़ करने, स्वतंत्र प्रगतिशील विधानसभाई दल ने सवा छः एकड़ तथा प्रजा समाजवादी दल ने 20 एकड़ करने का सुझाव दिया। प्रजा समाजवादी दल के सदस्यों के इस सम्बन्ध में आपस में मतभेद थे। इस दल के श्री गोबिन्द नारायण तिवारी ने सवा छः एकड़ जोत रखने का सुझाव दिया, जबकि इन्हीं के दल के श्री बुद्धि सिंह ने 20 से 30 एकड़ के मध्य जोत सीमा रखने का आग्रह किया। प्रजा समाजवादी दल के श्री प्रताप सिंह ने विधेयक का विरोध करने के साथ साम्यवादी दल की आलोचना करते हुये कहा- कि आज कांग्रेस का जैसा प्रदेश में रवैया है, किसानों को खुश करो और जमींदारों को भी खुश करो वही रवैया साम्यवादी दल ने भी अपना लिया है इसके प्रतिक्रिया स्वरूप साम्यवादी दल के श्री भीखालाल ने प्रजा समाजवादी पार्टी तथा स्वतंत्र पार्टी की आलोचना की। इसका लाभ उठाते हुये राजस्व उप मंत्री श्री महावीर प्रसाद शुक्ल ने कटाक्ष किया कि विपक्ष संशोधन पर एकमत नहीं हैं, यहाँ तक कि जनसंघ के एक सदस्य ने जोत की सीमा 30 एकड़ करने तथा एक ने 25 एकड़ करने को कहा है। इसी तरह समाजवादी सदस्य भी एकमत नहीं है। अतः 40 एकड़ जोतसीमा उचित है।[4] तृतीय वाचन में विपक्ष के तीव्र विरोध के बावजूद यह विधेयक 6 के विरूद्ध 85 मतों से पारित हो गया।[5] इसी प्रकार उ0प्र0 क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद संशोधन विधेयक 1965 व उ0प्र0 बृहत जोतकर 1957 तथा उ0प्र0 मालगुजारी व लगान आपतिक अधिभार विधेयक 1962 आदि पर का विचार व मत वैभिन्नता देखी गयी। उ0प्र0 मालगुजारी आपतिक अधिभार विधेयक

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 366, पृष्ठ सं0- 82, 22 मार्च, 1984

2- उ0प्र0 वि0 स0 का0 खण्ड 206, 20 अगस्त, 1959

3- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 206, 27 अगस्त, 1959

4- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 215, 8 अगस्त, 1960

5- - तदैव - खण्ड 215, 11 अ 1960

1962 पर चर्चा के समय जनसंघ व समाजवादी दल के सदस्यों ने विधेयक से असहमति व्यक्त की जनसंघ के नेता श्री उग्रसेन व समाज वादी नेता श्री गेंदा सिंह ने इसका कड़ा विरोध किया तथा कांग्रेस के श्री रामचन्द्र विकल ने भी विधेयक को अदूरदर्शिता का परिचायक बताते हुये आलोचना की, जबकि स्वतंत्र पार्टी साम्यवादी दल, रिपब्लिकन पार्टी व निर्दलीय सदस्यों ने इसका समर्थन किया ।[1] उ0प्र0 विधान सभा में सरकारी विधेयकों पर चर्चा के समय कुछ विधेयकों को विपक्ष की अनुपस्थिति में बिना किसी अवरोध के स्वीकृत किया गया- उदाहरणार्थ उ0प्र0 गोबध निवारण 1958 पर 6 अगस्त, 1958 को चर्चा प्रारम्भ हुयी । विरोध पक्ष की तीखी आलोचना तथा आग्रह पूर्ण दबाव से सत्तापक्ष के एक संशोधन द्वारा विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को सौंपा गया । 8 सितम्बर, 1958 को समिति की रिपोर्ट पर चर्चा हुई, लेकिन विरोधपक्ष पहले ही एक अन्य कारण से बहिर्गमन कर चुका था अतः विधेयक बिना किसी अवरोध के स्वीकृत हो गया ।[2] इसी प्रकार 19 सितम्बर, 1962 को प्रस्तावित प्रिजन्स (उ0प्र0 संशोधन) "विधेयक 1962" विपक्ष के अनुपस्थित रहने के कारण बिना किसी अवरोध के 20 सितम्बर, 1962 स्वीकृत हुआ ।[3] तथा 31 जनवरी, 1966 को प्रस्तुत उ0प्र0 स्थानीय निकाय अल्पकालीन विधेयक 1966 पर चर्चा के समय विपक्षी सदस्य सदन से अनुपस्थित थे क्योंकि उन्होंने एक स्थगन प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये जाने के विरोध में सदन से बहिर्गमन कर दिया था अतः यह विधेयक बिना बहस के पारित हो गया ।[4] कुछ अवसरों पर विपक्ष द्वारा विधेयक के विरोध में सदन त्याग के कारण बिना अवरोध के विधेयक पास हुआ- उ0प्र0 मोटर गाड़ी कराधान विधेयक 1978 पर चर्चा के समय विधेयक को प्रवर समिति में न ले जाने की प्रतिपक्ष द्वारा मांग की गयी किन्तु सदन द्वारा अस्वीकृत हुयी तत्पश्चात् विधेयक पर प्रस्तुत अनेक संशोधन उपाध्यक्ष द्वारा अनियमित कह कर अस्वीकार कर दिये जाने पर प्रतिपक्ष के श्री रामआसरे वर्मा ने यह कहा कि - यह टैक्स ट्राली व टैक्टरों के ऊपर जिस तरीके से लगाया जा रहा है उसके विरोध में हम वाकआउट करते हैं-सदन त्याग दिया- अन्त में सम्पूर्ण प्रतिपक्ष द्वारा सदन त्यागने के कारण जब प्रश्न पारित होने के लिये उपस्थित हुआ,कोई सदस्य विरोध दल का न होने के कारण अन्त में बिना किसी अवरोध के पारित हो गया ।[5]

---

1 उ० प्र० वि० स० का० खण्ड 237, 4 दिसम्बर 1962
2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 197, 3 सितम्बर, 1958
3- उ0प्र0 वि0स0 वि0स0 का0 खण्ड 234, 20 सितम्बर, 1962
4- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 262, 4 फरवरी, 1966, पृष्ट सं0- 627
5- उ0प्र0 वि0 स0 का0 खण्ड 334 अंक 10 पृष्ठ सं0- 1012, 1013

सरकारी विधेयको के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययनधीन उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत समसत सरकारी विधेयक (1952-85) में वापस व व्यपगत विधेयकों के अतिरिक्त कोई भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जब कोई सरकारी विधेयक विधान सभा द्वारा पारित न हुआ हो । पुरः स्थापन के प्रक्रम का एक अपवाद चतुर्थ विधान सभा में अवश्य है जब तत्कालीन कृषि मंत्री श्री जयराम वर्मा द्वारा उपस्थित उ0प्र0 राज्य विधान मण्डल (अनर्हता निवारण) विधेयक 1967 को पुरः स्थापन हेतु सदन की अनुज्ञा न प्राप्त हो सकी (पक्ष में 123 व विपक्ष में 144 मत) प्राप्त हुये ।[1] विपक्ष सरकारी विधेयकों के सम्बन्ध में यह कथन कि "विरोध पक्ष का कार्य सरकारी नीतियों की आलोचना करना है जिन्हें वह जनहित के विरोध में समझता है" पूर्णतया सफल रहा और उसने सरकारी विधेयकों में निहित सरकारी नीतियों- जैसे आवश्यक रूप से अध्यादेश जारी करना, प्रशासनिक अधिकारियों को अधिक अधिकार देने , सत्ता के केन्द्रीकरण, आम नागरिकों की दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर अधिकाधिक कर बृद्धि, विधान सभा अधिकारियों व मंत्रिपरिषद के सदस्यों के वेतन भत्ते व सुविधाओं में बृद्धि, छोटे किसानों को प्रभावित करने वाले प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कर लगाने की सरकारी नीतियों का प्रायः एक स्वर में विरोध किया तथा विधान सभा में कुछ अवसर ऐसे भी आये जब सरकार ने विधेयकों पर विपक्ष द्वारा प्रस्तुत संशोधनों को स्वीकार भी किया- उदाहरणार्थ - 1952 में उ0प्र0 म्यूनिस्पेलिटी संशोधन विधेयक 1952 की धारा 13 में निहित व्यवस्था के अनुसार जो मतदाता म्यूनिस्पल टैक्स का एरियर नहीं जमा करेगा वह चुनाव में नहीं खड़ा हो सकता लेकिन प्रजा समाजवादी दल के श्री नारायण दत्त तिवारी ने टैक्स न देने वाले मतदाता को भी चुनाव लड़ने का अधिकार का संशोधन रखा जो सदन द्वारा स्वीकृत हुआ ।[2] इसी प्रकार उ0प्र0 गन्ना (पूर्ति व खरीद) विनियम विधेयक 1953 (13 अगस्त, 1953) , उ0प्र0 औद्योगिक गृह व्यवस्था विधेयक 1954, (21 सितम्बर, 1954) तथा उ0प्र0 हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्था (संपत्ति अपव्यय निवारण) अस्थायी तथा उ०प्र० स्थानीय निकाय (संशोधन) विधेयक इत्यादि ऐसे थे, जिन पर सरकार ने विपक्ष के संशोधनों को स्वीकार किया । इससे स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष न केवल सकारात्मक आलोचना द्वारा अपितु उचित सुझाओं द्वारा सरकार को प्रभावित करने में सफल रहा ।

1- दि-टाईम्स आफ इण्डिया, 19 दिसम्बर, 1967 (इसमें सरकार की पराजय हुई)
2- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड- 155, 18 दिसम्बर, 1952

(ख) **गैर सरकारी विधेयक–**

विधान सभा का कोई भी सदस्य चाहे वह सत्तारूढ़ दल से सम्बन्धित हों अथवा विरोधी दल से, जो मंत्री परिषद का सदस्य नहीं होता, गैर सरकारी सदस्य कहलाता है ।[1] चूंकि प्रशासन की पूर्ण जिम्मेदारी सरकार की होती है इसलिये अधिकांशतः विधि निर्माण की पहल सरकार द्वारा ही की जाती है लेकिन किसी पहलू पर सरकार की दृष्टि पहुँचने से पहले यदि किसी सदस्य की पहुँच जाती है तो वह असरकारी विधेयक से सरकार का ध्यान उस विधिक आवश्यकता की ओर आकर्षित करता है ।

उद्देश्य की दृष्टि से जिन विषयों पर सरकार या तो अनभिज्ञ रहती है अथवा उनके सम्वनध में कानून बनाने में हिचकिचाहट महसूस करती है, असरकारी विधेयक सरकार का मार्गदर्शन कर उसे निश्चित दिशा में कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं । दूसरे इन विधेयकों के माध्यम से सदन को वर्तमान कानूनों के सामयिक औचित्य पर विचार विमर्श करने एवं क्रियान्वयन के पुनरीक्षण का अवसर प्राप्त होता है ।

असरकारी सदस्य जो किसी विधेयक को पेश करने की अनुज्ञा के लिये प्रस्ताव करना चाहते हैं को, अपने इस आशय की सूचना 15 दिन पूर्व अध्यक्ष को देनी होती है ।[2] और सूचना के साथ विधेयक की एक प्रति तथा उद्देश्यों व कार्यो का विवरण जिसमें प्रतर्क न हो, भेजने होते हैं ।[3] यदि अध्यक्ष ऐसे विधेयकों पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति अथवा राज्यपाल की सिफारिश आवश्यक समझता है, तो उसे यथाशीघ्र राष्ट्रपति या राज्यपाल को निर्दिष्ट कर सकता है ।[4] उदाहरणार्थ श्री रामनारायण त्रिपाठी का नेता विरोधी दल की सुविधाओं के विधेयक पर राज्यपाल की स्वीकृति के अभाव में अध्यक्ष द्वारा सदन की अनुज्ञा लेने लेने के लिये पेश करने की अनुमति नहीं दी गई ।[5]

अध्यक्ष यदि समझता है कि किसी विधेयक का विषय विधान सभा के अधिकार क्षेत्र के परे है अथवा संविधान की व्यवसथाओं के अनुरूप नहीं है तो वह सदन में पेश करने की अनुमति से इंकार कर सकता है । उदाहरणार्थ-श्री नारायण दत्त तिवारी के विधेयक– घूस निवारण विधेयक जिसका सम्बन्ध न केवल राज्य कर्मचारियों से था अपितु केन्द्रीय कर्मचारियों से भी था, अध्यक्ष ने केन्द्रीय अनुसूची से सम्बन्धित मानते हुये

1– उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया व कार्यसंचालन नियमावली, नियम (3) 1966

2– तदैव– नियम– 155 (3) 1966

3– तदैव– नियम– 115 (1) 1966

4– तदैव– नियम– 115 (2) 1966

5– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड– 133, 1अप्रैल, 1954 पृष्ठ– 264

पेश करने की अनुमति नहीं दी। इसी प्रकार श्री झारखण्डे राय के भूमि पुनर्वितरण विधेयक पर अध्यक्ष ने सदन में पेश करने की अनुज्ञा देने के लिये इस आधार पर इन्कार कर दिया कि विधेयक मे प्रतिकार की व्यवस्था नहीं है जो संविधान के विरुद्ध है ।

यदि अध्यक्ष किसी गैरसरकारी विधेयक को सदन में पेश करने की अनुज्ञा लेने हेतु अनुमति दे देता है तो प्रस्तावक विधेयक को सदन में रखते हैं । सामान्यतया गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों का प्रस्तावना स्तर पर विरोध नहीं किय जाता लेकिन प्रजा समाजवादी दल के श्री रामशरण यादव द्वारा प्रस्तावित उ0प्र0 पिछड़ा वर्ग अधिकार संरक्षण (अस्थाई अधिकार) विधेयक को अधिष्ठाता महोदय ने सदन की अनुज्ञा हेतु रखा तो श्री यादव ने मतदान न कराने का आग्रह किया क्योंकि विधेयक की प्रस्तावना का किसी ने विरोध नहीं किया था । इसके बावजूद अधिष्ठाता ने विधेयक पर मतदान कराया। मतदान में विधेयक के पक्ष में 36 तथा विपक्ष में 81 मत पड़े फलस्वरूप यह विधेयक पेश न किया जा सका । सत्तारूढ़ दल के सदस्यों द्वारा विधेयक के विरोध में मत दिये जाने के विरोध में विपक्षी सदस्यों ने सदन त्याग किया ।[1] उ0प्र0 विधान सभा में अध्ययनाधीन समय में प्रस्तुत गैर सरकारी विधेयक जिन पर विधान सभा में चर्चा तो हुई किन्तु पुरः स्थापित नहीं हो सके, निम्निवत् हैः-

तालिका

विधेयक का नाम	चर्चा करने वाले सदस्य	विचार की तिथि
1- उ0प्र0 अवैतनिक जन सेवक ग्रामीण संरक्षण विधेयक 1952	श्री चन्द्रपाल बाजपेई (निर्दलीय)	10 अक्टू, 1952
2- उ0प्र0 गोवंश संरक्षण विधेयक 1952	श्री रणंजय सिंह (निर्दलीय)	12 दिस0, 1952
3- उ0प्र0 घूस निवारण विधेयक 1952	श्री वीरेन्द्र पति यादव (कांग्रेस)	27 मार्च, 1953
4- उ0प्र0 भूमि वितरण विधेयक 1953	श्री झारखण्डे राय (कम्यूनिस्ट पार्टी)	23 अग0, 1953
5- नेता विरोधी दल की सुविधाओं का विधेयक 9154	श्री रामनारायण त्रिपाटी (सोशलिस्ट पार्टी)	14 अप्रै0, 1954

1. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड-207, 11 सितम्बर, 1959, पृष्ठ- 888-90

6– कुमायूँ विश्वविद्यालय विधेयक 1957	श्री नारायण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी दल)	18 सित0, 1957
7– उ0प्र0 पिछड़ा वर्ग अधिकार संरक्षण विधेयक 1959	श्री रामशरण यादव (प्रजा समाजवादी दल)	10 सित0, 1959
8– उ0प्र0 खेत मजदूर उचित मजदूरी तथा काम की दशा विनियमन विधेयक 1972	श्री हरवंश सहाय (सोशलिस्ट पार्टी)	18 जुला0, 1972
9– उ0प्र0 निर्माण कार्य विनियमन (संशोधन विधेयक 1972)	श्री शिवराज सिंह (कांग्रेस)	18जुलाई, 1972
10–उ0प्र0 शहरी भवन किराये पर (किराये तथा बेदखली का विनियमन) संशोधन विधेयक 1978	श्री रवीन्द्रनाथ तिवारी (जनता पार्टी)	17 मई, 1978

अध्ययनाधीन विधान सभा में तालिका में उल्लिखित विधेयकों में से कुछ विधेयक ऐसे थे जिन्हें सदन में चर्चा के समय सत्तपक्ष द्वारा आश्वासन दिये जाने के कारण भारसाधक सदस्य द्वारा वापस ले लिया गया– उदाहरणार्थ 12 दिसम्बर, 1952 को निर्दलीय सदस्य श्री रणंजय सिंह द्वारा प्रस्तावित "उ0प्र0 में गोवंश संरक्षण विधेयक" जिसका उद्देश्य गोवध पर प्रतिबन्ध लगाना था, को पेश करने के लिये सदन की अनुज्ञा लेने से पूर्व मुख्य मंत्री श्री गोविन्द बल्लभ पन्त ने इसे समयोचित बताते हुये, विषय से सम्बन्धित सभी बातों पर विचार करने हेतु एक समिति गठित करने का आश्वासन दिया । साथ ही मुख्य मंत्री ने प्रस्तावक से विधेयक वापस लेने का अनुरोध किया । प्रस्तावक श्री सिंह ने समिति के गठन का स्वागत करते हुये विधेयक को पेश करने की अनुज्ञा का प्रस्ताव सदन की इच्छ से वापस ले लिया ।[1] तत्पश्चात् 8 सितम्बर, 1955 सरकारी पहल पर उ0प्र0 गोवध निवारण विधेयक 1955 – पारित किया गया । तथा 18 जुलाई, 1972 को एक गैरसरकारी विधेयक– उ0प्र0 निर्माण कार्य विनियमन (संशोधन) विधेयक 1972 सदन के समक्ष अनुज्ञा हेतु प्रस्तुत हुआ इस पर सरकार ने अपेक्षाकृत सहयोगपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया व स्वायत्तशासन मंत्री श्री काजीजलील अब्बासी द्वारा यह आश्वासन दिये जाने पर कि शासन की ओर से शीघ्र ही इस प्रकार का विधेयक लाया जा रहा है, इसके प्रस्तावक श्री शिवराज सिंह द्वारा उसे वापस ले लिया गया ।[2]

1– उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड– 114, 12 दिसम्बर, 1962, पृष्ठ– 296

2– उ0प्र0 वि0स0 कार्यवाही, 18 जुलाई 1972

कुछ विधेयक ऐसे रहे जिनमें सरकार का समर्थन न मिलने के कारण विधेयक को सदन की अनुज्ञा प्राप्त न हो सकी– उदाहरणार्थ – 18 जुलाई,1972 को संयुक्त समाजवादी दल के सदस्य श्री हरिवंश सहाय द्वारा– उ0प्र0 खेत मजदूर (उचित मजदूरी तथा काम की दशा का विनियमन) विधेयक 1972 को पुरः स्थापन हेतु सदन की अनुज्ञा के लिये प्रस्तुत किया गया । इस पर सरकारी पक्ष से यह आपत्ति की गई कि इस विधेयक को प्रस्तुत करने के लिये राज्यपाल की व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है अतः इसके अभाव में इसे यहां उपस्थित नहीं किया जा सकता जबकि विपक्षी सदस्यों ने इस आपत्ति से इन्कार किया, अन्त में अध्यक्ष ने अनुज्ञा हेतु सदन की राय जानने के लिये उसे प्रस्तुत किया और हाथ उठाकर विभाजन होने पर यह सदन द्वारा अस्वीकृत हुआ ।[1] सरकार के इस दृष्टिकोण के विरुद्ध संसोपा, जनसंघ और संगठन कांग्रेस के सभी सदस्य तथा कुछ अन्य सदस्यों ने सदन का परित्याग किया ।[2] इससे स्पष्ट है कि सरकार का सहयोग न मिलने के कारण ही इस गैरसरकारी विधेयक को पुरः स्थापन के लिये सदन की अनुज्ञा न प्राप्त हो सकी ।

उ0प्र0 विधान सभा में अध्ययनाधीन काल में कुल 34 विधेयक सदन की अनुज्ञा से पेश किये गये । तीसरी व चौथी विधान सभा के कार्यकाल में कोई भी विधेयक पेश नहीं किया गया । सदन की अनुज्ञा प्राप्त विधेयकों में 11 विधेयक सत्तापक्ष व 23 विपक्ष द्वारा प्रस्तुत हुये ।

तालिका

	विधेयक का नाम	भारसाधक सदस्य	पुरःस्थापन की तिथि
प्रथम विधान सभा			
1–	उ0प्र0 राजबन्दी विधेयक	श्री झारखण्डे राय (साम्यवादी दल)	9 जन0,1953
2–	उ0प्र0 हरिजन सेवा संरक्षण विधयेक 1954	श्री रामसुमेर राय (कांग्रेस)	22 अक्टू0,1954
3–	कुमायूँ विश्वविद्यालय विधेयक 1956	श्री नाराण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी दल)	10 अग0,1956
4–	उ0प्र0 विधान परिषद व विधान सभा सचिवालय (नियुक्ति व सेवा उपबन्ध विनियम) विधेयक 1956	श्री रामसुमेर राय (कांग्रेस)	27 अग0,1956

1– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड– 298, पृष्ठ– 706 से 709

2– तदैव खण्ड– 298, पृष्ठ 710

द्वितीय विधान सभा

5–	कुमायूँ विश्वविद्यालय विधेयक 2957	श्री नारायण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी दल)	18 सित0, 1957

तृतीय विधान सभा	–	–
चतुर्थ विधान सभा	–	–

पंचम विधान सभा

6–	उ0प्र0 बेकारी निवारण विधेयक 1972	श्री कल्पनाथ सिंह (संगठन कांग्रेस)	14 अग0, 1972
7–	उ0प्र0 हरिजन एवं पिछड़ा वर्ग उत्थान विधेयक 1972	श्री रूपनाथ सिंह यादव (संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी)	22 दिस0, 1972

षष्ठम विधान सभा

8–	उ0प्र0 लैण्ड रेवन्यू (संशोधन) विधेयक 1974	श्री राम सेवक यादव (भा0क्रान्ति दल)	31 जुल0, 1974
9–	उ0प्र0 मानववादी साहित्य प्रचार व प्रसार विधेयक 9174	श्री रणधीर सिंह (शोषित समाजवादी दल)	31 जुल0, 1974
10–	पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर विधेयक 1974	श्री ओमप्रकाश श्रीवास्तव (कांग्रेस)	17 अग0, 1974
11–	उ0प्र0 हरिजन व पिछड़ा वर्ग उत्थान विधेयक 1974	श्री राम सेवक यादव (भा0 क्रान्ति दल)	21 अग0, 1974

सप्तम विधान सभा

12–	उ0प्र0 दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक 1972	श्री सोहनवीर सिंह तोमर व श्री उदित नारायण शर्मा (जनता पार्टी)	12 सित0, 1977
13–	उ0प्र0 विधान मण्डल सदस्यों की उपलब्धियों का संशोधन विधेयक 1977	श्री सोहनवीर सिंह तोमर (जनता पार्टी)	12 सित0, 1977
14–	प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय (उ0प्र0 संशोधन विधेयक) 1978	श्री जगदीश मिश्र (जनता पार्टी)	17 मई, 1978

15-	उ0प्र0 जाति प्रथा उन्मूलन विधेयक 1978	डा0 अश्विनी कुमार चतुर्वेदी राकेश (जनता पार्टी)	17 मई0,1978
16-	उ0प्र0 जोत चकबन्दी संशोधन विधेयक 1978	श्री रवीन्द्र तिवारी (जनता पार्टी)	29 दिस0,1978
17-	उ0प्र0 पब्लिक स्कूल शिक्षा प्रणाली उन्मूलन विधेयक 1978	श्री शतरूद्धप्रकाश (जनता पार्टी)	29 दिस0,1978
18-	उ0प्र0 भूमिहीन भूमि आवंटन विधेयक 1979	श्री बाबूलाल वर्मा (जनता पार्टी)	15 जून01979
19-	उ0प्र0 सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षण व विनियमन विधेयक 1980	श्री रवीन्द्र तिवारी (जनता पार्टी)	8 फर0,1980

<u>अष्टम विधान सभा-</u>

20-	उ0प्र0 हिमालय भूमि सुधार विधेयक 1980	श्री राम स्वरूप वर्मा (शोषित समाजवादी दल)	29 अग0,1980
21-	उ0प्र0 नगर योजना व विकास द्वितीय संशोधन विधेयक 1980	श्री राम आसरे वर्मा (निर्दलीय)	29 अग0,1980
22-	उ0प्र0 राज्य विश्वविद्यालय तृतीय संशोधन विधेयक 1980	श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त (भा0ज0पा0)	19 सित0,1980
23-	उ0प्र0 चलचित्र (विनियमन) संशोधन विधेयक 1980	श्री राम आसरे वर्मा (निर्दलीय)	19 सित0,1980
24-	उ0प्र0 पर्यटन विकास विधेयक 1980	श्री रामस्वरूप वर्मा (अ0भा0शो0समाज0 दल)	19 सित0,1980
25-	उ0प्र0 पार्श्व भूमि नियंत्रण संशोधन विधेयक 1980	श्री दूधनाथ राजभर (कांग्रेस आई)	9 अक्टू0,1980
26-	उ0प्र0 राज्य विश्वविद्यालय संशोधन विधेयक 1981	श्री रामस्वरूप वर्मा (शोषित समाजवादी दल)	1 अप्रैल,1981
27-	संविधान विरोधी साहित्य प्रतिवन्धन विधेयक 1981	श्री रामस्वरूप वर्मा (शोषित समा0 दल)	2 अप्रैल,1981
28-	उ0प्र0 शिक्षण माध्यम विधेयक 1980(जैसा कि उ0प्र0 विधान परिषद द्वारा पारित हुआ है)	श्री ओमप्रकाश (सदस्य विधान परिषद)	1 अप्रैल,1981

29–	उ0प्र0 नजूल विधेयक 1982	श्री रामआसरे वर्मा ⟮निर्दलीय⟯	12फर0,1982
30–	उ0प्र0 सार्वजनिक भूमि संरक्षण विधेयक 1983	श्री रामस्वरूप वर्मा ⟮शोषित समा0 दल⟯	7 अप्रैल,1983
31–	उ0प्र0 क्षेत्र विकास ⟮संशोधन⟯विधेयक 1983	श्री केदारनाथ सिंह ⟮कांग्रेस आई⟯	7 अप्रैल,1983
32–	उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय ⟮सेवा और भर्ती की शर्ते तथा अधिवर्षता की आयु⟯ विधेयक 1983	श्री हुकुम सिंह ⟮लोकदल⟯ ⟮श्री मोहन सिंह द्वारा प्राधिकृत⟯ जनता दल एस ⟮चरण सिंह⟯	7 अप्रैल,1983
33–	उ0प्र0 अनुत्पादक कृषि भूमि उद्धार एवं अनिवार्य अन्तरण विधेयक 1983	श्री जयदीप सिंह बरार ⟮निर्दलीय⟯	9 सित0,1983
34–	उ0प्र0 विधान मण्डल⟮सदस्यों की उपलब्धियाँ और पेंशन⟯ संशोधन विधेयक 1983	श्री राम स्वरूप वर्मा ⟮शोषित समाजवादी दल⟯	9 सित0,1983

अष्टम विधानसभा के बादः–

35–	दण्ड प्रक्रिया संहिता ⟮उत्तर प्रदेश शंसोधन ⟯ विधेयक–1985	बृम्हदत्त द्विवेदी	3 सितम्बर 1985
36–	उत्तर प्रदेश शिक्षा अधिकरण विधयेक	शतरूद्ध प्रकाश	3 सितम्बर 1985
37.	उत्तर प्रदेश जमींनदारी विनाश और भूमि व्यवस्था ⟮संशोधन⟯ विधेयक 1985	फजलुल बारी,	3 सितम्बर 1985
38.	उ0प्र0 नगर योजना और विकास (संशोधन) विधेयक, 1986	श्री राम आसरे वर्मा	4 सितम्बर 1986
39.	उ0प्र0 अप्राधिकृत चिकित्सा शिक्षण संस्था ⟮निवारण-निरसन⟯ विधयेक, 1987	रवीन्द्र नाथ तिवारी	4 जनवरी 1988
40.	उ0प्र0 विधानसभा ⟮सचिवालय प्रशासन⟯ विधेयक, 1987	श्री जयदीप सिंह बरार	4 जनवरी 1988
41.	दण्ड प्रक्रिया संहिता ⟮उ0प्र0 संशोधन⟯ विधयेक, 1988	जयदीप सिंह बरार	25 अप्रैल 1988

42.	उ0प्र0 भूमि विधि (संशोधन) विधेयक, 1988	श्री सूर्य प्रताप शाही	25 अप्रैल, 1988
43.	उ0प्र0 धर्म की स्वतंत्रता विधेयक, 1989	श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त	3 अप्रैल 1989
44.	वन (संरक्षण) (उ0प्र0 संशोधन) विधेयक, 1989	श्री काशी सिंह ऐरी	3 अप्रैल 1989
45.	उ0प्र0 समान बेसिक शिक्षा, पाठ्यक्रम उपकरण एवं शुल्क विधेयक, 1989	श्री सूर्य प्रताप शाही	3 अप्रैल 1989

तालिका में दर्शित विधेयकों में से 9 विधेयक विधान सभा विघटित हो जाने के कारण व्यपगत हो गये तथा 10 विधेयक वापस हो गये । 8 विधेयक अस्वीकृत हो गये तथा 3 विधेयक अपास्त ।[1] हो गये तथा एक विधेयक पर राज्यपाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 207 के खण्ड-3, के अन्तर्गत अपनी सिफारिश बिधारित कर दी तथा एक विधेयक जनता की राय जानने हेतु परिचालित किया गया अन्त में 2 वर्ष बीत जाने के बाद कार्यवाही समाप्त हो गई ।

व्यपगत विधेयकों का विवरण निम्नवत् है:- प्रथम विधान सभा में उ0प्र0 हरिजन सेवा संरक्षण विधेयक 1954 कांग्रेस के सदस्य श्री रामसुमेर द्वारा 22 अक्टूबर, 1954 को पुरःस्थापित हुआ जो 24 दिसम्बर, 1954 को तथा 26 अगस्त, 1955 को चर्चा के उपरान्त मुख्य मंत्री के प्रस्ताव पर 31 दिसम्बर, 1955 को जनमत संग्रह के लिये परिचालित किया गया । विधेयक के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुये माननीय सदस्य श्री रामसुमेर ने कहा कि हमारे प्रदेश में हरिजन आवादी का 1/2 हिस्सा है अतः इनके हितों की रक्षा के लिये राज्य की सरकारी सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था के लिये कानून बनना आवश्यक है । 27 अप्रैल, 1956 को विधेयक सदन की प्रवर समिति को भारसाधक सदस्य श्री राम सुमेर के प्रस्ताव पर सुपुर्द किया गया । 24 अगस्त, 1956 को विधान सभा की बैठक में प्रवर समिति के सदस्यों के नाम वापस लेने की तिथि अध्यक्ष द्वारा 29 अगस्त, 1956 तक बढ़ाई गई । प्रश्नगत विधान सभा के कार्यकाल में प्रवर समिति का कोई प्रतिवेदन प्राप्त नहीं हुआ । अतः मार्च 1957 में पहली विधान सभा के विघटन के कारण विधेयक व्यपगत हो गया ।[2] इसी प्रकार कुमायूँ विश्वविद्यालय 1956 को श्री नारायण दत्त तिवारी ने 10 अगस्त, 1956 को पुरःस्थापित किया और प्रस्ताव किया कि उक्त विधेयक को 3 माह के लिये जनमतसंग्रहार्थ घुमाया जाय । 24 अगस्त, 1956 को विवाद पुनः जारी हुआ श्री हरगोविन्द सिंह शिक्षा मंत्री ने प्रस्ताव में संशोधन प्रस्तुत किया कि विधेयक 6 महीने के लिये जनमतसंग्रहार्थ घुमाया जाय ।[3] श्री नारायण दत्त तिवारी ने इससे सहमत व्यक्त की फलस्वरूप यह विधेयक सदन की अनुमति से जनमत जानने हेतु परिचालित हुआ ।[4] किन्तु प्रथम विधान सभा का विघटन हो जाने के कारण विधेयक व्यपगत हो गया ।

1- नियम 175- अपास्त विधेयक, वह विधेयक है जिसके सम्बन्ध में 2 वर्ष तक सभा में कोई प्रस्ताव प्रस्तुत न हुआ हो, अपास्त समझा जायेगा और अध्यक्ष के आदेश से विधेयकों की पंजी से हटा दिया जायेगा ।

2- उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड- 127, पृष्ठ-21-22

3- तदैव खण्ड- 197, पृष्ठ-53

4- तदैव खण्ड-117, पृष्ठ-54

पंचम विधान सभा में श्री रूपनाथ सिंह यादव, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने 22 दिसम्बर, 1972 को उ0प्र0 हरिजन व पिछड़ा वर्ग विधेयक को पुरःस्थापित किया तथा 24 जनवरी, 1973 को यह विधेयक सदन के सम्मुख विचार हेतु उपस्थित हुआ किन्तु उस दिन विचार अपूर्ण रहा पुनः इस अपूर्ण विचार को पूर्ण करने के लिये पंचम विधान सभा के कार्यकाल में यह विधेयक सदन के पटल पर न जा सका इस प्रकार यह गैर सरकारी विधेयक द्वितीय वाचन भी पूर्ण न कर सका।[1] तथा उ0प्र0 बेकारी निवारण विधेयक 1972 (भार साधक सदस्य श्री कल्पनाथ सिंह संगठन कांग्रेस) 14 अगस्त, 1972 को सदन में पुरः सदन में स्थापित हुआ किन्तु पंचम विधान सभा के सम्पूर्ण कार्यकाल में विचार हेतु विधान सभा में प्रस्तुत ही नहीं हुआ और व्यपगत हो गया।

छठी विधान सभा में उ0प्र0 लैण्ड रेवेन्यू विधेयक 1974 श्री रामसेवक यादव द्वारा 31 जुलाई,1974 को पुरः स्थापित हुआ किन्तु भारसाधक सदस्य की मृत्यु हो जाने के कारण विधेयक पर विचार नहीं हुआ और व्यपगत हो गया।[2]

सप्तम विधान सभा में उ0प्र0 पब्लिक स्कूल शिक्षा प्रणाली उन्मूलन विधेयक 1978, उ0प्र0 भूमिहीन भूमि का आवंटन विधेयक 1979, उ0प्र0 सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षण विनियमन विधेयक 1980 सत्तारूढ़ दल के सदस्यों द्वारा प्रस्तावित होने के उपरान्त ही सरकार द्वारा उदासीनता के कारण व्यपगत हो गये एवं अष्टम विधान सभा में एक विधेयक उ0प्र0 विधान मण्डल सदस्यों की उपब्लिधियाँ और पेंशन (संशोधन) विधेयक 1983 का भी यही हश्र हुआ।

उ0प्र0 विधान सभा में अध्ययनाधीन काल में प्रस्तुत विधेयकों में से 8 विधेयक वापस हो गये। विधेयकों के सम्यक् विवेचन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि ये विधेयक सामान्य तौर पर सत्ता पक्ष द्वारा शासन की ओर से उचित कार्यवाही किये जाने के आश्वासन के कारण वापस ले लिये गये या सरकार द्वारा कानूनी तौर पर असमर्थता व्यक्त की गई उदाहरणार्थ- श्री रवीन्द्र तिवारी, सदस्य विधान सभा ने 29 दिसम्बर,1978 को उ0प्र0 जोत चकबन्दी विधेयक 1978 पुरः स्थापित किया। 18 मई, 1979 को संशोधन विधेयक पर चर्चा करते हुये भारसाधक सदस्य श्री रवीन्द्र तिवारी ने कहा कि प्रस्तावित संशोधन के जरिये कोई नई बात नहीं कही गई है बल्कि रेवेन्यू कोर्ट और सिविल कोर्ट के न्याय को लागू किये जाने के लिये विधेयक में चकबन्दी न्यायालय को अधिकार दिये जाने का

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड-299, 24 जनवरी, 1973

2- तदैव, खण्ड-302, खण्ड-789, 31 जुलाई,1974

प्रावधान किया गया है । इसके लागू होने से गरीब किसान शोषण से बच जायेंगे। उन्होंने सदन को यह भी अवगत कराया कि पूर्व राजस्व मंत्री इस संशोधन के पक्ष में थे। अन्त में राजस्व मंत्री द्वारा आश्वासनात्मक कार्यवाही किये जाने के परिणामस्वरूप श्री तिवारी ने विधेयक इस शर्त पर वापस ले लिया कि चकबन्दी अधिनियम में आगे चलकर प्रस्तावित संशोधनों पर विचार कर लिया जायेगा । उ0प्र0 जोत चकबन्दी संशोधन विधेयक 1978 सदन की अनुमति से वापस ले लिया गया ।[1] तथा प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय संशोधन विधेयक 1978 को विधान सभा के सदस्य श्री जगदीशचन्द्र ने 12 मई, 1978 को पुरःस्थापित किया विधेयक के विषय में भारसाधक सदस्य श्री जगदीशचन्द्र ने कहा कि लघुवाद न्यायालय द्वारा पारित आदेश या डिक्री के विरूद्ध केवल जिला जज के यहां पुनरीक्षण हो सकता है इसका कारण जिला जज तथ्य तथा वैधता सम्बन्धी त्रुटियों को नहीं देख पाते अतः इस त्रुटि को दूर करना आवश्यक है । चर्चा में भाग लेते हुये तत्कालीन न्याय मंत्री श्री श्रीचन्द्र ने भारसाधक सदस्य श्री जगदीश चन्द्र से विधेयक को वापस लेने का अनुरोध करते हुये कहा कि यदि पुनरीक्षण के साथ औचित्य का प्रश्न रख दिया जायेगा तो फैसला होने में विलम्ब होगा । अतः न्याय मंत्री के अनुरोध पर विधेयक वापस लेने का प्रस्ताव सदन द्वारा स्वीकृत हुआ ।[2]

उ0प्र0 विधान सभा में अध्ययनाधीन काल में 8 विधेयक अस्वीकृत हो गये । ये सभी विधेयक प्रतिपक्ष के मुकाबले में शासन पक्ष की अधिकता के कारण अस्वीकृत हुये या जो विधेयक सत्ता पक्ष के सदस्यों द्वारा प्रस्तुत थे उन पर सरकार ने आश्वासन दिया किन्तु फिर भी भारसाधक सदस्य द्वारा वापस न लिये जाने के कारण अस्वीकृत हो गये उदाहरणार्थ- दण्ड प्रक्रिया संहिता उ0प्र0 संशोधन विधेयक 1977 जनता पार्टी सदस्य श्री उदित नारायण शर्मा द्वारा 12 सितम्बर, 1977 को पुरः स्थापित किया गया । विधेयक पर विचार व्यक्त करते हुये कहा कि दूसरे प्रान्तों के लोग दण्ड संहिता की धारा 438 का लाभ (अग्रिम जमानत का अधिकारी) उठा रहे हैं परन्तु उ0प्र0 के लोग इससे बंचित हैं अतः वर्ष 1976 में उ0प्र0 द्वारा बनाये गये अधिनियम की 3 धाराओं के तहत जो सुविधायें ले ली गई थी, उनको समाप्त करने के लिये मैं उम्मीद करता हूँ कि माननीय सदस्य इसको पारित करेंगे ।[3] चर्चा में भाग लेते हुये तत्कालीन न्याय मंत्री श्री ओम प्रकाश सिंह ने विधेयक का विरोध करते हुये कहा कि इसके दो संशोधनों पर विचार हो रहा है अतः माननीय सदस्य इसे वापस ले लें । श्री उदित नारायण शर्मा द्वारा वापस न लेने के करण इस पर सदन में विचार स्थगित हुआ तथा उक्त विधेयक पर 17 मई, 1978 को विचार किये जाने का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया ।[4] उ0प्र0 नजूल विधेयक 1982 श्री रामआसरे वर्मा

1- उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड

2- तदैव, खण्ड

3- -तदैव- खण्ड- 326, अंक-9, पृष्ठ-836

4- -तदैव- खण्ड-33, अंक-4, पृष्ठ-226

ने 12 फरवरी, 1982 को पुरःस्थापित किया इसी दिन श्री रामआसरे वर्मा के प्रस्ताव पर कि उ0प्र0 नजूल विधेयक 1982 पर विचार किया जाये, विवाद जारी हुआ किन्तु सत्तापक्ष के लोगों ने इसका घोर विरोध किया अन्त में विधेयक 22 के मुकाबले 86 मतों से अस्वीकृत हो गया।[1]

विधान सभा में प्रस्तुत 3 गैरसरकारी विधेयक अपास्त हो गये ये निम्नवत् थे- 1- उ0प्र0 हिमालय भूमि सुधार विधेयक 1980 श्री रामस्वरूप वर्मा द्वारा 29 अगस्त,1980 को उ0प्र0 विधान सभा (अष्टम) में पुरःस्थापित किया गया इस विधेयक पर चर्चा करते हुये कोई तिथि निश्चित नहीं हो सकी और अन्त में उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली के नियम 175 के अन्तर्गत विधेयक के अपास्त हो जाने के कारण विधेयकों की पंजिका से निकाल दिया गया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कोई भी गैरसरकारी विधेयक अधिनियम का रूप ग्रहण नहीं कर सका। कछ विधेयकों में तो न तो सदस्यों की ओर से कभी कोई संशोधन रखा गया और न ही सदन में कभी कोई चर्चा हुई। इसके अतिरिक्त ज्यादातर विधेयकों में उनके नियमों आदि का सदन के पटल पर रखने के लिये किसी समय-सीमा का उल्लेख न होने के कारण ये प्रायः विलम्ब से विधान सभा के समक्ष उपस्थित किये गये और कार्यवाही पूर्ण न होने के कारण व्यपगत हो गये। इस प्रकार किसी भी गैरसरकारी विधेयक का विधान सभा द्वारा पारित न होना गैरसरकारी विधायन के क्षेत्र में विधान सभा तथा प्रतिपक्ष पर मंत्रिमण्डल के नियंत्रण का ही परिचायक है।

(ग) विपक्षी विधेयक-

विपक्षी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत गैरसरकारी विधेयक विपक्षी विधेयक कहे जा सकते हैं अध्ययनाधीन काल में उ0प्र0 विधान सभा में प्रस्तुत विपक्षी विधेयकों के सम्बन्ध में दलीय स्थिति निम्नवत् रही:-

शोषित समाज दल- 7	प्रजा समाजवादी दल- 2
निर्दलीय-4	कांग्रेस आई-2
साम्यवादी दल- 1	भारतीय जनता पार्टी- 1
संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी- 1	संगठन कांग्रेस- 1
भारतीय क्रान्तिदल- 2	कांग्रेस अर्स- 1
लोकदल- 1	जनता दल एस (चरण सिंह)- 1

1- उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड-437, पृष्ठ-1012

उ0प्र0 विधान सभा में 1952 से 1985 के कार्यकाल में 23 विधेयक प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत किये गये विवरण निम्नवत् हैः-

उ0प्र0 विधान सभा में प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत विधेयकों में से 7 विधेयक अस्वीकृत हो गये ये विधेयक सत्ता पक्ष के मुकाबलें प्रतिपक्ष की नगण्य संख्या के कारण अस्वीकृत हुये उदाहरणार्थ- प्रथम विधान सभा में विरोध पक्ष द्वारा प्रस्तुत पहला विधेयक जो कि सदन की अनुमति से पेश किया गया था, "उ0प्र0 राजबन्दी विधेयक 1952" था। यह विधेयक साम्यवादी दल के श्री झारखण्डे राय द्वारा रखा गया। विधेयक पर चर्चा प्रारम्भ करते हुये प्रस्तावक श्री राय ने कहा कि अंग्रेजों के समय में राजनैतिक कैदियों को तरह-तरह की यातनायें दी जाती थी। उन्होंने खेद व्यक्त करते हुये कहा कि स्वतंत्र भारत के राजनैतिक बन्दियों को भी वैसी ही यातनायें दी जाती हैं। श्री राय ने राजनैतिक बन्दियों की दयनीय स्थिति का जिक्र करते हुये कहा कि जेलखाने में सुविधायें प्राप्त करने के लिये राजबन्दियों के लिये सिवाय भूख हड़ताल के और कोई दूसरा आखिरी उपाय नहीं है।[1] गृह मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द ने उत्तर दिया कि हिंसात्मक राजबन्दियों को सुविधायें देना उचित नहीं है और न ही राजनैतिक बन्दियों का एक अलग वर्ग बनाना सम्भव है। गृह मंत्री ने साम्यवादी दल की नीतियों को झकझोरते हुये कहा कि- "कम्यूनिस्ट पार्टी ने हमारे जो आन्दोलन 1932, 1939 तथा 1942 में हुये, जब हमारी औरतों की बेइजत्ती हो रही थी हमारी करोड़ों रूपयों की जायदाद तवाह हो रही थी, उस समय हमारे विरोधियों का साथ दिया और देश के बड़े-बड़े नेताओं को कम्यूनिस्ट पार्टी के नेताओं ने गालियाँ दी और आज भी उनका हमारे देश की आजादी से कोई ताल्लुक है या नहीं, इसको तो मैं ठीक तरह से नहीं जानता लेकिन यह जरूर है कि वे देश को पकड़ कर विदेशियों के पैरों में डाल देना चाहते हैं"-[2] गृह मंत्री के उक्त वक्तव्य ने चर्चा को साम्यवादी दल की नीतियों पर केन्द्रित कर दिया। प्रजा समाजवादी दल के श्री राजनारायण ने साम्यवादी दल के रवैये को हिंसक बताते हुये गृह मंत्री द्वारा की गई आलोचना का समर्थन किया उन्होंने विधेयक का सिद्धान्ततः समर्थन करते हुये कहा कि हिंसक राजनीतिक बन्दियों को प्रबल बनाने वाली बातों को विधेयक से निकाल दिया जाये। इन्हीं के दल के श्री श्यामसुन्दर पाण्डेय ने विधेयक की शब्दालियों में हेर-फेर करके विधेयक को स्वीकार कर लेने का सुझाव दिया साथ ही उन्होंने का कि यह जरूरी नहीं है कि साम्यवादी दल द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक विधेयक विद्रोह पैदा करने वाला ही होगा। सत्ता पक्ष के सदस्यों ने विधेयक के विरोध में मत व्यक्त किया विपक्ष के श्री मदन मोहन ने बाद-विवाद पर टिप्पणी करते हुये कहा कि यदि वह विधेयक किसी अन्य दल के सदस्य द्वारा पेश किया जाता तो वाद-विवाद की भाषा कुछ भिन्न

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड-- 117, 9 जनवरी, 1953, पृष्ठ- 339-44

2- -तदैव- खण्ड- 122, 26 मार्च, 1953, पृष्ठ- 181

ही होती । श्री गेंदा सिंह ने कैदियों के साथ मानवीय व्यवहार किये जाने की मांग की अन्त में प्रस्तावक श्री झारखण्डे राय द्वारा बाद–विवाद के स्तर पर दुख व्यक्त करते हुये कहा गया कि विधेयक के गुण–अवगुण पर विचार न होकर अपनी–अपनी साम्यवादी विरोधी भावनाओं का प्रदर्शन किया गया अन्त में यह विधेयक प्रथम स्तर पर 14 के मुकाबले 98 मतों से अस्वीकृत हुआ ।[1] अध्ययनाधीन काल में विपक्ष द्वारा प्रस्तुत गैरसरकारी विधेयकों में से 5 विधेयक व्यपगत हो गये इसका कारण विधेयक के पुरःस्थापन के बाद अग्रिम कार्यवाही का अभाव रहा– उदाहरणार्थ पंचम विधान सभा के श्री कल्पनाथ सिंह, (सदस्य संगठन कांग्रेस) ने 14 अगस्त, 1972 को उ0प्र0 बेकारी निवारण विधेयक 1972 पुरःस्थापित किया विधेयक पर विचार व्यक्त करते हुये श्री सिंह ने कहा– कि प्रदेश में बढ़ती हुई बेकारी को दूर करने तथा हर व्यक्ति को काम पाने के अधिकार को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 के निर्देशन के अनुकूल बेकारों को काम या भत्ता देना आवश्यक है । अतएव ये विधेयक पुरःस्थापित किया जाता है । मुख्य मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी ने सदन को अवगत कराया कि विधेयक की मंशा की दिशा में सरकार की ओर से स्वतः कार्यवाही की जा रही है इसके बाद विधेयक के सम्बन्ध में और कोई कार्यवाही नहीं हुई तथा पंचम विधान सभा के विघटन के कारण विधेयक व्यपगत हो गया ।[2]

इसी प्रकार सप्तम विधान सभा में प्रस्तुत उ0प्र0 भूमिहीन भूमि का आवंटन विधेयक 1979 श्री बाबूलाल वर्मा, सदस्य विधान सभा ने 15 जून, 1979 पुरःस्थापित किया और कहा कि– उ0प्र0 में भूमिहीनों की समस्या विकराल रूप से चुनौती बनकर हमारे सामने खड़ी है । भूमिहीनों व कृषि मजदूरों को सीलिंग के अन्तर्गत प्राप्त भूमि के आवंटन से इस समस्या का कुछ सीमा तक समाधान किया जा सकता है– सत्ता पक्ष के लोगों ने भी इसका समर्थन किया किन्तु अग्रिम कार्यवाही न हो सकने के कारण सप्तम विधान सभा के विघटन के फलस्वरूप विधेयक व्यपगत हो गया ।[3]

प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत 6 विधेयक वापस हुये ये सभी विधेयक अष्टम विधान सभा के कार्यकाल के थे विवरण निम्नवत् हैः– (1) उ0प्र0 नगर विकास द्वितीय संशोधन विधेयक श्री रामआसरे वर्मा (निर्दलीय सदस्य) द्वारा 29 अगस्त, 1980 को पुरःस्थापित हुआ तत्पश्चात् 9 अक्टूबर, 1986 को यह प्रस्ताव श्री रामआसरे वर्मा ने स्वायत्त शासन मंत्री श्री राम सिंह खन्ना के विशेष अनुरोध पर वापस ले लिया । (2) इसी प्रकार उ0प्र0 अनुत्पादक कृषि भूमि एवं अन्तरण विधेयक 1983 को श्री जयदीप सिंह बरार (निर्दलीय) ने 9 सितम्बर, 1983 को पुरः स्थापित किया– श्री जयदीप सिंह ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा–

1– उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड–122, पृष्ठ–280, 27 मार्च, 1953

2– –तदैव– खण्ड– 298, पृष्ठ– 810–11

3– –तदैव– खण्ड– 328, पृष्ठ– 234–35

"उ0प्र0 में लाखों हेक्टेयर भूमि ऐसी है जो बेकार, बंजर, बीहड़ तथा ऊसर पड़ी है, यह भूमि उत्पादन में कोई योगदान नहीं देती बल्कि इससे बाढ़ व दस्यु समस्या बढ़ती जा रही है जिसके कारण प्रदेश की जनता एवं राज्य सरकार के साधन उत्पादन कार्यों के बजाय इन समस्याओं के समाधान में व्यर्थ हो रहे हैं- इस अधिनियम से प्रदेश की बेकार भूमि कृषि योग्य बनाकर एवं बनारोपण करके प्रदेश के उत्पादन श्रोतों का पूर्ण उपयोग तो होगा ही प्रदेश की जनता रोजगार पाकर खुशहाल होगी व प्रदेश प्रगतिशील समाज की ओर अग्रसर होगा "। इस पर कृषि मंत्री श्री यशपाल सिंह ने सरकार इस पर विचार करेगी विधेयक वापस लेने का अनुरोध किया- श्री बरार ने विधेयक वापस ले लिया ।[1]

विपक्ष द्वारा प्रस्तुत तीन विधेयक अपास्त हुये ये अष्टम विधान सभा में प्रस्तुत हुये:- उ0प्र0 हिमालय भूमि सुधार विधेयक 1980, उ0प्र0 पर्यटन विधेयक 1980 एवं उ0प्र0 शिक्षण माध्यम विधेयक 1980 थे । उ0प्र0 पर्यटन विधेयक 1980 को अखिल भारतीय शोषित समाज दल के श्री रामस्वरूप वर्मा ने 19 सितम्बर, 1980 को पुरःस्थापित किया और उक्त विधेयक को अपास्त विधेयक के रूप में अष्टम विधान सभा की प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली के नियम 175 के अन्तर्गत उ0प्र0 विधान सभा की विधायकों की पंजिका से हटा दिया गया । वही स्थिति उ0प्र0 शिक्षण माध्यम विधेयक 1980 भारसाधक सदस्य श्री ओम प्रकाश (सदस्य विधान परिषद) की हुई हालांकि यह विधेयक विधान परिषद द्वारा पारित हो गया था ।

अध्ययनाधीन काल में प्रतिपक्ष द्वारा प्रस्तुत विधेयक पर महामहिम राज्यपाल ने अपनी सिफारिश विधारित कर दी - उ0श्प्र0 मानववादी साहित्य प्रचार तथा प्रसार विधेयक 1974 विधान सभा के सदस्य श्री रणधीर सिंह (शोषित समाजवादी दल) ने 31 जुलाई, 1974 को पुरःस्थापित किया । विधेयक के खण्ड 4 में सरकार के राजस्व में से एक करोड़ रूपया मानवतावादी साहित्य रचना के प्रोत्साहन हेतु एक निगम को दिये जाने का प्राविधान था जिसकी स्वीकृति नियमानुसार श्री राज्यपाल से प्राप्त की जानी थी श्री राज्यपाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद- 7 के खण्ड-3, के अन्तर्गत अपनी सिफारिश विधारित कर दी ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि गैर सरकारी विधेयक चाहे वह प्रतिपक्ष द्वारा रखे गये हों या सत्ता पक्ष द्वारा अस्वीकृत हो गये अथवा वपस ले लिये गये हों । वापस लेने की प्रवृत्ति का यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिपक्ष ने कल्पना की उड़ान

1- उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड- 364, 9 सितम्बर, 1983, पृष्ठ- 338-39

न भरकर सरकार की सीमाओं को समझा अर्थात हठवादिता का परिचय नहीं दिया किन्तु अस्वीकृत विधेयक सरकार की उदासीनता का शिकार हुये जबकि न ये हानिकर होते हैं न ही इनमें सरकार की निन्दा हुई इसमें केवल उन विषयों पर कानून बनाने की बात कही गई जिसमें सरकार का ध्यान नहीं जा रहा था । गुण–दोष के आधार पर भी ये विधेयक विवाद रहित रहे । किन्तु गैर सरकारी विधेयकों की अनिवार्य रूप से यही दुर्गति होती है जबतक कि सरकार असाधाराण परिस्थितियों में इस प्रकार के विधेयकों को स्वीकार करने की बुद्धिमत्ता नहीं दिखलाती परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम ही आते हैं अतः लोकतांत्रिक प्रक्रिया के हित साधन के लिये इस कठिन स्थिति के बारे में पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

विधेयकों की नगण्य संख्या के बारे में स्पष्ट है कि सम्भवतः शासक दल के सदस्य विधायन को मंत्री मण्डल का ही कार्य समझकर उसके प्रति उदासीन रहे तथा प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा सरकार की ओर से सहयोग न मिलने की आशंका से विधेयक प्रस्तुत नहीं किये गये ।

जो विधेयक व्यपगत हुये वे सरकार की उदासीनता के कारण ही द्वितीय व तृतीय वाचन के स्तर तक न पहुँच सके क्योंकि सदन के कार्यक्रमों के निर्धारण में सरकार का ही प्रमुख हाथ रहता है और यदि सरकार चाहती तो निश्चित रूप से सदन में विचार हेतु पर्याप्त समय दिया जा सकता था ।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि गैरसरकारी व प्रतिपक्षी विधेयक प्रभावी भूमिका नहीं निभा सके और यह व्यवस्था व उपबन्ध संसदीय लोकतंत्र में निरर्थक है क्योंकि "संसद को एक ऐसा मंच होना चाहिए जहाँ सामाजिक और आर्थिक कायाकल्प होता हो वहाँ पर अन्ततोगत्वा निरर्थक सिद्ध होने वाली प्रतिभा का शौकिया प्रयोग तो होना ही नहीं चाहिए ।[1]

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि विधायन में विपक्ष की प्रभावशीलता मात्र विधेयक के पक्ष व विपक्ष में विचार व्यक्त करने तक सीमित रही तथा अपनी संख्यात्मक दुर्बलता के कारण विपक्ष किसी विधेयक को पारित होने से रोकने में असमर्थ रहा । विधायन के क्षेत्र में विपक्ष अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सके इसके लिये सुझाव रूप में कहा ज सकता है कि भारतीय संसद व विधान साभाओं की विधायी प्रक्रिया

1– द्विजेन्द्र सेन गुप्ता, राज्य सभा सदस्य "गैरसरकारी सदस्यों के विधेयक एक गूढ़ पहेली" "राज्य सभा के 25 वर्ष" नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई–दिल्ली, पृष्ठ– 48

में संशोधन करके "समिति प्रक्रम" को अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए । इसके लिये हाउस आफ कामन्स की भांति कुछ स्थाई समितियों का गठन करने के स्थान पर वर्तमान प्रवर एवं संयुक्त प्रवर समिति पद्धति को जारी रखा जाना चाहिए । तथा यह भी आवश्यक है कि इनमें विपक्ष का प्रतिनिधित्व बढ़ाया जाय । इसे यह होगा कि प्रत्येक विधेयक को पुरःस्थापन के बाद आवश्यक रूप से प्रवर/संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जायेगा ताकि अन्य लोकतांत्रिक देशों की भांति प्रत्येक विधेयक पर समिति सूक्ष्मतापूर्ण विचार करे इसके फलस्वरूप विधायन के क्षेत्र में सरकारी जल्दवाजी व उसकी स्वेच्छाचारिता को नियंत्रित किया जा सकेगा तथा सच्चे अर्थों में लोक कल्याणकारी विधायन हो सकेगा और विपक्ष एक प्रभावकारी भूमिका निभाने में समर्थ हो सकेगा ।

अध्याय – 7, बजट व विपक्ष

बजट व विपक्ष

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में देश में सार्वजनिक वित्त की समुचित व्यवस्था का प्रश्न महत्वपूर्ण बन चुका था । इसका प्रमुख कारण यह था कि लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को मान्यता देने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में सरकार के कार्यों में अप्रत्याशित बृद्धि हो गयी साथ ही उसके उत्तरदायित्व का भी विस्तार हो गया । परिणाम स्वरूप संसदीय नियंत्रण, गबन और फिजूल खर्ची को रोकने के लिए हिसाब किताब की जॉच की आवश्यकता तथा सार्वजनिक धन के सर्वोत्तम उपयोग आदि के कारणों के सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन की सम्पूर्ण व्यवस्था को विस्तृत आधार पर और वैज्ञानिक ढंग से पुनर्गठन की आवश्यकता पड़ी । सार्वजनिक वित्त के उपयोग से सम्बन्धित समस्याओं को समझने के उद्देश्य से ही अन्ततोगत्वा बजट प्रणाली का विकास हुआ ।

बजट का अर्थः–

बजट शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द "वोगेट' से लिया गया है । इसका अर्थ है चमड़े का बैग या थैला । बजट शब्द का प्रयोग सबसे पहले इग्लैण्ड में 1733 ई0 में किया गया था । इसका उपयोग बालपोल की उसी वर्ष बनायी गयी आर्थिक योजना के विरूद्ध जबकि वित्तमंत्री ने अपनी वित्तीय योजना को लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो पहली बार व्यंग के रूप में यह कहा गया कि "वित्त मंत्री ने बजट खोला"[1] तभी से सरकार के वार्षिक आय–व्यय के वित्तीय विवरण के लिये इस शब्द का प्रयोग होने लगा ।

कुछ विद्धानों ने सरकार की अनुमानित आय व उसके व्यय के व्योरे मात्र को ही बजट का नाम दिया । कुछ विद्वानों ने बजट को सरकार के राजस्व और विनियोजनों के विधेयकों का पर्यायवाची बतलाया है ।[2] विद्वान लेखक – 'लेरोई बियुलिन' के अनुसार, "बजट एक विनिश्चित अवधि में होने वाली अनुमानित प्रतियों एवं खर्चों का विवरण है । यह एक तुलनात्मक तालिका है जिनमें उगाही की जाने वाली आमदनियां तथा किये जाने वाले खर्च की धनराशियाँ दी हुयी होतीहैंइसके भी अतिरिक्त प्राधिकारियों द्वारा किया गया एक आदेश अथवा अधिकारहै।" डब्ल्यू0 एफ0 विलोवी के अनुसार, "बजट सरकार की आय तथा व्यय का केवल एक अनुमान मात्र ही नहीं बल्कि इससे भी अधिक कुछ है।वह बजट एक साथ ही रिपोर्ट अनुमान व प्रस्ताव है या उसे ऐसा होना चाहिये । यह एक ऐसा लेख–पत्र है या होना चाहिये जिसके द्वारा मुख्य कार्य पालिका धन प्राप्त

---

1. "वित्तीय प्रशासन और बजट व्यवस्था," द्वारा, अभय कुमार दुबे, विधायिनी, वर्ष 5 मार्च 1988 अंक–4

2. "बजट निर्माण एवं पारण" द्वारा डी0वी0एल0 माथुर, विधायिनी, वर्ष –5, अंक–4, मार्च 1988 पृष्ठ–1 मध्य प्रदेश विधान सभा सचिवालय, भोपाल ।

करने तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता (व्यवस्थापिका) के सामने इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने गत वर्ष प्रशासन का संचालन किस प्रकार किया, लोक कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है, और इन सूचनाओं के आधार पर वह आगामी वर्ष के लिये अपने कार्यक्रमों की घोषणा करती है और वह बतलाती है कि उस कार्यक्रम के निस्पादन के लिये धन की व्यवस्था किस प्रकार होगी"[1] पिसानेल जी कोडेसी के अनुसार, "बजट, राज्य की समस्त वित्तीय आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति हेतु आवश्यक संसाधनों के लेखा का एक प्राक्कलन है । यह एक निश्चित अवधि, सामान्यतया एक वर्ष, के प्राक्कलित सार्वजनिक व्यय और आयका तालिका विवरण है।[2]

भारत में बजट की व्यवस्था 1947 के 'इन्डिपेंडेन्स आफ इण्डिया एक्ट' के अनुसार, "सहमति के बिना कोई कराधान नहीं" के आधार पर भारतीय संविधान में की गयी है कि प्रत्येक वित्तीय वर्ष में राज्यों में राज्यपाल अथवा उसके प्रतिनिधि (अधिकांशतः वित्त मंत्री) राज्य विधान मण्डल के सदन अथवा सदनों में (जहाँ दो सदन हों वहाँ सर्व प्रथम विधान सभा में) के समक्ष वर्ष की प्राक्कलित प्राप्तियों व व्ययों का विवरण रखवायेगा ।[3] इसे संविधान में "वार्षिक वित्त विवरण" के नाम से निर्दिष्ट किया गया है ।

(क) बजट निरूपणः–

बजट रचना के मुख्य दो भाग होते हैं प्रथम अनुमानों की तैयारी और द्वितीयबजट का विधायीकरणः जिसमें अनुमानों को व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करना, व्यवस्थापिका द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान करना, व्यवस्थापन आदि सम्मिलित हैं :–

अनुमानों की तैयारीः[4]

विभिन्न देशों में बजट अनुमानों को तैयार करने का उत्तरदायित्व प्रायः कार्य-पालिका का माना गया है । कार्य पालिका प्रशासन को संचालित करती है । सरकार का यही अंग इस बात का निर्णय कर सकता है कि उसे विभिन्न प्रशासकीय क्रियाओं के लिये अगले वर्ष कितने धन की आवश्यकता है । क्योकि कार्य पालिका को विभिन्न विभागों

1. बजट निर्माण व पारण, डा0पी0एल0 माथुर, विधायिनी वर्ष–5 अंक–4; मार्च –1988, पृष्ठ–2
2. पिसानेल जी. कोडैसी, पार्लियामेंटस्, पृष्ठ–204.
3. अनुच्छेद 202, भारतीय संविधान ।
4. विधान सभा सचिवालय, अधिकारियों से प्राप्त विवरण के आधार पर ।

की आवश्यकताओं का ज्ञान होता है, अतः वही उसके सम्बन्धित आय–व्यय के अनुमानों को सर्वश्रेष्ठ ढंग से तैयार कर सकती है । इस कार्य में वित्त मंत्रालय प्रशासकीय मंत्रालय तथा उसके अधीनस्थ कार्यालय, योजना आयोग तथा नियंत्रक व महालेखा परीक्षक का सहयोग तथा योगदान रहता है । बजट अनुमान तैयार करने का कार्य अगले वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने के छः सात माह पूर्व ही शुरू हो जाता है । भारतीय वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है । इसलिए जुलाई या अगस्त से ही आय–व्यय के अनुमानों का कार्य प्रारम्भ हो जाता है । बजट का निर्माण विभाग की निम्नतम इकाई से प्रारम्भ होता है । सम्भवतः जुलाई अगस्त में वित्त मंत्रालय, प्रशासकीय मंत्रालय तथा विभागाध्यक्षों को उनके व्यय की आवश्यकताओं के अनुमान तैयार करने के लिये प्रपत्र भेज देता है । विभाग अपने स्थानीय कार्यालयों को यह प्रपत्र भेज देते हैं जिससे कि वे अनुमान तैयार कर उनको वापिस निश्चित समय में भेज दें । अनुमान तैयार करते समय प्रपत्र में साधारणतया निम्न बातों का उल्लेख होता है :–

1. गत वर्ष की वास्तविक आय व व्यय ।
2. वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान ।
3. वर्तमान वर्ष के संसोधित अनुमान ।
4. आगामी वर्ष के लिये बजट अनुमान ।
5. अनुमानों में प्रस्तावित वृद्धि अथवा कमी के स्पष्टीकरण ।

स्थानीय कार्यालय अपने प्रपत्रों को प्रशासकीय मंत्रालयों से सम्बन्धित विभागों को भेजते हैं । विभागाध्यक्ष इन अनुमानों का सूक्ष्म निरीक्षण व पुनरावलोकन करते हैं तत्पश्चात् प्रशासकीय मंत्रालय अपने अपने विभागों के सभी अनुमानों की एक प्रतिलिपि भारत के महालेखापाल को प्रेषित कर दी जाती है । महालेखापाल विभिन्न मदों की जॉंच करता है और देखता है कि अनुमानों के सभी स्वीकृत प्रभार ही सम्मिलित किये गये हैं या अस्वीकृत प्रभार सम्मिलित नहीं किये गये हैं । महालेखापाल इन प्रशासकीय मंत्रालयों के अनुमानों के बारे में अपनी टिप्पणियॉं वित्त मंत्रालय को प्रस्तुत करता है ।

वित्त मंत्रालय द्वारा विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा प्रस्तुत अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है । परीक्षण के समय वित्त मंत्रालय महालेखापाल की टिप्पणियों को मद्‌दे नजर रखता है । प्रशासनिक मंत्रालयों द्वारा तैयार किये गये बजट अनुमानों को मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हे – अस्थायी प्रभार, प्रचलित योजनायें तथा नवीन योजनायें ।

आयके अनुमानः–

व्यय के अनुमानों का कार्य पूरा हो जाने के पश्चात सरकारी आय का राजस्व के अनुमान तैयार करने, का कार्य आरम्भ किया जाता है । ऐसे विभाग जिनमें आय संग्रहीत

होती हैं, अपने विगत वर्ष में प्राप्त आय के आंकड़ों के आधार पर आगामी वित्त वर्ष के लिये संभावित सरकारी आय का अनुमान तैयार करते हैं, वे विभाग हैं – आय कर विभाग, केन्द्रीय उत्पादन कर विभाग तथा सीमा शुल्क विभाग आदि । आय का पता लगाने के बाद वित्त मंत्रालय व्यय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये करों की दरों में हेर--फेर करता है ।

बजट के आय–व्यय का अनुमान तैयार हो जाने के बाद उन्हें संसद में प्रस्तुत करने के लिये 2 विवरण पत्र तैयार किये जाते हैं । वार्षिक वित्तीय विवरण पत्र, और अनुदानों की मांगें ।

वार्षिक वित्तीय विवरण पत्रः–[1] इसमें तीन खण्डों में शासन की प्रप्तियॉं और व्यय को प्रदर्शित करता है। प्रथम खण्ड में शासकीय लेखा जोखा रहता है – उदाहरणार्थ–1.संचित निधि भी इसी में आती है । 2.आकस्मिक विधि 3.सार्वजनिक लेखा 4.व्यय का आकलन जोकि शासन के व्ययों की पूर्ति के लिये आवश्यक धनराशि का प्रथक-पृथक आंकलन रखता है । 5.उन व्ययों का लेखा जोखा जोकि संचित निधि द्वारा निर्धारित है, और जिस धनराशि को स्वीकृत करने का अधिकार संसद को है ।[2]

तत्पश्चात् प्राप्तियॉं व व्ययों का आकलन लेखा के बड़े शीर्षकों द्वारा निर्धारित लेखा वर्गीकरण के अनुसार बजट विवरण में दर्शाया जाता है । बजट विवरण से शासन के कार्यों, नीतियों एवं क्रिया कलापों के अनुरूप होने का विवरण मिलता है, आकलन प्रप्तियॉं 2 खण्डों में अर्थात व्यय की राजस्व लेखा व पूँजी लेखा में विभाजित होती है

रेवेन्यू एकाउन्ट या राजस्व लेखा :–

रेवेन्यू एकाउन्ट या राजस्व लेखा में शासन की राजस्व प्रप्तियों और सेवाओं के मद में फीस द्वारा प्रप्तियॉं तथा शासकीय विभागों के सामान्य संचालन के लिये व्यय धनराशि, शासन द्वारा दिया जाने वाला ब्याज और शासन के द्वारा दिये जाने वाला अनुदान दिया रहता है ।

कैपिटल एकाउन्ट या पूँजी लेखा :–

कैपिटल एकाउन्ट या पूँजी लेखा में पूँजी प्रप्तियॉं चाहे वह बाजार से कर्ज लिया धन हो अथवा विदेश से उधार लिये जाने वाला धन हो, रिजर्व बैंक के उधार तथा

---

1. कौल एवं शकधर पुस्तक 'बजट तथा संसद,' पृष्ठ– 1–4
2. कौल एवं शकधर,"बजट व संसद" नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, पेज–2

कर्जों के पुन–भुगतान तथा कर्ज की प्राप्ति में सरकार के द्वारा दिये जाने वाले एडवांसेज के ऊपर व्यय संनिहित रहता है ।[1]

व्यय का आकलन भी अनुदान की मांगों में विभाजित रहता है और इसमें प्रायः किसी भी मंत्रालय में उसके राजस्व और पूँजी व्यय, सहायता के लिये अनुदान तथा कर्ज तथा एडवांसेज , तथा सभी बड़ी सेवाओं के लिये मांग रखी जाती है ।

व्यापार व लाइसेंसिंग नीतियों से सम्बन्धित स्थिति को भी बजट इस्टीमेट रखते समय ध्यान में रखा जाता है जिससे कि वास्तविकता के संदर्भ में नजदीक से आंकलन हो सके ।

टैक्सीकरण प्रस्तावों का प्रभाव विभिन्न मंत्रालयों से संबन्धित प्रकीर्ण प्राप्तियों को समाहित करते हुये बजट प्राप्तियों के संदर्भ में विभिन्न मंत्रालयों द्वारा विचार किया जाता है तथा बजट में उसका विवरण रहता है ।[2]

1. **संचित निधिः–**

   शासन के द्वारा ट्रेजरी बिल्स के जारी ऋण, तथा कर्जों के भुगतान में प्राप्त धनराशि आदि कर्जों के रूप में प्राप्त राजस्व का उल्लेख रहता हैं।

2. **सार्वजनिक लेखाः–**

   वह जमा धनराशि है जिसमें शासन के द्वारा प्राप्त राजस्व तथा शासन के द्वारा जारी किये गये ऋण पत्रों से प्राप्त, प्रतिभूतियों से प्राप्त धन, ऋण से प्राप्त धन, ऋणों के भुगतान हेतु प्राप्त धन के अलावा सार्वजनिक धनराशि रहती है ।

3. **आकस्मिक निधिः–**

   आकस्मिक निधि में आवश्यक अज्ञात खर्चे जिनके लिये धनराशि संसद स्वीकृत करती है, शासन के उत्तरदायित्व में सुरक्षित धनराशि रहती है ।

4. **स्वीकृति प्रभारः–**

   यह वह व्यय है जो कि सदन में मतदान हेतु प्रस्तुत नहीं किया जाता उदाहरण के लिये राज्याध्यक्ष के लिये जाने वाले तनख्वाह या भत्ते ।[3]

---

1. कौल एवं शकधर, 'बजट एवं संसद' नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, पेज–2
2. कौल एवं शकधर, 'बजट एवं संसद' नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, पेज–3
3. कौल एवं शकधर, 'बजट एवं संसद' नेशनल पब्लिशिग हाऊस, पेज–4

संसद में भेजने के पूर्व सभी विवरण पत्रों की ठीक प्रकार से जाँच पड़ताल की जाती है । इस प्रकार बजट कार्य पालिका द्वारा तैयार किया जाता है। यह निश्चित रूप से नौकरशाही द्वारा बनाया जाता है तथा इसमें चुने हुये प्रतिनिधियों (विपक्ष) की कोई भूमिका नहीं होती, यहाँ तक की मंत्रि परिषद के सदस्यों तक का कोई योगदान नहीं होता, वस्तुतः इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि संवैधानिक दृष्टि से जिस विधायिका की मंजूरी के बिना एक भी पैसा न तो खजाने से लिया जा सकता है, न खर्च किया जा सकता है उसके विपरीत बजट प्रस्तावों को तैयार करनें में, उनमें घट-बढ़ करने में, उनको खर्च करने के तौर तरीकों को सुझाने में विधायिका अथवा उसके सदस्यों, जिसमें सत्तापक्ष व प्रतिपक्ष दोनों शामिल हैं भूमिका नगण्य रहती है ।

उत्तर प्रदेश विधान सभा के प्रक्रिया नियमानुसार बजट राज्यपाल के द्वारा नियत तिथि को सदन में उपस्थित किया जाता है तथा जिस दिन आय-व्यय सदन के समक्ष रखा जाता है उस दिन उस पर कोई चर्चा नहीं होती है ।[1]

भारत वर्ष में बजट प्रस्तावों का प्रकट होना सदन के विशेषाधिकार का हनन नहीं बनता किन्तु सदन को बजट के प्रकट होने के कारण, परिस्थितियों तथा मंत्री के आचरण की जाँच करने की विपुल शक्तियाँ हैं ।[2] भारत वर्ष में बजट के प्रकट होने की एक घटना 1948 में हो चुकी हैं किन्तु उस समय परिस्थितियाँ भिन्न थी यद्यपि इसमें वित्त मंत्री का दोष नहीं था फिर भी वित्त मंत्री श्री आर.के. सम्मुखम् चेट्टी को अपना त्याग-पत्र देना पड़ा था । [3]

उत्तर प्रदेश विधान सभा में वार्षिक आय-व्ययक प्रस्तुत किये जाने व उसके पारित

होने की तिथियों के विवरण से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा में बजट रखे जाने की तिथि के संवन्ध में कोई परम्परा कायम नहीं की गयी जबकि लोक सभा में फरवरी माह के अंतिम दिन सायं-5 बजे बजट रखे जाने की परम्परा है । 1955 में जब यहाँ फरवरी माह में बजट रखा गया तो प्रजा समाजवादी दल के श्री नारायण दत्त तिवारी ने इसे ब्रिटिश परम्परा का अन्धानुकरण बताते हुये तर्क दिया कि फरवरी में केन्द्र से मिलने वाली सहायता का पता नहीं चल पाता है ।[4]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 183 व 184
2. "लोक सभा वाद-विवाद", 19.3.56—कालम——29 11-13; 10.3.59—कालम-5338-44.
3. श्री चैट्टी ने इसी कारण 17.8.48 को अपना त्याग-पत्र दिया था ।
4. 'आज' 26 फरवरी 1955

(ख) बजट बहस व विपक्षः-

आय-व्यय के विधान सभा में प्रस्तुत किये जाने के बाद सदन में उस पर दो प्रक्रम में विचार होता है । 1. साधारण चर्चा, 2. अनुदानों की मांग पर चर्चा व मतदान । उ0प्र0 विधान सभा के प्रक्रिया नियम 187 द्वारा आय-व्ययक पर अथवा उसमें निहित सिद्धान्तों के किसी प्रश्न पर साधारण चर्चा हेतु सामान्यतया 5 दिन की अवधि नियत की गयी है और इसमें कहा गया है कि "इस प्रक्रम पर कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जायगा और न ही आय-व्ययक सदन में मतदान के लिये रखा जायेगा ।[1] सामान्य रूप से साधारण चर्चा के अन्त में वित्त मंत्री चर्चा के दौरान सदस्यों द्वारा उठाये गये प्रश्नों के उत्तर देते हैं ।

उ0प्र0 विधान सभा में 1952—85 तक प्रस्तावित बजट सामान्य चर्चा के समय प्रतिपक्षने वित्तीय प्रक्रिया में पर्याप्त रूचि ली । संसदीय कार्य प्रणाली की यह एक विशेषता है कि इसमें विरोधी दल होते हैं जिनका कार्य सत्ता दल, दल की नीतियों व कार्यक्रमों में अन्तर्निहित विरोधाभासों को उजागर करना होता है । उ0प्र0 विधान सभा में प्रतिपक्ष ने इस प्रक्रिया में भाग लेते हुये, बजट को सरकार के घोषणा पत्र के अनुरूप न होने पर कथनी व करनी का भेद बताकर आलोचना की - " 26 अगस्त 1957 को विरोधी दल उपनेता श्री नारायण दत्त तिवारी ने कहा - इस प्रदेश में जब हम औद्योगिक नीति का विश्लेषण करते हैं तो स्पष्ट होता है कि सरकार की औद्योगिक नीति सब विभागों की तुलना में सबसे ज्यादा असफल रही है।जब हमने द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर विचार किया था तो उस समय सरकार ने यह उद्देश्य घोषित किया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सबसे ज्यादा प्राथमिकता उद्योग धन्धों को दी जायेगी । इन्डस्ट्रियल डबलपमेंट को दी जायेगी, लेकिन जब हम इसको देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि सरकार की यह घोषणा आज मिथ्या सिद्ध हुयी है । [2]

प्रतिपक्ष द्वारा बजट की प्रायः यह कहकर आलोचना की गयी कि बजट में पुरानी उपलब्धियों का ही विवरण दिया गया है - वर्ष 1980-81 में आय-व्ययक पर सामान्य चर्चा के दौरान प्रतिपक्ष के श्री राम स्वरूप वर्मा ने कहा (28 अगस्त 1980 को) यह बजट निकम्मा है क्योंकि किसी बजट भाषण के लिये जरूरी है कि सरकार जो नये काम करना चाहे, जो नयी नीतियाँ लागू करना चाहे उनका उसमें उल्लेख करे, लेकिन जो बाते चलती हैं और सामान्य रूप से चली आ रही हैं उन्हें गिनना बजट भाषा का अंग नहीं हुआ करता है"[3] इसी दिन जनता पार्टी के श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त ने भी कहा-

---

1. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 186 तथा 187
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-186, 26 अगस्त 1957 पेज. 519
3. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड- 345, पेज 240, 28 अगस्त 1980

"यह बजट पूरे तरीके से दिशाहीन है – बजट आमदनी व खर्च का व्योरा नहीं होता वरन् सरकार की नीतियों की ओर भी संकेत करता है इस बजट से किसी सही दिशा में कार्य होने का सवाल ही नहीं उठता।"[1]

आय–व्ययक पर सामान्य चर्चा के समय सामान्यतया आय–व्यय की मदों में कोई ऐसी बातें नहीं होती हैं जिनपर बहुत कुछ कहने का स्कोप हो लेकिन प्रतिपक्ष द्वारा सामान्य प्रशासन से सम्बन्धित सभी अंगों पर प्रहार किया गया। विरोध पक्ष नें कृषि के मेहनतकश निर्धन किसनों, मजदूरों की दयनीय स्थिति, लक्ष्यहीन शिक्षा प्रणाली, अंग्रेजी की प्रसार नीति, खाद्य नीति, महानिषेध नीति, श्रम नीति, पूर्वी जिलों की शोचनीय स्थिति, मूल्य वृद्धि, गरीबी, बेरोजगारी, कानून व्यवस्था की खराब स्थिति, पुलिस ज्यादती, उत्पादन में कमी, आवश्यक वस्तुओं का अभाव, नौकरशाही, प्रशासनिक अकुशलता आदि समसामयिक जनसमस्याओं के आधार पर सरकार की कटु आलोचना की – पुलिस अत्याचार पर बोलते हुये 1957–58 के आय–व्ययक पर सामान्य चर्चा के दौरान प्रतिपक्ष के श्री उग्रसेन ने कहा– सोशलिस्ट सत्याग्रहियों पर आज पुलिस के द्वारा भारी जुल्म कराया जा रहा है। आज पुलिस को ऐसे अधिकार हैं कि वो जिसको चाहते हैं हथकड़ी डाल देते हैं और राजनैतिक व्यक्ति को भी वह नहीं छोड़ते"[2] पूर्वी जिलों की समस्या पर प्रकाश डालते हुये दिनांक 19 जून 1974 को प्रतिपक्ष के श्री राम अधार ने यह कहते हुये कि "वित्त मंत्री जी ने पूर्वी उत्तर प्रदेश की घोर उपेक्षा की है अतः मैं इस बजट से संतुष्ट नहीं हूँ इस लिये बजट की कापी फाड़ कर फेंक रहा हूँ", उन्होने बजट की कापी फाड़कर फेंक दी।[3]

प्रतिपक्ष ने बजट की प्रायः यह कह कर आलोचना की कि यह घिसी पिटी सरकार का घिसापिटा माल है, इसमें नवीन समाज के निर्माण की आत्मा नहीं बोलती है तथा उसने सामान्यतया बजट को निराश जनक बताया – 16 जुलाई 1980 को उ0प्र0 के मुख्य मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रदेश के वार्षिक बजट पर प्रतिपक्ष के नेताओं की प्रतिक्रिया आलोचनात्मक थी – विपक्षी दलों नें बजट को जन आकांक्षाओं के विपरीत बताया। विपक्ष के नेता श्री राजेन्द्र सिंह ने बजट को किसान विरोधी बताते हुये कहा कि इससे जनता की सभी आशायें धूमिल हो गयी हैं" लोकदल के महासचिव श्री राम आसरे दास ने कहा – यह बजट श्रम विरोधी है इससे व्यापारियों को विभिन्न वस्तुओं के मूल्य बढ़ाने में मदद मिलेगी। लोक दल के राज्य सचिव श्री बेनी प्रसाद ने "बजट को पूँजी वादी बताया" श्री मोहन सिंह ने कहा– बजट में जीवन्तता का अभाव है

---

1. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड– 345 पेज– 246, 28 अगस्त 1980
2. उ0प्र0 वि0स0का0 खण्ड– 186 पेज– 229
3. उ0प्र0 वि.स. का. खण्ड–307 पेज– 770, 19 जून 1974

और इससे जनता को, खासकर किसानों को, कोई राहत नहीं पहुँचेगी । कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता श्री भीखालाल ने कहा – यह पुराने तथा घिसेपिटे घर्रे पर आधारित बजट में प्रदेश के पिछड़ेपर को दूर करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा करने के लिये कोई ठोस योजना नहीं है ।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्ष ने अपने दल की मान्य नीतियों व कार्यक्रमों की कसौटी पर बजट की विवेचना की तथा उसके अनुरूप न होने पर आलोचनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की ।

समसामयिक घटनाओं व समस्याओं से सदन को अवगत कराने के अतिरिक्त विपक्ष ने जनहित को प्रभावित करने वाले करवृद्धि प्रस्तावों का सदैव विरोध किया – वर्ष 1974-75 के आय–व्ययक पर सामान्यचर्चा के दौरान प्रतिपक्ष के नेता श्री चौधरी चरण सिंह ने कहा – आपस्टाम्प पर कर लगा रहे हैं, सड़कों पर भी टैक्स लगा रहे हैं, गुड्स के ऊपर भी आप कर लगा रहे हैं, यह सारामासेज पर पड़ने वाला है – गुड्स की कीमत बढ़ जायेगी और हर आदमी एफेक्टेड हो जायेगा इसलिये मैं इन टैक्सों का विरोध करता हूँ ।[2] यद्यपि प्रतिपक्ष सरकार से करों को समाप्त करने या कम कराने में सफल नहीं रहा तथापि प्रतिपक्ष के तीव्र विरोध व भारी दबाव के कारण सरकार द्वारा आश्वासन अवश्य दिये गये – उदाहरणार्थ - 1953 में अनाज के मूल्य कम होने की शर्त पर बढ़ायी गयी सिंचाई दरों में कमी कर देने, जौनपुर तथा आजमगढ़ में वर्षाभाव तथा फसल को कीड़े लग जाने के फलस्वरूप 3 लाख 87 हजार रू0 की माल गुजारी की छूट देने–[3], 1961 में सिंचायी दरों में बृद्धि वापस ले लेने का सरकार ने आश्वासन दिया । इसी प्रकार 1956 में जब पंचायतों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिये विपक्ष द्वारा बल दिया गया तो मंत्री महोदय ने घोषणा की कि न्याय पंचायतों ने जुर्माने में जो रकम वसूल की है, सरकार उसकी आधी रकम न्याय पंचायतों के विकास के लिये उनको वापस कर देगी ।[4]

कुछ अवसरों पर बजट के विरोध में प्रतिपक्ष द्वारा सदन त्याग का भी मार्ग अपनाया गया – वर्ष 1965 के बजट को जनविरोधी कहकर संयुक्त समाजवादी दल, साम्यवादी दल व निर्दलीय सदस्यों ने सदन त्याग किया ।[5]

---

1. 'अमृत प्रभात' 17 जुलाई 1980
2. उ0प्र0दि0स0 का0 खण्ड 307 पेज– 678, 18 जून 1974.
3. उ0प्र0 वि0 स0 का0 खण्ड-- 125, पेज– 213
4. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड–170 पेज– 340
5. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड– 253, 12 फरवरी 1965, पृष्ठ– 568

इसी प्रकार दिनांक 26 मार्च 1976 को मुख्य मंत्री द्वारा थोड़ा बजट भाषण पढ़े जाने के उपरान्त चौधरी चरण सिंह नेता विरोधी दल नें कहा कि 4 सफे पढ़ दिये गये 2 सफे आखिर के पढ़ दिये जायें और शेष बजट पढ़ा हुआ मान लिया जाये । श्री अध्यक्ष द्वारा इसे पहले की परम्परा को तोड़ना बताया तो श्री चरण सिंह नें यह कहा कि तब हम सदन में नहीं रहेंगे कुछ सदस्यों के साथ बाहर चले गये ।[1]

लेकिन समय-समय पर बजट के उन प्रस्तावों का भी स्वागत किया जिन्हें वह (विपक्ष) जनहित में उचित मानता था जैसे-वर्ष 1959 में कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों के मंहगाई भत्ते में बृद्धि, 25 हजार रू0 तक की बिक्री कर वाले खाद्य व्यापारी को बिक्रीकर से मुक्त करने, 1961 में प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों तथा कुछ अन्य वर्गों के राजकीय कर्मचारियों को कुछ राहत देने जैसे उपबन्धों का स्वागत किया । 1957 में फिजूल खर्च कम करने की अपनी नीति को क्रियान्वित करते हुये विपक्षी सदस्य व सदन के उपाध्यक्ष श्री राम नारायण त्रिपाठी ने अपने निवास स्थान की सज्जा के लिये पाँच हजार रू0 में कटौती कर 2 हजार रू0 ही लेने की घोषणा की ।[2] स्पष्ट है कि इस अवसर पर प्रतिपक्ष ने प्रशासन की नीतियों का अवलोकन व तत्सम्बन्धित शिकायतों की अभिव्यक्ति की । इस विचार विमर्श का स्वरूप राजनैतिक अधिक रहा ।

(ग) <u>अनुदानों की मांगः-</u>

"साधारण चर्चा की समाप्ति के बाद सम्बन्धित मंत्री अपनी मांगे प्रस्तुत करते हैं और उनके प्रस्ताव का यह स्वरूप होता है कि इतनी धनराशि (अनुदान की सम्पूर्ण धनराशि बताते हुये) अमुक अनुदान संख्या के अन्तर्गत स्वीकृत की जाये ।"[3] नियम 188 (1) में कहा गया है कि "अध्यक्ष सदन के नेता के परामर्श से अनुदान की मांगों पर विचार और मतदान के लिये अधिकतम 24 दिन नियत करेंगे"। अनुदानों का क्रम नेता सदन, तथा नेता विरोधी दल के परामर्श से निश्चित किया जायेगा ।[4]

इस प्रक्रम में किसी अनुदान की मांग को कम करने या उसके किसी मद को निकाल देने के प्रस्ताव किये जा सकते हैं किन्तु अनुदान की मांग में बृद्धि या उसके लक्ष्य में परिवर्तन करने के प्रस्ताव नहीं किये जा सकते तथा इसके अतिरिक्त किसी मांग को कम करने के प्रस्ताव पर संशोधन करने की अनुज्ञा नहीं होती है ।[5]

---

1. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड-330 दिनांक 26 मार्च 1976
2. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड- 185, 1 अगस्त 1957 पेज- 75
3. मुखर्जी ए0आर0 "पार्लियामेंटरी प्रोसीजर इन इण्डिया" पेज- 288
4. उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली नियम 188(2)
5. - तद्वैव -

कटौती के प्रस्ताव की सूचना उस अनुदान पर विचार हेतु नियत दिन से कम से कम दो दिन पूर्व देना आवश्यक होता है किन्तु अध्यक्ष अन्यथा भी निर्देश दे सकते हैं।[1] नियम 189 के अनुसार किसी अनुदान में कटौती हेतु "नीति अनुमोदन कटौती," "मितव्ययिता कटौती" तथा "प्रतीक कटौती" प्रस्ताव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। नीति अनुमोदन कटौती का स्वरूप होता है कि "मांग की राशि घटाकर एक रू0 कर दिया जाये" तथा इसका उद्देश्य माँग में अन्तर्निहित नीति का अनुमोदन करना होता है। जबकि मितव्ययिता कटौती का उद्देश्य प्रशासन में मितव्ययिता लाना होता है। तथा यह इस रूप में "मांग की राशि में उल्लिखित राशि की कमी की जाये" प्रस्तुत की जाती है। प्रतीक कटौती का प्रस्ताव शासन के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में किसी विशिष्ट शिकायत को प्रकट करने के लिये किया जाता है तथा इसके प्रस्थापना का स्वरूप इस प्रकार होता है कि "मांग की राशि में 100 रू0 की कमी की जाये"[2]

कटौती प्रस्तावों का प्रयोग प्रायः विरोध पक्ष द्वारा सरकार के विरोध (आलोचना) के साधन के रूप किया जाता है। उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय द्वारा सूचना प्राप्त हुयी कि प्रत्येक बजट सत्र में प्रतिपक्ष द्वारा काफी संख्या में कटौती प्रस्ताव प्राप्त होते हैं।

"यह एक सामान्य नियम है कि प्रतर्क अनुमान व्यंगात्मक पद, अभ्यारोप अथवा मान हानि कारक कथन रहित एक कटौती का प्रस्ताव का सम्बन्ध एक माँग से होना चाहिये तथा एक विशिष्ट विषय का निर्देश करना चाहिये।[3]

उत्तर प्रदेश विधान सभा के प्रक्रिया नियम 190 में कटौती प्रस्तावों की ग्राह्यता की शर्तों का विस्तार से उल्लेख किया गया है जिनके आधार पर अध्यक्ष अपने विवेक से कटौती प्रस्तावों की ग्राह्यता का विनिश्चय करते हैं।

ब्रितानी संसदीय परम्परा के अनुसार अनुदानों की मांगों के लिये दिये जाने वाला समय विपक्ष के लिये समय कहलाता है इसका अर्थ है कि यह विपक्ष है जिसे अनुदानों के लिये उपलब्ध समय के वितरण में अन्तिम बात कहने का अधिकार है।

---

1. नियम 191 उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली।
2. नियम 189 (क) (ख) व (ग) उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली।
3. माल्या एन0एन0: "इन्डियन पार्लियामेंट" पृ0– 125

अगर विपक्षी दल चाहते हैं तो वे छोटे अनुदानों के लिये गैर अनुपातिक तरीके से ज्यादा समय प्राप्त कर सकते हैं और बड़े अनुदानों के लिये थोड़ा समय ही दे सकते हैं अथवा बिना किसी बहस के कुछ अनुदानों को स्वीकार करने का सहमति मत दे सकते हैं जिससे अनुदानों के लिये स्वीकृत समय को महत्व पूर्ण अनुदानों की बहस में लगाया जा सके। इस लिये वास्तविक प्रक्रिया में अनुदानों की बहस के लिये प्रदत्त समय में विपक्ष की बात ही अन्तिम होती है । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि केवल विरोधी दल के सदस्य ही अनुदान की मागों की बहस में हिस्सा ले सकते हैं जहाँ तक विधायिका में सदस्यों के बहस में हिस्सा लेने का अधिकार है, ये सभी के लिये समान है ।[1]

फिर भी उ0प्र0 विधान सभा में अनुदान पर बहस के लिये पर्याप्त समय न मिल पाने के कारण तथा बजट को शीघ्र पारित कराने के उद्देश्य से शनिवार को भी सदन की बैठक करने के प्रस्तावों का विपक्ष ने विरोध प्रकट करते हुये सदन त्याग किया । 13 फरवरी 1958 को मुख्यमंत्री के ऐसे प्रस्ताव के विरोध में प्रजा समाजवादी दल को छोड़कर शेष विपक्ष ने सदन त्याग किया ।[2] एवं 11 फरवरी 1960 में इसी प्रकार के प्रस्ताव का समाजवादी संयुक्त दल के श्री टीकाराम पुजारी को छोड़कर सम्पूर्ण विपक्ष ने विरोध किया।[3]

विपक्ष ने कटौती प्रस्तावों को लिये बिना अनुदानों पर राय लेने पर भी आपत्ति प्रकट की – 'दिनांक 23 जून 1970 को श्री नित्यानन्द स्वामी तथा श्री गोविन्द सिंह ने कटौती के प्रस्तावों को बिना लिये हुये अनुदानों पर राय लेने में आपत्ति की .... जब श्री लक्ष्मीरमण आचार्य भाषण के लिये खड़े हुये तो श्री अनन्तराम जायसवाल (नेता संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी) ने अपने दल के सदस्यों सहित इस व्यवस्था के विरोध में सदन त्याग किया ।[4]

उ0प्र0 विधान सभा में अनुदानों की मांग पर चर्चा के समय प्रतिपक्ष ने कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत किये तथा अलग-अलग विभागों के लिये दिये गये कटौती प्रस्ताव पर क्रमशः विभिन्न विषयों पर चर्चा हुयी । प्रस्तुत कटौती प्रस्तावों में सामान्यता नीति अनुमोदन कटौती प्रस्ताव ही अधिक प्रस्तुत किये गये जिनका उद्देश्य विभागीय नीति की आलोचना व उसमें लोक हितकारी सुझाव प्रस्तुत करना रहा नकि अनुदान राशि में कमी – उदाहरणार्थ दिनांक 22 मार्च 1984 को खाद्य व रसद विभाग के अनुदान पर बोलते हुये श्री भीखालाल (कम्युनिस्ट पार्टी) ने कहा- "मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि अनुदान संख्या 11 खाद्य व

---

1. पी.एस. पचौरी : सेक्रेटरी उ0प्र0 वि0 परिषद लेजिस्लेचर इन्फारमेशन डिपार्टमेंट उ0प्र0 पेज- 114
2. उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड-191, 13 फरवरी 1958 पृ0 320
3. उ0प्र0 वि0स0 की कार्यवाही खण्ड-208, 10 व 11 फरवरी 1960 पेज. 778-82
4. 1970 के प्रथम सत्र में कृत कार्यवाही 23 जून1970 खण्ड- 3

व रसद विभाग सम्पूर्ण अनुदान के अधीन मांग की राशि घटाकर 1 रू0 कर दी जाये. कमी का उद्देश्य विभागीय नीति की आलोचना व सुझाव देना है ।[1] मिट्टी के तेल की समस्या का प्रश्न उठाते हुये उन्होंने कहा – "यह जो पुस्तिका मुझे मिली है उसमें लिखा है कि 75 हजार कि0ली0 तेल की आवश्यकता है किन्तु 18 महीनों में 55 हजार के आस–पास मिला । अतः जितनी हमारी आवश्यकतायें हैं उतना भी नहीं मिला, मेरा निवेदन है कि मिट्टी का तेल गरीबों को सस्ते दामों में दिलाने की व्यवस्था की जाये"[2]

प्रस्तुत कटौती प्रस्तावों में अधिकांश प्रस्ताव आलोचना व सुझाव के बाद वापस हो गये तथा सम्बन्धित मंत्री ने प्रतिपक्ष के सुझावों को माना – वर्ष 1955–56 के आय–व्ययक के अनुदान संख्या 11– लेखा शीर्षक 18 रूड़की इन्जीनियरिंग विश्व विद्यालय के अन्तर्गत कटौती प्रस्ताव रखते हुये श्री नारायण दत्त तिवारी ने कहा कि "मैने यह कटौती प्रस्ताव इस लिये रखा है कि मैं यूनीवर्सिटी आटोनामी की रक्षा के लिये सरकार को प्रेरित कर सकूँ" वित्त मंत्री के यह कहने पर कि"जो भी मुनासिब तरसीम हो सकती है वह की जायेगी" नारायण दत्त तिवारी ने यह कहते हुये कि "मै माननीय मंत्री जी के आश्वासन पर कि रूड़की यूनिवर्सिटी एक्ट में अमेन्डमेंट होने की गुंजाईश है, अपना कटौती प्रस्ताव वापस लेता हूँ" प्रस्ताव वापस ले लिया ।[3]

प्रतिपक्ष की रचनात्मक आलोचना का सत्तापक्ष के लोगों ने भी समर्थन किया, 1974 – 1975 के चिकित्सा अनुदानों पर कटौती प्रस्ताव के प्रस्तावक श्री जीतेन्द्र अग्रवाल की आलोचना को सही कहते हुये कहा – "कि यह बजट लापसाइटेड है और श्री अग्रवाल को कटौती की जगह बढ़ोत्तरी प्रस्ताव रखना चाहिये"– श्री जितेन्द्र अग्रवाल ने सत्ता पक्ष की बात का समर्थन कहते हुये कहा – "जहाँ तक मैं समझता हूँ कि संसदीय प्रणाली में बजट पर आलोचना अथवा सुझाव देने के लिये बढ़ोत्तरी का प्रस्ताव रखने का प्राविधान नहीं है । कटौती का प्रस्ताव के माध्यम से आलोचनायें की जाती हैं और यदि किसी विभाग विशेष का बजट कम है तो यह भी विपक्ष का कर्तव्य हैं कि उस ओर इंगित करें – श्री राज मंगल पाण्डेय स्वस्थ्य मंत्री ने प्रतिपक्ष को इस बात का धन्यवाद देते हुये कहा कि आज बहस ज्यादा तर्कसंगत रही व अच्छे सुझाव आये हैं"[4]

अनुदानों की मांग पर चर्चा के अन्तर्गत मुख्यमंत्री के विभागों पर हुयी बहस अधिक प्रभावी रही । तथा विपक्ष अधिक मुखर रहा क्योंकि सामान्य प्रशासन व गृह विभाग की मांगों पर हुयी बहस द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण शासन के क्रिया कलापों पर विचार हो जाता है ।

---

1. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड 366 पेज– 104– 105
2. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड–366 पेज– 105
3. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड–151 पेज 427
4. उ0प्र0 वि0स0 का0 खण्ड–304 पेज– 97, जुलाई 1974

समय-समय पर सरकार ने इस मौके पर विपक्ष से सहयोग की अपील की। 1957 में नियोजन विभाग के अनुदान पर भाषण करते समय प्रदेश के मुख्य मंत्री नें सभी राज0 दलों से अपील की कि वे उत्तर प्रदेश को सुखी व समृद्ध बनाने के लिये कुछ समय पांच-सात वर्ष के लिये ही एक प्रकार की राजनीतिक सन्धि करलें"[1]

अनुदानों की मांग पर चर्चा के समय प्र्यः विधायकों नें (जिसमे प्रतिपक्ष भी सम्मिलित था) अपने क्षेत्र की समस्याओं को सदन के सम्मुख प्रस्तुत किया व अनुदान की मांग की - वर्ष 1984 - 85 अनुदानों की मांग दर (सार्वजनिक निर्माण विभाग) पर अपने क्षेत्र की समस्या को उठाते हुये श्री कुवँर सिंह नेगी नें कहा - सभी क्षेत्रों में इस बजट द्वारा सड़कें दी गयी हैं परन्तु पर्वतीय क्षेत्र के बारे मे कोई भी योजना, कोई भी धन, सार्वजनिक निर्माण विभाग का, जिला सेक्टर में नहीं गया है, इसकी व्यवस्था की जाय। इसकी व्यवस्था न होने पर पर्वतीय क्षेत्र में प्रगति विल्कुल शून्य रही है। श्री शम्मन सिंह गहलौत ने अपने क्षेत्र बिजनौर की समस्या उठाते हुये कहा यह जो वर्ष 2.3 दिन में समाप्त होने वाला है, मेरे जिले विजनौर में इस पूरे वर्ष में एक कि.मी. सड़क का भी निर्माण नहीं हुआ।[2]

स्पष्ट है कि विपक्ष ने अनुदान की मांगों पर कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत कर व चर्चा में भाग लेकर न केवल अपने संसदीय दायित्व का निर्वहन किया बल्कि विभिन्न जटिल मुद्दों पर शासन का ध्यान आकृष्ट कराया। किन्तु अनेक अवसरों पर विपक्षी सदस्यों के विरोध के बावजूद तत्कालीन सरकारें सभी वित्तीय प्रस्तावों पर अपनी इच्छा के अनुसार सदन की स्वीकृति पाने में सफल रहीं। सरकार द्वारा प्रस्तुत विभिन्न अनुदानों की लगभग सभी मांगों पर विरोधी सदस्यों की ओर से कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये क्योंकि सामान्यतः कटौती प्रस्ताव सरकार के विरूद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव माना जाता है किन्तु 1952 से 1985 के दौरान एक भी अवसर ऐसा नहीं आया जब विपक्ष द्वारा प्रस्तावित कोई कटौती प्रस्ताव सदन की स्वीकृति प्राप्त कर सका हो। यद्यपि प्रदेश में गठित मिश्रित सरकारों के शासन काल में कटौती प्रस्तावों के सदन द्वारा पारित हो जाने की सम्भावनायें हो सकती थीं किन्तु विधान सभा कार्य वाहियों से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष अपने इस प्रयास में कभी सफलता प्राप्त कर सका।

अतः यह कहा जा सकता है कि आय-व्ययक व अन्य वित्तीय प्रस्तावों पर विधान सभा पर सत्ता पक्ष का वर्चस्व रहा।

---

1. 'आज' 15 अगस्त 1957
2. उ0प्र0 वि0स0का0 खण्ड-366 अंक-5 पेज- 80-81

अध्याय – 8, विधान सभा की समितियाँ व विपक्ष

(क) सामान्य समितियाँ

(ख) विशिष्ट समितियाँ

(ग) वित्त समितियाँ

–अन्य– समितियाँ

समितियाँ और विपक्षः—

हाउस आफ कामन्स के भूतपूर्व अधिकारी "सर एडवर्ड फैलोज" का निष्कर्ष था "संसदीय नियंत्रण का अर्थ है कि संसद प्रभाव डाले, प्रत्यक्ष शक्ति का उपयोग करे, वह आलोचना करे, बाधा न डाले, वह परामर्श दे आदेश नही, वह संवीक्षा करें पहल नही, वह प्रचार करे, गोपनीयता न रखे"

यदि संसद की भूमिका परामर्श देने, प्रभाव डालने, आलोचना करने, संवीक्षा करने और नियंत्रण करने की है तो अब प्रश्न यह होता है कि ऐसी कौन सी युक्ति है जिसके माध्यम से संसद इस कार्य को अत्यन्त प्रभावकारी ढंग से कर सके। अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि सभी युक्तियों में समिति की युक्ति सर्वोत्तम है।[1]

वर्तमान युग में सरकार के बढ़ते हुये कार्यक्षेत्र के कारण विस्तृत संसदीय कार्य एवं विधायन की सूक्ष्मताओं ने व जटिलताओं ने विश्व के जनतांत्रिक देशों में संसदीय समितियों का तीव्रता से विकास किया है । संसदीय समितियाँ, जो सम्बन्धित सदन के सदस्यों से ही गठित होती है, का उद्देश्य प्रमुखतः ऐसे कार्यो का सम्पादन होता है जिनके लिये विशेषज्ञों द्वारा या व्योरेवार विचार करने की आवश्यकता हो। इन समितियों की व्यवस्था विशेष रूप से उन विषयों को निपटाने में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है जो विशेषतया तकनीकी स्वरूप के कारण सम्पूर्ण विधान मण्डल की बजाय कुछ सदस्यों द्वारा निपटाये जा सकते है। वस्तुतः संसदीय समितियों की व्यवस्था महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा के लिये सदन का समय बचाती है और संसद को मामलों की बारीकियों में फंसकर नीति और विस्तृत सिद्धान्तों के विषयों से परे नही जाने देती हैं।[2]

विधान मण्डल के सदस्य अलग अलग क्षेत्रों में विशेष रूचि व योग्यता रखते है। अतः समितियों का निर्माण करते समय उनके कार्यो के अनुसार उनमें विशेष दक्षता रखने वाले सदस्यों को नियुक्त किया जाता है। और इस प्रकार संसदीय समितियाँ कार्य विभाजन और कार्य विशिष्टीकरण के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करती है।

समिति पद्धति की आवश्यकता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह है कि किसी मामले के सूक्ष्य अन्वेषण हेतु आवश्यक साक्षियों के साक्ष्य, सम्बन्धित अभिलेखों अथवा दस्तावेजों की जॉच, सार्वजनिक सुनवाई व अध्ययन, भ्रमण आदि कुछ कार्य ऐसे होते हैं

---

1. माल्या,एन० यन० लोकतंत्र समीक्षा, 1969, वर्ष अंक 4 पृ037
2. खांडिलकर, आर0के0 - 'कमेटी सिस्टम इन पार्लियामेन्ट' जर्नल आफ पार्लिया—मेन्टरी इनफारमेशन, अक्टूबर 1967 पृ0 163

जो विशालकाय सम्पूर्ण सदन द्वारा समुचित रूप से सम्पादित नही हो सकते हैं। इन कार्यो के उचित निर्वहन हेतु सदस्यों के छोटे समूह अर्थात "समितियॉं" अपरिहार्य है।

विधानमण्डल में विभिन्न विषयों पर विचार प्रायः दलीय आधार पर होता है। इसलिये विधानमण्डल में होने वाले वाद विवाद में अपेक्षित निष्पक्षता का अभाव रहता है लेकिन समितियॉं, जिन्हें बहुदलीय प्रतिनिधित्व के कारण लघु सदन कहा जाता है । ये समितियॉं संसदीय कार्यो का निर्वहन सरलता, दक्षता व शीघ्रता से करती है संसदीय व्यवस्थापन में यह कुशलता का समावेश करती है, जनता की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु जो व्यवस्थापन प्रस्ताव संसद में शासन रखता है समितियॉं उसका मूल्यांकन करती है। यही नही शासन के कार्यो में विरोधी दलों के सहयोग की भी ये सुन्दर माध्यम है"।[1] ये साधारणतया निर्दिष्ट विषय पर विचार दलीय आधार पर न कर उसके गुणावगुण के आधार पर करती है।

संक्षेप में समितियॉं सदन का कार्य हल्का करती है और विभिन्न प्राविधिक व जटिल विषयों की सूक्ष्मता से जॉच कर सदन को उनके सम्बन्ध में उचित, न्यायसंगत तथा विवेकपूर्ण निर्णय लेने का अवसर प्रदान करती है ।

संसदीय समितियों के प्रमुख उद्देश्यों का भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष स्वर्गीय जी०वी० मावलंकर द्वारा 18 अप्रैल 1950 को प्राक्कलन समिति की प्रथम बैठक में भाषण देते हुये निम्नवत् विवेचन किया गया:–

1. यथासंभव अधिक से अधिक सदस्यों को न केवल उन पद्धतियों से जिनसे प्रशासन का संचालन होता है, सम्बद्ध करना तथा प्रशिक्षित करना बल्कि उन विभिन्न समस्याओं से परिचित कराना, जिनका सरकार नित प्रति सामना करती है।

2. कार्यपालिका पर नियंत्रण रखना ताकि वह निरंकुश व स्वेच्छाचारी न बन सके।

3. सरकार की नीतियों को प्रभावित करना ।

4. सरकार व सामान्य जनता के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करना।[2]

---

1. पायली एम0वी0,–'दि कान्स्टीट्यूशनल गवनमेन्ट इन'–इण्डिया एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1960
2. जेना वी0वी0,'पार्लिमेन्टरी कमेटीज इन इण्डिया'–में उद्धृत पृ0 30–31

विश्व के प्रमुख जनतांत्रिक देशों की संसदीय समितियों के स्वरूप के आधार पर वर्तमान समिति पद्धति को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । (क) हाउस आफ कामन्स की समिति पद्धति तथा (ख) अमेरिका की समिति पद्धति । भारतीय संसद व राज्य विधान मण्डलों की समिति पद्धति अमेरिका की समिति पद्धति के बिल्कुल भिन्न तथा इग्लैण्ड की समिति पद्धति के निकट दिखाई देती है। हाउस आफ कामन्स की समितियों को तीन श्रेणियों में बॉटा जा सकता है (क) सम्पूर्ण सदन की पद्धति (ख) स्टैन्डिग कमेटियॉ (स्थायी समितियॉ) (ग) सेलेक्ट कमेटियॉ (प्रवर समितियॉ)[1]

उ0प्र0 में समिति पद्धति का विकास

उ0प्र0 में समितियौं के इतिहास का प्रारम्भ 1887 से होता है । सर्वप्रथम 19 फरवरी 1887 को तत्कालीन "लेजिस्लेटिव काउन्सिल" में श्री जे0 डब्ल्लू0 क्विन्टन द्वारा" दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध जनरल क्लाजेज बिल" को सदन की एक चार सदस्यीय (प्रस्तावक सहित) प्रवर समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया[2] इसके बाद प्रायः सदन की प्रवर समितियॉ गठित हुयी किन्तु यह समितियॉ पूर्णतया अस्थायी प्रकृति की थी और निर्दिष्ट विषयों पर विचार करने के बाद उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता था ।

स्थायी आधार पर समितियों का निर्माण 1921 से प्रारम्भ हुआ । सबसे पहले बारह सदस्यीय दो वित्तीय समितियॉ (क) वित्त समिति (ख) लोक लेखा समिति एक वर्ष के लिये गठित की गयी । 1935 के अधिनियम द्वारा विधानसभा की स्थापना के बाद विधानपरिषद की वित्तीय शक्तियॉ विधानसभा को प्राप्त हो गयी परिणाम स्वरूप उर्पयुक्त वित्तीय समितियों को विधान परिषद से समाप्त कर उन्हें फिर से विधान सभा में गठित किया गया ।

समिति निर्माण की शक्ति का उ0प्र0 विधान सभा द्वारा प्रचुरता से प्रयोग किया गया । 1951 में स्वीकृत उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया नियमों में उर्पयुक्त वित्त समिति और लोक लेखा समिति के अतिरिक्त प्राक्कलन समिति, याचिका समिति तथा विशेषाधिकार समिति के गठन का प्रावधान किया गया ।

---

1. जैनिंगस आइवर, पार्लियामेन्ट, पृ0 268
2. ऐवस्ट्रैक्ट आफ दि प्रोसीडिंग्स आफ दि लेजिस्लेटिव काउन्सिल फार दि नार्थ वेर्स्टन प्राविन्सेज एण्ड अवध, 19 फरवरी 1887 पृ03

कार्य मंत्रणा समिति तथा सरकारी आश्वासन सम्बन्धी समिति क्रमशः 1954[1] और 1955 [2] से उ0प्र0 विधान सभा की समिति पद्धति का आवश्यक अंग बन गये । निर्णय पुनर्निरीक्षण समिति की संस्तुति पर पहली प्रतिनिहित विधायन समिति का गठन अध्यक्ष द्वारा 1956 में किया गया [3]। 1958 में संशोधित प्रक्रिया नियमों द्वारा नियम समिति को विधान सभा की एक नियमित समिति के रूप में मान्यता प्राप्त हुयी ।

पंचम विधान सभा के कार्यकाल में 17 दिसम्बर 1971 को पारित एक प्रस्ताव के अनुसार अध्यक्ष द्वारा एक सार्वजनिक उपक्रम एवं निगम समिति का गठन किया गया। षष्ठम विधान सभा में 7 जून 1974 को पारित एक प्रस्ताव द्वारा इस समिति को दोनों सदनों की संयुक्त समिति का स्वरूप प्रदान किया गया । किन्तु पुनः अगस्त 1979 से इस समिति का संयुक्त स्वरूप समाप्त कर दिया गया ।

उर्पयुक्त समितियों के अतिरिक्त षष्ठम विधान सभा में एक अनुसूचित जातियों तथा विमुक्त जातियों सम्बन्धी संयुक्त समिति (विधान सभा के 21 सदस्य तथा विधान परिषद के 4 सदस्य) तथा सप्तम विधान सभा में अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिश्चय संकलन समिति का गठन किया गया । इसके अतिरिक्त अष्टम विधान सभा में नियम समिति (1982-83) के द्वितीय प्रतिवेदन में की गयी संस्तुति के आधार पर 28 फरवरी 1984 से एक प्रश्न एवं सन्दर्भ समिति का गठन किया गया ।

उ0प्र0 विधान सभा में समितियों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रक्रिया नियम 200 में कहा गया है कि "प्रत्येक साधारण निर्वाचन के उपरान्त प्रथम सत्र के प्रारम्भ होने पर और तदुपरान्त प्रत्येक वित्तीय वर्ष के पूर्व या समय समय पर जब कभी अन्यथा अवसर उत्पन्न हो, विभिन्न समितियों, विशिष्ट या सामान्य प्रयोजनों के लिये, सदन द्वारा निर्वाचित या निर्मित की जायेगी या अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित होगी।"

स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा में समितियों का गठन आवश्यकतानुसार या तो स्वयं सदन द्वारा किया जाता है अथवा अध्यक्ष उन्हें नाम निर्देशित करता है । किन्तु इग्लैंण्ड व अमेरिका दोनों देशों में समितियों का गठन सदन के अनुमोदन द्वारा ही होता

---

1. आश्वासन समिति का प्रथम प्रतिवेदन, 1955
2. प्रतिनिहित विधायन समिति का प्रथम प्रतिवेदन, 1956
3. सार्वजनिक उपक्रम एवं निगम समिति की फाइल से उद्धृत

है, वहाँ भारतवर्ष की भाँति उनको सम्बन्धित सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नाम निर्देशन का प्रावधान नहीं है।[1]

उ0प्र0 विधानसभा की समितियों को मुख्य रूप से दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है ।

(क) स्थायी (सामान्य समितियाँ)

(ख) अस्थायी (विशिष्ट समितियाँ)

(क) **स्थायी या सामान्य समितियाँ–** का अर्थ उन समितियों से है जिनका निर्माण नियमित रूप से सदन के नियमों के अर्न्तगत किया जाता है और वह इन अर्थो में स्थायी कही जा सकती है कि उनकी नियुक्ति प्रत्येक वर्ष की जाती है । अध्ययनाधीन विधान सभा काल में ऐसी कई समितियाँ गठित की जाती रही हैं ।[2]

(ख) **अस्थायी समितियाँ–** वे समितियाँ हैं जिनका गठन सदन के प्रस्ताव द्वारा अथवा अध्यक्ष द्वारा समय समय पर कार्य विशेष के सम्पादन के समय किया जाता है।

स्थायी समितियों की सदस्य सख्या 10 से 25 के बीच प्राप्त होती है और उनमें से केवल लोकलेखा तथा प्राक्कलन समिति के अतिरिक्त सभी समितियों के सदस्य अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित होते है । लोकलेखा व प्राक्कलन समिति के सदस्यों का चुनाव सदन द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है ।[3]

समितियों में सदस्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में नियमों में यह व्यवस्था है कि कोई सदस्य किसी समिति में तब तक नियुक्त नहीं किया जा सकता है जब तक वह उस समिति में कार्य करने के लिये सहमत न हो ।[4] प्रत्येक समिति का कोई भी सदस्य किसी भी समय अध्यक्ष को त्यागपत्र देकर अपना स्थान रिक्त कर सकता है ।[5] इसके अतिरिक्त यदि कोई सदस्य समिति के लगातार दो या दो अधिक उपवेशनों में सभापति की अनुज्ञा के बिना अनुपस्थिति रहें तो ऐसे सदस्य को स्पष्टीकरण देने का अवसर देने के उपरान्त यदि आवश्यक हो तो समिति से हटाने के लिये सदन में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है;

---

1. कैम्पियन जी0, "इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रोसीजर आफ दि हाउस आफ कामन्स" पृ0 317
2. सार्वजनिक उपक्रम एवं निगम समिति के प्रथम प्रतिवेदन पंचम विधानसभा, पर आधारित । चतुर्थ विधान सभा तक आठ समितियाँ ही थी ।
3. उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली तथा वि0स0 सचिवालय से प्राप्त सूचनायों पर आधारित ।
4. नियम 200 (उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली)
5. –तदैव– नियम 204

परन्तु जब समिति के सदस्य अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित हो तो किसी सदस्य को स्पष्टीकरण का अवसर देने के उपरान्त अध्यक्ष द्वारा हटाया जा सकता है ।[1]

यद्यपि विधान सभा का कोई भी सदस्य अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित तथा सदन द्वारा निर्वाचित किसी भी समिति की सदस्यता प्राप्त कर सकता है किन्तु कुछ समितियों में मंत्रियों की नियुक्ति प्रक्रिया नियमों द्वारा वर्जित है। नियमों में स्पष्ट कहा गया है कि लोकलेखा समिति,प्राक्कलन समिति, सरकारी आश्वासन समिति, याचिका समिति तथा प्रतिनिहित विधायन समिति तथा सार्वजनिक उपक्रम एवं निगम समिति में कोई मंत्री समिति के सदस्य नियुक्त नही किये जायेगें और यदि कोई मंत्री सदस्य नियुक्त किये जायेगें तो ऐसी नियुक्त की तिथि से समिति के सदस्य नही रहेगें ।प्रक्रिया की इस व्यवस्था का उद्देश्य संभवतः समिति के सदस्यों तथा समितियों के समक्ष साक्षी के रुप में उपस्थित होने वाले अधिकारियों और अन्य व्यक्तियों को बिना भय के निष्पक्षता के साथ अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर देना है क्यों कि मंत्रियों की उपस्थिति से सदस्यों और अधिकारियों का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित होने वाली समितियों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इनमें सदस्यों की नियुक्ति के लिये अध्यक्ष पूर्णतया स्वतंत्र हैं क्यों कि प्रक्रिया नियमो के अर्न्तगत उसकी इस शक्ति पर कोई नियंत्रण नही लगाया गया है। वैधिक दृष्टि से उसे यह अधिकार प्राप्त है कि यदि वह चाहे तो एक ही दल के सभी सदस्यों को किसी समिति में नियुक्त कर दे अथवा विभिन्न दलों को प्रतिनिधित्व प्रदान करें किन्तु अध्यक्ष द्वारा व्यवहार में दलों विभिन्न समितियों के सदस्यों को नाम निर्देशित करते समय सदन के सभी प्रमुख दलों के नेताओं से परामर्श कर उन्हें उनकी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया जाता है क्यों कि सामान्यतया समितियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे दलीय भावना से विरत होकर उपस्थित मामलों का निष्पक्षता से समाधान करें। विधान सभा के सभी दलों को उनकी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्रदान करने के उद्देश्य से ही सदन की निर्वाचित समितियों तथा प्रवर संयुक्त समितियों के सदस्यों के चुनाव हेतु आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय निर्वाचन पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

---

1. नियम 203

उ0प्र0 की समितियों की सदस्यता में दलीय अनुपात के विश्लेषण हेतु अध्ययनाधीन विधान सभाओं के प्रथम वर्ष में गठित होने वाली समितियों में सदन के विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रनितिनिधत्व का उल्लेख निम्न तालिकासे स्पष्ट है:–

तालिका

समितियाँ	प्रथम वि0स0			द्वितीय वि0स0			तृतीय वि0स0		
	कां0.	अन्य रा0दल	निर्दलीय	कां0.	अन्य रा0. दल	निर्दलीय	कां0.	अन्य रा0. दल	निर्दलीय
1. याचिका समिति	–	–	–	–	–	–	9	5	1
2. विशेषाधिकार समिति	–	–	–	5	4	1	5	4	1
3. सरकारी आश्वासन समिति	–	–	–	9	5	–	8	7	0
4. प्रतिनिहित विधायन समिति	–	–	–	10	5	–	9	5	1
5. कार्य मंत्रणा समिति	–	–	–	–	–	–	9	5	1
6. नियम समिति	–	–	–	–	–	–	9	5	1
7. लोकलेखा समिति	–	–	–	10	10	1	12	7	2
8. प्राक्कलन समिति	–	–	–	17	8	–	16	8	1

समितियाँ	चतुर्थ वि0स0			पंचम वि0स0			षष्ठम वि0स0		
	कां0	अन्य	निद0	कां0	अन्य	निर्द0	कां0	अन्य	निर्द0
1. याचिका समिति	6	8	1	9	5	1	6	7	1
2. विशेषाधिकार समिति	4	6	–	5	4	1	5	4	1
3. सरकारी आश्वासन	6	8	1	8	6	1	6	8	–
4. प्रतिनि॰ विधायन	6	7	2	8	7	–	8	7	–
5. नियम समिति	7	8	–	9	5	1	9	5	1
6. कार्यमंत्रणा	7	8	–	8	7	–	8	7	–
7. लोकलेखा समिति	10	10	1	11	10	–	12	7	1
8. प्राक्कलन समिति	10	12	3	14	10	1	14	11	–
9. सार्वजनिक उपक्रम निगम	–	–	–	–	–	–	14	11	1

समितियाँ	सप्तम वि0स0			अष्टम वि0स0		
	कां0	अन्य	निर्द0	कां0	अन्य	निर्द0
1. याचिका समिति	12	2	–	9	3	2
2. विशेषाधिकार समिति	5	4	1	5	4	1
3. सरकारी आश्वासन	10	3	–	10	3	1
4. प्रतिनि॰ विधायन	11	3	–	9	5	–
5. नियमसमिति	7	5	1	9	5	1
6. कार्यमंत्रणा	8	7	–	9	5	1
7. लोकलेखा समिति	10	10	1	11	10	–
8. प्राक्कलन समिति	18	4	1	17	6	1
9. सार्वजनिक उपक्रम निगम	16	4	2	16	6	2

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा की समितियों मे निर्दलीय सहित सदन के विभिन्न राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ । चूंकि द्वितीय,तृ,षष्टम तथा अष्टम विधान सभाओं में समितियों के गठन के समय कांग्रेस का बहुमत था इसीलिये इनकी समितियों में कांग्रेस का बहुमत रहा तथा सातवीं विधानसभा में जनतापार्टी का बहुमत रहा किन्तु चतुर्थ व पंचम विधानसभा में अन्य राजनीतिक दलों की संयुक्त शक्ति कांग्रेस से अधिक होने के कारण कांग्रेस को समितियों में अपेक्षाकृत कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ ।

अतः यह कहा जा सकता है कि उ0प्र0 विधान सभा की समितियों का गठन यथासंभव सम्पूर्ण सदन की संस्था के रूप में किया गया।

विभिन्न राजदलों के नेताओं तथा विधानसभा सचिवालयों के अधिकारियों से अनौपचारिक रूप से बात करने पर समितियों की सदस्यता के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह ज्ञात हुआ कि राजनीतिक दलों द्वारा इसे बहुधा अपने सदस्यों को दिये जाने वाले लाभ के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। शासक दल तथा विरोधी दलों के नेताओं द्वारा समितिओं में नाम निर्देशन हेतु अध्यक्ष से अपने सदस्यों की संस्तुति तथा समितियों के निर्वाचन में अपने उम्मीदवारों का चयन प्रायः आधार पर किया जाता है कि वे किस सदस्य को कितना अनुग्रहीत करना चाहते है; क्यों कि समितियों के कार्यो में रूचि होने के कारण कम, आर्थिक लाभ की दृष्टि से अधिक सदस्यगण ऐसी समितियों की सदस्यता पाने के लिये इच्छुक रहते है जिनकी अपेक्षाकृत अधिक बैठकें होती हैं और जो अक्सर परिभ्रमण करती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि समितियों की बैठकों में भाग लेने के लिये सदस्यों को वही दैनिक भत्ता प्राप्त होता है जो उन्हें सदन के उपवेशनों के लिये प्राप्त होता है तथा प्ररिभ्रमण के दौरान सदस्यों को यात्रा व दैनिक भत्ते की अतिरिक्त आय होती है ।

नियम 201 (1) में कहा गया है कि "प्रत्येक समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से ही नियुक्त किया जायेगा । परन्तु यदि उपाध्यक्ष समिति के सदस्य हों तो वे समिति के पदेन सभापति होगें" इस नियम का अपवाद केवल लोकलेखा समिति है जिसके सभापति का निवार्चन समिति द्वारा स्वयं अपने सदस्यों में से किया जाता है ।[1] सभी मामलों में समितियों के अध्यक्ष

---

1. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 229(3)

का नामाकंन संसद के पीठासीन अधिकारियों द्वारा किया जाता है, इसमें सन्देह नहीं कि पीठासीन अधिकारियों को दिया गया अध्यक्ष के नामाकंन का अधिकार काफी सीमा तक लोकतांत्रिक नहीं है किन्तु उक्त व्यवस्था कार्य सार्थकता की दृष्टि से की गयी प्रतीत होती है, साथ ही इसका एक प्रयोजन यह भी है कि अध्यक्ष का चुनाव योग्यता के आधार पर ही किया जा सकें ।

प्रत्येक अधिवेशन में अध्यक्ष कम से कम दस सदस्यों की एक सभापति नामिका तैयार करता है, जो अर्थोपाय समिति के निवेदन पर सारे सदन की समितियों का अस्थायी रूप से सभापतित्व करते हैं। अध्यक्ष अर्थोपाय समितियों की नामिका उप सभापति तथा सभापतियों की उपरोक्त तालिका में से प्रत्येक स्थायी समिति के सभापति की नियुक्ति करता है इस प्रकार जिन व्यक्तियों को स्थायी समिति में सभापति बनाया जाता है उन्हें सभापति के कार्य का पूर्वानुभव भी हो जाता है ।अर्थोपाय समिति के सभापति और उप सभापति के अतिरिक्त, जो प्रायः सत्तारूढ़ दल से सम्बन्धित होते है । उपरोक्त नामिका के सदस्यों को सभी दलों से चुना जाता है इस प्रकार विरोधी दल का सदस्य भी सभापति चुना जा सकता है । जब अध्यक्ष पूर्वोक्त नामिका में से सभापति का चुनाव करता है तो उसका यह विचार होता है कि अमुक अस्थायी समिति के लिये कौन सदस्य सर्वाधिक उर्पयुक्त होगा । सभापति की नियुक्ति की पद्धति से ही स्पष्ट है कि उसे एक निष्पक्ष व्यक्ति होना चाहिये ।

यद्यपि इस बात का उसे ध्यान रखना चाहिये कि बहुमत के कार्य संचालन में कोई रूकावट तो नही होगी, तथापित यह सुनिश्चित करना भी उसका कर्तव्य है कि अल्पसंख्यकों को अपनी बात कहने का ठीक अवसर मिल रहा है और बहुमत के निरंकुश शासन से उनके हित सुरक्षित है। सभापति को जो स्थायी समिति में अध्यक्ष के ही पद का प्रतीक है उतने ही बड़े अधिकार प्राप्त है जितने अध्यक्ष को होते है । वह संशोधनों का चयन कर सकता है, विवादान्त प्रस्ताव (क्लोजर) को अस्वीकार कर सकता है, असम्बद्धता पुनरावृत्ति आदि के लिये सदस्यों को रोक सकता है और उन प्रस्तावों को नामंजून कर सकता है जो उसकी दृष्टि में विलम्बकारी हैं। ऐसे अधिकार उसी व्यक्ति को दिये जा सकते है जिसकी निष्पक्षता सर्वमान्य हो । यही कारण है कि हाउस आफ कामन्स ने स्थायी समिति का सभापतित्व किसी मंत्री को नही सौंपा और एक ऐसे व्यक्ति को उसके उपयुक्त समझा जिससे निष्पक्षता के साथ कार्य करने की उतनी ही अपेक्षा की जा सकती हो जितनी कि मानवीय दृष्टि से संभव है– इस सन्दर्भ में आइवर जैनिंग्स के विचार उल्लेखनीय है–"सभापति तालिका

के सदस्य दल निरपेक्ष रूप से चुने जाते है और विरोधी दल के सदस्य द्वारा ऐसी स्थायी समिति का सभापतित्व करना कोई आश्चर्य नही है जिसमें सरकार का बहुमत हो और जो मंत्री के प्रभार में किसी सरकारी विधेयक पर विचार कर रही हो। जिस भावना के साथ संसद अपनी कार्यवाही का संचालन करती है, वह और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, जब एक विरोधी सदस्य सभापति के रूप में मंत्री द्वारा प्रस्तावित संशोधन और उसके भाषण को नियमविरूद्ध घोषित कर देता हे ऐसी स्थिति में सभापति का निर्णय उसी प्रकार स्वीकार करना होगा। जिस प्रकार वह अध्यक्ष के निर्णय को स्वीकार करता है।[1]

इस प्रकार सदन स्वयं से लेकर स्थायी समिति की अपनी कार्यवाही पर अपने सदस्यों में सर्वाधिक निष्पक्ष व्यक्तियों को सभापति पद पर आसीन होने का अवसर प्रदान करता है ।

निष्पक्षता, बुद्विमता आदि गुणों से मुक्त एक आदर्श एवं सर्वगुण सम्पन्न प्रधान दुर्लभ हो सकता है किन्तु हमारा यह अनुभव रहा है कि अपनी तर्क संगत व युक्ति-युक्त कुशल व्यवहार से अधिकांश सभापति समितियों को उनके उद्देश्यों की पूर्ति कराने में सफल रहे हैं। चाहे व्यक्तिगत रूप से उनका सम्बन्ध किसी राजनैतिक दल से क्यों न हो।

जैसा कि पहले स्पष्ट है कि सभापति प्रायः नामांकित किये जाते है और उक्त व्यवस्था यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से की गयी है कि कालोचितता का ध्यान रखते हुये सभापति का चयन केवल योग्यता पर आधारित हो। इस सम्बन्ध में दलों के सन्तुलन में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप यह देखने में आया है कि समितियों के अध्यक्षता के लिये विरोधी सदस्य को प्राथमिकता दी जाये। आज संसद व विधानसभाओं में कुछ समितियों की अध्यक्षता प्रतिपक्षी सदस्य ही करते है जैसे–संसद में लोकलेखा समिति, अधीनस्थ विधायन समिति, विधेयकों से सम्बन्धित कुछ समितियों के सभापति विपक्षी ही हैं।[2]

इसी सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उ0प्र0 में लोकलेखा समिति व सरकारी आश्वासन सम्बन्धी समिति के सभापति का पद विपक्ष

---

1. जैनिंग्स-'पार्लियामेन्ट' द्वितीय संस्करण, 1957, पृ0 72–73
2. भालेराव एस0एस0,'लोकतंत्र समीक्षा' जनवरी-मार्च 1970, वर्ष 2 अंक 2 पृ083–84

को देने की परम्परा रही है।[1] साथ ही विधानसभा उपाध्यक्ष जो कि प्रायः प्रतिपक्ष का होता है अगर किसी समिति में शामिल है, तो वह उस समिति का पदेन सभापति होता है । उ0प्र0 में प्रक्रिया नियमों में उल्लिखित अन्य स्थायी समितियों में से याचिका समिति व विशेषाधिकार समिति के उपाध्यक्ष पदेन सभापति होते हैं।[2]

समितियों की कार्य प्रक्रिया–

नियमों में कहा गया है कि समिति के उपवेशन का दिन और समय समिति के सभापति द्वारा निर्धारित किया जाता है परन्तु यदि समिति का सभापति सुगमतया उपलब्ध न हो तो समिति के उपवेशन का दिन व समय सचिव निर्धारित कर सकते हैं।[3] किसी समिति का उपवेशन गठित करने के लिये कोरम समिति के कुल सदस्यों के कम से कम एक तिहाई सदस्य होते हैं।[4] समितियों को अपनी प्रक्रिया के विषय में यदि आवश्यक हो नियमों के निर्माण की शक्ति प्राप्त है परन्तु इस प्रकार के निर्मित नियमों का अध्यक्ष द्वारा अनुमोदन आवश्यक है।[5] अध्यक्ष समय समय पर समिति के सभापति को प्रक्रिया एवं कार्यो के लिये आवश्यक निर्देश दे सकते हैं और समिति की प्रक्रिया के विषय में या अन्य किसी विषय में उत्पन्न सन्देह के सम्बन्ध में अध्यक्ष का विनिश्चय अन्तिम होता है।[6]

प्रक्रिया नियम 211 द्वारा समितियों को निर्दिष्ट विषय की समुचित जाँच के लिये साक्ष्य लेने तथा पत्र, अभिलेख अथवा दस्तावेज मांगने की शक्ति प्रदान की गयी है। यह समिति के स्वविवेक में होता है कि वह अपने समक्ष दिये

---

1. सईद एस0एम0-'दि कमेटीज आफ दि यू0पी0 लेजिस्लेचर', पृ030
2. द्विवेदी एस0के0-'उ0प्र0 विधान मण्डल का कार्य संचालन' (सुलभ प्रकाशन लखनऊ) पृ0 242
3. नियम 208
4. नियम 202(1)
5. नियम 218(1)
6. नियम 219

किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय समझे अथवा नही। समिति के समक्ष रखा गया कोई दस्तावेज समिति के ज्ञान और अनुमोदन के बिना न तो वापस लिया जा सकता है और न उसमें रूपान्तर किया जा सकता है।[1] शासन द्वारा किसी दस्तावेज को पेश करने से इस आधार पर इन्कार किया जा सकता है कि उसका प्रकट किया जाना राज्य के हित तथा सुरक्षा के प्रतिकूल है।[2] ऐसी अवस्था में सम्बन्धित मंत्री को उक्त आशय का प्रमाण पत्र देना होता है।

समिति के किसी उपवेशन मे समस्त प्रश्नों का निर्धारण उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से होता है। किसी विषय में मत साम्य होने की दशा में सभापति का दूसरा या निर्णायक मत होता है ।[3]

निर्दिष्ट विषय पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् प्रत्येक समिति अपना प्रतिवेदन तैयार करती है । प्रतिवेदन पर समिति की ओर से उसके सभापति द्वारा हस्ताक्षर किये जाते है परन्तु यदि सभापति अनुपस्थिति हों या सुगमतया न मिल सकते हो तो समिति प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिये कोई अन्य सदस्य चुनती है।[4]

प्रक्रिया नियमों के अर्न्तगत केवल प्रवर समिति और विशेषाधिकार समिति के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि जब प्रतिवेदन उपस्थिति करने के लिये कोई समय नियतनकिया गया हो तो वे निर्देशन के दिनांक से क्रमशः तीन माह और एक माह के भीतर प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी ।[5] अन्य समितियों के सम्बन्ध में ऐसी कोई समय सीमा निर्धारित नही की गयी ।

---

1. नियम 211(2) या (3)
2. नियम 211 (4)
3. नियम 206
4. नियम 214
5. नियम 260 व 268

प्रतिवेदन उपस्थित करते समय उपस्थितकर्ता सदस्य तथ्यों के सम्बन्ध में अथवा समिति द्वारा की गयी सिफारिशों की ओर सदन का ध्यन आकृष्ट करने के लिये संक्षिप्त वक्तव्य दे सकते है परन्तु उस वक्तव्य पर उस समय कोई चर्चा नही हो सकती है ।[1]

उ0प्र0 विधानसभा के वर्तमान प्रक्रिया नियमों के अनुसार नियम समिति, विशेषाधिकार समिति और प्रवर संयुक्त समिति के प्रतिवेदनों के अतिरिक्त अन्य समितियों के प्रतिवेदनों पर सदस्यों द्वारा उपस्थित की तिथि से 15 के भीतर ही मॉग किये जाने पर अध्यक्ष द्वारा नियत समय पर सदन में विचार हो सकता है परन्तु इस सम्बन्ध में सदन के समक्ष न कोई औपचारिक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है और न मत लिये जाते हैं ।

समितियों द्वारा की गयी सिफारिशों को स्वीकार करने के लिये नियमानुसार सरकार वाध्य नही है किन्तु समितियों के बहुदलीय स्वरूप के कारण सरकार उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर उन्हें यथासम्भव अपनाने का प्रयास करती है। समितियॉ अपनी सिफारिशों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा की गयी कार्य वाहियों से सदन को अवगत कराने के लिये क्रियान्वयन प्रतिवेदन भी प्रस्तुत कर सकती है।

उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली में विभिन्न समितियों के कार्यो का विस्तृत उल्लेख हैं। ये निम्नवत् हैं:-

(क) **सामान्य स्थायी समितियॉ-**

उ0प्र0 विधान सभा में प्रमुख स्थायी समितियॉं निम्नवत् है-

1. **याचिका समिति-**

सदन में जनता की ओर से उपस्थित याचिकाओं पर याचिका समिति विचार करती है। नियम 236 के अनुसार निम्नलिखित विषयों पर याचिका प्रस्तुत की जा सकती है-1.सदन में पुरः स्थापित अथवा नियम 114 के अन्तर्गत पुरःस्थापन के पूर्व प्रकाशित विधेयक;

---

1. नियम 216

2. सदन के समक्ष लम्बित कार्य से सम्बन्धित विषय

3. सामान्य लोकहित का कोई ऐसा विषय जो किसी न्यायालय आदि के क्षेत्राधिकार में न आता हो तथा जिसके लिये विधि के अन्तर्गत उपचार उपलब्ध न हो।[1]

याचिका समिति याचिका में की गयी विशिष्ट शिकायत और प्रस्तुत विशिष्ट मामलों में प्रतिकारक उपाय अथवा भविष्य में उस प्रकार के मामलों को रोकने के लिये सुझाव सदन को प्रतिवेदित करती है।[2]

2. **विशेषाधिकार समिति–**

विशेषाधिकार समिति का मुख्य कार्य सदन में उठाये गये विशेषाधिकारों के उल्लघंन और सदन के अवमान के ऐसे मामलों, जो अध्यक्ष द्वारा उसे निर्दिष्ट किये जाये, की जॉच करना तथा उन मामलों नें क्या कार्यवाही की जाये इस सम्बन्ध में संस्तुति देना है ।[3]

3. **सरकारी आश्वासन सम्बन्धी समिति–**

यह समिति मंत्रियों द्वारा समय समय पर सदन में दिये गये आश्वासनों प्रतिज्ञाओं तथा वचनों आदि की छानबीन करती है; सदन को यह सूचित करती है कि ऐसे आश्वासनों प्रतिज्ञाओं और वचनों आदि का सरकार द्वारा किस रूप में और किस सीमा तक पालन किया गया है ।[4]

4. **प्रतिनिहित विधायन समिति –**

विधान मण्डल द्वारा कार्यपालिका को दिया गया नियम निर्माण का अधिकार उसके द्वारा विधिपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जा रहा है या नही । इस बात की जॉच करने के लिये प्रतिनिहित विधायन समिति का गठन किया जाता है। यह समिति विशेष रूप से निम्नलिखित बातों पर विचार करती है;-

1. प्रतिनिहित विधान, संविधान अथवा उस अधिनियम के सामान्य उद्देश्यों के अनुकूल

---

1. नियम 236
2. नियम 243 (3)
3. नियम 269 (उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली)
4. नियम 233 (उ0प्र0 विधानसभा प्रक्रिया नियमावली)

है या नही जिसके अनुसकरण में वह बनाया गया है।

2. उसमें ऐसा विषय अर्न्तविष्ट है या नही जिसको समुचित ढ़ग से निपटाने के लिये समिति की राय में विधान सभा मण्डल का अधिनियम होना चाहिये।

3. उसमें कोई करारोपण अर्न्तविष्ट है या नहीं ।

4. उसमें न्यायालय के क्षेत्राधिकार में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रूकावट होती है या नही ।

5. वह उन उप बन्धों में से किसी को गतापेक्षक प्रभाव देता है या नही जिनके सम्वन्ध में संविधान या अधिनियम स्पष्ट रूप से ऐसी कोई शक्ति प्रदान नही करता है।

6. उसमें राष्ट्र की संचित निधि या लोकराजस्व में से व्यय अर्न्तनिष्ट है या नही।

7. इसमें संविधान या उस अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का असामान्य अथवा अप्रत्याशित उपयोग किया गया प्रतीत होता है या नही जिसके अनुसरण में वह बनाया गया हे ।

8. उसके प्रकाशन में या विधान मण्डल के समक्ष रखे जाने में अनुचित विलम्ब हुआ प्रतीत होता है या नही ।[1]

यदि समिति की कोई राय हो कि ऐसा कोई विधान पूर्णतः या अंशतः रद्द कर दिया जाना चाहिये या उसमें किसी प्रकार का संशोधन किया जाना चाहिये; वह उक्त राय अथवा उसका कारण सदन को प्रतिवेदित करती है।[2]

5. <u>कार्य मंत्रणा समिति–</u>

इस समिति का प्रमुख कार्य यह हे कि वह ऐसे सरकारी विधेयकों तथा अन्य सरकारी कार्य के प्रक्रम या प्रक्रमों पर चर्चा के लिये समय नियत्त करने के सम्बन्ध में सिफारिश करें जिन्हें अध्यक्ष द्वारा नेता सदन के परामर्श से

---

1. नियम 245 (उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली)
2. नियम 246 –तदैव–

उसे निर्दिष्ट किया जाये।[1] समिति को प्रस्थापित समय सूची में दर्शाने की शक्ति प्राप्त होती है कि विधेयक या अन्य सर्कारी कार्य के विभिन्न प्रक्रमों में कितना समय लगेगा।[2] इसके अतिरिक्त अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट सदन के कार्य से सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर भी समिति विचार करती है ।[3]

6. <u>नियम समिति –</u>

इसकायह कार्यहैकि वह सदन की प्रक्रिया तथा कार्य में ऐसे संशोधन और वृद्धियों की सिफारिश करें जिन्हें वह आवश्यक समझे।

इसके अतिरिक्त स्थायी समितियों में लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति व सार्वजनिक उपक्रम व नियम समिति भी आती है जिनाक विवरण वित्त समितियों शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है ।

(ख) <u>विशिष्ट या अस्थायी समितियाँ–</u>

विशिष्ट समितियों का आशय उन समितियों से है जिनका गठन सदन के प्रस्ताव द्वारा अथवा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर किसी कार्य विशेष के सम्पादन के लिये किया जाता है। इन समितियों का अस्तित्व निर्दिष्ट कार्य की पूर्ति के बाद स्वतः समाप्त हो जाता है सामान्यतया इन्हें प्रवर समिति तथा यदि दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा गठित हो तो संयुक्त प्रवर समिति कहा जाताहै। अस्थायी या विशिष्ट समितियों में से प्रवर समिति का गठन उस समय किया जाता है जब विधान सभा द्वारा किसी विधेयक को प्रवर समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव पारित हो जाये। नियम 252(2) में कहा गया है कि प्रवर समिति में निम्न प्रकार के 19 सदस्य होगें।

(क) विधयेक भार साधक मंत्री

(ख) विधयेक भार साधक सदस्य यदि कोई हो

---

1. नियम 224 –तदैव–
2. नियम 224(2) –तदैव–
3. नियम 224(3)–तदैव–

(ग) वह सदस्य जिसके प्रस्ताव पर विधेयक प्रवर समितियों को निर्दिष्ट किया गया हो ।

(घ) यथास्थिति सभा के 16–17 या 18 सदस्य होगें जो कि अनुपाती प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेगें।

किसी विधेयक पर विचार करने के लिये संयुक्त प्रवर समिति का गठन उसी अवस्था में किया जाता है जब दोनों सदन विधान सभा और विधान परिषद इस आशय के प्रस्ताव से सहमत हों। संयुक्त प्रवर समिति के सदस्यों की संख्या 25 होती है जिसमें विधेयक भार साधक मंत्री, विधेयक भार साधक सदस्य, यदि कोई हो, और वह सदस्य जिसके प्रस्ताव पर विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया गया हो, सम्मिलित रहते है तथा इसके शेष सदस्यों में से 8 सदस्य विधानपरिषद के तथा यथास्थिति 14–15–16 सदस्य विधानसभा के होते हैं। अपने अपने सदस्यों का चुनाव दोनों सदनों अनुपाती प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा करते है।

वास्तव में "प्रवर समितियों को विधेयक निर्दिष्ट किये जोने का उद्देश्य सम्बन्धित तथ्यों का अन्वेषण व संकलन है।"[1] हरवर्ट मारीशन ने प्रवर समितियों की उपादेयता के बारे में कहा है "कि प्रवर समितियों में वातावरण प्रायः अच्छा रहता है, दलीय तनाव व विवाद नियम की अपेक्षा अपवाद के रूप में रहते है क्यों कि सदस्य जनहित में कार्य करने का प्रयास करते हैं और अधिकांश मामलों में एकमत प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं।"[2]

(ग) **वित्त समितियाँ–**

विधान मण्डलों में वित्तीय समितियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। विधान मण्डलों में मुख्यरूप से तीन वित्तीय समितियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं– लोकलेखा समिति, सार्वजनिक उपक्रम व निगम समिति तथा प्राक्कलन समिति । इनके महत्व का कारण यह तथ्य है कि धन के सभी अनुदान विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत किये जाते है और विधान मण्डल का मुख्य कर्तव्य केवल यह देखना नही है कि कार्यपालिका द्वारा कोई अनावश्यक व्यय न किया जाये बल्कि यह भी ध्यान में रखना है कि कार्यपालिका ने जो व्यय किया है वह उस प्रयोजन व क्रिया विधि के अनुरूप है जो विधि में निहित है। इन समितियों

---

1. एस0एस0 मोरे–"प्रैक्टिस एन्ड प्रोसीजर आफ इन्डियन पार्लियामेन्ट", पृ0514
2. हरबर्ट मारीशन, "गवर्नमेन्ट एन्ड पार्लियामेन्ट" पृ0 154

के द्वारा प्रशासन की वित्तीय अनियमितताओं द्वारा प्रदेश को होने वाली वित्तीय क्षति की ओर सदन का ध्यान आर्कषित किया जाता है ।

1. **लोकलेखा समिति–**

राज्य के विनियोग लेखे तथा उन पर भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन, राज्य के वित्तीय विवरण या ऐसे अन्य लेखों या वित्तीय विषयों की, जो उसके सामने रखे जाये या उसको निर्दिष्ट किये जायें या समिति जिनकी जाँच करना आवश्यक समझे, जाँच करना लेखा जोखा समिति का मुख्य कार्य है।[1]

लोकलेखा समिति राज्य के विनियोग लेखे और उन पर भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का निरीक्षण करते समय प्रमुखतः निम्नलिखित बातों पर विचार करती है :-

1. जो धन लेखों में व्यय के रूप में प्रदर्शित किया गया है, क्या वह उस सेवा या प्रयोजन के लिये विधिवत् उपलब्ध व लगाये जाने योग्य था, जिसमें वह लगाया गया ?

2. क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप है जिसके वह अधीन है?

3. क्या प्रत्येक विनियोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाये गये नियमों के अनुकूल किया गया है?[2]

नियम 230 (2) के अनुसार राज्य व्यापार, निर्माण योजनाओं तथा स्वायत्तशासी और अर्धस्वायत्तशासी निकायों के लेखा विवरणों तथा उनके लाभ हानि के खातों सहित आय-व्यय आदि की जाँच करना भी लोक लेखा समिति के कार्य क्षेत्र में आता है।

2. **प्राक्कलन समिति–**

प्रत्येक वर्ष के बजट के ऐसे प्राक्कलनों की परीक्षा करना, जो समिति को ठीक प्रतीत हों या उसे सदन द्वारा विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जायें, प्राक्कलन समिति का प्रमुख कार्य है।[3] यह समिति विभिन्न विभागों द्वारा अपनायी

---

1. उ0प्र0 विधान सभा नियमावली प्रक्रिया नियम 229 (1)
2. नियम 230(1) उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली
3. नियम 232, उ0प्र0 विधानसभा प्रक्रिया नियमावली

गयी नीतियों और उनके क्रियान्वयन के लिये बनायी गयी योजनाओं हेतु प्राक्कलित धनराशि का इस दृष्टिकोण से परीक्षण करती है कि वह नीतियाँ और योजनायें कहाँ तक सदुपयोगी है ओर उन्हें किस प्रकार मितव्ययिता के साथ कार्यन्वित किया जा सकता है । ऐसा करते समय प्राक्कलन समिति वैकल्पिक नीतियों को अपनाने का सुझाव और प्रशासन के विभिन्न विभागों को इस प्रकार पुर्नगठित करने का परामर्श देती है, जिससे प्रशासन में कार्य पटुता लाई जा सके और कम व्यय द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। प्राक्कलन विधान सभा में किस रूप में उपस्थित किये जाये इस सम्बन्ध में भी समिति सुझाव देती है।[1]

3. सार्वजनिक उपक्रम व निगम समिति–

इस समिति का कार्य राज्य के सार्वजनिक उपक्रमों एवं निगमों पर सदनका नियंत्रण रखने, उनकी कार्यप्रणाली की जॉच करने एवं उन्हें अधिक उपयोगी बनाने तथा उनमें मितव्ययता लाने के उद्देश्य से आवश्यक सुझाव देना है। समिति ऐसे सार्वजनिक उपक्रमों एवं निगमों के लेखा की जॉच करती है जो उसे विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिये सौंपे गये हो । महालेखाकार (उ0प्र0) द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों एवं निगमों के सम्बन्ध में तैयार किये गये प्रतिवेदनों को भी यह समिति जॉच करती है ।[2]

इस समिति द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों एवं निगमों की स्वायत्तता को ध्यान में रखते हुये उनकी दक्षता की जॉच इस दृष्टिकोण से की जाती है कि क्या उनका प्रबन्ध ठोस व्यवसायिक सिद्धान्तों व व्यापारिक प्रणाली के अनुसार किया जा रहा है या नही ।[3]

(घ) अन्य– समितियाँ

उ0प्र0 विधानसभा की कुछ समितियाँ ऐसी है जिनका गठन यद्यपि नियमित रूप से होता है किन्तु नियमों में उनका कोई उल्लेख नही मिलता, जैसे पुस्तकालय समिति, आवास समिति तथा संसदीय शोध एवं अध्ययन समिति आदि । यद्यपि

---

1. उ0प्र0 विधानसभा प्रक्रिया नियमावली नियम 232
2. –तदैव– नियम 232(क)
3. –तदैव– नियम 232 (क) (ख)

प्रक्रिया नियमों में उल्लेख न होने कारण इन समितियों का प्रतिवर्ष गठन अनिवार्य नही है फिर भी सामान्यतः इनकी नियुक्ति बराबर की जाती है ।

उर्पयुक्त समितियों के अतिरिक्त विधान सभा में मंत्रियों का विभिन्न विधायी व प्रशासनिक मामलों में सलाह देने के लिये दोनों सदनों का प्रतिनिधितत्व करने वाली कुछ स्टैन्डिंग कमेटीज का भी गठन किया जाता है किन्तु इन समितियों का सदन से कोई सम्बन्ध नही रहता और यह सम्बन्धित मंत्रियों के अधीन विभागीय समितियों के रूप में ही मुख्यरूप से कार्य करती हैं।

यह समितियाँ विधानमण्डल की समितियों से मुख्यतः इस दृष्टि से भिन्न है कि यह गठन के बाद न तो अध्यक्ष के निर्देश के अन्तर्गत कार्य करती हे और न अध्यक्ष अथवा सदन के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है जबकि विधान मण्डल की समितियों को ऐसा करना आवश्यक है ।[1] इन्हें सलाहकार समितियाँ भी कहा जाता है । यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की समितियाँ विश्व के अन्य देशों में, जहाँ संसदीय प्रणाली है, नही है ।[2]

समितियों व विपक्ष–

इन विभिन्न समितियों में प्रतिपक्ष की प्रभावशीलता का अध्ययन समितियों द्वारा निष्पादित कार्य, उनके प्रतिवेदन तथा उसमें प्रतिवेदित तथ्यों एवं विभिन्न क्षेत्रों में की गयी संस्तुतियों के आधार पर संभव है, जिसका विवरण निम्नवत् है–

1. **स्थायी समितियाँ–**

(क) अध्ययनाधीन काल में स्थायी समितियों में से प्रथम याचिका समिति ने सदन के समक्ष लम्बित विधेयकों तथा प्रचलित अधिनियमों में संशोधन तथा उनकी वापसी के लिये प्रस्तुत याचिकाओं तथा लोकहित सम्बन्धी याचिकाओं पर विचार किया। समिति के द्वारा की गयी सिफारिशों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि समिति द्वारा अधिकांशतः सरकार के दृष्टिकोण का ही समर्थन किया गया तथा सरकार के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुये या तो उन्हें अस्वीकृत किया गया अथवा

---

1. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम (ख)
2. विधान सभा की संसदीय समिति का पाँचवा प्रतिवेदन सदन की समितियों का का कार्य संचालन 1974 पृ0 2.

उनके सदन में परिचालन की अनुशंसा की गयी । सरकार के दृष्टिकोण का इस प्रकार अन्धा सर्मथन विपक्ष की प्रभावहीनता को इंगित करता है। साथ ही ऐसी याचिकाओं पर विचार करने के बाद प्रायः तद् विषयक व्यापक महत्ववाली विशिष्ट संस्तुतियाँ प्रतिवेदित नही की गयी । याचिका समिति की कतिपय सिफारिशों का उल्लेख निम्नवत् है:—

तृतीय विधान सभा के प्रारम्भिक वर्ष 1962 में सर्वश्री राघवेन्द्र प्रताप व ट्रम्बेश्वर प्रसाद द्वारा जोतकर विधेयक 1962 को न पारित करने के सम्बन्ध में दो याचिकायें सदन में उप स्थापित की गयी। समिति में जब इस याचिका पर विचार प्रारम्भ हुआ तो सदस्यों के एक वर्ग ने इसे जनता का मत जाने के लिये परिचालित किये जाने की माँग की जब कि दूसरे सदस्यों ने इसे वापस लेने की संस्तुति किये जाने पर बल दिया । परन्तु समिति ने इस सम्बन्ध में कोई गम्भीर रूख न अपना कर अत्यन्त साधारण रूप में इसे सदन के सदस्यों के मध्य परिचालित किये जाने की सिफारिश की ।[1]

पंचम विधान सभा में 10 सितम्बर 1970 को श्री त्रिवेदी सहाय ने उ0प्र0 (निर्माण कार्य) अधिनियम 1958; तथा उ0प्र0 नगर महापालिका अधिनियम 1959 में कतिपय संशोधनों के लिये श्री राम सुन्दर शास्त्री द्वारा हस्ताक्षरित याचिका को सदन में प्रस्तुत किया। शासन द्वारा इनके सम्बन्ध में यह मत व्यक्त कियागयाकि इन दोनों अधिनियमों के प्रावधान पर्याप्त है तथा उनमें किसी संशोधन की आवश्यकता नही है। समिति ने याचिका तथा शासन के दृष्टिकोण पर विचार करने के बाद अपने प्रतिवेदन में कहा कि समिति शासन के इस उत्तर से संतुष्ट है कि सम्बन्धित अधिनियमों में संशोधन की आवश्यकता नही हैं।[2]

सामान्य लोक हित विषयक याचिकाओं के सम्बन्ध में भी अधिकांशतः कोई विशिष्ट संस्तुति करने की अपेक्षा शासन के दृष्टिकोण

---

1. प्रथम प्रतिवेदन (तृतीय विधानसभा) पृ0 14
2. प्रथम प्रतिवेदन 1971–72, पृ0 2

से ही सहमति व्यक्त की गयी । उदाहरणार्थ सरकारी स्कूलों के अध्यापकों तथा मान्यता प्राप्त व सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों के अध्यापकों के वेतनक्रम में समानता लाने के लिये श्री विपिन बिहारी तिवारी द्वारा उपस्थित याचिका को सिद्धान्ततः स्वीकार करते हुये भी शासन के नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण याचिका समिति ने इस सम्बन्ध में कोई विशेष सिफारिश न करके केवल याचिका को सदन में परिचालित करने की संस्तुति की ।[1] इसी प्रकार जिला शाहजहाँपुर के परगना खेड़ा के विकास तथा उसमें सड़कों के निर्माण के सम्बन्ध में श्री बादाम सिंह द्वारा हस्ताक्षरित तथा श्री बब्बन सिंह, सदस्य विधान सभा द्वारा सदन में प्रस्तुत याचिका को अत्यधिक व्यय के कारण सरकार द्वारा स्वीकार किये जाने में असमर्थता व्यक्त की गयी है और याचिका समिति ने भी विचार विमर्श के बाद शासन के इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया गया ।[2]

याचिका समिति द्वारा कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें इसलिये की गयीं कि शासन उनको कार्यान्वित करने में सहमत था उदाहरणार्थ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को कम करने तथा पश्चिमी जिलों, मुख्यतः शाहजहाँपुर, को न्याय प्राप्ति में सुविधा हेतु उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठिका से सम्बद्ध करने के लिये प्रस्तुत याचिका पर अपना मत व्यक्त करते हुये याचिका समिति ने कहा कि वादकरण से सम्बन्धित लोगों को अधिक सुविधा हो सकती है यदि लखनऊ जिले के पश्चिम के प्रायः सभी जिलों को लखनऊ पीठिका से सम्बद्धकर दिया जाये । ऐसी दशा में लखनऊ के पश्चिमी जिलों को इलाहाबाद के बजाये लखनऊ तक आने के लिये 180 मील की दूरी कम तय करनी होगी। ऐसी व्यवस्था सुविधाजनक होगी ।[3]

उर्पयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि याचिका समिति में सरकार के दृष्टिकोण का ही वर्चस्व रहा तथा इस समिति द्वारा जनहित सम्बन्धी याचिकाओं में प्रायः कोई विशिष्ट संस्तुति न करके अपने दायित्व का समुचित निर्वहन नही किया साथ ही विवादस्पद विधेयकों के सम्बन्ध में विशिष्ट संस्तुति न कर याचिका समिति ने उन्हें सदन के सदस्यों में परिचलित करने की सिफारिश के साथ अपने कार्य को समाप्त कर दिया ।

---

1. छठा प्रतिवेदन (तृतीय विधानसभा) पृ07 (याचिका समिति)
2. दूसरा प्रतिवेदन (1971-72) पृ0 6 (याचिका समिति)
3. प्रथम प्रतिवेदन (1973-74) पृ0 4 (याचिका समिति)

(ख) राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों के सम्बन्ध में कार्यपालिका के विभागों द्वारा बनाये गये नियम व उप नियम आदि सम्बन्धित मूल अधिनियम के विपरीत तो नही है; इस बात की प्रमुखता जॉच करते हुये प्रतिनिहित विधान समिति प्रतिनिहित विधान की प्रक्रिया में सुधार हेतु आवश्यक सुझाव भी सदन के समक्ष उपस्थित करती है । प्रतिनिहित विधायन समिति द्वारा की गयी ऐसी सिफारिशों के कुछ उदाहरण निम्नवत् है :-

नियमों के सम्बन्ध में जनता से आपत्तियॉ आमंत्रित करने के लिये जनरल क्लाजेज एक्ट में किसी समय सीमा का उल्लेख न होने के कारण शासन द्वारा कभी कभी उक्त प्रयोजन हेतु केवल एक सप्ताह का ही समय दिया गया। इस पर आपत्ति करते हुये प्रतिनिहित विधायन समिति द्वारा यह सुझाव दिया गया कि "आपत्तियॉ आमंत्रित करने के लिये प्रारूप नियमों के प्रकाशन के दिनांक से कम से कम एक मास की अवधि निर्धारित की जाय । इसके बिना पूर्व प्रकाशन की प्रक्रिया में जो सार्वजनिक व्यय होता है वह निरर्थक जाता है।[1]

वित्तीय मामलों से सम्बन्धित नियमों के सम्बन्ध में समिति ने यह मत व्यक्त किया है कि उनको उस समय तक लागू न किया जाना चाहिये जब तक कि उन्हें विधान सभा का स्वीकारात्मकअनुमोदन न प्राप्त हो जाये ।[2]

सामान्यतया शासन द्वारा बनाये गये नियम व विनियम आदि सदन के पटल पर प्रस्तुत होने के बाद समिति को विचारार्थ निर्दिष्ट होते रहे हैं। इस प्रक्रिया से असहमति व्यक्त करते हुये समिति ने सदन को यह प्रतिवेदन किया कि शासन द्वारा निर्मित नियम विनियम, उपनियम व उपविधि आदि की प्रतियॉ विधान सभा सचिवालय भेज दी जाये [3]

समिति द्वारा कभी कभी कुछ आवश्यक संशोधन के भी सुझाव दिये गये उदाहरणार्थ - उ0प्र0 पालिका केन्द्रीकृत सेवा नियमावली 1966 के नियम 25 जिसमें यह उपबन्ध किया गया था कि पालिका केन्द्रीय सेवा के किसी अधिकारी का स्थानान्तरण अपने सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित करके कर सकती है; में संशोधन की सिफारिश करते हुये समिति ने कहा-"पालिका के कार्य को दृष्टि में रखते हुये नियमों में ऐसा प्रावधान कर दिया जाये कि

---

1. चतुर्थ प्रतिवेदन (तृतीय विधानसभा) पृ0 324
2. चतुर्थ प्रतिवेदन (तृतीय विधान सभा) पृ0 325
3. प्रथम प्रतिवेदन (चतुर्थ विधान सभा) पृ03

के केवल साधारण बहुमत से स्थानान्तरण किया जा सकें।[1]

अधिकांश अधिनियमों में नियम निर्माण हेतु किसी समय का उल्लेख न किये जाने के कारण प्रशासकीय विभागों द्वारा उनके निर्नाण में प्रायः विलम्ब हो गया । इस सम्बन्ध में सदन का ध्यान आर्कषित करते हुये समिति द्वारा यह सुझाव दिया गया कि शासन सब विभागों को यह आदेश प्रसारित करें कि किसी अधिनियम के अर्न्तगत जिसमें शासन नियम निर्माण की शक्ति प्रतिनिहित हो, नियमों का निर्माण 6 माह के भीतर अवश्य हो जाना चाहिये।[2]

प्रतिनिहित विधायन समिति की इन सिफारिशों का सरकार द्वारा क्रियान्वयन के सम्वन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध न हो सकी क्यों कि इस समिति द्वारा कोई क्रियान्वयन प्रतिवेदन सदन के समक्ष उपस्थित नही किये गये किन्तु विधान सभा के सम्बन्धित समिति अधिकारी तथा प्रशासकीय विभागों के व्यक्तिगत सम्पर्क से यह ज्ञात हुआ कि शासन द्वारा इस समिति के सिफारिशों के प्रति गम्भीर दृष्टिकोण अपनाया गया व यथाशक्ति उनके पालन का प्रयास किया गया इस प्रकार प्रतिनिहित विधायन समिति के माध्यम से विपक्ष ने सरकार पर अंकुश लगाने का यथासम्भव प्रयास किया ।

(ग) सरकारी आवश्वान समिति द्वारा सदन में मंत्रियों को दिये गये आवश्वानों की पूर्ति में सम्बन्धित प्रशासकीय विभागों द्वारा बरती गयी शिथिलता की ओर आश्वासन समिति द्वारा बार बार सदन का ध्यान आकृष्ट किया गया। उदाहरण स्वरूप 15 फरवरी 1966 को श्री दयाराम शाक्य द्वारा पूछे गये एक तारांकित प्रश्न के उत्तर में सरकार द्वारा यह आश्वासन दिया गया था कि यक्ष्मा के रोगियों को राजकीय यातायात के किराये में छूट देने के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है । किन्तु 1970 तक इस आश्वासन को पूर्ण न किये जाने पर आश्वासन समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा – ऐसे महत्वपूर्ण आश्वासन जिसकी पूर्ति अविलम्ब की जानी चाहिये थी, उनकी पूर्ति की ओर ध्यान नही दिया गया ऐसा आभास होता है कि यह विषय सरकारी कार्यालयों की लाल फीताशाही के चक्कर में आ गया, जिसके फलस्वरूप शासन आज तक इस सम्बन्ध में कोई

---

1. प्रतिनिहित विधायन समिति प्रथम प्रतिवेदन (चतुर्थ विधानसभा) पृ04
2. –तदैव– अष्टम प्रतिवदेन (पंचम विधान सभा) पृ01

अन्तिम निर्णय नही ले सका है।[1]

इस आश्वासन की पूर्ति हेतु शासन द्वारा की गई अनुत्तरदायित्व पूर्ण कार्यवाही का उल्लेख करते हुये समिति ने सदन को यह सूचित किया कि इस बारे में परिवहन (क) विभाग से समय समय पर जो भी सूचनायें समिति को प्राप्त हुई है, उनमें विषय को विचाराधीन होना कहा गया है। समिति को वह कारण भी ज्ञात नही है जिसमें फलस्वरूप आश्वासन के अभी तक पूर्ति नही हो पायी।[2]

सदन में मंत्रियों द्वारा दिये गये आश्वासनों से सम्बन्धित जो सूचनाये सम्बन्धित विभागों के प्रशानिक अधिकारियों द्वारा समिति को प्रदान की जाती है उनकी सत्यता व यथार्थता संदिग्ध भी हो सकती हैं । ऐसी स्थिति में सत्य की जानकारी के लिये समिति को सम्बन्धित क्षेत्रों व स्थानों का भ्रमण कर प्रत्यक्ष जॉच का अधिकार प्राप्त है जिसका प्रयोग कर समिति ने अक्सर शासन द्वारा दी गयी सूचनाओं की असत्यता को सदन के समक्ष प्रस्तुत "अपने प्रतिवेदनों में उद्घाटित किया और शासन के विभिन्न विभागों के अनुत्तर दायित्वपूर्ण आचरण की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया – उदाहरणार्थ– 9 अप्रैल 1975 को सदन में मोदी नगर की कतिपय सरकारी भूमि पर मोदी परिवार द्वारा अवैध कब्जा किये जाने का प्रश्न उठाया गया । सरकार ने अवैध कब्जे की बात स्वीकार कर कानूनी कार्यवाही द्वारा उसे हटाये जाने का आश्वासन दिया । आश्वासन के अनुपालन हेतु विभाग को कई बार स्मरण कराया गया। 16 जून 1978 को सिंचाई विभाग के सचिव को साक्ष्य हेतु बुलाया गया उन्होंने बताया कि इस भूमि पर दयावती इण्टर कालेज मोदी नगर ने वर्ष 1961 से कब्जा कर रखा था जिसकी जानकारी 1975 में हो पायी । समिति सचिव के इस उत्तर से सन्तुष्ट नही थी । 22 जून 1978 को वहॉ पहुँचकर समिति ने पाया कि सचिव सिंचाई विभाग ने अपने साक्ष्य में जिस जमीन पर दयावती इण्टर कालेज बना हुआ बताया था, उस पर कालेज नही अपितु मोदी का बारात घर, दुकानें व श्रमिक क्वाटर्स बने हुये थे।[3]

---

1. आश्वासन समिति 33वां प्रतिवेदन (पंचम विधानसभा) पृ0 ग और घ
2. –तदैव– पृ0 ग
3. –तदैव – नवां प्रतिवेदन 1979 पृ07

शासन के किसी विभाग द्वारा ऐसी गलत सूचना नितान्त गैर जिम्मेदाराना कार्य था किन्तु इसके लिये किसी दोषी को दंडित नही किया गया ।

आश्वासन समिति द्वारा अपने प्रतिवेदनों में उन आश्वासनों का उल्लेख प्रायः किया गया जिन्हें शासन ने पूर्ण नही किया था इस समिति ने प्रायः पूर्ववर्ती सदनों में दिये गये अपूर्ण आश्वासनों की ओर भी सरकार और सदन का ध्यान आर्कपित किया क्यों कि सदन भंग हो जाने से उसमें सरकार द्वारा दिये गये आश्वासन व्यपगत नही होते ।[1] अध्ययनाधीन काल के कार्यकाल में प्रस्तुत आश्वासन समिति के प्रतिवदेनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन विधनासभाओं के भंग होने के समय हजारों की संख्यामेंआश्वासन पूर्ति हेतु लम्बित थे। इससे ऐसा लगता है कि अपूर्ण आश्वासनों के सम्बन्ध में आश्वासन समिति द्वारा बार बार स्मरण कराये जाने के बाद भी उनको पूर्ण करने के लिये सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों द्वारा आवश्यक तत्परता नही बरती गयी ।

इस प्रकार आश्वासन समिति जिसका सभापति प्रतिपक्षी सदस्य होता हैं के नेतृत्व में कोई ठोस कार्यवाही नही कर सकी जिससे सरकार पर अकुंश लगाया जा सकता ।

(घ) नियम समिति सदन के प्रक्रिया नियमों से संशोधन के प्रस्तावों, के मामलों पर विचार करती है। नियम समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन तथा संस्तुतियों के विवेचन के पता चलता है कि नियम समिति मुख्यतः प्रक्रिया नियमों में किसी प्रकार के मौलिक परिवर्तन की अपेक्षा उनमें संशोधन व परिवर्धन तक ही सीमित रही तथा इसकी अधिकांश संस्तुतियाँ सदन द्वारा स्वीकृत हुयी जबकि इनपर प्रतिपक्ष का दृष्टिकोण नकारात्मक था –उदाहरणार्थ– तृतीय विधानसभा में नियम समिति ने 1958 में स्वीकृत प्रक्रिया नियमों पर आद्योपान्त विचार प्रारम्भ किया और इस सम्वन्ध मे समिति द्वारा सदस्यों के सुझावों को भी आंमत्रित किया गया यह कार्य 1962–63 व 1963–64 की नियम समितियों द्वारा क्रमिक रूप से किया गया, किन्तु वे इसे अपने कार्यकाल में पूर्ण नकर सकी।

---

1. सईद एम0एम0,कमेटी सिस्टम इन उ0प्र0,पृ0 109.

उर्पयुक्त नियम समितियों द्वारा छोड़े गये अधूरे कार्य को 1964-65 की नियम समिति नें पूर्ण कर अपना प्रतिवेदन 7 अप्रैल 1965 को सदन के पटल पर उपस्थित किया ।[1] 25 अगस्त 1965 को जब यह सदन में विचारर्थ प्रस्तुत हुआ तो कांग्रेस सदस्य बैजनाथ सिंह वैद्य ने बिना किसी कारण का उल्लेख किये उक्त नियम समिति के प्रतिवेदन को पुनः नियम समिति को विचारार्थ निर्दिष्ट किये जाने का प्रस्ताव किया जो विपक्षी दलों के विरोध के बावजूद सदन द्वारा स्वीकृत हो गया।[2] फलस्वरूप नियम समिति 1965-66 ने पुनः अपनी पूर्ववर्ती समिति की सिफारिशों पर नये सिरे से विचार कर अपना प्रतिवेदन 29 मार्च 1966 को सदन में उपस्थित किया ।[3] किन्तु इस बार पुनः वह समिति को पुर्न विचार हेतु निर्दिष्ट कर दिया गया और अन्त में, नियमों के पुर्न निरीक्षण का यह कार्य जो 1962 में प्रारम्भ हुआ था 7 दिसम्बर 1966 को 1966-67 की नियम समिति के प्रतिवेदन के रूप में सदन की कतिपय संशोधनों के साथ स्वीकृति पाकर समाप्त हुआ ।[4]

5. कार्य मंत्रणा समिति सदन के उपस्थित कार्यो के लिये समय के बटवारे के मामलों पर विचार करती है । प्रक्रिया नियमों में की गयी व्यवस्था के अनुसार सदन के समक्ष उपस्थित सभी विधेयकों व कार्यो को उनकी समय सूची के निर्माण हेतु कार्य मंत्रणा समिति को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक नही है, किन्तु व्यवहार में प्रायः सभी सरकारी गैर सरकारी विधेयक अध्यक्ष द्वारा नेता, सदन के परामर्श से इस समिति को निर्दिष्ट किये जाते है ।

यद्यपि इस समिति की बैठकों, विषयों, कार्यवाहियों व प्रतिवेदनों आदि के सम्वन्ध में कोई अधिकृत सूचना उ0प्र0 विधानसभा सचिवालय में उपलब्ध नही है किन्तु विधान सभा की कार्यवाहियों को देखने से ज्ञात होता है कि

---

1. उ0प्र0 की विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड 259, पृ0 239-40
2. -तदैव- खण्ड 259 पृ0 239-40
3. -तदैव- खण्ड 265 पृ0 942
4. -तदैव- खण्ड 270 पृ0 755

अधिकांशतः समिति के प्रतिवेदनों को सदन द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया । इस सहमति का प्रमुख कारण इसका सर्वदलीय स्वरूप ही कहा जा सकता है। जिसके फलस्वरूप प्रायः सभी दलों का विश्वास इसके प्रतिवेदन को प्राप्त रहता है।

कार्यमंत्रणा समितिकीसिफारिशों को सदन द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकार किये जाने के अतिरिक्त कभी कभी विपक्षी सदस्यों द्वारा उनका विरोध भी किया उदाहरण स्वरूप उ0प्र0 गुण्डा विरोध विधयेक 1920 पर चर्चा हेतु मंत्रणा समिति के विपक्षी सदस्य 2 दिन का समय चाहते थे जिसके लिये सरकार तैयार नही थी फलस्वरूप समिति में इस चर्चा के समय के सम्बन्ध में कोई निर्णय न हो सका। इसके बावजूद उसे सदन की कार्य सूची में सम्मिलित कर लिया गया था। अतः सदन में इसकी प्रस्तुति पर विरोधी दलों द्वारा तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी ।[1] इसी प्रकार 28 तारीख 1981 को कार्य मंत्रणा समिति में श्री हुकुम सिंह द्वारा दी गयी सूचना जो प्रदेश में सूखे व अवर्षण से सम्बन्धित थी, नियम 52 के अर्न्तगत स्वीकृत हुयी थी को कार्य सूची में सम्मिलित नही किया गया इसके विरोध में विपक्ष के सदस्यों ने त्याग पत्र दे दिया।[2]

सदन के समक्ष उपस्थित कार्यो के निष्पादन में कार्य मंत्रणा समिति प्रभावपूर्ण रही क्यों कि विभिन्न कार्यो के लिये उसके द्वारा प्रस्तावित समय सारणी को बिना किसी विरोध के प्रतिपक्ष सहित सम्पूर्ण सदन ने स्वीकार किया। इस पर उर्पलिखित मतभेद यदा कदा परिलक्षित हुये। जिनके विषय में कहा जा सकता है कि यदि विपक्ष की माँगों के प्रति सरकार कतिपय अधिक उदारता दिखाती या विपक्ष सदन के अधिक से अधिक कार्यो को निपटाने में सहयोग पूर्ण दृष्टिकोण रखता तो इस प्रकार की घटनाओं की भविष्य में पुनरावृत्ति रोकी जा सकती है।

(ड.) सदन की गरिमा एवं महत्ता को अक्षुण्ण रखते हुये अपने कार्यो का निर्भीकता के साथ निर्वाधरूप से सम्पादन कर सकें, इसके लिये उसके सदस्यों को व्यक्तिगत

---

1. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 283, पृ0 780, 81
2. उ0प्र0 विधान सभा कार्यो का संक्षिप्त सिंहावलोकन 1981 पृ0 33

रूप से तथा उसे व उसकी समितियों को सामूहिक रूप से प्राप्त विशेषाधिकारों की अवहेलना के अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट मामलों की जाँच विशेषाधिकार समिति द्वारा की जाती है। विशेषाधिकार समिति ऐसे मामलों की जाँच कर यह प्रतिवेदित करती है कि सम्बन्धित मामलों में विशेषाधिकार की अवहेलना अथवा सदन का अवमान हुआ है या नही । तथा यह सिफारिश करती है कि उसमें क्या कार्यवाही की जाये, अर्थात् मामले को समाप्त कर दिया जाये या दोषी व्यक्ति को किसी प्रकार का दण्ड दिया जाये ।

विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन तथा उसमें निर्दिष्ट मामलों के विवेचन से पता चलता है कि विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट अधिकांश मामले प्रतिपक्ष द्वारा उठायें गये। अध्ययनाधीन काल में निर्दिष्ट विशेषाधिकार की अवहेलना के 72 मामलों पर विचार किया जिनमें केवल 28 मामलों पर दण्ड की संस्तुति की तथा इसके अतिरिक्त 18 मामलें ऐसे थे जिसमें दोषी व्यक्तियों द्वारा खेद व्यक्त किये जाने तथा क्षमा याचना करने के कारण उनको समाप्त करने की सिफारिश की गयी । दण्ड के लिये संस्तुत मामलों में केवल 10 मामलों मे समिति का रूख कुछ कठोर रहा । इनमें से केवल 5 मामलों के अभियुक्तों को सदन के समक्ष शास्ति तथा मामलों में दोषी विधान सभा सदस्यों के सदन से निलम्बन की सिफारिश की गयी । शेष 5 मामलों में समिति की दण्ड (शास्ति) की संस्तुति इस शर्त के साथ थी यदि अभियुक्तों द्वारा अपने कृत्यों पर खेद व्यक्त करते हुये मॉग ली जाये तो उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही न की जाये ।

सामान्यतः सदन समिति के प्रतिवेदनों को यथावत् स्वीकार कर उनमें की गयी संस्तुतियों के अनुसार कार्यवाही करता है गत (अध्ययनाधीन काल) की अवधि में ऐसा कोई उदाहरण नही है जब सदन ने किसी प्रतिवेदन को पुर्नविचार हेतु समिति को लौटाया हो या समिति की आवाप्तियों तथा संस्तुतियों के सम्बन्ध में कोई संशोधन स्वीकार किया हो अथवा किसी मामले में दण्ड विषयक कोई सुझाव दिया हों (यहॉ तक कि शिकायतकर्ता ने भी इस तरह की कोई मॉग सदन में नही की। विशेषाधिकार समिति के कुछ प्रतिवेदन ऐसे रहे [1] जिनमें अभियुक्तों को दण्ड की सिफारिश की गयी थी परन्तु इन पर सदन के भंग हो जाने तक कोई कार्यवाही नही की गयी क्यों कि किसी सदस्य द्वारा नियम 69 के अनुसार इन प्रतिवेदनों पर विचार हेतु कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नही किया गया फलतः दोषी व्यक्ति दण्डित न किये जा सकें। आश्चर्य की बात है

---

1. विशेषाधिकार समिति, तृतीय विधान सभा, दसवां, पंद्रवा, उन्नीसवां प्रतिवेदन।

कि स्वयं शिकायतकर्ता सदस्य ने भी सदन में इस आशय का कोई प्रस्ताव नही किया जिससे कि इन प्रतिवेदनों पर विचार हो सकता। इससे स्पष्ट होता है कि न तो शासन दल ने न तो विरोधी दलों के सदस्यें ने विशेषाधिकार के मामलों में गम्भीरता से रुचि ली समिति द्वारा दोषी ठहराये गये व्यक्तियों को दण्डित न किया जाना अवश्य ही विशेषाधिकार की अवहेलना व सदन की अवमानना को प्रोत्साहित करता है। तथा समिति की प्रतिष्ठा व सदन की गरिमा के प्रतिकूल है। यद्यपि सदन के भंग होने से समिति का प्रतिवेदन व्यपगत नही होता किन्तु अधिक समय बीत जाने से इन पर (मुख्य रूप से दण्डित किये जाने की संस्तुति वाले प्रतिवेदनों पर) कार्यवाही ही प्रायः अव्यवहारिक हो सकती है।

विशेषाधिकार समिति को सदन द्वारा निर्दिष्ट मामलों में समिति द्वारा दी गयी संस्तुतियों के विवेचन से एक यह तथ्य भी प्रकट होता है कि सदन द्वारा इस समिति में अनेक ऐसे मामले निर्दिष्ट किये गये जिनमें सदन स्वयं कार्यवाही कर उन्हें शीघ्रता से निष्पादित कर सकता था उदाहरण के लिये दिनांक 10 अगस्त 1964 को श्री चन्द्रवली सिंह ने कुछ आपत्ति जनक शब्द कहे, इसके लिये उन्हें सदन से निलम्बित कर दिया गया । कुछ देर बाद श्री सिंह पुनः सदन में आये तथा भाषण देने लगे उनके इस कृत्य को सदन का अवमान मानकर अध्यक्ष ने इसे विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया– वास्तव में यह सदन का प्रत्यक्ष अवमान था । इसमें ऐसा कोई प्रश्न निहित नहीं था जिसके सम्बन्ध में समिति द्वारा अनुसंन्धान किया जाना आवश्यक हो। इस मामले में सदन को स्वयं कार्यवाही कर दोषी सदस्य को दण्डित किया जाना चाहिये था किन्तु सदन ने ऐसा न करके दीर्घकालीन विचार प्रक्रिया के लिये इसे छोड़ दिया तथा अन्त में समिति ने संस्तुति की कि जब भी ऐसे प्रश्न उपस्थिति हो उनका निर्णय सदन द्वारा स्वयं ही किया जाना चाहिये (शायद यही कारण है कि प्रतिपक्ष की संसदीय पद्धतियों के प्रति आस्था इसलिये भी कम होती है क्यों कि ये समितियाँ किसी दण्डात्मक कार्यवाही के प्रति उदासीन है ओर अगर दण्ड दिया भी जाता है तो सदन के प्रतिवेदन कभी कभी व्यपगत हो जाते है या क्षमाचाचना से अपराध मुक्त हो जाते है। क्या ऐसी कार्यपद्धति से सदन के अवमान को प्रोत्साहन नही मिलता है ।

विशेषाधिकार समिति में विशेषाधिकार के प्रश्नों को उपस्थित करने में प्रतिपक्ष बहुत अधिक सक्रिय रहा । और साथ ही विशेषाधिकार की अवमानना के दोषी विपक्षी सदस्य ही अधिकतर पाये गये। इन प्रश्नों को उठाने में प्रतिपक्ष

का उद्देश्य के वल यह नही रहा कि वे अपने विशेषाधिकारों की रक्षा हेतु अधिक सचेत व सदन की गरिमा के प्रति अधिक जागरूक थे वरन् उनका उद्देश्य राजनैतिक व वैयक्तिक अधिकथा। उन्होंने इस साधन का प्रयोग सरकार के विरोध व सदन में गतिरोध के लिये अधिक किया । प्रतिपक्ष को बहुधा सरकारी अधिकारियों के प्रति विशेपाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उपस्थिति करते समय सरकार की कटु आलोचना का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही इसके साथ इनका उद्देश्य इन प्रश्नों के माध्यम से सदन व प्रेस में चर्चित होना था ऐसे भी उदाहरण मिलते है कि अधिकांशतः शिकायतकर्ता सदस्यगण इन प्रश्नों की तरफ से प्रश्नों के समिति में विचार हेतु निर्दिष्ट होने के बाद बेखबर हो गये क्यों कि ऐसे उदाहरण मौजूद है जबकि समिति को जॉच इस कारण समाप्त कर देनी पड़ी कि शिकायत करने वाले सदस्यों ने ही समिति के साथ सहयोग नही किया। इस उदासीनता से न केवल समिति का महत्व कम हुआ अपितु साथ साथ उसका श्रम भी निरर्थक गया व विशेषाधिकार की गरिमा को ठेस पहुॅची।

अतः इसके लिये यह आवश्यक है कि विशेषाधिकार समिति द्वारा विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्नों की ग्राह्यता की शर्तो को कुछ अधिक कठोर बनाया जाये जिससे कि इस अधिकार का दुरूपयोग न किया जाये सके और सदस्यों की इस प्रकार की अत्यधिक प्रश्न उपस्थित करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकें क्यों कि यह एक प्रकार से समिति प्रथा का दुरूपयोग है । इस उद्देश्यसेसदनकी प्रक्रिया व कार्य संचालन के नियम 74 का प्रयोग भी अत्यन्त सार्थक होगा जिसमें यह कहा गया है कि "ऐसी अवस्था में जबकि सदन को यह पता चले कि विशेषाधिकार की अवहेलना व अवमान का आरोप निराधार है तो वह आदेश दे सकेगा कि शिकायत करने वाला उस पक्ष को जिसके विरूद्ध शिकायत की गयी हो बाद व्यय के रूप में ऐसी धनराशि दे जो 500रू0 से अधिक न होगी"।

(ख) **विशिष्ट व अस्थायी समितियॉ–**

विशिष्ट समितियॉ ये समितियॉ है जो सभा के आन्तरिक विषयों पर विचार करने हेतु अथवा कभी कभी तकनीकी विचार के उद्देश्यों से सभा द्वारा नियुक्त की जाती है इन उद्देश्यों से निर्मित समितियों को कभी कभी तदर्थ समिति भी कहा जाता है । इन दोनों ही प्रकार की समितियों को कुछ देशों यथा अमेरिका में (विशिष्ट समिति) कहा जाता है ।

(क) भारत में लोकसभा व राज्य विधान सभाओं मे भी समय समय पर तदर्थ समितियाँ नियुक्त की गयी है इसी आधार पर उ0प्र0 में भी एडहाक कमेटीज नियुक्त की गयी है जैसे अभिभाषण पर बहस के दौरान असंसदीय व्यवहार पर गठित कमेटी। अध्ययनाधीन काल में उ0प्र0 विधानसभा में निम्नलिखित तदर्थ समितियों का विवरण मिलता है-

1. गूजरों को स्थायी रूप से बसानें की घोषणा सम्बन्धी समिति।

2. वाराणसी स्थित साहूपुरी विद्युत केन्द्र में अग्निकांड सम्बन्धी समिति।

3. उ0प्र0 विधानसभा की समितियों के सभापतियों के स्तर ,प्रोटोकाल और सुविधाओं, विधानसभा की समितियों और विधान सभा सचिवालय के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की आवश्यकता तथा उर्पयुक्त विषयक अन्य मामलों के सम्बन्ध में सुझाव देने सम्बन्धी समिति ।

4. राज्यपाल के अभिभाषण 17 मार्च 1978 में कतिपय सदस्यों द्वारा किये गये व्यवहार की सविस्तार जॉच हेतु । तथा 13 फरवरी 1984 को विधान मण्डल के एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष श्री राज्यपाल द्वारा अभिभाषण पर व्यवहार की जॉच हेतु गठित समिति ।

5. सामान्य प्रयोजन समिति
6. उ0प्र0 विधान मण्डल के सदस्यों के वेतन भत्ते व अन्य उपलब्धियों सम्बन्धी समिति।

7. उ0प्र0 विधान मण्डल के दोनों सदनों के सचिवालयों के अधिकारियों व कर्मचारियों के वेतनमान आदि के सम्बन्ध में गठित समिति।

उर्पलिखित समितियों में सत्तापक्ष के साथ साथ प्रतिपक्षी सदस्यों को भी शामिल किया गया तथा कुछ समितियों की अध्यक्षता माननीय उपाध्यक्ष द्वारा की गयी । ज्ञातव्य हो कि विधानसभामें उपाध्यक्ष पद विपक्ष को दिये जाने की परम्परा है। उपरोक्त समितियों के प्रतिवेदनों के विवरण व विधानसभा कार्यवाहियों से ज्ञात होता है कि बहुसंख्यक प्रतिवेदन सदन में यथावत् स्वीकार कर लिये गये व समिति की संस्तुतियों का शासन द्वारा पालन किया गया किन्तु अभिभाषण बहस के दौरान व्यवहार के जॉच हेतु गठित समिति अपनी प्रभावशीलता

न दिखा सकी उदाहरणार्थ –17 मार्च 1978 को संसदीय कार्य मंत्री के प्रस्ताव के अनुसार राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान अभद्र व्यवहार हेतु एक 11 सदस्यीय समिति का गठन किया गया जिसे अपना प्रतिवेदन सदन को 15 दिन के भीतर प्रस्तुत करना था किन्तु कतिपय कारणों से वह निर्धारित अवधि में अपना प्रतिवेदन तैयार न कर सकी अतः समय समय पर उसकी अवधि सदन द्वारा बढ़ाई गयी । अन्तिम बार उ0प्र0 विधान सभा के 7 दिसम्बर 1978 के उपवेशन में समिति के माननीय सभापति द्वारा समय बढ़ाने सम्बन्धी प्रस्ताव किये जाने पर तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री राम नरेश यादव द्वारा यह प्रस्ताव किया गया कि अब इस जॉच समिति का कार्यकाल आगे न बढाया जाये और इसे समाप्त कर दिया जाये । तद्नुसार उक्त समिति समाप्त हो गयी ओर वह अपना प्रतिवेदन सदन में नही प्रस्तुत कर सकी ।[1]

(ख) इग्लैण्ड व अमेरिका आदि देशों के विपरीत भारतीय संविधान में संसद तथा राज्य विधान मण्डलों के लिये निर्धारित विधायी प्रक्रिया में समिति प्रक्रम के ऐच्छिक होने के कारण उन्ही विधेयकों पर समिति द्वारा विचार किया जाता है जिन्हें सदन द्वारा उक्त प्रयोजन हेतु समिति को निर्दिष्ट किया जाय । उ0प्र0 विधान सभा कि प्रक्रिया नियमों में यह उल्लिखित है कि विधेयक के पुरःस्थापन के वाद या किसी अनुवर्ती अवसर पर विधेयक भार साधक सदस्य उसे प्रवर समिति में निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है [2] इसके अतिरिक्त यदि भार साधक द्वारा विधेयक को विचारार्थ लेने अथवा जनमत जानने के लिये परिचालित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाये तो संशोधन के रूप में कोई सदस्य उसे प्रवर संयुक्त समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव कर सकता है।[3]

स्पष्ट है कि उर्पयुक्त प्रस्तावों के पारित होने पर ही किसी विधेयक पर विचार हेतु प्रवर संयुक्त समिति का गठन होता है और समान्यतः ऐसा प्रस्ताव तभी पारित हो सकता है जब उसे सरकार का सर्मथन प्राप्त हो। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि किसी विधेयक को प्रवर, संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाना सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है।

प्रवर/संयुक्त प्रवर समिति अपने सीमित कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हुये केवल वही संस्तुतियॉ कर सकती है जो निर्दिष्ट विधेयक के मौलिक सिद्धान्तों

---

1. संसदीय अनुभाग उ0प्र0 से प्राप्त विवरण पर आधारित
2. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 128
3. नियम 129

और उद्देश्यों के अनुकूल हो विधेयक के उपबन्धों को अधिक स्पष्ट व बोधगम्य बनाने के लिये यह समितियाँ उसमें शाब्दिक परिवर्तनों की भी सिफारिशें कर सकती है ।

विधानसभा कार्यवाहियों के अवलोकन से पता चलता है कि सम्पूर्ण अवधि में केवल कुछ ही विधेयकों को प्रवर एवं संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया गया जब पारित विधेयकों की संख्या बहुत थी । इससे ऐसा लगता है कि शासक पक्ष द्वारा विधेयकों पर समिति द्वारा विचार किये जाने की कोई विशेष आवश्यकता नही समझी गयी और सम्भवतः इसी का परिणाम है कि उ0प्र0 विधान मण्डल द्वारा पारित लगभग 95% विधेयक विना प्रवर-संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट हुये ही पारित हो गये । प्रायः ऐसा कहा जाता है। कि सरकार केवल उन्हो विधेयकों को प्रवर/संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट करती है जिनमें वह स्वयं विलम्ब कराना चाहती है । बहुधायह देखने में आया कि प्रतिपक्ष जिन विधेयकों को प्रवर/संयुक्त प्रवर समिति को भेजना चाहता था सत्तापक्ष के विरोध या आवश्यक समर्थन न मिलने के कारण समिति को निर्दिष्ट नही किये गये यद्यपि सरकार के इस मन्तव्य का कोई ठोस प्रमाणिक उल्लेख विधान सभा कार्यवाहिओं में नही मिलता किन्तु प्रतिपक्ष के आग्रह पर नकारात्मक रुख इस तथ्य की पुष्टि ही करता है ।

प्रवर समिति व संयुक्त प्रवर समिति द्वारा की गयी सिफारिशों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके द्वारा अधिकांशतःनिर्दिष्ट विधेयकों में कतिपय अंश जोड़ने निकालने अथवा रूपभेद की ही सिफारिशें की गयी । उदाहरण स्वरूप उ0प्र0 पशु परिक्षण एवं संरक्षण विधेयक 1965 पर विधान सभा की प्रवर समिति द्वारा विचार करने के बाद यह संस्तुति की गयी कि विधेयक की धारा 9 तथा 4 अनावश्यक है, अतः उन्हें निकाल दिया जाये । उ0 प्रदेश सहकारी समिति विधेयक 1964 पर विचार हेतु गठित संयुक्त प्रवर समिति ने इसकी धारा 7,14-27, 29 तथा 35 में कतिपय संशोधन तथा धारा 68,82, तथा 135 में कुछ अंशों को जोड़ने की सिफारिश की । इसके अतिरिक्त इस समिति ने विधेयक की भाषा में भी कहीं-कहीं कुछ परिर्वतन के सुझाव दिये लगभग ऐसी ही संस्तुतियाँ अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में भी उन पर गठित प्रवर/संयुक्त प्रवर समितियों द्वारा की गयी ।

सामान्यतः प्रवर एवं संयुक्त समिति की सिफारिशों को सदन द्वारा यथावत् स्वीकार कर लिया गया अथवा उन्हें कुछ शाब्दिक संशोधन या मामूली हेरफेर के बाद स्वीकृत किया गया । वास्तव में सरकार के साथ इन समितियों के मतभेद का कोई प्रश्न ही नही उठता है क्यों कि इनका गठन सरकार के सहयोग से ही संभव हे और इनमें शासक पक्ष का ही बहुमत रहता हे तथं इसके साथ ही अपने बहुमत के कारण सरकार इनकी किसी भी संस्तुति को आसानी से अस्वीकृत कर सकती है अतः कहा जा सकता है कि विधायन के क्षेत्र में प्रवर समितियों में प्रतिपक्ष कोई अधिक प्रभावी भूमिका नही निभा सका सिवाय इसके कि विपक्षी सदस्य प्रवर समिति के औपचारिक प्रतिवेदन के साथ विमति टिप्पणी के माध्यम से विरोध प्रकट करने के लिये स्वतंत्र है। उक्त विमति टिप्पणी प्रवर समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न होती है और वह संशोधित विधेयक के साथ सदन को भेज दी जाती है।

(ग) <u>वित्त समितियाँ =</u>

उ0प्र0 विधानसभा की वित्तीय समितियों (लोकलेखा समिति तथा सार्वजनिक उपक्रम व निगम समिति प्राक्कलन समिति) द्वारा प्रशासन की वित्तीय अनियमितताओं के कारण प्रदेश को होने वाली वित्तीय क्षति की ओर प्रायः सदन का ध्यान आकर्षित किया गया । वित्तीय प्रक्रिया में सुधार तथा द्रुत वित्तीय विकास हेतु आवश्यक सुझाव भी इन समितियों द्वारा दिये गये ।

लोकलेखा समिति द्वारा लगभग अपने प्रतिवेदनों में शासन के विभिन्न विभागों में प्राप्त अप्रयुक्त व्यवस्था (बचत) की आलोचना की गयी । सामान्य रूप बचत के मुख्यतः दो कारण होते है [1] व्यय हेतु आवश्यकता से अधिक प्राक्कलन (ख) प्रशासकीय अक्षमता के कारण स्वीकृत सम्पूर्ण अनुदान की अप्रयुक्ति।

आवश्यकता से अधिक प्राक्कलन का दुष्परिणाम जनता पर अनावश्यक कर भार, जिससे जनता को बचाने के लिये 1970-71 की लोकलेखा समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि "बजट अनुभाग वास्तविकता से अधिक निकट हों जिससे विकासशील अर्थव्यवस्था में कर भार से पीड़ित जनता पर और अधिक करारोपण न हों [1] समिति द्वारा यह भी सिफारिश की गयी कि शासन इस गैर जिम्मेदारी के लिये दोषी पाये गये अधिकारियों पर उचित कार्यवाही करें[2]

---

1. विनियोग लेखे 1967,68 व लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1969 पर आधारित लोक लेखा समिति का प्रतिवेदन पृ01
2. -तदैव- पृ02

लोकलेखा समिति द्वारा समय समय पर सदन को यह प्रतिवेदन किया गया कि कभी कभी दोषपूर्ण अनुमान के कारण बचत से अधिक धनराशि सर्मपित कर दी गयी ।[1] और साथ ही कुछ मामले ऐसे आये जिन पर बचत से काफी कम धनराशि का सर्मपण किया गया [2] एक अन्य रोचक तथ्य समिति द्वारा यह प्रकाश में आया कि कुछ विभागों द्वारा पूरक अनुदान प्राप्त किये गये लेकिन वे अपने पूर्व स्वीकृत अनुदान की हीं सम्पूर्ण धनराशि व्यय करने में असफल रहे और परिणाम स्वरूप उन्हें अन्त में काफी अवशिष्ट राशि सर्मपित करनी पड़ी।[3]

उर्पयुक्त अनियमिततओं पर क्षोभ व्यक्त करते हुये उनको दूर करने के लिये लोक लेखा समिति द्वारा यह संस्तुति की गयी कि "प्रशासकीय और वित्त विभाग को भविष्य में प्राक्कलनों के निर्धारण में अधिक सर्तकता बरतनी चाहिये।"[4]

व्ययाधिक्य अथवा अप्राधिकृत व्यय के मामलों पर भी लोकलेखा समति द्वारा प्रकाश डाला गया इस विषय में समिति की संस्तुति यह थी कि "अधिकांश व्ययाधिक्य त्रटिपूर्ण अनुमानों के कारण होते है, यदि पूर्व अनुभव के आधार पर अनुमान लगाये जाये तो आधिक्य का बहुत हद तक परिहार हो सकता है ।[6]

लोकलेखा समिति ने प्रशासकीय अधिकारियों की लापरवाही के सम्बन्ध में सदन का ध्यान आर्कषित किया –"उद्ध वाहन सिंचाई योजना की जॉच करते हुये लोकलेखा समिति को यह ज्ञात हुआ कि कुल 1000 पम्पिंग सेट खरीदने की स्वीकृति थी किन्तु 1440 पम्पिंग सेट खरीदें गये। इस सम्बन्धं में अत्यन्त गम्भीर रूख अपनाते हुये समिति ने कहा कि "समिति इस प्रकार की अनियमितताओं

---

1. विनियोग लेखे 1961–62 एवं लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1963 पर आधारित लोकलेखा विनियोग प्रतिवदन।
2. विनियोग लेखे 1960–61 तथा लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1962 पर आधारित लोक लेखा समिति का प्रतिवेदन पृ0 9
3. –तदैव– पृ0 9–10
4. विनियोग लेखे 1960–61 एवं लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1962 पर आधारित लोकलेखा समिति का प्रतिवेदन पृ0 9
5. भारत के नियंत्रक व महालेखा परिक्षक की रिपोर्ट 1969–70 पर आधारित लोकलेखा समिति का प्रतिवेदन पृ0 5

की निन्दा किये बिना नही रह सकती । समिति समझती है कि सम्बन्धित अधिकारी गण ने शासकीय आज्ञा का उल्लघंन करके मनमाने ढ़ग से कार्य किय और उनकी अनियमितताओं के कारण 46.600 रू0 के राजस्व की हानि हुयी। इस प्रकार की अनियमित कार्यवाही को भविष्य में रोकने के लिये प्रभावकारी नियंत्रण रखा जाना चाहिये।

लोकलेखा समिति द्वारा प्रस्तुत क्रियान्वयन प्रतिवेदनों जिनमें इन समितियों की सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाहियों का प्रमुख उल्लेख होता है के सूक्ष्य अन्वेषण से यह तथ्य प्रकट हुआ है कि सरकार ने इनकी पुनः पुनः प्रतिवेदित सिफारिशें को भी विशेष महत्व न देकर उनका क्रियान्वयन अपने ढ़ंग व इच्छानुसार किया ।

समिति की अधिकांश सिफारिशें जो शासन से भविष्य में किसी अनियमितता आदि से बचने की अपेक्षा करती थी को प्रशासकीय अधिकारियों का स्वीकारात्मक आश्वासन तो प्राप्त हुआ किन्तु उसके बाद अधिकतर मामलों में उन आश्वासनों की पूर्ति नही की गयी और समिति को पुनः उन्ही सिफारिशों को दोहराना पड़ा। उदाहरण स्वरूप अप्रयुक्त व्यवस्था (बचत) व अप्राधिकृत व्यय के बचने तथा अवशेष धनराशियों के सर्मपण के लिये शासन द्वारा समुचित कार्यवाही हेतु समिति को बार बार प्रतिवेदित करना पड़ा जिसका प्रमाण अवशेष धनाशियों को सर्मपित करने के सम्बन्ध में समिति का यह कथन स्वतः प्रस्तुत करता है-"इस सम्बन्ध में समिति अपने पूर्व प्रतिवेदनों में भी सिफारिश कर चुकी है। उन सिफारिशों की ओर पुनः ध्यान आकृष्ट करते हुये समिति यह आशा करती है कि वित्त विभाग इनकी पुनरावृति न होने के लिये कारगर कदम उठायेगा ।"[1]

समिति की ऐसी सिफारिशें जिनमें शासन से किसी अधिकारी के विरूद्ध कार्यवाही करने अथवा अन्य कोई आवश्यक सक्रिय कदम उठाने के लिये कहा गया था , के सम्बन्ध में उत्तर काफी विलम्ब से बहुधा इस तर्क के साथ मिला कि उक्त विरोष अधिकारी सेवानिवृत हो चुका है अतः उसके विरूद्ध कार्यवाही सम्भव नही है अथवा उत्तर मिला कि संस्तुत कदम उठाने में शासन असमर्थ है। उदाहरणार्थ विनियोग लेखे 1962-63 तथा लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1964 जो सदन के पटल पर 20 अप्रैल 1965 को उपस्थिति किया गया था में जंगली

---

1. विनियोग लेखे 1967-68 एवं लेखा परीक्षा, प्रतिवेदन 1969 पर आधारित लोक लेखा समिति का प्रतिवेदन पृ03

गायों को पकड़ने तथा पालने की योजना की विफलता के लिये उत्तरदायी अधिकारियों को दण्डित करने की संस्तुति समिति ने की थी किन्तु इसके सम्बन्ध में 25/11/66 को पशु पालन विभाग ने समिति को यह सूचित किया कि इस योजना का प्रारूप जिन अधिकारियों ने तैयार किया था वे सरकारी सेवा से निवृत्त हो चुके है अतः उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही करना अब सम्भव नही है।[1]

समिति ने विभाग के इस उत्तर पर गहरा रोष व्यक्त किया कि "प्रशासकीय विभाग इस प्रकार के मामलों में प्रारम्भ से ही शिथिलता बरतते है और फलस्वरूप समय निकल जाता है और किसी पर उत्तरदायित्व निशिचित करके कार्यवाही करना सम्भव नही होता जैसा कि इस मामलें में हुआ"।[2]

इसके अतिरिक्त समिति की अनेक सिफारिशों पर बहुत समय तक शासन द्वारा कोई कार्यवाही नही की गयी और उनके विचाराधीन होने की सूचना ही बार बार प्रेषित की गयी । उदाहरण के लिये 7 मई, 1964 को प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में समिति ने राय दी थी कि अनुपूरक आय व्यय साधारणतया जनवरी के बाद न प्रस्तुत किया जाये जब तक कोई विशेष परिस्थिति न हो।इस संस्तुति के सम्बन्ध में 3 मार्च 1966 तक समिति को यही सूचना थी कि शासन इस प्रश्न पर विचार कर रहा है ।[3]

(ख) प्राक्कलन समिति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य इस तथ्य की जाँच करना हैं कि आय व्यय में प्राक्कलित धन का समुचित प्रयोग किया गया है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देना है कि प्राक्कलन किस रूप में सदन में उपस्थिति किये जाये। इसी उद्देश्य से समिति ने आय व्यय पर पृथक रूप से विचार कर उसके रूप में सुधार से सम्बन्धित अपनी सिफारिशों को सदन के समक्ष प्रस्तुत किया ।

वर्ष 1966-67 के आय व्यय का अध्ययन करते हुये प्राक्कलन समिति ने कहा- कुछ ऐसे संस्थान भी है जो किसी अनुदान विशेष के अर्न्तगत रखे गये है, किन्तु सम्बन्धित धनराशि का व्यय किसी ऐसे विभाग द्वारा किया जाता

---

1. विनियोग लेखे 1962-63 तथा लेखा परीक्षा प्रतिवेदन 1964 पर लोकलेखा समिति द्वारा की गयी सिफारिशों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाही पर लोकलेखा समिति प्रतिवेदन पृ02-3
2. -तदैव-
3. -तदैव-

है जिसका उस अनुदान से कोई सम्बन्ध नही है। उदाहरणार्थ –सैनिक स्कूल के लिये धनराशि का प्रावधान शिक्षा अनुदान के अर्न्तगत किया गया है परन्तु उक्त धनराशि का व्यय सामान्य प्रशासन विभाग द्वारा किया जाता है"[1] इस उदाहरण को देने के बाद समिति ने यह मत व्यक्त किया कि "लेखा नियमों के अनुसार जो विभाग व्यय करते है उन्ही के बजट में धन रखा जाये ।[2]

प्राक्कलन समिति द्वारा प्रस्तुत क्रियान्वयन प्रतिवेदनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सरकार द्वारा समिति की केवल वही सिफारिशें स्वीकार की गयी जो किसी भी प्रकार से शासन की नीतियों व निर्णयों को प्रभावित नही करती थी और उसकी अधिकांश महत्वपूर्ण सिफारिशों की शासन द्वारा उपेक्षा की गयी। उदाहरणार्थ प्राक्कलन समिति का प्रमुख कार्य है – शासन में मितव्ययिता लाने के लिये सुझाव देना, किन्तु ऐसी संस्तुतियाँ जिनमें समिति ने कुछ अनावश्यक पदों को समाप्त करने की सिफारिश की थी, सरकार द्वारा स्वीकार नही किया गया। जैसे तृतीय विधानसभा में प्रस्तुत अपने पंचम प्रतिवेदन में समिति ने यह मत व्यक्त किया कि राज्य विद्युत परिषद के एडमिनिस्ट्रेटिव ब्रांच में एक सहायक अधीक्षक का पद अनावश्यक प्रतीत होता हैं अतः उसे समाप्त कर दिया जाये किन्तु सरकार ने इसे स्वीकार नही किया ।[3]

इसी प्रकार शासन में कार्य पटुता व मितव्ययिता लाने के लिये प्रक्कलन समिति ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह की थी कि जैसा कि मद्रास तथा महाराष्ट्र में व्यवस्था है, नियोजन और वित्त विभाग को एक ही सचिव के अधीन रखा जाये जिससे कि ऐसे प्रस्तावों जिनकी नियोजन तथा वित्त विभागों द्वारा जो अलग अलग छानबीन की जाती है और जिसमें पर्याप्त समय लग जाता है, उसकी आवश्यकता नही रहेगी और एक ही स्थान पर दोनों प्रकार की छानबीन हो सकेगी। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि वैकल्पि रूप से वित्त विभाग में नियोजन विभाग का एक सेल खोला जा सकता है जिसके द्वारा प्रस्तावों की छानबीन अपने दृष्टिकोण से वित्त विभाग में रहते हुये की जा सकती है किन्तु सरकार द्वारा इन सिफारिशों को स्वीकार नही किया गया[4] अतः स्पष्ट हैं कि

---

1. उन्नीसवां प्रतिवेदन वर्ष 1966–67 पृ0 5
2. –तदैव–
3. विनियोग लेखे 1961–62 तथा लेखा जोखा परीक्षा प्रतिवेदन 1963 पर लोक लेखा समिति द्वारा की गयी सिफारिशों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाहियों पर लोक लेखा समिति की प्रतिक्रिया पृ0 62
4. नवा प्रतिवेदन (सप्तम विधान सभा) पृ0 22–23

कि प्राक्कलन समिति अपनी संस्तुतियों के माध्यम से सरकार पर कोई प्रभावी नियंत्रण स्थापित नही कर सकी ।

(ग) सार्वजनिक उपक्रम समिति द्वारा समय समय पर अपनी सिफारिशें की गयी जिनका उद्देश्य सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यप्रणाली को अधिक उपयोगी बनाने तथा उनमें मितव्ययता लाने के उद्देश्य से आवश्यक सुझाव देना है- पंचम विधानसभा के कार्यकाल में केवल विधान सभा के सदस्यों द्वारा गठित सार्वजनिक उपक्रम समिति द्वारा उ0प्र0 राज कृषि औद्योगिक विकास निगम से सम्बन्धित अपने प्रतिवेदन में यह मत व्यक्त किया कि निगम का अध्यक्ष पूर्णकालिक होना चाहिये तथा वह एक ऐसा गैर सरकारी प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए जिसे कृषि क्षेत्र में विशेष रुचि हो और कृषि सम्बन्धी विषयों का पर्याप्त ज्ञान हो।[1]

उ0प्र0 वित्तीय निगम की पूंजी वृद्धि हेतु सार्वजनिक उपक्रम एवं निगम समिति द्वारा यह सिफारिश की गयी कि उ0प्र0 शासन तथा वित्तीय निगम, रिजर्व बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक एवं अन्य अनुसूचित बैंकों से निवेदन करें कि उ0प्र0 वित्तीय निगम की चुकता पूंजी उनका पर्याप्त योगदान बढ़ाया जावे।[2]

सार्वजनिक उपक्रम व निगम समिति ने उ0प्र0 सहकारी संघ द्वारा मूल्य संरक्षण नीति के अन्तंगत मार्केटिंग वर्ष 1972-73 में की जाने वाली गेंहू की खरीदारी के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया कि "किसानों को हानि से बचाने के लिये उन्हें गेहूँ के उत्पादन व्यय आदि को ध्यान में रखकर ऐसा मूल्य दिलाया जाये जो उचित हो और साथ ही उपभोक्ताओं को भी ऊँचा मूल्य न देना पड़े ।"[3]

इन समस्त वित्तीय समितियों के समुचित विवेचन से पता चलता है कि समिति की रिपोर्टो में महत्वपूर्ण प्रामाणिक जानकारी होने की वजह से जन साधारण और विद्वतजन दोनों के लिये महत्वपूर्ण है। समाचार पत्र पत्रिकाओं

---

1. तीसरा प्रतिवेदन (पंचम विधानसभा) पृ0 11
2. प्रथम प्रतिवेदन (पंचम विधान सभा) पृ024
3. द्वितीय प्रतिवेदन (पंचम विधान सभा) पृ0 3

ने इन रिपोर्टों का व्यापक प्रचार किया जिससे समिति ने सामान्य जनता का ध्यान अपनी ओर खीचा और सरकार की गतिविधियों में उनकी रूचि बढ़ायी है विविध दलों का प्रतिनिधित्व होने के कारण इनकी कार्यनिष्पक्षता पर किसी को आलोचना का अवसर नही मिलता। ये समितियाँ सरकार को वाध्य करती है कि जहाँ तक सम्भव हो सरकारी कार्यक्रम को सुधारे व मितव्ययिता बरतें यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि समिति मात्र सरकार की त्रुटियों की ओर संकेत करती है और मितव्ययिता व कुशलता के उपाय सुझा सकती है। तथापि समिति यह निगरानी रखती है कि उसके द्वारा की गयी सिफारिशों का शीघ्र उत्तर प्राप्त हो और उस पर सरकार कार्यवाही करें । पूरी तरह से विभिन्न सुझावों का कार्यान्वयन अन्ततः सरकार सी करती है।

अन्य- समितियाँ

विधानसभा में अन्य समितियों नें भी समय समय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिनमें समिति ने अपने नियम विहित दायित्वों का समुचित उपयोग करते हुये शासन के कृत्यों की जॉच की तथा व्यवहारिक सुझाव दिये ।

जहाँ तक स्थायी सलाहकार समितियों का प्रश्न हे- विवेचन से ज्ञात हुआ कि इनमें क्रियाशीलता नही रही। क्यों कि ये समितियाँ सदन के प्रति उत्तरदायी नही है अतः इनका कोई प्रतिवदेन सदन में प्रस्तुत नही किया गया। इनका उद्देश्य विभागों में मंत्रियों उपमंत्रियों तथा सदस्यों द्वारा आपस में चर्चा करना रहा तथा इनके सभापति मंत्री रहे। चूँकि ये सलाहकार समितियाँ होती है अतः इनके सुझाव मानना शासन की बाध्यता नही रही । इन समितियों की कार्यवाही का अभिलख नही रखा जाता। यद्यपि कुछ चर्चाओं का सार संक्षेप में प्रेस को दिया जाता है।

इन पर अध्यक्ष का कोई नियंत्रण नही रहता अतः इनकी बैठकें वर्ष में यदाकदा बुलायी गयी और इनसे शासन कहाँ तक लाभान्वित हुआ इसकी सदन को कोई सूचना नही रही। इन समितियों की निष्क्रियता सदस्यगण भी अनुभव करते हैं। अगर इनका स्वरूप बदलकर इन्हें संसदीय समितियाँ बना दिया जाये ।[1]

---

1. विधान सभा संसदीय अध्ययन समिति के पाँचवे प्रतिवेदन से उपलब्ध विवरण पर आधारित (1974)

यद्यपि नियमानुसार सभी समितियों के प्रतिवेदन सदन के समक्ष प्रस्तुत किये जाते है और प्रतिवेदनों की प्रतियॉ सदस्यों में वितरित की जाती है किन्तु कार्यमंत्रणा समिति नियम समिति विशेषाधिकार समिति तथा प्रवर/संयुक्त प्रवर समितियॉ के अतिरिक्त न तो सदन में चर्चा होती है न उसके लिये सदन की औपचारिक स्वीकृति आवश्यक है। सामान्यतः उनके प्रतिवेदनों सदन के पटल पर उपस्थिति करने के बाद सदन द्वारा अनुमोदित मान लिया जाता है और उन्हें शासन से सम्बन्धित विभागों को आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दिया जाता है ।

समितियों के पास ऐसा कोई प्रभावी साधन नही है जिसके द्वारा वे अपनी संस्तुतियों के क्रियान्वयन हेतु सरकार पर दबाव डाल सकें । वे इस सम्बन्ध में केवल सदन को प्रतिवेदित कर सकती हे किन्तु प्रतिवेदनों पर आवश्यक रूप से चर्चा होने का प्रावधान न होने के कारण इस साधन को अधिक प्रभाव कारी नही कहा जा सकता है । चर्चा के प्रावधान से प्रतिपक्ष को सरकार की गलतियों पर विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता जिससे निश्चय ही सदन के नैतिक दायित्व की पूर्ति होती हालाकि जिन प्रतिवेदनों पर सदन में चर्चा होती है और जिनके लिये सदन की औपचारिक स्वीकृति आवश्यक है उनके सम्बन्ध में भी सरकार अपने बहुमत के कारण लाभपूर्ण स्थिति में रहती है । इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि यद्यपि इन सिफारिशों द्वारा अपने नियम विहित दायित्वों का समुचित रूप से निर्वाह करते हुये शासन के कृत्यों की जॉच की गयी परसरकार द्वारा समितियो की संस्तुतियों को गम्भीरतापूर्ण न लिये जाने के प्रयास नही किये गये । सरकार के इस उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण के कारण समितियॉ जिन्हें बहुदलीय प्रतिनिधित्व के कारण लघु सदन की उपाधि दी गयी है के माध्यम से विपक्ष अपनी समितियों में अपनी उपयोगिता, महत्ता व सार्थकता को सही अर्थो में सिद्व नही कर सका । ऐसा तभी होगा जब समिति की सिफारिशों को व्यवहारिक रूप में क्रियान्वित किया जाये ।

फिर भी हमने जिस संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया है उसमें सभी संसदीय मामलों का सूत्रपात मंत्रिमण्डल के हाथों होता है। प्रस्तावों को पेश करने, भेद खोलने, विरोध प्रकट करने तथा सरकार को पदच्युत करने का उद्देश्य रखने वाले प्रभावी दल के अभाव में कोई प्रजातंत्र जीवित नही रह सकता । सदन ने स्वयं ही समितियों की व्यवस्था करके इस अभाव की पूर्ति की है। मंत्रि मण्डल को अपने अधिकार देकर विधानमण्डल ने जो खोया हे उसकी प्रतिपूर्ति समितियों द्वारा किये गये नियंत्रण से सफल हो पायी है। यह कार्य चुपचाप

हो रहा है तथा यह प्रक्रिया विरोधी दलों को अपने अस्तित्व का आभास न कराती हुयी निरन्तर व धीमी गति से चल रही है । विरोधी दलों के लिये जो कार्य असाध्य था समितियों के माध्यम से वह सुसाध्य हो गया है उदाहरण के लिये प्रतिपक्ष का कोई नेता चाहे कितना महत्वपूर्ण क्यों न हो सरकारी अभिलेखों की भनक तक नही पा सकता था, किन्तु समितियाँ, जिनकी पहुँच गोपनीय अभिलेखों के सिवाय अन्य अभिलेखों तक होती है एक भारी मात्रा में वह सूचना प्राप्त कर सकी है जिसे अनुमोदित कार्यविधि के माध्यम से प्राप्त करने में विरोधी दल को दशाब्दियाँ लग सकती थी ।[1]

प्रतिपक्ष की समितियों में भूमिका को अधिक प्रभावी कैसे बनाया जाये इस दृष्टि से निम्न सुझाव उपयोगी हो सकते है।

1. उ0प्र0 विधान सभा की समितियों के संगठन के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया जा सकता है कि वित्तीय समितियों की भाँति अन्य समितियों का भी सदन द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचन किया जाना उचित होगा क्यों कि अध्यक्ष द्वारा उनका नाम निर्देशन जहाँ कुछ अप्रजातांत्रिक प्रतीत होता है वही इससे अध्यक्ष की निष्पक्षता में प्रायः सन्देह भी उत्पन्न हो सकता है। जैसा कि वी0डब्ल्यू मुनरो ने भी लिखा है -''उसको अध्यक्ष को यह शक्ति देना दलगत संघर्ष के मध्य उसके पद की निष्पक्षता की पवित्रता का निषेधकरना होगा[2] इसके साथ ही समितियों के सभापतियों के अध्यक्ष द्वारा मनोनयन की अपेक्षा उनका स्वयं समितियों के सदस्यों द्वारा चयन किया जाना अधिक प्रजातांत्रिक होगा ।

2. समितियों के प्रतिवेदनों पर सदन में आवश्यक रूप से चर्चा होनी चाहिये यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इसका कोई विशेष लाभ न होगा क्योंकि सरकार बहुमत में होने के कारण ऐसी किसी भी सिफारिश को अस्वीकृत कर सकती है जिसे वह पसन्द न करती हो किन्तु इस तथ्य से इंकार नही किया जा सकता कि चर्चा के दौरान सदन में सिफारिशों के पक्ष में व्यक्तमत सरकार को उनको अपनाने के लिये प्रेरित करने में सहायक होगे व सरकार के निरंकुश आचरण को नियंत्रित करेगे ।

3. प्रक्रिया नियमों में संशोधन कर प्रत्येक विधेयक को पुनःस्थापन के उपरान्त आवश्यक रूप से प्रवर/संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया जाये जिससे प्रत्येक विधेयक पर सूक्ष्मता से विचार हो सकेगा तथा विधायन के क्षेत्रों में सरकार की स्वेच्छाचारिता पर नियन्त्रण किया जा सकेगा ।।

---

1. "विधान तंत्र में समितियों की भूमिका" एस0एस0 मालेराव, लोकतंत्र समीक्षा, जनवरी मार्च 1970, वर्ष 2, अंक 2, 83-84.

अध्याय – 9, पीठासीन अधिकारी व विपक्ष

(क) अध्यक्ष और विपक्ष

(ख) उपाध्यक्ष और विपक्ष

(ग) अन्य पीठासीन अधिकारी और विपक्ष

पीठासीन अधिकारी और विपक्ष

जनतांत्रिक शासन व्यवस्था में शासन सदन के प्रति उत्तरदायी होता है इस व्यवस्था में यह आवश्यक है कि सदन की कार्यवाही निर्विघ्न रूप से चले । सदन की कार्यवाही को सुचारू ढ़ंग से चलाने के लिए जहाँ सदस्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होता है वहीं पीठासीन अधिकारी भी प्रमुख धुरी के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि कोई भी वैचारिक सभा किसी ऐसे प्राधिकारी की अनुपस्थिति में जो उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता हो, उचित मर्यादा के अन्तर्गत अपनी कार्यवाही का समुचित संचालन नहीं कर सकती । इसी लिए प्रजातंत्र के विकास के फलस्वरूप स्थापित प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं में प्रारम्भ से ही उनकी अध्यक्षता का प्राविधान रहा है ।

उ0 प्र0 में गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट 1955 द्वारा द्विसदनीय व्यवस्थापिका के गठन का प्राविधान किया गया है जिसमें निम्न सदन को लेजिसलेटिव असेम्बली का नाम दिया गया है [1] इस अधिनियम में यह भी व्यवस्था थी कि लेजिसलेटिव असेम्बली के सदस्य अपने में से ही स्पीकर व डिप्टी स्पीकर का चुनाव करेंगे । जिनका प्रमुख कार्य लेजिसलेटिव असेम्बली की बैठकों की अध्यक्षता (डिप्टी स्पीकर, स्पीकर की अनुपस्थिति में) करना तथा उसकी कार्यवाही का संचालन करना था ।[2]

इसी व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 178 में कहा गया है कि "राज्य की प्रत्येक विधान सभा यथासम्भव शीघ्र अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी तथा जब-जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो जाये तब सभा अन्य किसी सदस्य को यथा स्थिति अध्यक्ष व उपाध्यक्ष चुनेगी" ।

(क) अध्यक्ष व विपक्ष ::

अध्यक्ष का पद विधान सभा का सर्वाधिक प्रतिष्ठित व शक्तिमय पद होता है । अध्यक्ष का प्रमुख कार्य विधान सभा की कार्यवाही को विनियमित करना तथा उसे इस योग्य बनाना है कि विचाराधीन विभिन्न विषयों पर सदन में स्वतंत्रतापूर्वक विचार विनिमय किया जा सके । अध्यक्ष सभा के सर्वोच्च अधिकारी होते हैं उन्हें जो भी शक्तियाँ प्राप्त हैं वे सभी सत्ता से ही प्राप्त हैं । फिर भी स्वयं इन्हीं पीठासीन अधिकारियों की ऐसी मान्यता रही है कि अध्यक्ष अपने सदन का एक निरंकुश स्वामी नहीं अपितु उसका सच्चा वफादार सेवक है ।[3] सभा का प्रमुख प्रवक्ता

1- गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट 1935, धारा 60

2- धारा -65, गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट 1935 ·

3- पीठासीन अधिकारियों के अक्तूबर 1968 में त्रिवेन्द्रम में हुए सम्मेलन के अवसर पर महाराष्ट्र विधान परिषद के तत्कालीन अधिकारियों की समिति का नं0 20(1)

होने के नाते वह उसकी सामूहिक आवाज है और बाहर की दुनिया के लिए सभा का एकमात्र प्रतिनिधि[1] ।1949 के पीठासीन अधिकारियों के अधिवेशन में अध्यक्ष श्री जी0वी0 मावलंकर ने सभा के अध्यक्ष को द्वितीय प्रधानमंत्री की संज्ञा दी ।[2]

अध्यक्ष का निर्वाचन एवं विपक्ष ::

विधान सभा सदस्यों के शपथ अथवा प्रतिज्ञान के बाद पहला कार्य अध्यक्ष का निर्वाचन होता है । इस प्रक्रिया में केवल शपथग्रहण किए हुए सदस्य ही भाग लेने के लिए अर्ह होते हैं ।[3] लोक सभा में ऐसा ही प्राविधान है । किन्तु ब्रिटेन में हाउस आफ कामन्स के सदस्यगण पहले अध्यक्ष का चुनाव करते हैं तत्पश्चात शपथग्रहण करते हैं[4]

अध्यक्ष का निर्वाचन राज्यपाल द्वारा नियत तिथि को किया जाता है ।[5] और सचिव विधान सभा इसकी सूचना प्रत्येक सदस्य को भेजते हैं । उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमों में यह व्यवस्था है कि अध्यक्ष निर्वाचन के लिए नियत की गयी तिथि के पूर्व दिन के मध्यान्ह के पहले किसी समय कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य का नाम निर्देशन पत्र , सचिव , विधान सभा को प्रस्तुत कर सकता है परन्तु वह तभी स्वीकार होगा जब उस प्रस्थापक तथा समर्थक के रूप में दो सदस्यों के हस्ताक्षर हों और साथ ही उस सदस्य जिसका नाम प्रस्थापित किया गया हो, का यह कथन भी संलग्न हो कि वह निर्वाचित होने पर अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तैयार है [6]

इंग्लैण्ड में अध्यक्ष पद के लिए किसी सदस्य के नाम की प्रस्थापना व समर्थन प्रथागत रूप में गैर सरकारी सदस्यों द्वारा, जो अधिकतर पीछे की पंक्ति के होते हैं, किया जाता है किन्तु भारत वर्ष में अभी तक ऐसी कोई प्रथा विकसित नहीं हो पाई है और लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में प्रधानमंत्री अथवा मुख्य मंत्री या मंत्रिमण्डल के अथवा शासक-दल के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा प्रस्थापक व समर्थक का कार्य किया जाता है ।

1- कौल महेश्वरनाथ एवं शकधर श्यामलाल- संसदीय प्रणाली व व्यवहार, मध्यप्रदेश हिन्दीग्रन्थ एकादमी भोपाल, पृ0 ।04

2- प्रोसीडिंग्स आफ दि कान्फ्रेन्स आफ प्रिसाइडिंग्स आफीसर्स आफ लेजिसलेटिव बाडी इन इण्डिया , पृ0 25, ।949

3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियम 8 (4)

4- मोर एस0एस0,"प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ इण्डियन पार्लियामेंट, वाम्बे, थैकर एण्ड कम्पनी,।960,पृ0 73.

5- उ0 प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियम 8 (।)

6- तदैव नियम 8 (2)

अध्यक्ष का निर्विरोध निर्वाचित होना एवं उसका निर्दलीय स्वरूप समाज की उस राजनीतिक परिपक्वता का प्रतीक है जो कि लोकतंत्रीय व्यवस्था की प्रमुख आधारशिला है । निर्वाचित हो जाने के पश्चात वह किसी दल विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करता , अपितु सम्पूर्ण सदन का प्रतिनिधित्व करता है । लेकिन उ0प्र0 विधान सभा में परम्परानुसार अध्यक्ष का पद पूर्णतः दलीय राजनीति से प्रथक नहीं हो सका । ब्रिटेन में 1839 से अध्यक्ष पद का निर्वाचन विरोधी दल को विश्वास में लेकर सर्वसम्मति से करने की प्रथा है ।[1] एक बार जो व्यक्ति अध्यक्ष हो जाता है प्रायः तब तक अपने पद पर बना रहता है , जब तक कि उसमें कार्य करने की क्षमता रहती है, भले ही सरकारें क्यों न बदलती रहें , वह अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब पद से अलग हो सकता है , पर किसी अन्य व्यक्ति को स्पीकर का पद तभी प्राप्त होता है जबकि पुराना स्पीकर तैयार न हो ।[2] किन्तु भारत में संसद से लेकर विधान मण्डलों तक ऐसी परम्परा का अभाव है । लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अध्यक्ष का आचरण पक्षपातपूर्ण होता है उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को दलों व राजनीति से अलग रखेगा ।[3] निष्पक्ष स्थिति के कारण ही अध्यक्ष को निर्वाचन के पश्चात सदन के नेता और विपक्षी नेता द्वारा अपने स्थान तक ले जाया जाता है । सरदार हुकुम सिंह के अनुसार यह इस बात का प्रतीक है कि वे सदन के सभी पक्षों की तरफ से अध्यक्ष को पूर्ण सहयोग का बचन देते हैं ।[4]

उ0 प्र0 विधान सभा में अध्यक्ष के निर्वाचन हेतु प्रस्तुत नाम निर्देशन पत्रों के प्रस्थापक व समर्थक सदस्यों का विश्लेषण निम्नवत् है :-

विधानसभा	प्रस्तुत नाम निर्देशन पत्रों कीसं0	नाम निर्देशित सदस्य	प्रस्थापक व समर्थक सदस्यों के नाम
1	2	3	4
प्रथम	3	1-कुँवर बलबीर सिंह	श्री रघुवीर सिंह
		2-श्री आत्माराम गोबिंदखेर	गोबिन्द बल्लभ पन्त
		3-श्री निहालुद्दीन	श्री राजनारायण
द्वितीय	3	1-श्रीआत्माराम गोबिन्दखेर	श्रीमंगलाप्रसाद,सम0मुजफ्फर हसन
		2- तदैव	प्रस्था0 डा0सम्पूर्णानन्द, सम0श्रीनारायणदत्ततिवारी
		3-तदैव	प्रस्था0श्रीकमलापतित्रिपाठी,सम0श्रीविचित्रनारायणशर्मा

1- पुनेट एम0बी0,ब्रिटिश गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स,हीनमान प्रेस-1971 पृ0223
2- फाइनर हरमन -थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मार्डन गवर्नमेंट,लन्दन मैथ्यूयेन एण्ड कं0 1956 पृ0475-482
3- मावलंकर जी0वी0-दि आफिस आफ दि स्पीकर, दि जर्नल आफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन खं0-3,1956,पृ033
4- तदैव , दि जर्नल आफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन खण्ड -8(1)1962 पृ0 6

1	2	3	4
तृतीय	2	श्री नेकराम शर्मा	प्रस्था0 शिवदान सिंह , श्री अ0 बशीर समर्थक,श्रीबालाजी अग्रवाल,श्री भूपसिंह
		2- श्रीमदनमोहन वर्मा	प्रस्था0 श्रीचन्द्रभानुगुप्त (मुख्यमंत्री) श्री कमलापति त्रिपाठी (मंत्री) समर्थक- श्री जगदीशशरण अग्रवाल श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा
चतुर्थ	3	श्रीगंगाराम	प्रस्था0 श्री रामचन्द्र विकल, श्री झारखण्डे राय समर्थक- श्री उग्रसेन,श्रीरामदत्त
		2-श्रीराम नारायण	पस्था0 -श्री बनारसीदास, श्री रामचन्द्र आजाद समर्थक-श्री अवधेश प्रताप मल्ल
		3-श्री जगदीशशरण अग्रवाल	प्रस्था0 -श्री नवल किशोर (उपमंत्री) समर्थक-श्री मुजफ्र हसन (राज्यमंत्री)
पंचम	4	श्रीआत्माराम गोबिन्द खेर	प्रस्था0 श्री चन्द्रभानु गुप्त(मुख्यमंत्री) समर्थक- श्रीकमलापतित्रिपाठी(मंत्री)
		- तदैव -	प्रस्था0 श्री चौधरी चरण सिंह (मंत्री) समर्थक-श्री लक्ष्मीरमण आचार्य(मंत्री)
		- तदैव -	प्रस्थाक- श्री माधवप्रसाद त्रिपाठी समर्थक- श्री हरबंश प्रसाद
		- तदैव -	प्रस्था0 श्री चतुर्भुज शर्मा समर्थक- श्री हरबंश प्रसाद
षष्टम	4	श्री बासुदेव सिंह	प्रस्था0- श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा समर्थक- श्रीमती सरस्वती टमटा
		- तदैव -	प्रस्था0 श्री चरण सिंह समर्थक- श्री लक्ष्मीशंकर यादव
		- तदैव -	प्रस्था0- श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी समर्थक- श्री चन्द्रशेखर सिंह
		- तदैव -	प्रस्था0- श्री नारायण दत्त तिवारी समर्थक- श्री नियाज हसन खाँ
सप्तम	4	श्री बनारसीदास	प्रस्थापक- श्री रामप्रकाश समर्थक- श्री रेवती रमण सिंह
		- तदैव -	प्रस्था0 - श्री सत्यप्रकाश माल्वीय समर्थक- श्री हरीश चन्द्र

1	2	3	4
		श्री बनारसीदास	प्रस्था0 श्री सत्यदेव त्रिपाठी ,समर्थक- श्री छोटेलाल
		- तदैव -	प्रस्था0 - श्री सत्यप्रकाश समर्थक- श्री गणेशदत्त बाजपेयी
अष्टम	3	श्री श्रीपति मिश्र	प्रस्था0 -श्री जगदीश प्रसाद समर्थक- श्री रामरतन सिंह
		- तदैव -	प्रस्था0 -श्री लोकपति त्रिपाठी समर्थक- श्रीमती स्वरूप कुमारीबक्शी
		-तदैव-	प्रस्था0 -श्री अम्मार रिजवी समर्थक- श्री प्रताप नारायण

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए नाम निर्देशन पत्र अधिकांशतः दलीय आधार पर ही प्रस्तुत हुए । द्वितीय, पंचम, षष्टम, सप्तम तथा अष्टम विधान सभा में नाम निर्देशन पत्रों का प्रस्थापन व समर्थन सम्मिलित रूप से शासक दल द्वारा व विपक्ष द्वारा किया गया । यह संभवतः शासन व विरोध पक्ष की पारस्परिक सहमति का परिणाम था तया प्रथम, तृतीय व चतुर्थ विधान सभा में विपक्ष के उम्मीदवार के नाम की प्रस्थापना व समर्थन विपक्षी सदस्यों द्वारा ही किया गया और तत्कालीन शासक दल कांग्रेस की ओर से प्रस्तुत नाम निर्देशन पत्र उसके वरिष्ठ सदस्यों(मुख्यमंत्री व मंत्रीगण भी) द्वारा प्रस्थापित व समर्थित थे , विवरण निम्नवत् है :-

प्रथम विधान सभा में तीन नाम निर्देशन पत्र प्राप्त हुए इनमें से दो सत्ता पक्ष व एक विरोध पक्ष का था परन्तु सत्ता पक्ष के कुँवर बलबीर सिंह के नाम के प्रस्तावक श्री रघुवीर सिंह ने अपना नाम निर्देशन पत्र वापस ले लिया शेष दो उम्मीदवारों सत्ता पक्ष के श्री आत्माराम गोबिन्द खेर तथा विरोध पक्ष के श्री निहालुददीन के नाम से क्रमशः चार व दो नामांकन पत्र भरे गये । सत्ता पक्ष के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त मुख्यमंत्री श्री गोबिन्द बल्लभ पन्त ने भी प्रस्थापक के रूप में एक नामांकन पत्र दिया यद्यपि विरोध पक्ष ने सर्व सम्मति से अध्यक्ष को चुनने का काफी प्रयास किया तथापि यह पद निर्विरोध इस लिए न रह सका कि सत्ता पक्ष विरोध पक्ष के किसी सदस्य को उपाध्यक्ष निर्वाचित करने के प्रश्न पर सहमत न हो सका । इस तरह के विचार विरोध पक्ष के नेता श्री राजनारायण ने नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री खेर के चुने जाने पर उन्हें बधाई देते हुए व्यक्त किये ।

चुनाव में श्री खेर को 366 तथा श्री निहालुद्दीन को 24 मत प्राप्त हुए । हिन्दू महासभा, भारतीय जनसंघ व किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विधान सभा के संयुक्त मोर्चे में व 10 निर्दलीय सदस्यों ने मतदान में भाग नहीं लिया । एक मत अवैध घोषित हुआ ।[1]

द्वितीय विधान सभा में सत्ता पक्ष व प्रतिपक्ष की परस्पर सहमति से एक स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात हुआ जिसमें उपाध्यक्ष पद प्रतिपक्ष को दे दिया गया । परिणाम स्वरूप 10 अप्रैल 1957 को अध्यक्ष पद पर श्री आत्माराम गोबिन्द खेर सर्व सम्मति से निर्वाचित हुए ।[2]

तृतीय विधान सभा में अध्यक्ष पद के लिए सत्ता पक्ष के श्री मदन मोहन वर्मा के अतिरिक्त निर्दलीय सदस्य श्री नेकराम शर्मा का भी नाम निर्देशन पत्र प्राप्त हुआ किन्तु प्रतिपक्ष की सूझबूझ के कारण अध्यक्ष का निर्वाचन सर्वसम्मति से हुआ । क्योंकि निर्दलीय सदस्य श्री नेकराम शर्मा ने प्रतिपक्षी नेताओं के परामर्श से सदन की मान मर्यादा व महत्ता व गरिमा को ध्यान में रखते हुए स्वस्थ परम्परा बनाये रखने के उद्देश्य से अपना नाम वापस ले लिया और श्री वर्मा निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुए ।[3]

चतुर्थ विधान सभा में अध्यक्ष पद के लिए मतदान आवश्यक हो गया था । क्योंकि श्री जगदीश शरण अग्रवाल के अतिरिक्त दो नाम निर्देशन पत्र श्री गंगाराम (जनसंघ) व श्री रामनारायण (कांग्रेस) प्राप्त हुए थे । जिनमें से श्री रामनारायण ने कार्यकारी अध्यक्ष को लिखित सूचना देकर अपने दल के प्राधिकृत उम्मीदवार श्री जगदीश शरण अग्रवाल के पक्ष में अपना नाम वापस ले लिया किन्तु प्रतिपक्ष के श्री गंगाराम ने अपना नाम वापस नहीं लिया । अतः 17 मार्च 1967 को श्री अग्रवाल व श्री गंगाराम के मध्य चयन हेतु मतदान हुआ । पीठासीन अधिकारी श्री खूबसिंह ने निम्न परिणाम सदन में घोषित किया :- "कुल 417 मतपत्र जारी हुए और डाले गये. उनमें से 3 मतपत्र अवैध घोषित हुए शेष 414 में 226 मत श्री जगदीश शरण अग्रवाल को तथा 188 मत श्री गंगाराम को प्राप्त हुए"[4] इस प्रकार श्री जगदीश शरण अग्रवाल (कांग्रेस) चतुर्थ विधान

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 101 पृ0 16
2- -तदैव- खण्ड 182 पृ0 11
3- - तदैव - खण्ड 228 , पृ0 6
4- - तदैव - खण्ड 217, पृ0 12, 17 मार्च 1967

सभा अध्यक्ष निर्वाचित हुए । स्पष्ट है कि इस निर्वाचन में विपक्षी दलों में मतैक्य न होने के कारण श्री जगदीश शरण अग्रवाल (कांग्रेस) को प्रतिपक्ष के भी मत प्राप्त हुए क्योंकि सदन में कांग्रेस के निर्वाचित सदस्यों की संख्या केवल 199 थी और उसे सदन के सबसे बड़े व कुछ निर्दलीय सदस्यों के समर्थन के कारण ही मंत्रिमंडल बनाने को आमंत्रित किया गया था ।

पंचम विधान सभा में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त द्वारा उपाध्यक्ष पद विपक्ष को देने के आश्वासन के कारण अध्यक्ष पद के लिए कांग्रेस उम्मीदवार श्री आत्माराम गोबिन्द खेर के लिए ही चार नाम निर्देशन पत्र सत्ता पक्ष व विरोध पक्ष की ओर से प्रस्तुत हुए अतः मतदान का कोई प्रश्न ही नहीं था और श्री खेर निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुए।[1]

षष्टम विधान सभा में अध्यक्ष पद के लिए कांग्रेसी उम्मीदवार श्री बासुदेव सिंह के लिए चार नाम निर्देशन पत्र सत्ता पक्ष व विपक्ष की ओर से प्रस्तुत हुए अतः श्री बासुदेव सिंह निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुए ।[2]

सप्तम विधान सभा में 12 जुलाई 1977 को उ0 प्र0 विधान सभा अध्यक्ष पद का निर्वाचन हुआ इसमें चार नाम निर्देशन पत्र प्राप्त हुए जिन सबमें श्री बनारसीदास का नाम प्रस्तावित किया गया अतः श्री बनारसीदास निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुए[3]

अष्टम विधान सभा में भी अध्यक्ष पद पर निर्विरोध निर्वाचन हुआ क्योंकि सत्ता पक्ष व प्रतिपक्ष की श्री श्रीपति मिश्र के नाम पर पूर्ण सहमति थी इसमें 3 नाम निर्देशन पत्र प्राप्त हुए और सभी श्री श्रीपति मिश्र के नाम थे । अतः श्री मिश्र निर्विरोध उत्तर प्रदेश विधान सभा अध्यक्ष निर्वाचित हुए ।[4]

अध्यक्ष के निर्वाचन सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा अध्यक्ष पद अधिकांशतः विपक्ष की सहमति से सत्तारूढ़ दल को प्राप्त हुआ तथा चतुर्थ विधान सभा को छोंड़ कर किसी भी विधान सभा में प्रतिपक्ष ने मतदान द्वारा अध्यक्ष के निर्वाचन की प्रक्रिया पर जोर नहीं दिया तथा विपक्षी दलों की ओर से प्रस्तुत नाम निर्देशन पत्रों को वापस लेकर प्रतिपक्ष ने एक स्वस्थ राजनीतिक परम्परा की स्थापना में योगदान किया ।

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 276 पृ06
2- - तदैव - खण्ड 306, पृ05
3- - तदैव - खण्ड 325, पृ0 6
4- - तदैव - खण्ड 344, पृ0 54

अध्यक्ष व दलगत राजनीति ::

ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स का अध्यक्ष अपने पद पर निर्वाचित होने के बाद विधान सभा के किसी भी दल का सदस्य नहीं रहता[1] तथा इंलैण्ड के आम चुनावों में अध्यक्ष पद के लिए सामान्यतया प्रतिद्वन्द्विता नहीं रहती ।[2] भारत में पीठासीन अधिकारियों को उच्च गरिमामय पद को दलीय राजनीति व विवादों से पृथक रखने के लिए साधारणतया इंग्लैण्ड की परम्पराओं के अनुशरण का सुझाव दिया जाता है । पीठासीन अधिकारियों की पांगे समिति की यह स्पष्ट संस्तुति रही है - "कि अध्यक्ष के लिए न केवल निर्विरोध चुनाव सुनिश्चित किया जाय वरन जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव या पुनः चुनाव लड़ता है वहाँ से कोई अन्य व्यक्ति चुनाव न लड़े ।[3] सन् 1953 में ग्वालियर में तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री जी0वी0 मावलंकर के सभापतित्व में हुये अध्यक्षों के सम्मेलन में यह संकल्प पारित किया गया - "कि ऐसी परिपाटी बनायी जाये कि जिस स्थान से अध्यक्ष पुनः चुनाव के लिए खड़ा हो, वहाँ उसके विरोध में कोई अन्य प्रत्याशी खड़ा न हो[4] इसे एक बार सिद्धान्ततः स्वीकार करते हुए उ0प्र0 विधान सभा के विपक्ष के नेता श्री गेंदा सिंह ने कहा - "आज भी हमारे देश में यह दुर्भाग्य की बात है कि अध्यक्ष ओर चेयमैन भी किसी पार्टी के टिकट से चुनकर आते हैं । यह मेरी महत्वाकांक्षा है कि अध्यक्ष और चेयरमैन बिना किसी पार्टी के टिकट पर चुनकर यहाँ आयें"[5] लेकिन व्यवहार में इस प्रथा का अनुशरण नहीं किया जा सका है । दलीय सम्बन्ध बनाये रखने के विषय में 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित उ0प्र0विधान सभा अध्यक्ष स्व0 पुरूषोत्तमदास टण्डन ने विचार व्यक्त करते हुए कहा "मैं कामन्स सभा के आचारों में विश्वास नहीं रखता , मैं फ्रान्स, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उन अन्य राज्यों के आचारों में विश्वास करता हूँ जो अध्यक्ष को राजनीति में भाग लेने की अनुमति देते हैं , यदि वह ऐसा नहीं करता तो आप एक तृतीय कोटि के व्यक्ति या एक काम चलाऊ व्यक्ति या एक न्यायकर्ता को पा सकते हैं किन्तु एक सफल राजनीतिज्ञ को नहीं ।[6] ऐसे ही विचार लोक सभा के प्रथम अध्यक्ष श्री जी0वी0 मावलंकर ने व्यक्त

1- हरवर्ट मारीशन , गवर्नमेंट एण्ड पार्लियामेंट, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1964, पृष्ठ - 203-204

2- आइवर जैनिग्स, पार्लियामेंट, 1970 पृ0 67

3- पीठासीन अधिकारियों के अक्तूबर 1968 में त्रिवेन्द्रम में हुए सम्मेलन के अवसर पर महाराष्ट्र विधान परिषद के सभापति श्री वी0एस0 पाँगे की अध्यक्षता में गठित समिति के प्रतिवेदन का पैरा 34

4- मावलंकर जी0वी0 , स्पीचिंग एण्ड राइटिंग्स , नई दिल्ली , लोकसभा सचिवालय, 1957, पृ0 39

5- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही,खण्ड 180, 12 अक्तूबर 1956 पृ0 147

6- मावलंकर जी0वी0, स्पीचिंग एण्ड राइटिंग , नई दिल्ली लोकसभा सचिवालय 1957 पृ0 40

किये कि - "अध्यक्ष राजनीति से उतना अलग नहीं रह सकता जितना कि ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स का रहता है । परन्तु भारतीय अध्यक्ष , अध्यक्ष के नाते दलों से अलग रहेगा , इसका मतलब यह है कि वह दलों के विचार विमर्श और विवादों से अलग रहेगा परन्तु केवल इस कारण कि वह अध्यक्ष बन गया है राजनीतिज्ञ के रूप में उसका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता ।"[1]

फिर भी उ0प्र0 विधान सभा में अध्यक्ष पद सम्बन्धी इग्लैण्ड की परम्पराओं को अपनाने अर्थात अपने को सक्रिय तथा दलगत राजनीति से ऊपर निष्पक्ष आचरण करने का आश्वासन व सुझाव अध्यक्ष चुने जाने के बाद दिया जाता रहा है -

प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष श्री पुरूषोत्तम दास टण्डन का विचार था- "राजनीति में हिस्सा लेना किसी व्यक्ति के न्याय के मार्ग में कोई रूकावट नहीं डालता यह न ही सही फैंसला देने से रोंकता है और न ही उसमें कठिनाई पैदा करता है"[2] श्री टण्डन का कथन था कि - मेरे जो भाई अपोजीशन में हैं , अगर यह समझते हैं कि राजनीति यानी सियासी मामलों में मेरा हिस्सा लेना ठीक नहीं है और साथ में यह भी समझते हैं कि मेरे राजनीति में हिस्सा लेने से मेरे ऊपर उनका भरोसा कम हो जायेगा तो मेरा उनसे यह कहना है कि मैं बहुमत के बल पर यहाँ नहीं रहूँगा । अगर सिर्फ विपक्ष के सदस्य मुझसे यह कहें कि हमारा आप पर भरोसा नहीं है तो मैं किसी से पूँछने नहीं जाऊँगा बल्कि आप ही मेरा त्यागपत्र चला जायेगा ।[3]

श्री टण्डन के उत्तराधिकारी श्री नफीसुल हसन का यह विचार था -"मैं अपने लिए यह मुनासिब समझता हूँ कि मैं जब तक अध्यक्ष पद पर रहूँ राजनीति में कोई हिस्सा न लूँ ।"[4]

श्री आत्माराम गोबिन्द खेर ने अपने दोनों पूर्वाधिकारियों के मध्य का मार्ग स्वीकार किया उनके अनुसार - "मुझे कोई बीच का रास्ता अपने लिए निश्चित करना है और वह रास्ता है कि जिस समय कोई विवादास्पद राजनीतिक संघर्ष की बातें होंगी तो उन बातों में भाग न लेने का मेरा निश्चय है । समय-समय पर राजनीति के ऊपर जो विवादास्पद न हों , जिससे राजनीतिक संघर्ष न हो ऐसे प्रश्नों पर विचार-विनिमय अवश्य करूँगा ।[5]

1-मावलंकर जी0वी0 , स्पीचिंग एण्ड राइटिंग , नई दिल्ली लोक सभा सचि0 1957
2- उ0 प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड -30 पृ0 12-13
3- - तदैव - खण्ड-30 पृ0 318
4- - तदैव - खण्ड- 85 , पृ0 97
5- - तदैव - खण्ड 101, पृ0 22

तृतीय विधान सभा अध्यक्ष श्री मदन मोहन वर्मा की भी लगभग यही स्थिति रही और जब विपक्षी नेताओं ने उनसे हाउस आफ कामन्स के अध्यक्ष की भाँति निर्दलीय होने की अपील की तो इसके प्रत्युत्तर में श्री वर्मा का कथन था कि - मैं उस परम्परा को जो ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रचलित है , एक आदर्श परम्परा समझता हूँ , उस परम्परा का दूसरा अंचल यह कि उसका चुनाव उसके निर्वाचन क्षेत्र में सुरक्षित रहता है । - ----आंशिक रूप से यह परम्परा व्यवहारिक नहीं है फिर भी मैं अतिशय निष्पक्षता से इस सदन में बैठ कर अपने निर्णय दूँगा"[1]

श्री वर्मा के उत्तराधिकारी श्री जगदीश शरण अग्रवाल का कथन था कि "मैं इस पद पर बैठने के बाद कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मेरा सम्बन्ध किसी विशेष दल से है।"[2]

तदुपरान्त प्रो0 बासुदेव सिंह ने भी अध्यक्ष चुने जाने के बाद अपने को दलगत राजनीति से परे रखने का आश्वासन दिया ।

जनता पार्टी के सदस्य के रूप में उ0प्र0 विधान सभा के निर्विरोध अध्यक्ष चुने जाने के बाद श्री बनारसीदास ने सदन को विश्वास दिलाया कि -"मैं राजर्षि टण्डन व अपने अन्य पूर्व अधिकारियों के पद चिन्हों पर चलूँगा ।"[3]

ऐसा ही विचार अष्टम विधान सभा अध्यक्ष श्री श्रीपति मिश्र ने जुलाई 1980 को सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुने जाने के बाद व्यक्त किया था कि - "मेरे एक माननीय सदस्य ने राजर्षि टण्डन जी का नाम लेकर जो कहा तब से मैं अपने को बहुत छोटा समझने लगा हूँ कि मैं ऐसे महान व्यक्ति की कुर्सी में बैठकर अपने कार्य का निर्वाह न कर सकूँगा ? उनके जो आदर्श थे वे उसी तरह हमारे सामने रहेंगे और उनके मार्गदर्शन को सामने रखकर ही सदन का कार्य करूँगा ।"[4]

किन्तु इन सब आश्वासनों के बावजूद उत्तर प्रदेश विधान सभा में अध्यक्ष पद निष्पक्षता व विश्वास की अभिवृद्धि करने में असफल रहा । पिछले 35 वर्ष के इतिहास से यह स्पष्ट है कि 1962 के उपरान्त कोई भी व्यक्ति अध्यक्ष पद पर ऐसा नहीं आया जो अध्यक्ष पद को मंत्रिपरिषद के पद से गौरवशाली समझता हो और हर एक अध्यक्ष का यह प्रयास रहा कि वह किसी न किसी प्रकार मंत्रिमण्डल में ले लिया

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 228, पृ0 11-12
2- - तदैव - खण्ड - 271 पृ0 13
3- - तदैव - खण्ड - 325, पृ0 11
4- - तदैव - खण्ड - 341, 7 जुलाई 1980

जाये और क्रमशः अध्यनाधीन विधान सभा अध्यक्ष मंत्रिमण्डल में लिये गये जिससे अध्यक्ष पद की गरिमा को समय-समय पर ठेस लगी तथा प्रतिपक्ष के प्रति निष्पक्ष रहने के उत्तरदायित्व का इन अध्यक्षों द्वारा पालन नहीं किया गया जोकि समय-समय पर प्रतिपक्ष द्वारा अध्यक्ष पीठ के प्रति किये गये व्यवहार व रखे गये अविश्वास प्रस्तावों से परिलक्षित होता रहा है - उदाहरणार्थ- पाँचवीं विधान सभा के निर्विरोध निर्वाचित अध्यक्ष श्री आत्माराम गोबिन्द खेर, जोकि तीसरी बार विधान सभा अध्यक्ष चुने गये थे तथा निर्वाचन के बाद श्री खेर ने अपने दल कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया था, के प्रति पंचम विधान सभा के बजट सत्र में 26 अगस्त 1969 को विरोधी दलों के सदस्यों ने अत्यन्त अपमानपूर्ण व्यवहार किया क्योंकि उन्होंने जेल व नागरिक सुरक्षा विभाग के अनुदान की माँगों पर विपक्ष द्वारा उपस्थित विभाजन की माँग को अस्वीकार कर दिया था एवं उनके त्यागपत्र की माँग की गयी ।[1]

अध्यक्ष को पद से हटाने के संकल्प ::

अध्यक्ष का पद गरिमा व विश्वास का पद है तथा सदन के विश्वास पर्यन्त ही अध्यक्ष का अस्तित्व है । सदन के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा वे अपने पद से हटाये जा सकते हैं । दूसरे शब्दों में अध्यक्ष यदि अपने दायित्वों का पालन सही ढंग से नहीं करता है तो संविधान इस बात का अधिकार देता है कि अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सदन अपने बहुमत के बल पर उसे पद्च्युत कर दे ।[2]

उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली में इसकी प्रक्रिया का विस्तृत उल्लेख है - नियम 270 के अनुसार अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष को हटाने के संकल्प को प्रस्तावित करने के इच्छुक सदस्य को अपने अभिप्राय की लिखित सूचना सचिव, विधान सभा को 14 दिन पूर्व देनी होती है , इसके पूर्व ऐसा संकल्प सदन की अनुज्ञा हेतु प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जिस सदस्य के नाम में संकल्प हो वह उसे वापस ले सकता है , परन्तु ऐसा न करने पर वह संकल्प को सदन की अनुज्ञा हेतु उपस्थित करता है और संकल्प लाने के कारणों का संक्षिप्त में उल्लेख करता है ।[3] यदि सदन में उपस्थित सदस्यों के पंचमाश या इससे अधिक सदस्य अनुज्ञा के पक्ष में खड़े होते हैं तो प्रस्तुत संकल्प को सदन की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती है अन्यथा वह समाप्त समझा जाता है ।[4]

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 279 पृ0 605

2- भारत का संविधान अनुच्छेद 179 (सी)

3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियम 271 (1)

4- -तदैव - नियम 271 (2)

सदस्यगण ऐसे संकल्पों पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सकें इसके लिए संविधान में प्राविधान है कि -"विधान सभा की किसी बैठक में जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को उनके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष उपस्थित रहने पर भी पीठासीन न होंगे"[1]

अध्यक्ष के कर्तव्य के सम्बन्ध में सुभाष कश्यप ने लिखा है कि -"अध्यक्ष का यह धर्म कदापि नहीं है कि वह सदन की आवाज घोंट दे , उसे यह अधिकार नहीं कि जब सदन के लिए बैठक करना आवश्यक हो तब उसकी बैठक नहीं होने दे , उसके लिए यह भी उचित नहीं कि जब किसी मंत्रिपरिषद में सभा के बहुमत का विश्वास न रहा हो तब वह मंत्रिमण्डल की रक्षा करने के लिए सदन का स्थगन कर दे अथवा जब उसके विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाये तब सभा को उस पर चर्चा करने का अवसर ही न दे"[2] .

किन्तु उ0प्र0 विधान सभा में दुर्भाग्यवश अध्यक्ष प्रतिपक्ष की दृष्टि में अपने निष्पक्ष आचरण में असमर्थ रहा तथा कई अवसरों पर उसके द्वारा दी गयी व्यवस्था में दलीय सम्बद्धता तथा विपक्ष की भावनाओं का अनादर व माँगों को अस्वीकार करने का भाव व्यक्त किया गया । अतः प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिपक्ष द्वारा तीव्र असंतुष्टि व अध्यक्ष के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये विवरण निम्नवत् है :-

उ0 प्र0 विधान सभा में सर्वप्रथम 19 मार्च 1959 को समाज वादी दल के सदस्य श्री रामस्वरूप वर्मा द्वारा अध्यक्ष के विरूद्ध प्रथम अविश्वास प्रस्ताव रखा गया यह प्रस्ताव श्री आत्माराम गोबिन्द खेर के विरूद्ध लाया गया जोकि सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गये थे तथा प्रथम विधान सभा के कार्यकाल में पूर्ण संतुष्टि के साथ अपने पद के दायित्वों का निर्वाह करने में सफल रहे । इस संकल्प को माननीय अध्यक्ष ने नियमानुकूल घोषित किया और एक स्वस्थ परम्परा स्थापित करने हेतु सदन के बाहर चले गये तथा श्री उपाध्यक्ष ने आसन गृहण किया । इस संकल्प में प्रस्तावक श्री राम स्वरूप वर्मा ने तीन आरोप लगाये कि माननीय अध्यक्ष ने श्री नेकराम शर्मा के विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न पर एकपक्षीय निर्णय दिया । माननीय अध्यक्ष ने प्राकृतिक न्याय के अनुसार श्री रामनारायण को व्यक्तिगत सफाई देने का अवसर नहीं दिया । माननीय अध्यक्ष महोदय की व्यवस्था उक्त संदर्भ में सर्वथा अलोकतांत्रिक , अमर्यादित तथा सत्य पर पर्दा डालने वाली थी । लेकिन जब संकल्प को अनुज्ञा के लिए रखा गया तो मात्र 24 सदस्य समर्थन में खड़े हुए । यह संख्या पंचमांश से कम थी अतः प्रस्ताव को अनुज्ञा न मिली व प्रस्ताव विवादार्थ स्वीकृत न हो सका ।[3]

1- भारत का संविधान , अनुच्छेद 181

2- काश्यप सुभाष, अध्यक्ष की भूमिका , लोकतंत्र समीक्षा, अंक तीन, वर्ष-1 पृ0 7

3- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड 203, पृ0 621

तृतीय विधान सभा के निर्विरोध निर्वाचित अध्यक्ष श्री मदन मोहन वर्मा को सम्भवत: प्रतिपक्ष की आलोचना व विरोध का सर्वाधिक सामना करना पड़ा क्योंकि उनके 5 वर्षीय कार्यकाल में उनको पदच्युत करने के उद्देश्य से प्रतिपक्ष द्वारा चार संकल्प लाये गये श्री वर्मा के विरूद्ध सर्व प्रथम 28 मई 1962 को निर्दलीय सदस्य श्री दीप नारायण सिंह ने निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किया :-

"दिनॉंक 4 मई 1962 से 17 मई 1962 तक माननीय जस्टिस मुल्ला व उनके सम्बन्धित निर्णय के सम्बन्ध में माननीय मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त के आक्षेपों के बारे में माननीय अध्यक्ष, उ0प्र0 विधान सभा द्वारा जो व्यवस्था , विनिश्चय व निर्णय दिये गये उनमें सदन के अवमान और विशेषाधिकार की अवहेलना तथा संविधान की उपेक्षा होती है , इसलिए सदन का निश्चय है कि माननीय श्री मदन मोहन वर्मा को अध्यक्ष पद से हटा दिया जाये"[1] लेकिन जब उपाध्यक्ष ने संकल्प को सदन में अनुज्ञा हेतु प्रस्तुत किया तो सदन का कोई भी सदस्य संकल्प के समर्थन में खड़ा नहीं हुआ फलस्वरूप संकल्प बिना विवाद के समाप्त हो गया ।[2]

तृतीय विधान सभा में अध्यक्ष को पद्च्युत करने का दूसरा संकल्प 22 अक्तूबर सन् 1962 को निर्दलीय सदस्य श्री नेकराम शर्मा द्वारा सदन के पटल पर रखा गया । इस प्रस्ताव पर प्रजा शोसलिस्ट पार्टी, हिन्दू महासभा, निर्दलीय दल , रिपब्लिकन पार्टी व स्वतंत्र दल के सदस्यों के हस्ताक्षर थे । प्रस्ताव में किसी कारण का उल्लेख न होकर केवल यह कहा गया था कि "सदन का मत है कि अध्यक्ष मदन मोहन वर्मा को उनके पद से हटा दिया जाये ।" 23 व 24 अक्तूबर को सदन में चर्चा हुयी जिसमें विरोधी दलों के सदस्यों ने अध्यक्ष श्री वर्मा के कार्यों की कटु आलोचना करते हुए उनपर पक्षपात व दलीय सम्बद्धता के आरोप लगाये । अन्त में कांग्रेस के नेताओं स्वयं मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त व विपक्षी नेताओं के आग्रह पर प्रस्तावक ने अध्यक्ष के उच्च पद की गरिमा तथा सदन में मर्यादा व सद्भावना का वातावरण बनाये रखने की इच्छा से अपना संकल्प वापस ले लिया ।[3]

31 अगस्त सन् 1965 को अध्यक्ष के विरूद्ध तीसरा प्रस्ताव विपक्षी सदस्य श्री राम सुन्दर पाण्डे (प्रसोपा) ने रखा जिसमें प्रस्तावक ने अध्यक्ष के विरूद्ध नियमों की सही व्याख्या करने की अक्षमता तथा सदन के कार्य संचालन में पक्षपात का आरोप लगाया । लेकिन प्रस्ताव को अनुज्ञा हेतु सदन में नहीं रखा जा सका क्योंकि कांग्रेसी सदस्य श्री कल्पनाथ राय ने वैधानिक आपत्ति उठाते हुए कहा कि नियमानुसार अनुच्छेद

1- संसदीय दीपिका , उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय, खण्ड-1, अंक -1, 1970 , पृ0 77

2- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड 231, पृ0 347

3- -तदैव- खण्ड 236, पृ0 611

179(ग) के अनुसार अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने के संकल्प को प्रस्तावित करने के अभिप्राय की लिखित सूचना 14 दिन पूर्व सचिव को देना आवश्यक है । लेकिन इस संकल्प की कोई लिखित सूचना नहीं दी गयी । अध्यक्ष श्री वर्मा ने इस आपत्ति को उचित बताते हुए संकल्प पेश करने की अनुमति नहीं दी[1] इस निर्णय के फलस्वरूप यह संकल्प 13 सितम्बर 1965 को सदन के विचार हेतु प्रस्तुत हुआ । इस संकल्प पर बोलते हुए प्रतिपक्ष के अधिकांश नेताओं ने अध्यक्ष पर पक्षपात पूर्ण आचरण का आरोप लगाया - "भारतीय जनसंघ के वरिष्ठ सदस्य श्री माधो प्रसाद त्रिपाठी ने कहा - "हम इतना कहने से अपने को नही रोक पाते कि जिस स्तर की हमने आशा की थी उस स्तर तक यह कुर्सी पहुँच ही नहीं पायी बल्कि उससे बहुत दूर रही"[2] स्तंत्र पार्टी के श्री भानुप्रताप ने कहा -"जिस स्तर की उनको निष्पक्षता दिखानी चाहिए थी वह वे न दिखा सके ।"[3] इसी तरह के विचार भारतीय साम्यवादी दल के नेता श्री झारखण्डे राय ने कहा - "मेरा यह निश्चित मत है कि सदन की कार्यवाही चलाने के लिए वह बिल्कुल क्षम्य (शायद सक्षम) नहीं हैं ।"[4]

किन्तु अन्त में पाकिस्तानी आक्रमण से उत्पन्न आपात स्थिति को ध्यान में रखते हुए शासक पक्ष की अपील पर तथा नेता जनसंघ श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी के विशेष अनुरोध पर प्रस्तावक श्री पाण्डेय ने प्रस्ताव वापस ले लिया ।

तृतीय विधान सभा के अध्यक्ष के विरूद्ध चौथा प्रस्ताव 1 दिसम्बर 1966 को पुनः संयुक्त शोसलिस्ट पार्टी के श्री श्यामसुन्दर पाण्डे द्वारा रखा गया । प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष पर पक्षपात पूर्ण व्यवहार , प्रक्रिया नियमों के क्रियान्वयन पर उत्पन्न विवाद की स्थिति में उचित व्यवस्था देने की अक्षमता तथा सदन में शांति व व्यवस्था बनाये रखने की असमर्थता का आरोप लगाया गया । इस संकल्प पर बोलते हुए सत्ता पक्ष व प्रतिपक्ष दोनों ने एक दूसरे पर कटु आक्षेप किये और अन्त में जब संकल्प सदन के मत हेतु उपस्थित हुआ , सदन ने ध्वनिमत से इसे अस्वीकृत कर दिया ।[5] यह उत्तर प्रदेश विधान सभा इतिहास में प्रथम अवसर था जब किसी ऐसे प्रस्ताव को सदन में मतदान हेतु प्रस्तुत किया गया हो ।

चतुर्थ व पंचम विधान सभा तथा सप्तम व अष्टम विधान सभा के अध्यक्ष श्री जगदीश शरण अग्रवाल , श्री बनारसीदास व श्री श्रीपतिमिश्र व आत्माराम गोबिन्द खेर के विरूद्ध कोई प्रस्ताव उनके उपरलिखित कार्यकाल में नही प्रस्तुत हुआ ।

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 256, पृ0 660
2- - तदैव - खण्ड - 260, पृ0 535
3- - तदैव - खण्ड - 260, पृ0 536
4- - तदैव - खण्ड - 260, पृ0 536
5- - तदैव - खण्ड - 270 , पृ0 264

छठी विधान सभा के अध्यक्ष श्री बासुदेव सिंह के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव की सूचना श्री चौधरी चरण सिंह , श्री माधो प्रसाद त्रिपाठी व श्री दयाकिशन पाण्डे द्वारा दी गयी । इस पर माननीय अध्यक्ष ने कहा - कि यह सूचना 25 अप्रैल 1975 को प्राप्त हुयी थी और नियमानुसार अपेक्षित कम से कम 14 दिन की अवधि 9 मई 1975 को पूरी होती है । चौधरी चरण सिंह ने 12 तारीख को सदन बुलाने के लिए कहा इस पर मुख्यमंत्री ने कहा कि यह एक प्रस्ताव नहीं इरादा है , अतएव माननीय अध्यक्ष ने कोई तारीख नहीं रखी है । सदन उसी दिन स्थगित हो गया तथा 9 मई 1975 को विधान सभा के सत्रावसान के फलस्वरूप प्रस्ताव की सूचना नियमतः व्यपगत हो गयी ।[1] अध्यनाधीन विधान सभाओं में अध्यक्ष के विरूद्ध प्रस्तुत संकल्पों से स्पष्ट है कि अध्यक्ष का आचरण दलीय हितों के ऊपर नहीं उठ पाया क्योंकि प्रायः प्रतिपक्ष द्वारा उक्त संकल्पों पर चर्चा के दौरान उन पर शासक दल का पक्ष लेने का आरोप लगाया गया । इसके अतिरिक्त सत्ता पक्ष ने सदन में अपनी बहुसंख्या के कारण अध्यक्ष के खिलाफ लगाये गये आरोपों की सत्यता व उनके औचित्य को जानने का कभी गम्भीरता से प्रयास नहीं किया क्योंकि चतुर्थ विधान सभा अध्यक्ष श्री मदन मोहन वर्मा के प्रति चार बार प्रतिपक्ष ने अपना अविश्वास व्यक्त किया किन्तु सरकार ने हमेशा अध्यक्ष का पक्ष लिया । यदि सत्ता पक्ष विपक्ष के साथ थोड़ा सा सहयोग कर उनकी शिकायतों को समझने का प्रयास करता तो विपक्ष को बारम्बार ऐसे संकल्प प्रस्तुत करने की आवश्यकता न पड़ती । इसके विपरीत विपक्षी दलों ने इस सम्बन्ध में सरकार के साथ अपेक्षाकृत सहयोग का दृष्टिकोण अपनाया क्योंकि अध्यक्ष के विरूद्ध संकल्पों में से 2 संकल्पों को जब इन पदों की प्रतिष्ठा व गरिमा की दुहाई देकर सत्ता रूढ़ दल के नेताओं ने वापस लेने की अपील की तो प्रस्तावकों ने उन्हें मत के लिए उपस्थित न कर वापस लेकर एक स्वस्थ परम्परा के निर्माण व विकास में सहयोग दिया ।

आवश्यकता इस बात की है कि अध्यक्ष पद में निष्पक्षता व विश्वास की अभिबृद्धि हेतु किसी देश की परम्परा विशेष के अनुशरण की अपेक्षा अपनी राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल परम्पराओं का विकास लाभप्रद होगा तथा अध्यक्ष को पक्ष व विपक्ष दोनों का विश्वास प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए एवं विपक्ष का दृष्टिकोण पीठासीन अधिकारियों के प्रति संदेहयुक्त न होकर सम्मान व विश्वास की भावना से युक्त होना चाहिए ।

1- संसदीय दीपिका (उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय) खण्ड-1, अंक-1 1970, पृ0 78

(ख) **उपाध्यक्ष व विपक्ष ::**

संसदीय लोक तंत्र की शासन प्रणाली में सदन के उपाध्यक्ष पद की उपादेयता एवं गरिमा का अत्यधिक महत्व रहा है । उन्नीसवीं सदी के मध्य तक विधायी सदनों में इस पद का आविर्भाव नहीं हो पाया था । इंग्लैण्ड में आम सभा की अध्यक्षता का सम्यक भार उस समय केवल अध्यक्ष के ऊपर था और विशेष परिस्थितिवश अध्यक्ष की अनुपस्थिति में बैठक स्थगित कर दी जाती थी । अतः सन् 1853 में गठित ब्रिटिश आम सभा की प्रवर समिति ने संस्तुति की कि "वेज एण्ड मीन्स कमेटी" के सभापति का संसदीय विषयों का अधिक ज्ञान होने के नाते अध्यक्ष की अनुपस्थिति में आम सभा की अध्यक्षता करने के लिए अधिकृत किया जाये । सदन ने यह संस्तुति स्वीकार कर 21 जुलाई 1855 को इस आशय का एक स्थाई आदेश जारी कर दिया तथा उसी वर्ष दि डिप्टी स्पीकर एक्ट 1855 पारित कर उपाध्यक्ष पद के सृजन की व्यवस्था की गयी।[1]

केन्द्रीय विधान सभा के भारत सरकार अधिनियम 1919 के अन्तर्गत निर्वाचित सदस्यों में से एक डिप्टी प्रेसीडेंट चुने जाने की व्यवस्था की गयी ।[2] इसके पूर्व गवर्नर जनरल तथा क्रमशः केन्द्रीय व प्रान्तीय परिषदों में उनके द्वारा एक वाइसप्रेसीडेंट नियुक्त किये जाने का प्राविधान था , चुनाव का नहीं । 1935 के भारत सरकार अधिनियम में संघ तथा प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए उपाध्यक्ष निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था कर दी ।[3] इसका चुनाव सदन के निर्वाचित सदस्यों में से बहुमत के आधार पर किया जाने लगा । लोक सभा व राज्य विधान सभाओं के लिए इसी उपरोक्त व्यवस्था को भारतीय संविधान में स्थान दिया गया ।[4]

उपाध्यक्ष का निर्वाचन ::

उ0प्र0 विधान सभा में उपाध्यक्ष के निर्वाचन में भी शासक व विरोधी दलों के बीच राजनीतिक विभेद स्पष्टतः परिलक्षित हुए तथा पारस्परिक सहमति के उच्च स्वस्थ परम्परा के अनुसार कभी भी केवल एक नाम इस पद के लिए प्रस्तावित न हो सका तथा शासन व विरोध पक्ष की ओर से कई नाम निर्देशन पत्र प्रस्तुत हुए , विवरण निम्नवत् है :-

"26 मई 1952 को उपाध्यक्ष पद हेतु विरोध पक्ष ने श्री विष्णुदयाल (निर्दलीय) को सत्ता पक्ष के नाम निर्देशित श्री हरगोबिन्द पन्त के विरूद्ध नामांकित किया । मतदान में कुल 308 मत पड़े 2 अवैध रहे तथा एक वापस रहा । एवं श्री

1- लाण्ड्री एण्ड फिलिप दि आफिस आफ स्पीकर, कैसेल , लन्दन, 1964 पृ0 127

2- भारत सरकार अधिनियम 1919 धारा 63(सी) 2

3- भारत सरकार अधिनियम 1935 धारा- क्रमशः 22(1),66(1)

4- भारत का संविधान अनुच्छेद -93 तथा 178

हरगोबिन्द पन्त को 284 मत व श्री विष्णुदयाल को 21 मत प्राप्त हुए । अतः श्री पन्त उपाध्यक्ष निर्वाचनोंपरान्त निर्वाचित हुए । विरोधी दल द्वारा इस निर्वाचन पर विरोध व्यक्त किये जाने पर श्री पन्त ने कहा कि - "यह विरोधी दलों का अधिकार है तथा वस्तुस्थिति के प्रकाशन में सहायक भी है"[1]

द्वितीय विधान सभा में सत्ता पक्ष व विपक्ष की परस्पर सहमति से एक स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात हुआ तथा मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्द ने समाजवादी दल के सदस्य श्री रामनारायण त्रिपाठी के नाम पर सहमति व्यक्त की गयी । फलस्वरूप श्री त्रिपाठी निर्विरोध चुने गये यद्यपि श्री त्रिपाठी के नाम पर समपूर्ण विपक्ष एकमत नहीं था इस पद हेतु प्रजाशोसलिस्ट पार्टी के श्री गेंदा सिंह , श्री नारायणदत्त तिवारी तथा स्वतंत्र प्रगतिशील दल के श्री कृष्णदत्त पालीवाल एवं सुल्तान आलम खाँ के नाम से भी नामांकन पत्र भरे गये थे । स्पष्ट है कि इस निर्वाचन को निर्विरोध कराने में मुख्यमंत्री ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । यदि सत्ता पक्ष चाहता तो संख्या बल पर उपाध्यक्ष पद को प्राप्त कर सकता था , लेकिन ऐसा न कर उसने ब्रिटिश व्यवस्था की भाँति इस पद को निर्विरोध बनाने में पहल की ।[2]

तृतीय विधान सभा में द्वितीय विधान सभा के मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्द द्वारा स्थापित परम्परा को भंग कर दिया गया । यद्यपि तृतीय विधान सभा में शासक दल कांग्रेस था किन्तु नेतृत्व परिवर्तित हो चुका था एवं श्री चन्द्रभानु गुप्त प्रदेश के मुख्यमंत्री थे । उन्होने श्री होतीलाल अग्रवाल को उपाध्यक्ष पद का उम्मीदवार बनाया शासक दल के इस निर्णय पर विपक्ष में रोषपूर्ण प्रतिक्रिया हुयी । 2मई 1962 को मतदान हुआ व 352 सदस्यों ने भाग लिया । गणना के समय एक मतपत्र अवैध घोषित किया गया व शेष 351 मतों में 224 मत श्री होतीलाल अग्रवाल व 127 मत उनके प्रतिद्वन्दी श्री भगवान सहाय (निर्दलीय) को प्राप्त हुए[3] यहाँ उल्लेखनीय है कि तीसरी विधान सभा में कांग्रेस के कुल सदस्यों की संख्या 249 थी जबकि उसके उम्मीदवार को केवल 224 मत मिले । मतदान के परिणाम स्वरूप श्री अग्रवाल उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। विपक्ष ने बधाई भाषणों में अपने तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति इस प्रकार की -

नेता विरोधी दल श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे ने कहा - " मुख्यमंत्री जी ने यहाँ की पुरानी परम्परा को नष्ट कर दिया और जबकि पहले विरोधी दल के वोट से उपाध्यक्ष होता था , आज अपनी संख्या के बल पर उस परम्परा को खत्म कर दिया"

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड- 102 , पृ0 262

2- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों से प्राप्त विवरण पर आधारित

3- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड- 221, पृ0 678

तत्पश्चात सोशलिस्ट नेता श्री उग्रसेन ने कहा - माननीय मुख्यमंत्री ने जानबूझकर उस परम्परा का हनन किया है जिसे सम्पूर्णानन्द जी ने यहाँ स्थापित किया था । मैं सोशलिस्ट पार्टी की पूरी ताकत से उसका विरोध करता हूँ"[1] तत्पश्चात समस्त विपक्षी सदस्यों ने सदन से बहिर्गमन किया ।

चतुर्थ विधान सभा में यद्यपि श्री श्रीपति मिश्र बिना किसी चुनाव के निर्विरोध रूप में उपाध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हुए क्योंकि अन्य दोनों नाम वापस हो गये थे । किन्तु वह भी तत्कालीन सत्तारूढ़ घटक दल भारतीय क्रांति दल से ही सम्बन्धित थे क्योंकि चुनाव के समय संयुक्त विधायक दल का शासन था । इस निर्वाचन का प्रतिपक्ष ने विरोध किया तथा सदन में काफी शोरगुल के बाद विरोधी दल के सदस्यों द्वारा सदन का त्याग किया गया ।[2]

पंचम विधान सभा में उपाध्यक्ष पद विपक्ष को देने के लिए शासक व विपक्ष की सहमति अध्यक्ष के निर्वाचन के समय हो गयी थी, फिर भी उपाध्यक्ष पद हेतु 4 नाम निर्देशन पत्र विपक्ष द्वारा प्रस्तुत हुए जिसमें श्री शिव कैलाश व भानुप्रताप सिंह ने मुख्यमंत्री व अन्य नेताओं की अपील पर अपना नाम वापस ले लिया किन्तु तीसरे अभ्यर्थी श्री हलीमुद्दीन राहत मौलाई ने नाम वापस नहीं लिया किन्तु उनके नाम के प्रस्तावक श्री नसीरूद्दीन के सदन में उपस्थितन होने के फलस्वरूप श्री मौलाई का नाम प्रस्तावित न हो सका व उपाध्यक्ष पद हेतु संसोपा के श्री वासुदेव सिंह का नाम ही शेष रह गया अतः वह निर्विरोध निर्वाचित हुए किन्तु उनके निर्वाचन के समय भी सत्ता पक्ष व प्रतिपक्ष में सौहार्द का अभाव रहा चुनाव के पूर्व संसोपा नेता श्री अनन्तराम जायसवाल ने अपने दल को निर्वाचन से तटस्थ रखने की घोषणा करते हुए कहा कि "मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने सोशलिस्ट पार्टी में फूट डाली है तथा श्री वासुदेव सिंह ने दल के निर्देष का उल्लंघन करके उपाध्यक्ष का चुनाव लड़ा है" श्री जायसवाल ने श्री वासुदेव सिंह पर यह भी आरोप लगाया कि - "गुप्ता जी के प्रति उनका आदर बहुत बढ़ गया है ।"[3] ज्ञातव्य हो कि श्री वासुदेव सिंह पाँचवीं विधान सभा के विघटन के बाद कांग्रेस में शामिल हो गये अतः इनका निर्विरोध निर्वाचन भी दलीय भावना से निर्देशित रहा ।

षष्टम विधान सभा में उपाध्यक्ष पद के लिए पाँच नाम निर्देशन प्राप्त हुए जो श्री मो0 असरार अहमद , श्री शिव प्रसाद गुप्त, श्री हरीश कुमार गंगवार , कुँवर शिवनाथ सिंह कुशवाहा तथा श्री नजीर अहमद के थे । इनमें से श्री नजीर अहमद ,

---

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड - 221, पृ0 678-79

2- - तदैव - खण्ड - 272, पेज 140 - 156

3- - तदैव - खण्ड - 276, पृ0 477-486

श्री शिव प्रसाद गुप्त तथा श्री हरीश कुमार गंगवार ने अपने नाम वापस ले लिये तथा सोशलिस्ट पार्टी के दो उम्मीदवार कुँवर शिवनाथ सिंह कुशवाहा व मोहम्मद असरार अहमद रह गये । इस निर्वाचन में सम्पूर्ण विपक्ष एक मत होकर काम नहीं कर सका तथा सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार श्री शिवनाथ सिंह कुशवाहा को स्वयं सोशलिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री जार्जफर्नान्डीज का समर्थन तक प्राप्त नहीं था । श्री अध्यक्ष ने निर्वाचन के समय बताया कि -"सोशलिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष जार्ज फर्नान्डीज ने विधान भवन के प्रेस रूम में घोषणा की है कि उपाध्यक्ष पद के लिए अपने दल के प्रत्याशी श्री शिवनाथ सिंह को वे अमान्य घोषित करते हैं । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि श्री शिवनाथ सिंह विपक्षी दल के प्रत्याशी हैं । तत्पश्चात विपक्षी दलों ने श्री कुशवाहा से नाम वापस लेने की अपील की किन्तु उन्होने नाम वापस नहीं लिया इस पर चौधरी चरण सिंह नेता विरोधी दल ने यह कहते हुए कि यह सब रूलिंग पार्टी का गेम है उनका यहाँ खिलौना है इस लिए हम इस मतदान में भाग नहीं लेंगे अपने दल लोकदल सहित सदन त्याग कर दिया ।[1] तत्पश्चात नेता जनसंघ श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी तथा अन्य विपक्षी दलों के सदस्य सदन त्याग कर चले गये । प्रतिपक्ष की अनुपस्थिति में मतदान हुआ कुल 199 मत पड़े जिसमें 10 अवैध थे तथा 179 वैध मतों में 5 श्री मो0 असरार अहमद तथा 184 श्री शिवनाथ सिंह कुशवाहा को प्राप्त हुए और श्री कुशवाहा जिन्हें अपने ही दल का समर्थन प्राप्त नहीं था , सत्ता पक्ष के समर्थन से उपाध्यक्ष चुने गये । इन्होने निर्दलीय सदस्य के रूप में कार्य करने की घोषणा की ।[2]

सप्तम विधान सभा में 12 नाम निर्देशन पत्र विभिन्न दलों से प्राप्त हुए किन्तु कुछ सदस्यों ने अपने नाम अभ्यर्थिता से वापस ले लिये तथा अन्य में से श्री जगन्नाथ प्रसाद (निर्दलीय) को छोंड़ कर या तो प्रस्तावक या अभ्यर्थी ही सदन में उपस्थित नहीं थे । इस प्रकार श्री जगन्नाथ प्रसाद ही उक्त पद के लिए एकमात्र अभ्यर्थी रह गये जो अधिष्ठाता द्वारा उपाध्यक्ष पद के लिए 13 मई 1978 को निर्विरोध निर्वाचित घोषित किये गये ।[3] प्रतिपक्ष ने इसका घोर विरोध किया तथा नेता विरोधी दल श्री नारायण दत्त तिवारी ने यह कहते हुए कि मुझे दुख है कि संसदीय परम्परा का अनुपालन नहीं किया गया । सदन की परम्परा रही है कि मान्यता प्राप्त विरोधी दलों में से ही उपाध्यक्ष पद दिया जाता रहा है । यह विरोधी पक्ष की अवहेलना हुयी है । अतः मेरा निवेदन है कि बहिष्कार करें । तब कांग्रेस आई के सदस्यों ने सदन त्याग किया[4] तथा प्रगतिशील दल के नेता श्री रियासत हुसेन ने सत्ता पक्ष पर अपने दल के आदमियों को

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही , खण्ड-313, पृ0 278

2- - तदैव - खण्ड - 313, पृ0 279

3- -तदैव- संक्षिप्त सिंघावलोकन 1978, प्रथमसत्र

4- -तदैव- खण्ड - 333, पृ0 605

तोड़ने का आरोप लगाते हुए सदन त्याग कर दिया ।[1] इस प्रकार प्रतिपक्ष के अधिकांश सदस्यों की अनुपस्थिति में यह निर्वाचन हुआ ।

अष्टम विधान सभा उपाध्यक्ष का निर्वाचन निर्विरोध प्रतिपक्ष की सहमति से हुआ । उपाध्यक्ष पद के 8 नाम निर्देशन पत्र प्राप्त हुए थे जोकि क्रमशः गौरीशंकर एडवोकेट, श्री चेतराम गंगवार, श्री मोतीलाल देहलवी , श्री यादवेन्द्र सिंह लल्लन (कांग्रेस अर्स) , श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त, श्री राम आसरे वर्मा , श्री रियासत हुसेन व श्री सूबेदार सिंह के थे । श्री मोतीलाल देहलवी सहित अन्य ने पहले ही अपने नाम वापस ले लिये तथा श्री देहलवी ने यह कहते हुए- "कि आज मैं अपने नेता के परामर्श और विरोधी पक्ष के एकता को बनाए रखने हेतु अपना नाम वापस लेता हूँ ।[2] अतः चूँकि यादवेंन्द्र सिंह लल्लन के अतिरिक्त कोई नाम नहीं रह गया, श्री लल्लन निर्विरोध उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए ।

उपरोकत विवरण से स्पष्ट है कि उ0प्र0 विधान सभा में यद्यपि उपाध्यक्ष पद विपक्ष को देने की एक आदर्श संसदीय परम्परा डाली गयी किन्तु इसका पालन हमेशा नहीं किया गया और उपाध्यक्ष का चयन दलीय भावना से निर्देशित रहा । वस्तुतः इसी का परिणाम है कि तृतीय, चतुर्थ विधान सभा में उपाध्यक्ष पद सत्ता रूढ़ दल को प्राप्त हुआ । यद्यपि पंचम तथा षष्टम विधान सभा में उपाध्यक्ष पद प्रतिपक्ष के प्रत्याशी को प्राप्त हुए किन्तु उन्हें शासक दल कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था । साथ ही सप्तम विधान सभा में निर्दलीय सदस्य को चुने जाने का मान्यता प्राप्त विरोधी दल कांग्रेस द्वारा विरोध किया गया अतः इसे भी निर्विरोध की श्रेणी में रखना उचित न होगा । अतः निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि अध्यनाधीन विधान सभाओं में उपाध्यक्ष पद पर भी शासक दल प्रभावी रहा ।

उपाध्यक्ष व दलगत राजनीति ::

उपाध्यक्ष को अपने दल के राजनीतिक कार्यो में भाग लेने का अधिकार है परन्तु व्यवहार में वे यथासम्भव सक्रिय भाग नहीं लेते और न ही विवादास्पद विषयों में ही पड़ते हैं जिससे सभा में उनकी निष्पक्षता बनी रहे ।[3] यद्यपि उ0प्र0 विधान सभा में उपाध्यक्षों ने इस मर्यादा का भरसक अनुपालन किया तथापि उनके द्वारा सदन में व सदन के बाहर सक्रिय राजनीति में भाग लेने के अपवाद भी देखने को मिलते हैं । 24 दिसम्बर 1959 को उ0प्र0 गन्ना पूर्ति व खरीद विनियमन (संशोधन) विधेयक 1959

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही , खण्ड- 333, पृ0 -606

2- - तदैव - खण्ड- 345, पृ0 584

3- कौल एवं शकधर - संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार, पृ0 115

पर विचार के समय उपाध्यक्ष श्री राम नारायण त्रिपाठी की पिछले दिनों गन्ना आन्दोलन के सम्बन्ध में हुयी गिरफ्तारी की चर्चा पर तत्कालीन उद्योग मंत्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा द्वारा उठायी गयी आपत्ति पर उपाध्यक्ष ने व्यवस्था दी कि विधान सभा में उपाध्यक्ष की हैसियत से मेरी जिम्मेदारी अलग है । मेरा कर्तव्य है कि जब मैं यहाँ हूँ तो किसी राजनीति को अपने दिमाग में न आने दूँ लेकिन जब मैं बाहर जाता हूँ तो अपने दल का सदस्य हूँ और उसके एक वफादार सिपाही के नाते मेरा कर्तव्य है कि वह जो आदेश देगा उसका मुझे पालन करना पड़ेगा ।[1] उल्लेखनीय है कि श्री त्रिपाठी समाज वादीदल के विपक्षी सदस्य के रूप में उपाध्यक्ष चुने गये थे ।

इसके अतिरिक्त सदन में उपाध्यक्ष द्वारा दलीय गतिविधियों में भाग लिया गया , उदाहरणार्थ- 26 अगस्त 1969 को अध्यक्ष द्वारा कारागार व नागरिक सुरक्षा विभाग के अनुदानों की माँगों को सदन में मतदान हेतु प्रस्तुत किये जाने का प्रस्ताव स्थगित किये जाने के विरोध में विपक्षी दल के सदस्य अत्यधिक उत्तेजित हो गये तथा मतदान की माँग करते हुए अध्यक्ष की कटु आलोचना की गयी व सदन की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न किया गया अध्यक्ष के आदेश पर मार्शल द्वारा प्रार्थना किये जाने पर नेता विरोधी दल सहित कुछ विपक्षी सदस्य बाहर चले गये इसी समय काफी शोरगुल के बीच उपाध्यक्ष श्री बासुदेवसिंह अपने आसन से खड़े हो गये व उन्होने पुलिस को सदन से बाहर चले जाने का आदेश दिया । एक पुलिस अधिकारी के यह कहने पर कि वे अध्यक्ष के आदेश से आये हैं उपाध्यक्ष ने अत्यन्त आवेश में आकर कहा कि - "स्पीकर्स आर्डर इज इल्लीगल"[2] जब अध्यक्ष को उपाध्यक्ष के कथन की सूचना दी गयी तो उन्होने आदेश दिया कि उपाध्यक्ष को भी सदन से बाहर जाने के लिए कहा जाये । मार्शल की प्रार्थना पर उपाध्यक्ष श्री बासुदेव सिंह ने सदन त्याग दिया ।[3]

उपाध्यक्ष व अविश्वास प्रस्ताव ::

समय - समय पर अध्यक्ष की भाँति उपाध्यक्ष की भी व्यवस्थाओं व निर्णयों के विरोध में विपक्ष द्वारा उन्हें पदच्युत करने के प्रस्ताव रख कर असन्तुष्टि व्यक्त की गयी । लेकिन इस पद्धति का श्रीगणेश तृतीय विधान सभा में हुआ । सम्भवतः ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि द्वितीय विधान सभा में उपाध्यक्ष पद विपक्ष के श्री रामनारायणत्रिपाठी को दिया गया था उनके विरूद्ध प्रतिपक्ष ने अपनी असंतुष्टि नही व्यक्त की । प्रतिपक्ष

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड- 208, पृ0 305-306

2- - तदैव - खण्ड - 279, पृ0 605

3- - तदैव - खण्ड- 279, पृ0 606

के इस कृत्य को श्री रामस्वरूप वर्मा के 9 सितम्बर 1959 के प्रस्ताव से तथा 17 सितम्बर 1958 की घटना से बल मिलता है - 17 सितम्बर 1958 को मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्द ने उपाध्यक्ष श्री रामनारायण त्रिपाठी को दलीय सम्बद्धता के कारण अनौपचारिक रूप से त्यागपत्र की माँग की गयी थी तथा 9 सितम्बर 1959 को श्री रामस्वरूप वर्मा ने उपाध्यक्ष के विरूद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव रखा जिसे अध्यक्ष ने अनुज्ञा नहीं दी व प्रस्ताव सूचना स्तर पर ही रह गया ।[1]

उपाध्यक्ष के विरूद्ध प्रथम संकल्प 19अक्तूबर 1962 को विभिन्न विपक्षी दलों के सहयोग से रखा गया था लेकिन विपक्ष इस पर पुनर्विचार का इच्छुक था अतः स्वतंत्र दल के सदस्य श्री राघवेन्द्र सिंह के मौखिक प्रस्ताव पर संकल्प स्थगित कर दिया गया । तत्पश्चात 22 अक्तूबर 1962 को श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय ने निम्नलिखित संकल्प प्रस्तुत किया :-

"यह सदन निश्चय करता है कि उपाध्यक्ष श्री होतीलाल अग्रवाल को उपाध्यक्ष पद से हटा दिया जाये ।"[2] इस संकल्प को सदन में पेश करते हुए अपने भाषण में प्रस्तावक श्री पाण्डे ने उपाध्यक्ष श्री अग्रवाल पर आरोप लगाते हुए कहा - उपाध्यक्ष महोदय ने पहले वाले उपाध्यक्ष जी की परम्पराओं को कायम नहीं रखा , पहले के उपाध्यक्ष ने विरोधी पार्टी के होने के बावजूद कभी किसी मत में भाग नहीं लिया लेकिन यह उपाध्यक्ष महोदय कांग्रेस के साथ मत में भाग लेते हैं और इतना ही नहीं यह जो व्यवस्था देते हैं उससे आदरणीय सदन की प्रतिष्ठा कायम नहीं रह सकती है ।[3] अनुज्ञा के समय सभी विपक्षी नेताओं सहित 114 सदस्यों ने संकल्प को विवादार्थ अनुमति दी । 24 अक्तूबर 1962 को जब संकल्प विवादार्थ रखा गया तो सदन के नेता श्री चन्द्रभानु गुप्त तथा नेता विपक्ष व समस्त दलों के नेताओं के आग्रह पर सदन में एक नया अध्याय जोड़ने व सदभावना का वातावरण बनाये रखने के उददेश्य से प्रस्तावक ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया ।[4]

उपाध्यक्ष के विरूद्ध दूसरा अविश्वास प्रस्ताव 26 जुलाई 1966 को रखा गया इस संकल्प को श्री रामसुन्दर पाण्डे (प्रसोपा) द्वारा रखा गया था । नियमानुसार संकल्प की 14 दिन पूर्व सूचना न देने के कारण अध्यक्ष ने इसे 10 अगस्त को लेने की आज्ञा दी । फलस्वरूप 11 अगस्त 1966 को विवादार्थ उपस्थित हुआ जिस पर

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही , खण्ड 207, पृ0 669-70, 9 सितम्बर 1959

2- -तदैव- खण्ड 236, पृ0 456

3- -तदैव- खण्ड - 236, पृ0 456

4- - तदैव- खण्ड - 236, पृ0 616

बोलते हुए अधिकांशतः विपक्षी सदस्यों ने उपाध्यक्ष पर निष्पक्ष आचरण न करने , सदस्यों को बोलने का समय न देने में पक्षपात करने तथा मंत्रियों के इशारों पर कार्य करने आदि के आरोप लगाये तथा सत्ता पक्ष के लोगों ने भी इसका समर्थन किया । कांग्रेस के श्री रामचन्द्र विकल ने उपाध्यक्ष से इस्तीफे की माँग की । सोशलिस्ट नेता श्री उग्रसेन ने उन पर संसदीय कार्यमंत्री श्री बनारसीदास के निर्देशानुसार सदस्यों को बोलने का मौका देने का आरोप लगाया । कम्युनिस्ट नेता श्री झारखण्ड राय ने भी अपने भाषण में कहा माननीय श्री होतीलाल जी सरकार के किन्ही मंत्रियों विशेषकर बनारसीदास जी के इशारे पर चलते हैं । जब हम यह देखते हैं तो यह सन्देह होने लगता है कि यहाँ प्रजातन्त्र कैसे जीवित रह पायेगा ।[1] तीव्र बहस के बाद जब इसे मतदान हेतु सदन में रखा गया तो प्रस्ताव ध्वनिमत से अस्वीकृत हो गया ।

चतुर्थ, पंचम, षष्टम, सप्तम एवं अष्टम विधान सभा में कोई भी प्रस्ताव उपाध्यक्ष को उनके पद से हटाने के लिए नहीं रखा गया ।

(ग) अन्य पीठासीन अधिकारी और विपक्ष

(अ) अधिष्ठाता मण्डल व विपक्ष ::

ब्रिटिश संसदीय प्रणाली की भाँति भारतीय व्यवस्थापिकाओं में भी अध्यक्ष व उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सम्बन्धित सदन के अध्यक्ष द्वारा सदन की अध्यक्षता करने हेतु एक अधिष्ठाता मण्डल के नाम निर्देशन की व्यवस्था है । ब्रिटेन में प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में अध्यक्ष द्वारा कम से कम 10 सदस्यों का एक अस्थाई अध्यक्ष मण्डल नाम निर्देशित किया जाता है ।[2] जिसका एक सदस्य अर्थोपाय समिति के सभापति , उपसभापति की अनुपस्थिति में अर्थोपाय समिति के सभापति के निवेदन पर पीठासीन अधिकारी का पद ग्रहण करता है [3]

भारत वर्ष में लोक सभा अध्यक्ष द्वारा 6 सदस्सीय अधिष्ठाता मण्डल के गठन का प्राविधान है ।[4] तदनुरूप राज्य विधान सभा में प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में अध्यक्ष द्वारा सभा के सदस्यों के मध्य 10 सदस्सीय अधिष्ठाता मण्डल नाम निर्देशित करने का प्राविधान है, उसमें से कोई एक अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्षासन ग्रहण करता है ।[5] एक बार मनोनीत अधिष्ठाता मण्डल तब तक पदासीन रहता है

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड 269, पृ0 255

2- मे, पार्लियामेंट्री प्रेक्टिस ,पृ0 23।

3- कैम्पियन जी0, एन इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रोसीजर आफ दि हाउस आफ कामन्स, पृ0 79

4- शकधर एवं कौल, संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार,म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, भोपाल, पृ0 116

5- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 10(1)

जब तक कि अध्यक्ष द्वारा नया अधिष्ठाता मण्डल नाम निर्देशित न किया गया हो ।[1] सिद्धान्ततः इनके गठन में अध्यक्ष पूर्णतः स्तंत्र होता है लेकिन व्यवहारतः वह इसके सदस्यों का मनोनयन सदन के प्रमुख दलों के नेताओं के परामर्श कर सम्बन्धित सदस्य की सहमति से करता है । अधिष्ठाता मण्डल में शासक पक्ष व विपक्ष दोनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है ।

उक्त नियमान्तर्गत अध्यनाधीन विधान सभाओं में अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर 10 सदस्सीय अधिष्ठाता मण्डल में विरोध पक्ष के सदस्यों को भी स्थान दिया जाता रहा है । विवरण निम्नवत है :-

प्रथम विधान सभा में विपक्षी खेमे के निर्दलीय सदस्य श्री सुदेश प्रकाश सिंह द्वारा सर्वप्रथम 28 अगस्त 1952 को सदन की अध्यक्षता की गयी ।[2] लेकिन संख्यात्मक दृष्टि से प्रतिपक्ष के सदस्यों को मनोनीत करने में अध्यक्ष ने सदा एक सा कानून नही अपनाया । यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि प्रथम विधान सभा के प्रारम्भिक तीन वर्षो में विपक्षी खेमे के मात्र 2 सदस्यों को अधिष्ठाता मण्डल में लिया गया जबकि शेष 2 वर्षो में विपक्ष के 4 सदस्यों को नाम निर्देशित किया गया । इनमें से केवल श्री सुदेश प्रकाश सिंह(निर्दलीय) ही ऐसे विपक्षी सदस्य थे जिन्हें हमेशा अधिष्ठाता बने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इनके अतिरिक्त श्री निहालुददीन, श्री मलखान सिंह, श्री नारायण दत्त तिवारी तथा श्री तेजभानु सिंह को एक से अधिक बार अधिष्ठाता मण्डल में मनोनीति किया गया ।

द्वितीय विधान सभा में एक दो अवसरों को छोंड़कर विपक्षी खेमे के चार सदस्यों को मनोनीत किया जाता रहा है । परन्तु इस मनोनयन में अध्यक्ष ने स्पष्टतः किसी सिद्धान्त का अनुशरण नही किया । भारतीय जनसंघ के प्रायः दो सदस्यों को अधिष्ठाता मण्डल में स्थान दिया गया जबकि राज्य के प्रमुख विपक्षी दल , प्रजासोशलिस्ट पार्टी का एक ही सदस्य मनोनीत किया गया । भारतीय साम्यवादी दल को 1960 के प्रथम सत्र में स्थान दिया गया । अध्यक्ष ने ऐसा शायद सदस्यों की सहमति से , उनकी योग्यता व अनुभव के आधार पर किया , जबकि दलीय शक्ति का भी दृष्टिकोण उसके सम्मुख थ । इस विधान सभा में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के श्री गेंदा सिंह को तथा भारतीय जनसंघ के श्री गया बक्श सिंह को अन्त तक अधिष्ठाता मण्डल में बने रहने का मौका मिला । अन्य विपक्षी सदस्य जो दो से अधिक बार अधिष्ठाता मण्डल में रहे वे श्री मलखान सिंह , श्री परमेश्वरदीन वर्मा , श्री कुँवर श्रीपालसिंह तथा श्री चन्द्रजीत यादव थे ।[3]

1- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम 10(2)

2- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड- 107, पृ0 287

3- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों से प्राप्त विवरण पर आधारित ।

तृतीय विधान सभा में अध्यक्ष द्वारा प्रायः प्रतिपक्ष व सत्ता पक्ष के बराबर-बराबर अर्थात पाँच- पाँच सदस्यों को मनोनीत किया जाता रहा । ऐसा शायद विपक्ष की बढ़ी हुयी शक्ति के कारण सम्भव हो सका । सदस्यों के मनोनयन में अध्यक्ष ने यथासम्भव सभी प्रमुख विपक्षी दलों के सदस्यों को लेने का प्रयास किया । इन सदस्यों में मात्र भारतीय साम्यवादी दल के श्री चन्द्रजीत यादव ही ऐसे थे जो सदैव अधिष्ठाता मण्डल में बने रहे । अन्य सदस्यों में कुँवर श्री पाल सिंह , श्री भानुप्रताप सिंह , श्रीब्रम्हदत्त, मायर, श्री नेकराम शर्मा , श्री कमला सिंह , श्री विजय सिंह , श्री रामकिशोर त्रिपाठी व श्री काशीनाथ मिश्र प्रमुख थे ।

चतुर्थ विधान सभा में केवल एक ही बार अधिष्ठाता मण्डल का गठन हो सका क्योंकि विधान सभा लगभग 13 महीने बाद विघटित कर दी गयी थी इसमें प्रतिपक्ष का योगदान इस प्रकार था । जनसंघ - 2, रिपब्लिकन - 1, प्रसोपा - 1 व भारतीय क्रांतिदल -1 , सत्तारूढ़ दल कांग्रेस के 5 सदस्य थे ।

पंचम विधान सभा में अध्यक्ष द्वारा बराबर-2 सदस्यों को दोनों पक्षों से लिया गया किन्तु निर्दलीय सदस्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ जबकि इनकी संख्या 18 थी । जनसंघ के श्री हरिनाथ तिवारी ही ऐसे सदस्य थे जिन्हें सदैव अधिष्ठाता बने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसके अतिरिक्त श्री जगबीर सिंह को 4 बार अधिष्ठाता मण्डल में मनोनीत किया गया । अन्य विपक्षी सदस्य जो 2 से अधिक बार अधिष्ठाता मण्डल में रहे - श्री रामधारी शास्त्री (संसोपा), श्री धर्म सिंह (भा0क्रा0दल), श्री शिवराज सिंह (भा0क्रा0दल), श्री नित्यानन्द स्वामी (जनसंघ), श्री रामचन्द्र विकल (कि0म0पा0), श्री भानुप्रताप (स्वतंत्र) तथा श्री उदित नारायण शर्मा (भा0क्रा0दल) थे ।

षष्टम विधान सभा में अधिष्ठाता मण्डल में सत्ता पक्ष व प्रतिपक्ष का बराबर संख्या में प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ तथा कुँवर श्रीपाल सिंह (जनसंघ) ऐसे सदस्य थे , जो हमेशा अधिष्ठाता बने रहे । अध्यक्ष महोदय ने प्रायः सभी मान्यता प्राप्त विपक्षी दल के सदस्यों को अधिष्ठाता मण्डल में स्थान दिया । इनमें श्री मो0 असरार अहमद (भा0क्रा0 दल) , श्री शिव प्रसाद गुप्त (कांग्रेस संगठन), श्री बालकृष्ण सनवाल (भा0क्रा0दल), श्री मधुकर दिघे (भा0क्रा0दल), श्री राममूर्ति (कां0संगठन) प्रमुख थे ।

सप्तम विधान सभा में अधिष्ठाता मण्डल में शासक दल की प्रधानता रही तथा दस में से तीन विपक्षी सदस्यों को ही प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सका जिसमें कांग्रेस जो कि प्रमुख विपक्षी दल था, के श्री श्यामधर मिश्र व श्रीमती सुनीता चौहान को हमेशा अधिष्ठाता बने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस विधान सभा में निर्दलीय सदस्य को भी अधिष्ठाता मण्डल में शामिल किया गया ।

अष्टम विधान सभा में भी विपक्षी सदस्यों का प्रतिनिधित्व तीन रहा तथा जनता दल (एस) के श्री हुकुम सिंह व कम्यु0 पार्टी के श्री भीखा लाल को हमेशा अधिष्ठाता बने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अन्य प्रतिपक्षी सदस्य जिन्हें अधिष्ठाता बनाया गया जनता दल (एस) के श्री दिवाकर विक्रम सिंह तथा भारतीय जनता पार्टी के श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त थे । सत्ता पक्ष की अपेक्षा प्रतिपक्ष का कम प्रतिनिधित्व सम्भवतः उनकी नगण्य संख्या के कारण रहा ।

स्पष्ट है कि विभिन्न राजनीतिक दलों के कुछ प्रमुख सदस्यों को अधिष्ठाता मण्डलों में सम्मिलित किया गया । ऐसा शायद इसलिए किया गया ताकि किसी सदस्य की अधिष्ठाता मण्डल में पुनर्नियुक्ति से उसके ज्ञान व कार्य क्षमता तथा अनुभव में निश्चित रूप से बृद्धि होगी और उस उद्देश्य की अधिक सार्थकता से पूर्ति हो सकेगी जिसके लिए इसका गठन किया जाता है ।

उपर्युक्त सदस्यों ने अवसर मिलने पर सदन की अध्यक्षता करते समय दलीय हितों से उठकर सामान्यतयः निष्पक्षता से कार्य किया अतः यही कारण है कि अधिष्ठाता मण्डल के किसी सदस्य के प्रति कभी असन्तुष्टि नहीं व्यक्त की गयी ।

(ब) समितियों के सभापति ::

संसदीय समितियों के सभापति का नामांकन संसद या विधान सभाओं के पीठासीन अधिकारियों द्वारा किया जाता है । इसमें संदेह नहीं है कि पीठासीन अधिकारियों को दिया गया समिति के सभापति के नामांकन का अधिकार काफी सीमा तक लोकतांत्रिक नहीं है । किन्तु उक्त व्यवस्था कार्य सार्थकता की दृष्टि से की गयी प्रतीत होती है किसी सदस्य को समिति का सभापति नियुक्त करते समय अध्यक्ष उसकी वरिष्ठता, सभापति तालिका के सदस्य या किसी अन्य संसदीय सभापति के रूप में उसके अनुभव और समिति के काम के विषय व स्वरूप का ध्यान रखता है ।[1] अतः इसका यह प्रयोजन है कि अध्यक्ष का चुनाव योग्यता के आधार पर हो । यदि अध्यक्ष स्वयं किसी समिति का सदस्य हो तो वही अनिवार्य रूप से उस समिति का सभापति होता है ।[2] जिस समिति का सदस्य अध्यक्ष न हो बल्कि उपाध्यक्ष हो उसका सभापति उपाध्यक्ष होता है ।[3]

1- कौल एवं शकधर, संसदीय प्रणाली और व्यवहार, म0प्र0 हि0ग्रं0अका0भोपाल,पृ0117

2- - तदैव -

3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियम 201(1)

सभापति को, जो स्थाई समिति में अध्यक्ष पद का प्रतीक है , उतने ही बड़े अधिकार प्राप्त हैं जितने अध्यक्ष को होते हैं । वह संशोधनों का चयन कर सकता है , विवादान प्रस्ताव (क्लोजर) को अस्वीकार कर सकता है, असम्बद्धता, पुनरावृत्ति आदि के लिए सदस्यों को रोंक सकता है और उन प्रस्तावों को नामंजूर कर सकता है जो उसकी दृष्टि में विलम्बकारी हों ।[1]

यद्यपि विधान सभा का कोई भी सदस्य अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित व निर्वाचित समिति का सभा पति हो सकता है किन्तु किसी स्थाई समिति का सभापतित्व किसी मंत्री को नहीं सौंपा जा सकता । प्रक्रिया नियमों में यह व्यवस्था सम्भवत: निष्पक्षता प्राप्त करने के उद्देश्य से की गयी है । इस संदर्भ में सर आइवर जैनिंग्स का कथन है -"सभापति तालिका के सदस्य दल निरपेक्ष रूप से चुने जाते हैं और विरोधी दल के सदस्यों द्वारा ऐसी स्थाई समिति का सभापतित्व करना कोई आश्चर्य नहीं है जिसमें सरकार का बहुमत हो और जो मंत्री के प्रभार में किसी सरकारी विधेयक पर विचार कर रही हो , जिस भावना के साथ संसद अपनी कार्यवाही का संचालन करती है और वह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब एक विरोधी सदस्य सभापति के रूप में मंत्री द्वारा प्रस्तावित संशोधन और उसके भाषण को नियम विरूद्ध घोषित कर देता है । ऐसी स्थिति में सभापति का निर्णय उसी प्रकार स्वीकार किया जायेगा जिस प्रकार वह अध्यक्ष के निर्णय को स्वीकार करता है ।"[2] इस प्रकार यह जरूरी नहीं कि किसी समिति का सभापति सरकारी दल का ही सदस्य हो , विरोधी पक्ष के सदस्य भी संसदीय समितियों के सभापति नियुक्त किये जाते हैं । उदाहरणार्थ - 1955-56, 1956-57, तथा 1967-68 के वर्षों में अधीनस्थ विधायन समिति (लोक सभा) की अध्यक्षता प्रतिपक्ष द्वारा की गयी तथा स्टेट बैंक , सहायक बैंक विधेयक सम्बन्धी संयुक्त समिति की अध्यक्षता विपक्ष द्वारा की गयी ।[3]

उ0प्र0 विधान सभा में भी समितियों की अध्यक्षता विपक्ष द्वारा किये जाने की परम्परा रही है तथा लोक लेखा समिति व सरकारी आश्वासन समिति के सभापति का पद विपक्ष को दिया जाता है ।[4] विवरण निम्नवत है :-

---

1- विधान तन्त्र में समितियों की भूमिका, एस0 भालेराव, लोकतंत्र समीक्षा 1970 वर्ष 2 अंक - 2 पेज-87

2- जैनिंग्स आइवर , पार्लियामेंट, द्वितीय संस्करण 1957, पृ0 72-73

3- कौल एवं शकधर, संसदीय प्रणाली व व्यवहार, म0प्र0हि0ग्र0 अका0भोपाल,पृ0117

4- सईद एस0एम0, दि कमेटी आफ यू0पी0 लेजिस्लेचर,पृ0 30

I- **लोक लेखा समिति व विपक्ष ::**

उ0प्र0 विधान सभा भारत वर्ष में पहली विधान सभा है जिसने यह परम्परा डाली कि लोक लेखा समिति का अध्यक्ष विपक्ष का हो । मो0 ईसाक खाँ जो मुस्लिम लीग के सदस्य थे, सर्वप्रथम लोक लेखा समिति के सभापति निर्वाचित हुए । लोक लेखा समिति के अधिकाधिक 21 सदस्य होते हैं जिन्हें विधान सभा प्रतिवर्ष अपने सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एकल संक्रमणीय पद्धति द्वारा चुनती है । 1959 से पूर्व वित्त मंत्री समिति के पदेन सभापति होते थे लेकिन अब स्थापित परिपाटी के अनुसार लोक लेखा समिति का सभापति विपक्षी दल का होता है उ0प्र0 विधान सभा में लोक लेखा समिति के सभापति जो विपक्षी दलों के प्रतिनिधि थे , निम्नवत रहे :-

वर्ष	सभापति का नाम व दल	सम्बद्ध दल
1952-53	श्री मदन मोहन उपाध्याय	सोशलिस्ट पार्टी
1953-57	श्री मदन मोहन उपाध्याय	सोशलिस्ट पार्टी
1957-60	श्री झारखण्डे राय	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी
1960-61	श्री नारायण दत्त तिवारी	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
1961-62	डा0 जेड0ए0 अहमद	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी
1962-63	-तदैव-	-तदैव-
1964-65	श्री बलवान सिंह	संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी
1965-66	श्री शारदा बक्श सिंह	जनसंघ
1966-67	श्री माध्व प्रसाद त्रिपाठी	जनसंघ
1967-68	श्री नेकराम शर्मा	निर्दलीय
1968-69	राष्ट्रपति शासन	-
1979-70	श्री शिवराज सिंह	संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी
1970-71	श्री राजनाथ	कांग्रेस
1971-72	श्री मेहरवान सिंह	कांग्रेस
1972-73	नई समिति का गठन नहीं हुआ	-
1973-74	- तदैव -	-
1974-75	श्री रामसेवक यादव	भारतीय क्रांति दल
1975-76	श्री मो0 असरार अहमद	-तदैव -
1976-77	नई समिति का गठन नहीं हुआ	-

1977-78	श्री श्यामधर मिश्र	कांग्रेस
1978-79	-तदैव-	-तदैव-
1979-80	-तदैव-	-तदैव-
1980-81	श्री गौरी शंकर एडवोकेट	जनता पार्टी
1981-82	-तदैव-	-तदैव-
1982-83	श्री हुकुम सिंह	जनता एस0
1983-84	-तदैव-	-तदैव-
1984-85	श्री ऊदल	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

इन प्रतिपक्षीदल के सदस्यों के सभापतित्व में 90 प्रतिवेदन अध्ययनाधीन विधान सभा के कार्यकाल में समिति द्वारा रखे गये ।[1]

2- **आश्वासन समिति ::**

प्रायः यह देखने में आता है कि सदन में विपक्षी सदस्यों द्वारा पूँछे गये प्रश्नों का उत्तर देते समय अथवा विधेयकों , प्रस्तावों एवं संकल्पों पर विचार के समय शासन की ओर से मंत्रियों द्वारा आश्वासन या बचन दिये जाते हैं । इन आश्वासनों , बचनों या प्रतिज्ञाओं का उचित समय के भीतर अनुपालन हो सके तथा सम्बन्धित सदस्यों को इस समिति से अवगत कराया जा सके । इसके लिए सर्वप्रथम लोक सभा में एक आश्वासन समिति बनी तथा इसी का अनुशरण राज्य विधान मण्डलों द्वारा किया गया । 21 अक्तूबर 1955 को उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए0जी0 खेर ने नियम पुनरीक्षण समिति की संस्तुति पर विधान सभा में एक 15 सदस्सीय आश्वासन समिति का गठन किया यह सभी सदस्य अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किये गये तथा विरोधी दल के सदस्य महराज कुमार बालेन्दु शाह को इसका सभापति नियुक्त किया गया तब से यह परम्परा बनी हुयी है कि विरोधी दल के ही किसी सदस्य को समिति का सभापति नियुक्त किया जाये ।

वर्ष 1955 में समिति के गठन से 1984 तक विभिन्न विरोधी दल के सदस्य एकाधिक वार इस समति का सभापतित्व कर चुके हैं । विवरण निम्नवत है :-

---

1- समिति वित्त अनुभाग , उ0 प्र0 विधान सभा सचिवालय से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ।

वर्ष	सभापति का नाम	सम्बद्ध दल
1955-56	महाराज कुमार बालेन्दुशाह	स्वतंत्र दल
1956-57	-तदैव-	-तदैव-
1957-58	श्री राघ्वेन्द्र प्रताप सिंह	स्वतंत्र प्रगतिशील विधायकदल
1958-59	-तदैव-	-तदैव-
1959-60	-तदैव-	-तदैव-
1960-61	श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे	जनसंघ
1961-62	-तदैव-	-तदैव-
1962-63	श्री कुँवर श्रीपाल सिंह	जनसंघ
1963-64	-तदैव-	-तदैव-
1964-65	श्री कृष्णपाल सिंह	जनसंघ
1965-66	-तदैव-	-तदैव-
1966-67	श्री केशरी प्रसाद पाण्डे	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
1967-68	श्री कालीचरण अग्रवाल	कांग्रेस
1968-69	विधान सभा भंग (राष्ट्रपति शासन)	
1969-70	श्री हिम्मत सिंह	जनसंघ
1970-71	श्री रामचन्द्र विकल	किसान मजदूर पार्टी
1971-72	श्री माध्व प्रसाद त्रिपाठी	जनसंघ
1972-73	-तदैव-	-तदैव-
1973-74	-तदैव-	-तदैव-
1974-75	-तदैव-	-तदैव-
1975-76	-तदैव-	-तदैव-
1976-77	कुँवर श्रीपाल सिंह	जनसंघ
1977-78	श्री रियासत हुसेन	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
1978-79	-तदैव-	-तदैव-
1979-80	श्री रामरतन सिंह	कांग्रेस (आई)
1980-81	श्री रियासत हुसेन	जनता पार्टी
1981-82	-तदैव-	-तदैव-
1982-83	श्री शिवानन्द नौटियाल	लोकतांत्रिक समाजवादीपार्टी
1983-84	श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त	भारतीय जनता पार्टी

यह समिति विरोधी दल के सदस्य की अध्यक्षता में अपनी बैठको में आश्वास्नों की पूर्ति के सम्बन्ध में सरकारी विभागों द्वारा भेजी गयी सूचनाओं का विश्लेषण करके

यह निर्णय लेती है कि आश्वासन पूर्ण होगा या नही । जिन विषयों पर शासकीय विभागों से उत्तर विलम्ब से प्राप्त होते हैं उन विभागों के सचिवों को बुलाकर समिति में उनसे स्पष्टीकरण लिया जाता है । इस प्रकार यह कार्यपालिका पर नियंत्रण के साथ-2 जनहित के महत्वपूर्ण कार्यों का भी निर्वहन करती है । आश्वासन समिति ने अब तक 47 साधारण तथा 14 विशेष प्रतिवेदन प्रस्तुत किये हैं ।

समितियाँ और उपाध्यक्ष ::

उत्तर प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया नियम 201 (1) में कहा गया है कि जिस समिति का सदस्य उपाध्यक्ष होगा वह उपाध्यक्ष उसका पदेन सभापति होगा । उत्तर प्रदेश विधान सभा में उपाध्यक्ष पद प्रतिपक्ष को देने की परम्परा द्वितीय विधान सभा में समाज वादी दल के श्री रामनारायण त्रिपाठी के निर्विरोध उपाध्यक्ष चुने जाने से प्रारम्भ हुई । अतः उपाध्यक्ष पद प्रतिपक्ष को दिया जाता है । उत्तर प्रदेश विधान सभा में याचिका समिति व विशेषाधिकार समिति की अध्यक्षता उपाध्यक्ष द्वारा की जाती है तथा समय - समय पर गठित तदर्थ समितियों की भी अध्यक्षता उपाध्यक्ष महोदय द्वारा की गयी है । यथा - 28 फरवरी 1984 को गठित प्रश्न समिति में माननीय उपाध्यक्ष इसके पदेन सभापति हुए तथा उत्तर प्रदेश विधान सभा प्रक्रिया नियम 223 के अनुसार कार्यमंत्रणा समिति की अध्यक्षता अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष करेंगे । इसके अतिरिक्त आवास मंत्रणा समिति , विधान पुस्तकालय समिति , विधान मण्डल के सदस्यों के वेतन एवं भत्ते और अन्य उपलब्धियों सम्बन्धी समिति , सामान्य प्रयोजन समिति के उपाध्यक्ष ही पदेन सभापति होते हैं । अतः स्पष्ट है कि विधान सभा के पीठासीन अधिकारियों में प्रतिपक्ष द्वारा समय-समय पर प्रतिनिधित्व कर संसदीय कार्यों में योगदान किया गया है ।

अध्याय –10, विपक्षी नेतृत्व और संसदीय प्रणाली में उनकी आस्था

(क) विपक्ष की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैचारिक पृष्ठभूमि

(ख) सत्तापक्ष के सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि से तुलना

(ग) सम्विद सरकारें व विपक्ष

(घ) दल बदल व विपक्ष

विपक्षी नेतृत्व एवं उसकी संसदीय प्रणाली में आस्था:–

प्रत्येक विधायी निकाय अथवा सदन के कार्यो का समुचित सम्पादन मुख्यतः उसके सदस्यों के आचरण व व्यवहार पर निर्भर करता है सदस्यगण अपने अधिकारों का प्रयोग और दायित्वों का निर्वहन सदन में अनुशासन व व्यवस्था बनाये रखते हुये उचित रूप से कर सकें, इसके लिये संसदीय प्रक्रिया के अर्न्तगत सदस्यों द्वारा सदन में पालनीय आचरण के नियमों का निर्माण हुआ है। इन नियमों के उद्देश्य के सम्बन्ध में "मे" ने लिखा हैं कि ये सदन में वाद विवाद के दौरान व्यवस्था व संसदीय आचरण को बनाये रखने के लिये निर्मित किये गये है ।[1]

वस्तुतः व्यवस्थापिकायें विभिन्नताओं में सामाजिक सम्बद्धता की प्रतीक है। वे लोगों की भावनाओं उद्धिग्नताओं और उत्कंठाओं के साथ उनकी सामूहिक बुद्धिमत्ता और न्याय के भाव प्रतिविम्बित करती है। [2] आज के युग में वैज्ञानिक एंव औद्योगिक प्रगति के साथ साथ उत्तरोत्तर विकसित हो रहे विभिन्न वर्गीय हितों के कारण विपक्षी नेतृत्व तथा प्रतिपक्षी सदस्यों का कार्य अत्यन्त सूक्ष्म एवं जटिल हो गया है। वास्तव में संसदीय प्रणाली में विरोधी दल की मर्यादा स्वीकार कर लेने से उसके कर्तव्य व उसका अनुशासन भी निर्धारित होने लगा । अतः विपक्षी नेतृत्व की भूमिका के निर्धारण हेतु अपने दलीय सिद्धान्तों के अर्न्तगत अपने निर्वाचन सम्बन्धी हितों को विविध राष्ट्रीय हितों के साथ समन्वित करना होता है। स्वर्गीय बिट्रिश प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल का मानना था कि दल के सदस्यों को सर (मस्तिष्क) नही चाहिये । उनके पैरी की (वोटकी) आवश्यकता है।[3] किन्तु फ्रेंच विचारक टोक्यूविली का कहना है कि "मैं उन्ही राजनैतिक दलों तथा नेताओं को महान समझता हूँ जो अपने सिद्धान्तों से चिपके रहते है, परिणाम की परवाह नही करते । जो किसी एक मसले को लेकर नही चलते अपितु आम मसले" सर्वकल्याण" को लेकर [4] चलते है ।इस व्यक्ति केन्द्रित राजनीतिमेंजो कि जनतंत्र की एक आवश्यकता हे, के कर्णधार प्रतिपक्षी नेताओं ने संसदीय प्रणाली में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के वास्तविक

---

1. मे थामस इरस्किन, पार्लियामेन्टरी प्रैक्टिस, पृ0404
2. सेमिनार (मासिक) का सम्पादकीय अंक (फरवरी 1955 दिल्ली, पृ0 5
3. लोकतंत्र समीक्षा ,जनवरी मार्च 1971 ,संविधानिक व संसदीय अध्ययन संस्थान नई दिल्ली ,संसद एवं दलबन्दी,परिपूर्णानन्द वर्मा, पृ0 13
4. लोकतंत्र समीक्षा जनवरी मार्च 1971 ,संविधानिक व संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली ,संसद एवं दल बन्दी ,परिपूर्णानन्द वर्मा, पृ0 14

मंच स्थल विधानसभा में संसदीय मान्यताओं व परम्पराओं के अनुकूल सैद्धान्तिक आचरण किया है अथवा नही इसका सम्यक विवेचन निम्नवत् है:–

सदस्यों की आचरण संहिता:–

भारत में संसद तथा सभी राज्य विधान मण्डलों की प्रक्रिया नियमावली में सदस्यों द्वारा पालनीय आचरण एवं वाद विवाद के नियमों का उल्लेख पाया जाता है । इन नियमों को मुख्यरूप से दो वर्गो में बॉटा गया है–

(क) वे नियम जिनका सदस्यों द्वारा उस समय पालन किया जाना चाहिए जब सदन का उपवेशन हो रहा हो और वे बोल न रहे हो ।

(ख) वे नियम , जिनका बोलते समय सदस्यों द्वारा पालन होना चाहिये । प्रथम प्रकार के नियमों के सम्बन्ध में प्रक्रिया नियम 286 में कहा गया है कि जब सदन का उपवेशन हो रहा हो तो सदस्य–(1) ऐसी पुस्तक समाचार पत्र या पत्र नही पढ़ेगे और न उस कार्य के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य करेंगे जिसका सदन की कार्यवाही सें सम्बन्ध न हो, (2) किसी सदस्य के भाषण करते समय उसमें उसमें अव्यवस्थित बात या शोर या किसी अन्य अव्यवस्थित रीति के बाधा नही डालेगें । (3) सदन में प्रवेश करते समय या वहॉ से उठते समय अध्यक्ष पीठ के प्रति नमन करेगें।(4) अध्यक्ष पीठ और ऐसे सदस्यों के बीच में से जो भाषण दे रहा हो नही गुजरेंगे, (5) जब अध्यक्ष सदन को सम्बोधित कर रहें हो तो न सदन के बाहर जायेगें और न एक ओर से दूसरी ओर जायेगें (6) सदैव अध्यक्ष पीठ को ही सम्बोधित करेंगे (7) सदन को सम्बोधित करते समय अपने सामान्य स्थान पर ही रहेगें (8) जब सदन में नही बोल रहे हो तो शान्त ही रहेंगे (9) कार्यवाही में रूकावट नही डालेंगे, चीत्कार नहीं करेंगे या बाधा नही डालेंगे ओर जब सदन में भाषण दिये जा रहे हो तो साथ साथ उनकी टीका नही करेंगे। (10) भाषण करते समय दीर्घा में किसी अजनबी की ओर संकेत नही करेंगे ।

नियम 289 के सदस्यों द्वारा भाषण करते समय पालनीय निम्नलिखत नियमों का उल्लेख किया गया है:–
(1) प्रत्येक भाषण का विषय चर्चाधीन विषय के सर्वथा सुसंगत होना चाहिये (2) बोलते तथा प्रश्न का उत्तर देते समय कोई सदस्य–(क) किसी प्रश्न का वंचनात्मक उत्तर नही देंगे (ख) किसी ऐसे वास्तविक तथ्य पर, जो न्यायालय में विचाराधीन हो, कोई विचार प्रकट न करेंगे और न कोई आलोचना करेंगे।

(ग) किसी सदस्य पर व्यक्तिगत आरोप व लांछन नही लगायेंगे (घ) संसद या किसी राज्य के मण्डल के व्यवहार या कार्य के विषय में अशिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे। (ड़) सदन के विनिश्चय की ऐसे अवसर को छोड़कर जब उसके निरसन का प्रस्ताव विचाराधीन है। आलोचना नही करेंगे (च) राष्ट्रपति, किसी राज्यपाल अथवा किसी न्यायालय के आचरण पर आक्षेप नही करेगें । (छ) राजद्रोहात्मक या मानहानिकारक शब्दों का प्रयोग नही करेंगे। किन्तु वह अध्यक्ष की अनुज्ञा से अपने तर्क के प्रयोजन के लिये उनको उद्धृत कर सकेंगे । (ज) ऐसी कोई बात नही कहेगे जो अध्यक्षासन अथवा सदन के लिये अनादर सूचक हो ।

यदि चर्चा के दौरान कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य से विचाराधीन किसी विषय पर स्पष्टीकरण के लिये या किसी अन्य कारण से प्रश्न पूछना चाहे तो उसे अध्यक्ष के माध्यम से प्रश्न पूछना चाहिये [1] अध्यक्ष ऐसे सदस्य के जो बार बार असंगत बातें करे या स्वयं अपनी या अन्य सदस्यों द्वारा वाद विवाद में प्रयुक्त अरूचिकर पुनरावृत्ति करेंके व्यवहार की ओर सभा का ध्यान दिलाने के उपरान्त उस सदस्य को भाषण बन्द करने का निर्देश दे सकते है ।[2]

नियम 294 के अनुसार जब कभी अध्यक्ष बोले (सम्बोधन करें) तो सदस्यों द्वारा मौन पूर्वक उनके भाषण को सुनना चाहियें और यदि कोई सदस्य उस समय बोल रहा हो या बोलने के लिये खड़ा हुआ हो तो उसे तत्काल बैठ जाना चाहिये । इसके साथ यह भी आवश्यक है कि जब अध्यक्ष सदन को सम्बोधित कर रहे है। तो कोई अपने स्थान से न उठें ।[3]

उर्पयुक्त पालनीय नियमों का उल्लेख करने वाले उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमावली तथा अन्य सम्बन्धित साहित्य प्रत्येक सदस्य को प्रारम्भ में ही विधान सभा सचिवालय के संसदीय अनुभाग द्वारा प्रदान किया जाता है और सामान्य -तथा सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उसका समुचित रूप से अध्ययन कर सदन में उसके अनुसार आचरण करें । किन्तु विधान सभा कार्यवाहियों अध्ययन से ज्ञात होता है कि न केवल प्रतिपक्षी सदस्यों अपितु प्रतिपक्षी नेतृत्व द्वारा प्रायः सदन के कार्यो में भाग लेते समय इनकी उपेक्षा की गयी :-

---

1. उ0प्र0 वि0स0 प्रक्रिया नियमावली नियम 200
3. नियम 291
3. नियम 294 (2)

विपक्षी नेतृत्व – संकल्पना और समस्याः–

लोकतंत्र में प्रतिपक्ष की कल्पना बिट्रिश संसदीय प्रणाली की विशेष देन हैं। प्रतिपक्ष के नेता के पद का उद्भव और विकास उन्नीसवी शताब्दी की एक उपलब्धि माना जा सकता है। बिट्रेन में इस पद को वैधानिक मान्यता मिली है।[1] और तभी से प्रतिपक्ष के नेता को भी मंत्रियों की तरह ही वेतन मिलने लगा।[2] कनाडा एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों में पहले से ही विधि द्वारा ऐसी व्यवस्था की जा चुकी है। इन दोनों देशों में प्रत्येक सदन के लिये प्रतिपक्ष के नेता का प्रावधान है । आस्ट्रेलिया में प्रतिपक्ष के दोनों नेताओं के अतिरिक्त यह भी आवश्यक समझा गया कि प्रत्येक सदन में अन्य मुख्य दलों के नेताओं को भी मान्यता व वेतन प्रदान किया जाये ।[3]

---

1. ब्रिटेन में न केवल संसदीय व्यवहार में उसकी स्थिति को सरकारी तौर पर स्वीकार किया गया है बल्कि उसे कानून द्वारा मान्यता दी गयी है। बिट्रेन के सरकारी मंत्री अधिनियम 1973 में विरोधी पक्ष के नेता की परिभाषा यह की गयी है "हाउस आफ कामन्स का वह सदस्य जो उस समय सभा में सरकार का विरोध करने वाले उस दल का नेता हो जिसके सदस्यों की संख्या सबसे अधिक है।" इस अधिनियम में यह भी उपलब्ध है कि जहाँ कोई सन्देह हो, इस प्रश्न का फैसला अध्यक्ष करता है। रेर्डालिक, विरोधी पक्ष का नेता, खण्ड 3, पृ025,

2. उसे सदस्य के रूप में अपने 750 पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन के अतिरिक्त विरोधी पक्ष के नेता के रूप में 3000 पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है उसका एक अपना निजी सचिव होता है अगर उसे एक अलग कमरा दिया जाता हे ।–मिनिस्टर्स आफ दि क्राउन एक्ट 1937

3. काश्यप सुभाप– प्रतिपक्ष का नेता (नवभारत टाइम्स लखनऊ) 7 दिसम्बर, 1990, पृ06.

बिट्रिश हाउस आफ कामन्स में वाद विवाद के सिलसिले में प्रतिपक्ष के नेता को विशेष वरीयता दी जाती है । प्रमुख प्रश्न पर वह बहस की मॉग कर सकता है और विदेशी नीति, राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मूलभूत मुद्दों पर प्रायः उसकी राय ली जाती है। उसे अधिकार है कि किसी भी विभाग के बारे में पूरी सूचना मंगवा सके। सदन में प्रश्न पूछने के और बहस करने के लिये विषयों का चयन करे, के मामलों में भी प्रतिपक्ष के नेता को विशेष अधिकार दिये गये है ।

विरोधी दल का नेता अल्पसंख्यकों का अधिकृत प्रवक्ता होता है और इस बात का सदा ख्याल रखता हैं कि उनके अधिकारों पर कोई कुठाराघात न हो।[1] यद्यपि उसका काम इतना कठिन नही है जितना कि प्रधानमंत्री का लेकिन फिर भी उसके काम का समुचित लोक महत्व है क्यों कि उसे एक दल "सम्भाव्य मंत्रिमण्डल" बनाये रखना पड़ता है।[2] विरोधी पक्ष के नेता की स्थिति और जिम्मेदारियों को बिट्रेन के प्रधानमंत्री मि० हेराल्ड मैकमिलन ने संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"मै समझता हूँ कि विरोधी पक्ष के नेता की स्थिति से अधिक कठिन तथा तथा कम सन्तोषजनक स्थिति और किसी की नही होती । उसे आलोचना करनी पड़ती है दोष निकालना उसका काम है लेकिन साथ ही उसे अपनी प्रस्थापनायें और नीतियॉ स्पष्ट करनी है जबकि उन्हें कार्य रूप में परिणत करने की शक्ति उसके पास नही है। यह इस अर्थ में असन्तोष जनक है कि जो भी व्यक्ति प्रशासन क्षमता को जानता है और अपनी योजनायें लागू करना चाहता है उसे इस स्थिति में पड़कर निराशा व कुण्ठा होती है।[3]

क्यों कि बिट्रेन में एक स्वस्थ द्वि–दलीय व्यवस्था सैकड़ों वर्षो से चल रही है वहॉ कोई अनिश्चितता नही है कि किस दल को अधिकृत विरोधी पक्ष कहलाने का अधिकार है हाउस आफ कामन्स प्रक्रिया नियमों के अनुसार प्रतिपक्ष का नेता उस व्यक्ति को माना जाता है जो तत्कालीन सरकार के विरूद्ध आलोचना व आक्रमण का नेतृत्व कर सकें।[4]

---

1. रेडेलिक, विपक्ष का नेता, खण्ड 3 पृ0 25
2. मैक्स चोशेफ (विरोधी पक्ष का नेता) पार्लियामेन्टी अफेयर्स, बसन्त ऋतु 1958 में छपे लेख से ।
3. हाउस आफ कामन्स वाद विवाद 221 (1) 1963 का 41–42 18 जनवरी 1963 को मैकमिलेन द्वारा विपक्षी नेता ह्यूज गैस्टिकल को दी गयी श्रद्धा भक्ति।
4. मे, पार्लियामेन्ट्री प्रैक्टिस, पृ0 259

आइवर जैनिंग्स के अनुसार – प्रतिपक्ष का नेता सरकार का प्रमुख विरोधी होता है जिसे सरकार की आलोचना करने के लिये खजाने से पैसा दिया जाता है।[1]

इस व्यवस्था में यह आवश्यक सा हो जाता है कि प्रत्येक दल अपने को एक ओर जोड़े या सरकार के पक्ष में अथवा प्रतिपक्ष के साथ । इसमें ऐसा नही है कि कोई दल सत्ताधारी दल का सर्मथक हो और साथ ही सरकारी प्रतिपक्ष होने का दावा करें।

किन्तु भारत में केन्द्र व राज्यों के स्तर पर स्थिति विकट और उलझी हुयी है क्यों कि यहाँ बिट्रेन जैसी द्वि–दलीय व्यवस्था नही है। बहुत से छोटे दल उभर कर आते है। तथा हो सकता है कि सत्तारूढ़ दल को कई दल बाहर से सर्मथन दें । सर्मथन देने वाले एक या अधिक दल ऐसे भी हो सकते है जिनके सदस्यों की संख्या सरकार बनाने वाले दल से अधिक हो ।

भारत की संसद ने 1977 में प्रतिपक्ष के नेताओं के लिये वेतन और भत्ते से सम्बन्धित एक विधेयक पारित किया था ।[2] तथा" सेलरी एन्ड एलाउन्सेज आफ लीडर आफ अपोजीशन इन पार्लियामेन्ट" द्वारा वेतन और अन्य सुविधायें देने की व्यवस्था की गयी

भारत में बहुत समय तक कोई मान्यता प्राप्त सरकारी विरोधी पक्ष नही हुआ। क्यों कि विरोधी दल की मान्यता के लिये कोरम के बराबर सदस्य संख्या होनी चाहिये।[3] जब नवम्बर 1969 में कांग्रेस का विभाजन हुआ तो कांग्रेस संगठन को मान्यता प्राप्त विरोधी दल का स्तर प्रदान किया गया । लोकसभा में इसके नेता डा0 राम सुभग सिंह नवम्बर 1969 से दिसम्बर 1970 लोकसभा भंग होने की तिथि तक रहे। तथा राज्य सभा में श्री श्याम नन्दन मिश्र हुये ।[4]

---

1. जैनिंग्स आइवर, पार्लियामेन्ट, पृ0 40
2. कॉल एन्ड शंकधर, प्रैक्टिस एन्ड प्रोसीजर आफ पालियामेन्ट, नई दिल्ली 1978 79, पृ0 117
3. डायरेक्शन्स वाइ्र दि स्पीकर, निर्देश संख्या 121 (1) सी
4. कॅाल एवं शंकधर, प्रैक्टिस एन्ड प्रोसिजर पार्लियामेन्ट, पृ0117

विरोधी दल के नेता के विषय में पांगे कमेटी ने सिफारिश की थी कि सबसे बड़े विरोधी दल को मान्यता देनी चाहिये। संसदीय प्रजातंत्र में यह स्वस्थ परम्परा होगी कि मुख्यमंत्री नीति सम्बन्धी वक्तव्य देने से पूर्व विरोधी दल के नेता को बुलाकर उससे बात कर लें तथा उसको एक पूर्व प्रतिलिपि दे दें ।[1]

"सेलरी एन्ड एलाउन्सेज आफ लीडर आफ आपोजीशन इन पालियामेन्ट एक्ट" के अनुसार प्रतिपक्ष के नेता की परिभाषा यह थी कि लोकसभा और राज्यसभा दोनों सदनों में जो दल सरकार के विरोध में हो उनमें से सर्वाधिक सदस्यों वाले दल के नेता को प्रत्येक सदन के अन्दर प्रतिपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी जायेगी । निर्णय पीठासीन अधिकारियों – राज्यसभा के सभापति और लोकसभा के अध्यक्ष के हाथों होगा । इस प्रकार यदि कोई बहुसंख्यक दल सरकार समर्थक हो तो वह प्रतिपक्ष में नही माना जा सकता है और न उसका नेता प्रतिपक्ष का नेता ही माना जा सकता [2] अतः यह स्पष्ट है कि केवल संख्या के आधार पर प्रतिपक्ष के नेता का निर्णय नही किया जा सकता यह भी आवश्यक है कि वह व्यक्ति किसी ऐसे दल का नेता हो जो सरकार के विपक्ष में ही न हो अपितु सरकार का विरोधी हो ।

---

1. रिपोर्ट आफ दि पोंग कमेटी, आपासिट, पैरा 48 –50
2. लोकसभा में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम 1977 की धारा–2 मेंलीडर आफ अपोजीशन की जो परिभाषा दी गयी है उसका आशय यह है कि संसद में नेता विरोधी दल की घोषणा के बावत निम्नांकित शर्तो का अनुपालन आवश्यक है– (क) नेता विरोधी दल उस पार्टी का सदस्य हो, जिसके सदस्यों की संख्या सर्वाधिक हो, (ख) नेता विरोधी दल विरोधी पार्टी का सदस्य हो (ग) ऐसे व्यक्ति को अध्यक्ष मान्यता प्रदान करें । उ0प्र0 राज्य विधान मण्डल के सदस्यों की वेतन उपलब्धियों और पेंशन अधिनियम की धारा –2 (अ) के अनुसार नेता विरोधी दल का तात्पर्य सभा या परिषद के उस सदस्य से है, जिसे यथास्थिति अध्यक्ष या सभापति द्वारा तत्समय इस रूप में अभिज्ञात किया गया हो ।

प्रतिपक्ष के नेता को भारत में मंत्री स्तर प्रदान किया जाता है । तथा इस सुविधा का उद्देश्य भी ऐसे लोगो के अधिकारों की रक्षा करना है जो सरकार के विरोध में है। उसे सरकार की आलोचना के लिये वैसा दिया जाता है न कि सरकार के पक्ष में एक और किला बनाने के लिये ।

किन्तु भारतीय संसदीय प्रणाली में अनेक ऐसे अवसर आये है जिसमें सदन में विरोधी दलों ने सत्तापक्ष का समर्थन किया है तथा न केवल उ0प्र0 में बल्कि अन्य प्रदेशों में विपक्ष की यह भूमिका औपचारिक रूप में स्वीकार की गयी है। उदाहरणार्थ – ट्रावनकोर, कोचीन असेम्बली के अध्यक्ष श्री गंगाधरन ने 14 जून 1954 को श्रीनगर में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में बताया कि उक्त विधानभा में सदस्यों की कुल संख्या 118 थी जिसमें कांग्रेस पार्टी के 45, यूनाईटेड लेफ्टिस्ट फ्रंट के 40, निर्दलीय 2, तमिल कांग्रेस 12, तथा शेष 9 सदस्य पी0एस0पी के थे। पी0एस0पी0 ने कांग्रेस पार्टी तथा कतिपय अन्य सदस्यों के समर्थन से सरकार का गठन किया । सरकार के गठन के उपरान्त कांग्रेस पार्टी तथा यूनाईटेड लेफ्टिस्ट फ्रंट के नेता विरोधी दल के रूप में मान्यता प्रदान करने का अनुरोध किया । फ्रंट की ओर से दिया गया कि चूंकि कांग्रेस पार्टी सरकार को समर्थन दे रही है अतः उसे नेता विरोधी दल की मान्यता नही दी जा सकती श्री गंगाधरन ने कांग्रेस पार्टी के नेता को ही नेता विरोधी दल की मान्यता प्रदान की ।[1]

इस सन्दर्भ में जितने भी नियम देश या विदेश में है और मतव्यक्त हुये है उन सभी में स्पष्ट है कि नेता विरोधी दल वही व्यक्ति होगा जो पहली शर्त पूरी करें कि उसके दल की संख्या सत्तादल के बाद सदन में सर्वाधिक है एवं वह विरोधी पार्टी का सदस्य है।

उ0प्र0 विधान सभा में भी 3.12, 1990 को मुलायम सिंह यादव की सरकार को समर्थन दे रहा भा0ज0पा0 ने अपना (जनता दल) से समर्थन वापस ले लिया तथा जनता दल का विभाजन केन्द्र में हो जाने के कारण उ0प्र0 में भी हुआ । 20 नवम्बर 1990 को मुलायम सिंह यादव द्वारा प्रस्तुत विश्वासमत पर कांग्रेस ने समर्थन किया । अतः जनता दल के नेता रेवतीरमण ने दावा किया कि चूंकि कांग्रेस ने सदन में प्रस्ताव का समर्थन किया है तो इस परिस्थिति में कांग्रेस दल विपक्षी दल न होकर सत्तापक्ष

---

1. नवभारत टाइम्स, 10 जनवरी 1991, पृ0 4

का सहयोगी दल हो गया है और उसके नेता नारायण दत्त तिवारी सदन में नेता विरोधी दल के पद पर रहने योग्य नही है अतः जनता दल के रेवतीरमन सिंह को नेता विरोधी दल के रूप में मान्यता दी जाये ।

इस पर श्री नारायण दत्त तिवारी का अभिमत था कि "सदन में किसी राजनैतिक दल द्वारा किसी सरकार को एक बार दिये गये सर्मथन को उस दल द्वारा भविष्य में पूरे काल के लिये सर्मथन अनिवार्य है ऐसी वाद्यता नही मानी जानी चाहिये।[1]

"कांग्रेस का तर्क था कि अनेक अवसर संसदीय इतिहास में ऐसे आये हैं। जब मुख्य विरोधी दल ने सरकार का सर्मथन किया और विरोधी दल के रूप में मान्यता बनी रही । कांग्रेस की सदस्य संख्या सत्तापक्ष के बाद द्वितीय स्थान पर है और विरोधी दल के सभी दायित्वों का निर्वहन विरोधी पक्ष के रूप में नही करेगा।[2]

वैसे जब कुछ दल और व्यक्ति मिलकर किसी बड़े सत्तारूढ़ दल की सरकार को गिराते है और फिर अपनी नयी मिली–जुली सरकार बनाते है तो यह संभव है कि उनमें से ही एक दल विपक्ष में बने रहने का और अपने नेता को प्रतिपक्ष के नेता के रूप मान्यता दिलाये रखने का दावा करें । सर्मथन और विरोधी दोनों साथ साथ तो नही हो सकते ।

किन्तु इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी यह परिकल्पना भी न्यायसंगत नही है कि सरकार का हर कार्य जनविरोधी होगा और विरोधी दलों का उसका विरोध करना अनिवार्य है। यह कहाँ तक उचित है कि सदन में सबसे अधिक सदस्य संख्या वाला दल केवल इसलिये कि वह सरकार का सर्मथन करता है सभी सुविधायों से वंचित हो जाये और उसका नेता एक साधारण सदस्य के रूप में सदन में बैठे जब कि एक ही छोटे दल के नेता को नेता प्रतिपक्ष के रूप में मान्यता पद् और प्रतिष्ठा मिलें केवल इसलिये कि वह सरकार के विरोध में है। वैकल्पिक सरकार बना सकने की क्षमता ओर संभावना की कसौटी पर बड़ा दल ही सही उतर सकता है । यद्यपि सरकार का सर्मथन होने के कारण उसे विपक्ष नही माना जाना चाहिये और न ही उसके नेता को नेता प्रतिपक्ष।

---

1. नवभारत टाइम्स 10 जनवरी 1991 पृ0 सं0 4 (उ0प्र0 अध्यक्ष श्रीहरि किशन श्रीवास्तव ने नेता विरोधी दल के बारे में दी गयी व्यवस्था, से उद्धृत ।
2. –तदैव–

ऐसी स्थिति में प्रतिपक्ष के नेता के मामले में हमारे यहाँ दल व्यवस्था (अथवा अव्यवस्था) की जो स्थिति है, उसकी पृष्ठभूमि में आज की राजनीति के परिप्रेक्ष्य में निम्न विचारणीय है–

यह आवश्यक नहीं रहना चाहिये कि प्रधानमंत्री ही अपने सदन का नेता भी हो जैसा कि इस समय है । ब्रिट्रेन में यह दोनों पद अलग अलग व्यक्ति के पास रहते है । हमारे यहाँ भी ऐसा करने से संभव हो सकता है कि यदि सबसे बड़ी संख्या वाला दल सरकार का सर्मथक हो पर सरकार में हिस्सा न ले रहा हो, तो उसके नेता को सदन का नेता माना जाये ।

द्वितीय विकल्प यह है कि हम आस्ट्रेलिया की भाँति कोई संख्या निश्चित कर दें कि गणपूर्ति के लिये आवश्यक संख्या से अधिक सदस्य संख्या वाले सभी दलों के नेताओं को प्रतिपक्ष की मान्यता दी जायेगी जो सरकार में नही है। चाहें वे सरकार के सर्मथक हो अथवा विरोधी ।

अगर इस तरह के प्रयास सफल रहे तो इसका वास्तविक असर सरकारों की स्थिरता व विपक्षी नेतृत्व की संसदीय आस्था परभी प्रभावी हो सकता है।

विरोध पक्ष के नेता का दायित्व व्यवहारिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ष है। वस्तुतः उसकी भूमिका विरोधी दल के विधायकों को व सांसदों से भी गुरूत्तर होती है। अपने दल के सांसदों को अनुशासित करना उन्हें सही नेतृत्व प्रदान करना और राष्ट्र हित के चल लक्ष्य की ओर सतत् प्रेरित उसका दायित्व है वस्तुतः प्रजातंत्र की सफलता ही विरोध पक्ष व उसके नेता पर ही टिकी रहती है । संसदीय प्रणाली व सदन की अपनी मर्यादायें है, और प्रतिपक्ष के नेतृतव का कर्तव्य है कि वह इनकी रक्षा करें– उ0प्र0 विधान सभा में प्रतिपक्षी नेतृत्व का इस सन्दर्भ में विवेचन निम्नवत् है–

शपथ ग्रहण के बाद सम्पूर्ण विधानसभा कार्यकाल में सदस्य अध्यक्ष द्वारा निर्धारित व्यवस्थानुसार बैठते है।[1] अध्यक्ष निर्दलीय सदस्यों को छोड़कर अन्य सदस्यों को व्यक्तिगत स्थान आवंटित नही करता अपितु सदन में दलों अथवा समूहों को सदन के खण्ड में बाँट देता है। इन दलों एवं समूहों के नेता अथवा सचेतक अपने निर्धारित खण्डों में अपने सदस्यों का स्थान नियत कर देते है।

---

1. अनुच्छेद 193, भारतीय संविधान.

सदन में शुरू में अध्यक्ष का मंच होता है, इसके साथ ही इसके ठीक नीचे सदन की मेज होती है । अध्यक्ष के मंच के दायी ओर सत्तारूढ़ दल के सदस्य बैठते है तथा सदन का नेता जो कि मुख्यमंत्री होता है। दायी ओर मंच के निकटतम प्रथम स्थान पर बैठता है । आगे के स्थानों पर मंत्रीगण, वरिष्ठता के उस क्रम में बैठते है जिसकी सूचना मंत्रिमण्डल सचिवालय ने दी हो, मंच के बायी ओर प्रमुख विपक्षी दल बैठता है तथा इसी तरफ विपक्षी दलों तथा समूहों को उनकी सदस्य संख्या के अवरोधी क्रम में बैठते है । मंच के बायी ओर ही प्रथम स्थान उपाध्यक्ष के लिये सुरक्षित रहता है।[1] और उसके बाद सबसे बड़े विरोधी दल का नेता बैठता है जो नेता विरोधी दल कहलाता है[2] विपक्षी नेता के इस स्थान पर समय समय पर आसीन महत्वपूर्ण व्यक्तित्व निम्नवत् रहे।

तालिका विरोधी दल, उ0प्र0 विधान सभा 1952–85

क्रम सं0	नाम	वर्ष	अवधि विधान सभा
1.	श्री राजनारायण (सोशलिस्ट पार्टी)	1952	(प्रथम वि0स0 1952-57) 1952–1955
2.	श्री गेंदा सिंह (प्रजा समाजवादी दल)	1955	(दिसम्बर 1955 से 1957)
3.	श्री त्रिलोकी सिंह (प्रजा समाजवादी दल)	1957	(द्वितीय वि0स0)(1957-62) 15 अगस्त 1957-मार्च 1962
4.	श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे, जनसंघ	1962	(1962–67 (तृतीय वि0स0) (28 मार्च 1962 से 1963)
5.	श्री शारदा भक्त सिंह, जनसंघ	1963	
6.	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी, जनसंघ	1965	
7.	श्री रामचन्द्र विकल, (निर्दलीय)	1967 (14.3.67 से 1.4.67)	(चतुर्थ वि0स01967से68)
8.	श्री चन्द्रभानु गुप्त (कांग्रेस)	1967	(3.4.67से17.2.68)
9.	श्री चौधरी चरण सिंह भा0का0दल)	1969	(पंचम वि0स01969–74)

1. यह परिपाटी 1927 में बनी थी जब केन्द्रीय सभा के अध्यक्ष श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल ने यह निर्देश दिया कि उपाध्यक्ष को इनके बायी ओर प्रथम स्थान दिया जाय । उ0प्र0 विधान सभा में यह सुभअवसर द्वितीय विधान सभा में प्रतिपक्ष के श्री रामनारायण त्रिपाठी को मिला।
2. पचौरी परमात्नाशरण, विधायन्न प्रणाली–उ0प्र0 सूचना विभाग 1959 पृ047

10.	श्री चन्द्रभानु गुप्त (कांग्रेस)	1970	(पंचम वि०स० 1969-74)
11.	श्री गिरधारी लाल (कांग्रेस संगठन)	1970	
12.	श्री कमलापति त्रिपाठी (कांग्रेस)	1970	
13.	श्री गिरधारी लाल (कांग्रेस संगठन)	1971	
14.	श्री चरण सिंह (भा0क्रा0दल)	1972	
15.	श्री गिरधारी लाल (कांग्रेस संगठन)	1972	
16.	श्री जयराम वर्मा (भा0क्रा0दल)	1973	
17.	श्री चरण सिंह (भा0क्रा0दल)	1973–74	
18.	श्री चरण सिंह (भा0क्रा0दल)	1974	(षष्ठम वि.स.1974-77)
19.	श्री सत्यप्रकाश मालवीय (भा0क्रा0दल) (कार्यवाहक नेता विरोधी दल)	1977	
20.	श्री नारायण दत्त तिवारी (कांग्रेस)	1977	(सप्तम विधान सभा 1977–80)
21.	श्री राजमंगल पाण्डेय (जनता पार्टी)	1979	
22.	श्री राजेन्द्र सिंह (लोकदल)	1980–85 (सम्पूर्ण अवधि)	(अष्टम वि0स0 1980–85)

तालिका से स्पष्ट कि विपक्षी नेता के इस स्थान पर प्रथम विधान सभा के प्रारम्भिक महीनों में समाजवादी दल के नेता श्री रामनारायण बैठे, लेकिन 12 सि0 1952 को जब किसान मजदूर पार्टी का इस दल में विलय होकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ तब श्री राजनारायण प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता के रूप में इस पद पर प्रतिष्ठित बने रहें। दिसम्बर 1955 में इस दल का विघटन हो जाने के कारण इस प्रतिष्ठित स्थान पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री गेंदा सिंह बैठे।

द्वितीय विधानसभा में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के श्री त्रिलोकी सिंह को इस स्थान को सुशोभित करने का अवसर मिला।

तृतीय विधानसभा में भारतीय जनसंघ मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभर कर आया तो इसके नेता श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे को इस स्थान पर बिठाया । तत्पश्चात् नेतृत्व बदल गया किन्तु पार्टी जनसंघ ही रही । जिसमें क्रमशः श्री शारदा भक्त सिंह तथा श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी आसीन हुये ।

चतुर्थ विधान सभा में श्री रामचन्द्र विकल 14 मार्च 1967 से 1 अप्रैल 1967 तक विपक्ष के नेता रहे। किन्तु श्री चन्द्रभानुगुप्त सरकार के गिरजाने के कारण कांग्रेस विपक्ष में आ गयी व संविद का शासन हो गया अतः कांग्रेस के श्री चन्दभानुगुप्त 3 अप्रैल 1967 से 17 फरवरी 1968 तक नेता रहे पंचम विधान सभा कार्यकाल ही राजनीतिक अस्थिरता का काल रहा और इस विधान सभा कार्यकाल में 4 बार विपक्षी नेतृत्व बदला। तथा चौधरी चरण सिंह (भा0क्रा0दल) श्री चन्द्रभानुगुप्त (कांग्रेस), कमलापति त्रिपाठी, (कांग्रेस विभाजित), गिरधारी लाल, (संगठन कांग्रेस), श्री जयराम वर्मा,(भा0क्रा0दल) ने इस स्थान को ग्रहण किया । इनमें से श्री चरण सिंह एवं श्री गिरधारी लाल ने क्रमशः 3-3 बार स्थान को सुशोभित किया ।

षष्ठम विधान सभा में श्री चरण सिंह (नेता विरोधी दल) तथा तत्पश्चात श्री सत्यप्रकाश मालवीय (भा0का0दल) ने कार्य वाहक नेता विरोधी दल के रूप में स्थान ग्रहण किया।

सप्तम विधान सभा के काल में श्री नारायण दत्त तिवारी (इ0कांग्रेस) तथा श्री राजमंगल पाण्डेय (जनता दल) इस पद पर आसीन रहे।

अष्टम विधान सभा में लोकदल के श्री राजेन्द्र सिंह सम्पूर्ण काल क्रम में नेता विपक्ष रहें।

सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे अपने नियत स्थान पर ही बैठे। लेकिन कई अवसरों पर उन्होंने इसके प्रतिकूल कार्य कर सदन के अनुशासन को ठेस पहुचायी उदाहरणार्थ -प्रथम विधानसभा में 22 अगस्त 1952 को उस समय बडी आश्चर्यजनक स्थिति उत्पन्न हो गयी जब प्रतिपक्ष के लगभग दो दर्जन सदस्य कांग्रेस, तथा कांग्रेस सदस्य विपक्षी दल की सीटों की ओर बढ़े । समाजवादी दल के नेता श्री राजनारायण (नेता विपक्ष) तो मुख्यमंत्री के लिये नियत स्थान पर जाकर बैठ गये ।[1] प्रतिपक्ष के इस कृत्य में ऐसा

---

1. आज, 24 अगस्त 1952, पृ0 1

ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके मन में सत्तारूढ़ दल का स्थान प्राप्त करने की चाह हो। प्रथम विधान सभा में ही 1956 में उ0प्र0 बिक्रीकर (द्वितीय संशोधन) विधेयक पर विचार के समय वित्त मंत्री श्री लफीज मुहम्मद इब्राहीम प्रतिपक्ष के साथ बैठे।[1] यद्यपि इससे सदन का अनुशासन भंग हुआ किन्तु वित्त मंत्री के इस कृत्य से प्रतिपक्ष का मनोबल बढ़ा लेकिन सत्तापक्ष द्वारा नियम भंग की स्थिति में प्रतिपक्ष ने उस सम्बन्ध में आपत्ति की उदाहरणार्थ – अगस्त 1956 को मुख्यमंत्री के स्थान पर गृह सचिव के बैठने पर विपक्षी दल संचेतक श्री जगन्नाथ मूल ने इस पर आपत्ति की, बाद में गृह सचिव ने अध्यक्ष को पत्र लिख माफी मांगी ।[2] इस दृष्टि से प्रतिपक्ष ने सत्तापक्ष के अनुशासन भंग की ओर सदन का ध्यान आर्कषित कर अपनी जागरूकता का परिचय दिया ।

सदस्यों की वक्तृता सदन के समक्ष उपस्थित विषयों व इससे पूर्णतया सम्बद्ध होना चाहिये। लोकसभा के स्वर्गीय अध्यक्ष श्री मावलंकर का कहना था– संसद वक्तृता हेतु है न कि अनुद्देश्यपूर्ण बोलने के लिये ।[3] उ0प्र0 विधान सभा में अनेक अवसर ऐसे आये जब पीठासीन अधिकारी ने सदस्यो से अनुद्देश्य पूर्ण बोलने से मना किया – उदाहरणार्थ 19 दिसम्बर को श्री राजनारायण नेता सोशलिस्ट पार्टी को अनुद्देश्यपूर्ण बोलने से मना किया किन्तु उन्होंने अध्यक्ष पीठ की अवज्ञा की और जोर जोर से बोलते रहे। अतः अध्यक्ष ने उन्हें सदन से बाहर जाने का आदेश दिया । श्री राजनारायण दिनांक 9 सितम्बर 1958 को कुछ सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों की गिरफ्तारी के कारणों की जानकारी चाहते थे। अध्यक्ष ने कहा कि सदन से इन गिरफ्तारियों का कोई सम्बन्ध नही है फिर भी श्री राजनारायण निरन्तर बोलते रहे ।[4]

प्रायः सदस्यों द्वारा पीठासीन अधिकारियों के प्रति भी अनादर व अपमान सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया उदाहरणार्थ– 20 फरवरी 1958 को अपने अल्पसूचित तारांकित प्रश्न 3 के सम्बन्ध में श्री राजनारायण ने कहा कि उसे परिवर्तित कर दिया गया है। श्री अध्यक्ष ने सम्बन्धित पत्रावली देखकर बताया कि मैंने अभी आपके हाथ का जो लिखा

---

1. आज, 6 दिसम्बर 1956, पृ0 2
2. आज, 11 अगस्त 1956, पृ0 2
3. मोर ए0एस0, प्रैक्टिस एन्ड प्रोजिसर आफ इण्डियन पार्लियामेन्ट, पृ0 319
4. उ0प्र0 वि0स0 का संक्षिप्त सिंहावलोकन 1957 द्वितीय सत्र, पृ0 4

उसे देखा–बिल्कुल एक एक अक्षर वही है । श्री राजनारायण ने कुछ आवेश में आकर कहा आप सरकार की नालायकी को छिपाने के लिये तीन बार से मेरे प्रश्न को बराबर टालते जा रहे है। श्री अध्यक्ष ने उक्त शब्दों के प्रयोग को अनुचित ठहराया ।[1]

दिनांक 22 फरवरी 1984 को राज्यपाल के अभिभाषण पर प्रतिपक्षी सदस्यों के अनुचित आचरण की जॉच किये जाने हेतु समिति गठित किये जाने के प्रस्ताव का विरोध करते हुये विरोध पक्ष द्वारा यह कहा कि चूंकि अभिभाषण के समय सदन नही होता अतः सदन का अनादर किये जाने का प्रश्न ही नही उठता– अध्यक्ष ने इसे अस्वीकार कर समिति गठित किये जाने के प्रस्ताव का समर्थन किया तब नेता विपक्ष श्री राजेन्द्र सिंह ने यह कहते हुये कि "सत्तापक्ष अपने बहुमत के आधार पर लोकतंत्र का हनन कर रहा है तथा उनका (श्री अध्यक्ष) का सहयोग उन्हें मिल गया है। " सदन त्याग किया– श्री अध्यक्ष ने इस आक्षेप तथा आचरण को अनुचित बताया ।[2]

प्रतिपक्षी नेतृत्व द्वारा सदन में अध्यक्ष पीठ की अवज्ञा किये जाने पर उनके विरूद्ध भर्त्सना प्रस्ताव भी सदन में प्रस्तुत हुआ – दि0 2 मई 1978 को विपक्षी नेता श्री नारायण दत्त तिवारी ने प्रश्नों को स्थगित करने का प्रस्ताव रखा । माननीय अध्यक्ष द्वारा उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार किये जाने के बावजूद भी श्री नारायण दत्त तिवारी बार बार माननीय अध्यक्ष की अवहेलना करते रहे जिससे सदन डेढ़ घण्टे के लिये स्थगित हो गया । और इस प्रकार प्रश्न तथा शून्य प्रहर की सूचनाओं का समय समाप्त हो गया । श्री नारायण दत्त तिवारी, श्री मंजूर अहमद तथा श्री कृष्ण वीर सिंह कौशल ने माननीय अध्यक्ष की आज्ञाओं की अवहेलना की तथा उकने विरूद्ध आरोप व आनादर सूचक शब्दों का प्रयोग किया तथा मानानीय अध्यक्ष की व्यवस्था के विरोध में नारे लगाते हुये सदन त्याग किया । श्री अध्यक्ष ने उक्त आचरण पर दिनांक 9 मई को व्यवस्था देते हुये कहा कि सदन में श्री मंजूर अहमद, श्री नारायण दत्त तिवारी के व्यवहार को सदन का अपमान मानते हुये भर्त्सना की ।[3]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही संक्षिप्त कार्यवृत दि0 20 फरवरी 1958 पृ0 23
2. –तदैव– अष्टम विधान सभा अष्टम सत्र पृ0 47
3. –तदैव– सिंहावलोकन प्रथम सत्र 17 मार्च 1978 से 17 मई 1978 तक पृ036–37

सदन में पालनीय नियमों की अवहेलना के अतिरिक्त कभी कभी सदस्यों द्वारा संसदीय आचरण की समस्त मान्यताओं के विरूद्ध पीठासीन अधिकारी के आदेशों की अवज्ञा कर उ0प्र0 विधान सभा में घोर अनुशासनहीनता और अव्यवस्था के दृश्य उपस्थिति किये गये जिसके कारण सदन अनेकों बार स्थगित किया गया । कभी कभी तो सम्पूर्ण प्रतिपक्ष द्वारा सदन में अमर्यादित व्यवहार किया गया व प्रतिपक्षी नेतृत्व इसे रोकने में असफल रहा।

चतुर्थ विधान सभा में 25 जुलाई 1967 को 1967–68 के आयव्यय करने में अनुदानों के लिये माँगों पर सदन में चर्चा हो रही थी । विभाजन की प्रक्रियापरप्रशासक दल व विपक्ष में विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गयी, फलतः सदन में अत्यन्त शोर होने लगा और दोनों ओर के अनेको सदस्य अपने स्थानों पर खड़े हो गये अतः अध्यक्ष ने सदस्यों से बैठने को कहा,अध्यक्ष की इस अपील का सदस्यों पर कोई प्रभाव नही पड़ा। और मुख्यमंत्री चरण सिंह ने अत्यन्त क्षुब्ध होकर कहा जो वातावरण इस समय सदन में हैं मैं किस तरह अर्ज करू कि इससे मुझको कितनी तकलीफ हैं। अगर यह सदन इसी तरह से चला तो भले आदिमियों की सभा नही रह जायेगी ...[1] सदन में शान्ति स्थापित होते देखकर अध्यक्ष ने पुनः सत्तापक्ष व प्रतिपक्षी नेतृत्व से निवदन किया " लाबीज के पास जो माननीय सदस्य खड़े है, वे बैठ जायें ।

अध्यक्ष की इस कातर अभ्यर्थना का भी सदन पर कोई असर नही हुआ । तब एक बार फिर अध्यक्ष महोदय ने सदस्यों को उनकी स्थिति का बोध कराते हुये उनसे सदन का कार्य चलने देने की प्रार्थना की । अध्यक्ष ने कहा माननीय सदस्यों को यह नही भूलना चाहिये कि उनको सुनने व देखने बाते और भी हैं और वे सदन के कार्यो की विवेचना बाहर भी कर सकते हैं।

उ0प्र0 विधान सभा में विपक्षी सदस्यों व प्रतिपक्षी नेतृत्व द्वारा सदन में किये गये आचरण और व्यवहार से सम्बन्धित उर्पयुक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हैं कि सदन के गौरव, गरिमा, मर्यादा, व सम्मान की रक्षा के प्रति प्रायः वे सचेत नही रहे और उन्होंने विधान सभा को सही अर्थो में एक आदर्श जनतांत्रिक संस्था बनाने का प्रयास नही किया।

---

1. उ0प्र0 विधान सभाखण्ड 274, पृ0 695.

जनतंत्र वस्तुतः दूसरों के अधिकारों व सम्मान की रक्षा करते हुये अनुशासित एवं व्यवस्थित आचरण की एक पद्धति है। सदन में प्रायः अध्यक्ष के आदेशों की अवज्ञा असंयत व अमर्यादित वक्तृता तथा दूसरे सदस्यों के भाषणों में व्यवधान उपस्थिति करना जनतंत्र की भावना के सर्वथा प्रतिकूल जनता पर दूषित प्रभाव डालने वाली तथा अपने सदन की प्रतिष्ठा को क्षीण करने वाल आचरण ही कहा जायेगा ।

विधायी संस्थाओं की प्रक्रिया नियमावलियों में सदस्यों द्वारा पालनीय नियमों के उल्लेख का मौलिक उद्देश्य सदन में व्यवस्था की स्थापना सदन की गरिमा की रक्षा और उसके अमूल्य समय के अपव्यय को बचाना है ।[1] किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति सदस्यों के आचण व व्यवहार पर ही मुख्यरूप से निर्भर करती है। जब तक सदस्यगण स्वयं सदन में "समन्वय की भावना मैत्रीभाव और विधायी सहयोग" नही करते है, वाद विवाद का उच्च स्तर व सम्मान प्राप्त करना कठिन होगा"।[2]

सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सदन में बोलते समय सदैव संयत व शिष्ट भाषा का प्रयोग करें। इस सम्बन्ध में सदस्यों के दायित्व का विवेचन करते हुये लोकसभा अध्यक्ष श्री मावलंकर ने कहा था – कि प्रत्येक सदस्य को अपने विचारों को व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता यह स्मरण रखते हुये प्राप्त है कि दूसरे सदस्य को भी वही स्वतंत्रता है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता हैं कि उनके विचारों के विषय व विस्तार पर तथा साथ ही भाषा पर नियत्रंण रखा जाये। वाद विवाद को उपयोगी, लाभपूर्ण व प्रभावकारी बनानें के लिये खिलाड़ी की भावना पारस्परिक सौहार्द और सम्मान का वातावरण एक आवश्यक दशा है ।[3]

प्रायः क्रोध एवं आवेश की अवस्था में सदस्यगण असंयमित हो, संसदीय शिष्टाचार का विस्मरण कर अभद्र व अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर जाते है। सदस्यों की इस प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिये तथा सदन के गौरव एवं सम्मान की रक्षा हेतु सदस्यों द्वारा दूषित एवं अमर्यादित शब्दों को सदन की कार्यवाही से निकाल देने का अधिकार भारतीय व्यवस्थापिकाओं के प्रक्रिया नियमों के अन्र्तगत अध्यक्ष को प्रदान किया गया– कि यदि

---

1. मोर एस0एस0 प्रैक्टिस एण्ड आफ इन्डियन पालिर्यामेन्ट ,पृ0356
2. –तदैव– पृ0 350
3. –तदैव– पृ0 350

अध्यक्ष की राय से सदन में कोई ऐसा शब्द या ऐसे शब्द प्रयुक्त किये गये है जो मानहानिकारक या अशिष्ट या असंसदीय या अभद्र है तो वे स्वविवके से आदेश कर सकेगें कि ऐसा शब्द या ऐसे शब्द सदन की कार्यवाही में से निकाल दिये जायेगें।[1] सदन की कार्यवाही में से इस प्रकार निकाले गये अंश छापे नही जायेगे अपितु उनके स्थान पर तांराक लगाया जायेगा[2]

उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों को देखने से ज्ञात होता है कि यदा कदा अध्यक्ष सदस्यों द्वारा प्रयुक्त कुछ अवांच्छित व अशोभनीय शब्दों को सदन की कार्यवाही से निकाल देने के आदेश दिये जिन्हें नियमानुसार तारॉक लगा कर प्रदर्शित किया गया– उदाहरणार्थ– चतुर्थ विधान सभा में 19 जून 1967 को आय व्ययक पर विचार के समय नेता विरोधी दल श्री चन्द्रभानु गुप्त ने निकम्मा शब्द का प्रयोग किया तो श्री ट्रम्बेश्वर प्रसाद ने उस पर आपत्ति की। इस पर श्री अध्यक्ष ने कहा कि निकम्मापन असंसदीय है। यदि किसी व्यक्ति का नाम लेकर कहा जाये वरना नही । [3]

पंचम विधान सभा में नेता संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी श्री अनन्त राम जायसवाल ने पुलिस द्वारा सदन से अपने निष्कासन व सदन की सेवा से निलम्बन के सम्बन्ध में 30 अगस्त 1069 को व्यवस्था के प्रश्न पर बोलते हुये कहा कि मैं आपको धमकी नही दे रहा हूँ बल्कि बड़े अदब से कह रहा हूँ कि जब एक दफे हिंसा का हाथ बढ़ाना शुरू हो जाता है तो वह खूनी पंजा हमारी गर्दन पर पहुँच कर ही नही रूकेगा बल्कि वक्त आने पर वह मुख्यमंत्री की गर्दन पर भी पहुँच सकता है। आगे उन्होंने छाती पर भी पहुँच सकता है का प्रयोग किया इस पर अध्यक्ष श्रीमती राजेन्द्र कुमारी वाजपेयी द्वारा आपत्ति किये जाने पर कहा कि जहॉ तक छाती का सवाल है औरतों के लिये हिन्दी में जरा बुरा मालूम होता है।[4]

26 जुलाई 1967 को मन्त्रिमण्डल में अविश्वास प्रस्ताव पर भाषण करते हुये नेता विपक्ष श्री चन्द्र भानु गुप्त के यह कहने पर कि "ऐसी परिस्थितियॉ शक पैदा करती

---

1. उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियम 304 (1)
2. –तदैव– नियम 304(2)
3. उ0प्र0 विधान सभा खण्ड 272 पृ0 167
4. उ0प्र0 विधान सभा खण्ड 279 पृ0 932

है कि आदेश देने वाले की क्या सेहत या दिमाग ठीक है?"[1] इस पर श्री गंगा राम तलवारके आपत्ति करने पर अध्यक्ष ने व्यवस्था दी कि "अगर किसी व्यक्ति को इंगित करके बताया जाये तो अन पार्लियामेन्टरी है लेकिन अगर एक प्रसंग में कहा जाये तो पार्लियामेन्टरी है।"

विधान सभा सदस्यों के उर्पलिखित कथनों के विवेचन से यह तथ्य सुस्पष्ट होता है कि सामान्यतः सदन में वाद विवाद स्तरीय नही रहा । सदस्यों द्वारा अपने विरोधी सदस्यों की आलोचना या प्रशासन की निन्दा के लिये प्रायः ओछे और निम्न प्रकृति के शब्दों का प्रयोग किया । हमारे विधायक व विधायिनी में दलीय नेतृत्व करने वाले मुख्य तथा सामान्य सदस्य प्रदेश की जनता के भी नेतृत्व वर्ग के अर्न्तगत आते है उनसे जनसाधारण द्वारा अनुकरणीय शिष्ट एवं संयत कथनों व उच्च आचरण तथा व्यवहार की अपेक्षा होती है । अतः उन्हें संसदीय मान्यताओं व परम्पराओं के अनुकूल अपने वाद विवाद के स्तर को उच्च करते हुये स्वस्थ आलोचना पद्धति के अनुसरण का प्रयास करना चाहिये जिससे वे जनसाधारण का आदर्श बन सकें और देश तथा विदेश की संसदीय संस्थाओं की दृष्टि में अपने सदन को गौरवान्वित कर सकें तभी जनतांत्रिक मूल्यों पर उनकी आस्था सिद्व हो सकेगी ।

<u>सदन परित्यागः–</u>

सदन में हो रहे कार्यो से अपनी असहमति अथवा विरोध अभिव्यक्त करने के साधन के रूप में सदस्यों द्वारा बहुधा सदन त्याग किया जाता है। अध्ययनाधीन विधान सभा कार्यकाल की कार्यवाहियों के अवलोकन से यह तथ्य ज्ञात होता हे कि इन विधान सभाओं के लगभग प्रत्येक सत्र में अधिकांशतः विरोधी पक्ष के सदस्यों ने व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से सदन के परिसर का परित्याग किया ।

सदन त्याग की घटनाओं के कारणों को अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि विपक्षी सदस्यों को विरोध के प्रतीक रूप मे सदन से बर्हिगमन करने की आदत सी विकसित हो गयी है । और प्रायः विभिन्न छोटी छोटी अमहत्वपूर्ण बातों पर सदस्यों द्वारा प्रतिपक्षी नेताओं सहित सदन का त्याग किया गया– विवरण निम्नवत् है। (क) 11 मई 1962 को मुख्यमंत्री के सभा सचिव श्री वंशीधर पाण्डेय ने प्रस्ताव किया कि सदन का समय 5 मिनट के लिये बढ़ा दिया जो सदन द्वारा स्वीकृत हुआ । समय बढ़ाये जाने के विरोध में विरोधी दलों के सभी सदस्यों ने सदन त्याग किया ।[2] इसके विपरीत 4 सितम्बर 1962

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 274 पृ0 775
2. उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड 230 पृ0 700–701

को जनसंघ दल के सदस्य श्री ट्रम्बेश्वर प्रसाद ने प्रस्ताव किया कि सदन का समय एक घन्टे के लिये बढ़ा दिया जोय, प्रस्ताव सदन द्वारा अस्वीकृत हुआ । समय न बढ़ाये जाने के विरोध में विरोधी दलों के सदस्यों ने सदन से बर्हिगमन किया ।[1]

प्रतिपक्ष द्वारा राज्यपाल के अभिभाषण के गरिमामय अवसर परसदन त्याग कर इस अवसर की सौम्यता को भंग किया उदाहरणार्थ प्रथम विधान सभा में सर्वप्रथम यह अवसर 1954 में आया, जब प्रतिपक्ष के 22 सदस्यों ने सामाजवादी दल के नेता श्री राजनारायण के नेतृत्व में 3 फरवरी 1954 को घटित कुम्भ की घटना के सम्बन्ध में सदन त्याग किया। इस में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अतिरिक्त भा0 साम्यवादी दल व स्वतंत्र दल के सदस्य भी शामिल थे । इस घटना के सम्बन्ध में विपक्ष का रूख इतना उग्र था । कि उनकी मांग पर सरकार को इस घटना की जॉच के लिये एक समिति गठित करनी पड़ी[1] तथा इस का प्रभाव केवल विधान मण्डल परही नही बल्कि संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय भारतीय साम्यवादी दल व हिन्दू महासभा के सदस्यों ने इस घटना के विरोध में सदन त्याग किया ।[2]

और फिर तो सदन त्याग एक परम्परागत अस्त्र के रूप में प्रतिपक्ष द्वारा प्रयोग किया जाने लगा तथा उ0प्र0 विधान सभा में क्रमशः 1958, 1959 एवं 1964 में राज्यपाल द्वारा अंग्रेजी में अभिभाषण किये जाने के विरोध में सदन त्याग किया गया । यद्यपि वर्ष 1964 में 2 फरवरी 1964 को राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास ने विधान मण्डल के सभी विरोधी गुटों के नेताओं को बुलाकर हिन्दी में भाषण करने में असमर्थता व्यक्त कर चुके थे ।[3] इस प्रकार अध्ययनाधीन विधान सभा कार्यकाल में राज्यपाल के अभिभाषण के समय लगभग बार-बार सदन त्याग की घटनायें हो चुकी है।

वास्तव में प्रतिपक्षी दलों के इस आचरण से न केवल राज्यपाल की प्रतिष्ठा को धक्का लगा वरन् उनके अभिभाषण देने के संवैधानिक अधिकार के समक्ष प्रश्न चिन्ह लग गया। विपक्षी सदस्यों को ऐसा न तो वांछनीय था और नही संसदीय मर्यादाओं के अनुरूप क्यों कि राज्यपाल का अभिभाषण प्रारूप सरकार द्वारा तैयार किया जाता है।[4]

---

1. उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड 233, पृ0 924–25
2. –तदैव–
3. द टाईम्स आफ इन्डिया 16फरवरी 1954
4. द हिन्दुस्तान टाइम्स 4 फरवरी 1964
5. बैक ग्राउन्ड पेपर्स,सेकेन्ड ओरिएन्टेशन सेमीनार फार लेजिस्लेचर्स,द इन्स्टीटूयट आफ कानस्टीटूयूशनल एन्ड पालियामेन्टरी स्टडीज,पृ0941

प्रायः विधेयक को पुरास्थापन के विरोध में भी विपक्षी सदस्यों द्वारा सदन का त्याग किया गया – उदाहरणार्थ तीसरी विधान सभा में 2 सितम्बर 1962 को राज्य मंत्री श्री हुकम सिंह विसेन द्वारा उ0प्र0 जीतकर विधेयक को पुनःस्थापन हेतु पटल पर रखा गया– उस समय सम्पूर्ण विपक्ष इस विधेयक का विरोध कर रहा था। नेता विपक्ष श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे ने आरोप लगाया कि इस विधेयक के विरोध में 237 सदस्यों ने विरोध पत्र दिया हे। इस प्रकार यह सरकार अल्पमत में है परन्तु शासक दल के बहुमत के कारण विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुज्ञा प्राप्त हो गयी फलतः विरोध स्वरूप मुख्य विरोधी दल जनसंघ नेता विपक्ष श्री यादवेन्द्र दुबे के नेतृत्व में सम्पूर्ण विपक्ष जिसमें क्रमशः समाजवादी, स्वतंत्र दल, साम्यवादी दल प्रजा समाजवादी दल तथा सारे निर्दलीय सदस्य सदनसे बाहर चले गये ।[1]

प्रत्येक विधान सभा में ऐसे अनेकों अवसर प्राप्त होते है जब सदस्यों द्वारा अभिसूचित कार्य स्थगन प्रस्तावों को प्रस्तुत करने की अनुमति मिलने पर सदन त्याग किया गया उदाहरणार्थ – 20 अप्रैल 1965 को नेता विपक्ष श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने राज्य कर्मचारियों द्वारा वरती गयी अदूरदर्शिता, असावधानी के कारण दिनांक 10 अप्रैल 1965 को अयोध्या के पास सरयू नदी पर बने पीपे के पुल के अकस्मात् तीन पीपे बैठ जाने के कारण हुयी लोमहर्षक दुर्घटना से 300 आबालवृद्ध नरनारियों के मर जाने से सम्बन्धित कार्य स्थगन प्रस्ताव दिया । मुख्यमंत्री के भाषण के मध्य श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी और श्री नेकराम शर्मा ने सम्पूर्ण प्रतिपक्ष सहित सदन त्याग दिया।[2]

राजनीतिक दलों के पारस्परिक विरोध से सम्बन्धित सदन के बाहर घटित घटनायें और उनसे उत्पन्न रोष व क्षोम भी कभी कभी सदन परित्याग का कारण रहा– दिनांक 26 अगस्त 1977 को नेता विरोधी दल श्री नारायण दत्त तिवारी ने मुख्यमंत्री का ध्यान आर्कषित करते हुये कहा कि किसान और कांग्रेस कार्यकर्ता तथा मजदूरों को जो आज प्रदर्शन के लिये आने वाले है उनको यहाँ आने से रोका जा रहा है–उनके प्रश्न पर मुख्यमंत्री द्वारा कोई आश्वासन न होने पर वे कांग्रेस के समस्त सदस्यों सहित सदन से बाहर चले गये ।[3] दिनांक 19 जनवरी 1982 प्रश्न काल में श्री अध्यक्ष द्वारा कार्यसूची में नत्थी तांराकित प्रश्न संख्या 2 के उत्तर देने के लिये शिक्षामंत्री को बुलाये जाने पर

---

1. उ0प्र0 विधान सभा, खण्ड .233, पृ0 879–83
2. उ0प्र0 विधान सभा संक्षिप्त सिंहावलोकन, तृतीय विधान सभा, षष्ठम सत्र, पृ03 . दिनांक 20 अप्रैल 1965
3. उ0प्र0 विधान सभा का संक्षिप्त कार्यवृत, 26 अगस्त 1977.

नेता विपक्ष श्री राजेन्द्र सिंह ने यह कहते हुये कि उनके दल के सदस्यों द्वारा भारत बन्द के नाम पर इस सरकार ने दमनकारी नीति अपनायी है और उनके दल के सदस्यों सहित पद त्याग किया तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्रतिपक्ष ने सदन त्याग किया।[1]

ऐसे भी उदाहरण मिलते है जब पीठासीन अधिकारी द्वारा दिये गये आदेश अथवा विनिश्चयों के विरोध में सदन त्याग किया गया – उदाहरणार्थ – उ0प्र0 विश्वविद्यालय संशोधन अध्यादेश 1970 के अनुमोदन प्रस्ताव पर श्री अध्यक्ष ने श्री उदित नारायण को उत्तर भाषण के लिये बुलाया । इस पर श्री कृष्ण चन्द्र ने कहा कि कुछ सदस्य बोलने से वंचित रह गये है। श्री अध्यक्ष ने कहा कि आगे इसी पर विधेयक आने वाला है, उस पर सदस्य बोल सकते है नेता विरोधी दल श्री गिरधारी लाल ने यह कहते हुये कि विरोधी दल के अधिकारों का हनन हुआ है और उन्होने अपने दल के सदस्यों सहित सदन त्याग दिया ।[2]

सदस्यों के इस प्रकार के आचरण के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पीठासीन द्वारा दिये गये आदेश के प्रति विरोध प्रर्दशन संसदीय आचरण के विरूद्ध है और सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसका आदर करें।

लोकसभा में 9 नवम्बर 1962 को पीठासीन अधिकारी के आदेश के विरूद्ध कुछ सदस्यों द्वारा किये गये सदन त्याग के सम्बन्ध में अपनी व्यवस्था देते हुये लोक सभा अध्यक्ष ने कहा था–''सदस्यों को मेरे निर्णय का विरोध करने का अधिकार नही है...[3] उ0प्र0 विधान सभा में भी 31 मार्च 1964 (तृतीय विधान सभा) को अध्यक्ष ने तथा 25 अप्रैल 1972 (पंचम विधान सभा) को उपाध्यक्ष ने इस विषय पर अपनी व्यवस्था देते हुये पीठासीन के निर्णय के विरूद्ध सदन त्याग को सदन का अवमान घोषित किया था। तथा अन्य भी अनेक अवसरों पर लोकसभा व राज्य विधान सभाओं में यह निर्णय दिये गये है फिर भी उर्पयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सदस्यों ने इस पर समुचित ध्यान न देकर बार बार संसदीय मर्यादा का उल्लंघन किया है।

1. उ0प्र0 विधान सभा संक्षिप्त कार्यवृत्त, 19 जनवरी 1982
2. –तदैव– पंचम विधान सभा चतुर्थ सत्र, 20 पृ0971
3. मोर एस0एस0, प्रैक्टिस एन्ड प्रोसीजर इन इन्डियन पार्लियामेन्ट, पृ0 118

सदन में शान्ति व व्यवस्था की स्थापना- निलम्बन, निष्कासन एवं पुलिस प्रवेश-

सदन की कार्यवाहियों के सुचारू संचालन तथा इस प्रयोजनार्थ अपेक्षित शान्ति और व्यवस्था के सदन में स्थापन का प्रत्यक्ष दायित्व अध्यक्ष अथवा उसके द्वारा प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करने वाले पीठासीन अधिकारी का होता है, यद्यपि इस सम्बन्ध में अन्तिम सत्ता स्वयं सदन में निहित होती है ।[1] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारतीय व्यवस्थापिकाओं के प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत सदन में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले और सदन की कार्यवाही में व्यवधान उपस्थित करने वाले सदस्यों को सदन से निष्कासित करने की या उन्हें इंगित करने की या सदन को स्थगित करने की या उपवेशन को निलम्बित करने की शक्ति अध्यक्ष को प्रदान की गई है । यह शक्तियाँ बहुत कुछ हाउस आफ कामन्स के अध्यक्ष की शक्तियों की भांति हैं ।

उ0प्र0 विधान सभा के प्रक्रिया नियम 299 (1) में कहा गया है कि "अध्यक्ष.... किसी सदस्य को जिसका व्यवहार उनकी राय में अव्यवस्थापूर्ण हो, अथवा अध्यक्ष के प्रति अवज्ञापूर्ण हो, सदन से तुरन्त बाहर चले जाने का निर्देश दे सकेंगे और जिस सदस्य को इस प्रकार बाहर चले जाने का निर्देश दिया जाये वह तत्काल सभामण्डप से बाहर चले जायेंगे और उस दिन के उपवेशन के अवशिष्ट समय में अनुपस्थित रहेंगे" ।

सदन द्वारा निलम्बित सदस्य इसके लिये बाध्य होते हैं कि वे सदन के परिसर का तुरन्त परित्याग करें किन्तु ऐसा न करने पर और अध्यक्ष द्वारा सदन का ध्यान इस ओर आकृष्ट किये जाने पर कि बल प्रयोग अनिवार्य हो गया है, निलम्बित सदस्य बिना किसी अग्रेतर प्रस्ताव के सत्र की अवशिष्ट कालावधि के लिये निलम्बित हो जायेंगे ।[2]

अध्यक्ष को अपने आदेश या सदन के विनिश्चयों को कार्यान्वित करने की पूर्ण शक्ति होती है और वे कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर आवश्यक बल का प्रयोग कर सकते हैं या ऐसा करने का अधिकार दे सकते हैं । सदन में घोर अव्यवस्था होने की दशा में अध्यक्ष किसी उपवेशन को ऐसे समय के लिये जिसे वह निर्धारित करे , निलम्बित कर सकते हैं ।[3]

1- कैम्पियन जी०, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रोसीजर आफ दि हाउस आफ कामन्स" पृ० 196.

2- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम-299 (3) (ग)

3- उ0प्र0 विधान सभा प्रक्रिया नियमावली नियम- 299 (5), (6)

उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष द्वारा बहुधा अव्यवस्था व अनुशासनहीनता के दृश्य उत्पन्न हुये और अध्यक्ष व अन्य पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियम–299 के अधीन प्राप्त शक्ति का प्रयोग करते हुये उसके लिये उत्तरदायी सदस्यों को सदन छोड़ने के आदेश दिये गये तथा उन्हें इंगित किया गया । पीठासीन अधिकारियों द्वारा ऐसे सदस्यों के विरूद्ध कभी–कभी बल प्रयोग के भी आदेश दिये गये जिन्होंने सदन से बाहर जाने के आदेश व सदन द्वारा किये गये निलम्बन के विनिश्चय की अवज्ञा की ।

उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाहियों के अवलोकन से यह तथ्य प्रकाशित होता है कि अध्यक्ष व अन्य पीठासीन अधिकारियों को अधिकांशतः प्रतिपक्षी सदस्यों के ही विरूद्ध निलम्बन व निष्कासन तथा बल प्रयोग के आदेश देने पड़े । विपक्ष के सदस्यों द्वारा असंसदीय आचरण को सदन में अपने विरोध प्रदर्शन का एक साधन बना लिया गया था । अतः पीठासीन अधिकारियों को विवशतः सदस्यों के विरूद्ध उपर्युक्त प्रक्रिया के लिये बाध्य होना पड़ा । सम्भवतः सदस्यों ने जनता की दृष्टि में अपने को सरकार का सशक्त विरोधी तथा एक सशक्त दलीय नेता व अग्रिम पंक्ति का राजनीतिज्ञ सिद्ध करने अथवा अन्य किसी उद्देश्य से ऐसे आचरण को अपनाया गया हो परन्तु एक विवेकशील तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण इसे निन्दनीय ही कहेगा– इस संदर्भ में प्रतिपक्षी आचरण का विवेचन निम्नवत् हैः–

प्रथम विधान सभा में समाजवादी नेता श्री राजनारायण निलम्बन व निष्कासन क्षेत्र में अग्रणीय रहे तथा उनके विरूद्ध अध्यक्ष को पुलिस सहायता तक लेनी पड़ी – 19 सितम्बर, 1957 को श्री राजनारायण नेता सोशलिस्ट पार्टी को सदन से तीन दिन के लिये निलम्बित कर दिया गया क्योंकि उन्होंने श्री अध्यक्ष की आज्ञा पर सदन त्याग से इंकार किया था ।[1]

दिनांक 8 सितम्बर, 1958 को सदन में कुछ सदस्यों की गिरफ्तारियों की सूचना देने के सम्बन्ध में श्री राजनारायण नेता सोशलिस्ट पार्टी ने उसके विरोध में खड़े होकर उन गिरफ्तारियों के कारणों की जानकारी चाही । मुख्य मंत्री ने सदन को बताया कि ये गिरफ्तारियाँ सम्बन्धित अधिकारियों के द्वारा नियमों के उल्लंघन करने के सम्बन्ध में की गई थी और सरकार का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था । इसके विरोध में श्री राजनारायण गर्म होकर सदन में जोरों से बोलने लगे । अध्यक्ष महोदय ने उनको रोका और उनसे आसन ग्रहण करने को बार–बार कहा पर श्री राजनारायण बोलते रहे तब अध्यक्ष महोदय ने उनसे कहा कि वे उनको इस बात की इजाजत नहीं देते कि सदन को प्रोपोगण्डा का स्थान बनायें । श्री

1– उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही संक्षिप्त सिंहावलोकन 1957, द्वितीय सत्र 19 सितम्बर, 1957.

अध्यक्ष के आदेशानुसार जब श्री राजनारायण ने अपना स्थान ग्रहण नहीं किया और जोरों से बोलते रहे तब श्री अध्यक्ष ने उन्हें सदन छोड़ने का आदेश दिया श्री राजनारायण ने श्री अध्यक्ष की इस आज्ञा का उल्लंघन किया । इस पर श्री अध्यक्ष ने उन्हें तुरन्त इंगित किया नेता सदन डा0 सम्पूर्णानन्द ने तत्काल प्रस्ताव किया कि श्री राजनारायण को 15 दिन के लिये सदन की सेवा से निलम्बित किया जाये प्रश्न उपस्थित किया गया व प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । श्री राजनारायण उक्त प्रस्ताव में एक संशोधन का प्रस्ताव करना चाहते थे कि बजाय उनके नेता सदन डा0 सम्पूर्णानन्द जी को एक महीने के लिये निलम्बित किया जाये चूँकि नेता सदन के प्रस्ताव पर कोई संशोधन पेश नहीं किया जा सकता था, श्री राजनारायण के प्रस्ताव को अध्यक्ष पीठ ने अस्वीकार कर दिया और नेता सदन का मूल प्रस्ताव मतदान के लिये उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ । श्री राजनारायण ने विभाजन की मांग की किन्तु चूँकि श्री राजनारायण को उससे पूर्व सदन छोड़ने के आदेश दिये जा चुके थे इसलिये उनके द्वारा विभाजन की मांग स्वीकार नहीं की जा सकी ।

श्री अध्यक्ष ने मार्शल को आदेश दिया कि वे श्री राजनारायण को नम्रतापूर्वक सदन से बाहर जाने को कहें । मार्शल उनके पास गये और श्री राजनारायण से नम्रतापूर्वक सदन छोड़ने की प्रार्थना की जिसके लिये उन्होंने ने इंकार किया और मार्शल से जोरों से कहा कि वह श्री सम्पूर्णा नन्द से कहें कि वह सदन से बाहर चले जायें । मार्शल ने श्री अध्यक्ष को सूचित किया कि श्री राजनारायण सदन छोड़ने के लिये राजी नहीं हैं । इस समय सदन में श्री राजनारायण । व उनके दल द्वारा बहुत शोर किया गया । सदन में व्यवस्था कायम करने के लिये श्री अध्यक्ष ने बैठक को 10 मिनट के लिये स्थगित कर दिया जिससे सदन में शान्ति स्थापित हो जाये व उसका कार्य हो सके तथा निलम्बित सदस्य बाहर जा सकें । श्री राजनारायण । अपनी जगह बेहिचक जमे रहे । सभा की बैठक 10 मिनट के लिये स्थगित करने के उपरान्त जैसे ही श्री अध्यक्ष सदन के बाहर गये श्री राजनारायण अध्यक्ष मंच पर जाकर सदन को सम्बोधित करने लगे । मार्शल ने तब श्री अध्यक्ष को सूचित किया कि श्री राजनारायण सदन से बाहर जाने के लिये तैयार नहीं हैं तब श्री अध्यक्ष ने यह आदेश दिया कि श्री राजनारायण को उतनी पुलिस की सहायता से जितनी कि आवश्यक हो जबरदस्ती सदन से बाहर निकाला जाय चूँकि मार्शल ने अपने को उस कार्य के लिये असमर्थ पाया उन्होंने वहाँ उपस्थित चार सिपाहियों को अपने साथ लेकर अध्यक्ष मंच पर श्री राजनारायण से सदन छोड़ने को कहा । श्री राजनारायण ने बाहर जाने से इंकार कर दिया और अध्यक्ष मंच की भूमि पर बैठ गये । मार्शल ने जब यह देखा कि वह उपलब्ध सिपाहियों की सहायता से भी श्री राजनारायण को बाहर निकालने में असमर्थ हैं क्योंकि दूसरे सोशलिस्ट सदस्य उनके कार्य में बाधक बन रहे थे तो उन्होंने श्री अध्यक्ष को स्थिति से अवगत करा दिया श्री अध्यक्ष ने तब यह आदेश दिया कि श्री राजनारायण को उन सब सदस्यों के साथ जो सदन की आज्ञा के पालन में बाधक बन रहे थे, आवश्यक पुलिस फोर्स की सहायता से जो जहां तक हो सके कम से कम इस्तेमाल किया जाय, सदन से हटा दिया जाये ।

उस समय विधान भवन के निकट कुछ पी0ए0सी0 के सिपाही उपलब्ध थे इसलिये मार्शल ने पी0ए0सी0 की सहायता ली और जब वह सदन में दाखिल हुये तो उन्होंने देखा कि श्री राजनारायण और उनके दल के सदस्यों ने, यह विश्वास करके कि 10 मिनट बाद सदन फिर बैठेगा, अपना स्थान ग्रहण कर लिया था किन्तु चूँकि सदन नें 10 मिनट के बाद भी घोर अशान्ति थी इसलिये श्री अध्यक्ष की आज्ञा से सचिव विधान मण्डल ने यह घोषणा की कि सदन की बैठक लंच के बाद तक के लिये स्थगित कर दी गई है । इसके उपरान्त दीर्घाओं में बैठे हुये दर्शकों ने भी जो श्री राजनारायण के दल का व्यवहार देख रहे थे– एक अशान्ति की भावना उत्पन्न हुई । श्री अध्यक्ष ने यह सूचना पाते ही यह आदेश दिया कि दीर्घाओं को खाली करा दिया जाय ।

उसके बाद मार्शल ने पी0ए0सी0 की सहायता से श्री राजनारायण तथा उन सब के सहित जिन्होंने उनके (श्री राजनारायण के) चारों तरफ घेरा डालकर उनको बाहर निकालने में बाधा डाल रहे थे, सदन के बाहर निकाल दिया । मार्शल की रिपोर्ट से यह स्पष्ट था कि श्री राजनारायण और उनके दल ने अपना स्थान मजबूती से ग्रहण कर लिया था और मार्शल तथा दूसरे पुलिस के सिपाहियों के कार्य में बाधा डाल रहे थे और पी0ए0सी0 के सिपाही श्री राजनारायण तथा अन्य 12 सदस्यों को बड़ी कठिनाई से बाहर निकाल सके । श्री राजनारायण एक बार सदन के बाहर निकाले जाने के उपरान्त पुनः सदन में दाखिल हुये और सदन में अपना स्थान ग्रहण किया इसलिये दूसरी बार पी0ए0सी0 के सिपाहियों ने श्री राजनारायण और उनके साथियों को सदन के परिसर के बाहर निकाल दिया जिससे सदन शान्तिपूर्ण बातावरण में कार्य कर सके ।[1]

तृतीय विधान सभा में 27 सितम्बर,1962 को उ0प्र0 जोत कर विधेयक 1962 पर विचार करने के प्रस्ताव पर नेता विरोधी दल श्री यादवेन्द्र दत्त ने विरोध व्यक्त किया और कहा कि सरकार को सदन में विश्वास मत प्राप्त करने के बाद विधेयक प्रस्तुत करना चाहिए । राजस्वमंत्री द्वारा पुनः विचार का प्रस्ताव प्रस्तावित किये जाने पर प्रतिपक्ष द्वारा मेजे थप–थपाने तथा सदन में शोरगुल किया जाने लगा, इस पर उपाध्यक्ष ने कई प्रतिपक्षी सदस्यों को निलम्बित कर दिया तथा सदन में पुलिस बुला ली । नेता विरोधी दल श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे ने सदन के चलते पुलिस बुलाये जाने पर आपत्ति की । इस पर श्री अध्यक्ष ने कहा– " यदि सदन के अधिकांश सदस्य बैठने के पक्ष में हों तो उनमें अव्यवस्था का अधिकार किसी को नहीं है । अत्यधिक शोर होने पर अध्यक्ष ने चेतावनी दी कि यदि दलों के नेता अपने सदस्यों को नियंत्रण में नहीं रख सकते हैं तो उन्हें सोचना पड़ेगा कि उन दलों की मान्यता जारी रखी जाये या वापस ले ली जाये" ।[2]

1– उ0प्र0 विधान सभा कार्यवही संक्षिप्त सिंहावलोकन,1957 द्वितीयसत्र, 8 सितम्बर 1957.

2– उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही संक्षिप्त कार्यवृत्त, तृतीय विधान सभा प्रथम सत्र, पृ0– 7

दिनांक 19 अगस्त, 1964 को श्री शारदा भक्त सिंह नेता विरोधी दल तथा श्री चन्द्रजीत यादव ने सहकारिता मंत्री द्वारा 17 अगस्त, 1964 की घटना के विषय में कही गई बातों पर असन्तोष व्यक्त किया । इस समय स्वतंत्र पार्टी के सदस्यों को छोड़कर विरोधी दलों के सदस्य अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गये । श्री अध्यक्ष के आदेश पर माननीय सदस्यों ने स्थान नहीं ग्रहण किया ।

श्री अध्यक्ष ने तब नेता विपक्ष श्री शारदाभक्त सिंह से अपील की कि सदन की कार्यवाही चलने में सहयोग दें, किन्तु विरोधी दलों के सदस्य खड़े रहे । श्री अध्यक्ष ने तब उन्हें सदन से बाहर चले जाने की आज्ञा दी । श्री शारदाभक्त सिंह के सदन न छोड़ने पर श्री अध्यक्ष ने मार्शल को आज्ञा दी कि उन्हें सम्मानपूर्वक बाहर जाने में सहायता की जाये मार्शल की प्रार्थना पर श्री शारदाभक्त सिंह सदन से बाहर चले गये ।[1]

दिनांक 28 सितम्बर, 1965 को जब श्री अध्यक्ष ने राजस्व मंत्री को उ0प्र0 मालगुजारी तथा लगान पर अधिभार विधेयक 1965 से सम्बन्धित प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिये बुलाया तो श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी नेता विपक्ष ने खड़े होकर इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया और विधेयक को वापस लिये जाने की मांग की । राजस्व मंत्री ने इस मांग को स्वीकार नहीं किया । श्री अध्यक्ष ने माननीय सदस्य को स्थान ग्रहण करने की आज्ञा दी किन्तु वे नहीं बैठे विरोधी दलों के अन्य सदस्यों ने भी अपने नेता का अनुसरण किया और सदन में शोर होने लगा । श्री अध्यक्ष ने माधव प्रसाद त्रिपाठी को सदन से बाहर जाने की आज्ञा दी किन्तु उन्होंने ने आज्ञा का पालन नहीं किया तदुपरान्त श्री अध्यक्ष की आज्ञा से मार्शल की सहायता से माननीय सदस्य सदन के बाहर चले गये ।[2]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुये छात्र पुलिस संघर्ष के सम्बन्ध में 4 फरवरी,1966 को श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी ने विरोधी दलों की ओर से तीन मांगे रखी जिन्हें मुख्य मंत्री द्वारा स्वीकार नहीं किया गया । इस पर विपक्ष के सभी सदस्य खड़े हो गये और अध्यक्ष की बिना अनुमति के बोलने लगे । अध्यक्ष ने कहा कि अपनी बातों को मनवाने के लिये नियमानुसार जो भी अधिकार माननीय सदस्यों को प्राप्त हैं वे उनका प्रयोग कर सकते हैं किन्तु जो व्यवहार इस समय विरोधी दल के सदस्य कर कर रहे हैं वह नियम विरूद्ध हैं इस पर भी विपक्षी सदस्य खड़े रहे ।

1- उ0प्र0 तृतीय विधान सभा 1964 के तृतीय सत्र में कृत कार्य खण्ड-5, पृ0-16

2- उ0प्र0 विधान सभा 1965 के द्वितीय सत्र के कृतकार्य- 28 सितम्बर,1965, पृ0-3

श्री अध्यक्ष ने श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी से अपना स्थान ग्रहण करने के लिये कहा किन्तु उन्होंने आज्ञा का पालन नहीं किया इस पर अध्यक्ष ने उन्हें सदन से बाहर चले जाने की आज्ञा दी किन्तु वह बाहर नहीं गये । अध्यक्ष ने मार्शल को आज्ञा दी कि माननीय सदस्य को सदन से बाहर जाने में सहायता दें । मार्शल की प्रार्थना पर श्री त्रिपाठी सदन से बाहर चले गये । इसके पश्चात् श्री अध्यक्ष ने अन्य सदस्यों को बाहर जाने के लिये मार्शल से कहा, अन्त में धीरे–धीरे सम्पूर्ण विपक्ष सदन से बाहर हो गया ।[1]

पंचम विधान सभा में 26 अगस्त, 1969 को विपक्षी नेतृत्व सहित विरोधी दलों के सदस्यों ने अध्यक्ष श्री ए0जी0 खेर के प्रति अत्यन्त अपमानपूर्ण व्यवहार कर संसदीय गरिमा को पैरों तले कुचलने का प्रयास किया । विवाद का प्रारम्भ 25 अगस्त, 1969 को उस समय हुआ जब अध्यक्ष ने कारागार व नागरिक सुरक्षा विभागों के अनुदानों की मांगों को सदन में मतदान हेतु प्रस्तुत किया । विभाजन की मांग होने पर घण्टी बजाई गई इसी बीच उप मुख्य मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी ने व्यवस्था का प्रश्न उपस्थित करते हुये कहा "जो आपका एजेण्डा है उसके अनुसार 5 बजे मतदान होना चाहिए...... श्रीमान् इस आइटम पर विवाद होना नहीं था और आगे के अनुदान पर दिन भर विचार होने के बाद शाम को मतदान होना था...।[2] घण्टी बन्द होने पर अध्यक्ष ने अपना निर्णय देते हुये कहा कि अगर सदन के एजेण्डा के सम्बन्ध में पार्टियों में कोई परस्परिक सहमति है तो फिर इसके ऊपर इस समय वोटिंग व विभाजन का प्रश्न नहीं उठता । अध्यक्ष के इस निर्णय पर विपक्षी सदस्य काफी उत्तेजित हो गये बहुत अधिक शोरगुल होने पर अध्यक्ष ने 15 मिनट के लिये सदन स्थगित कर दिया । स्थगनकाल के समाप्त होते ही उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया और मतदान प्रक्रिया को पूरा कराने की सदन में घोषणा कर दी इसी बीच अध्यक्ष सदन में आ गये और उनके आते ही सदन में पूर्ण अव्यवस्था व्याप्त हो गई विपक्षी सदस्यों ने अध्यक्ष के विरूद्ध मानहानिकारक व असंसदीय नारे लगायें, मेजें लगातार थप–थपाई जाने लगी और सदन में कोलाहल व शोरगुल का वातावरण उत्पन्न हो गया । अन्त में सदन की कार्यवाही चलना असम्भव देखकर अध्यक्ष ने विवश होकर शेष दिन के लिये सदन स्थगित कर दिया ।[3]

26 अगस्त को पुनः सदन की कार्यवाही प्रारम्भ होने पर गत दिवश की घटना को लेकर विपक्षी सदस्यों ने सदन में शोर मचाना व व्यवधान उपस्थित करना शुरू कर

1– उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही खण्ड–262, पृ0–214–19

2– उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड– 279, पृ0–567.

3– उ0प्र0 विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड– 270, पृ0–567.

दिया कई विपक्षी सदस्य अपने स्थान पर खड़े हो गये । इसी समय राजस्व मंत्री ने खड़े होने पर अध्यक्ष ने उनसे बोलन को कहा परन्तु प्रतिपक्षी सदस्य श्री रामधारी शास्त्री बिना अनुमति के खड़े हो गये और बोलने लगे- अध्यक्ष द्वारा मार्शल को आदेश दिये जाने पर कि माननीय सदस्य को गार्डस की सहायता से सदन के बाहर ले जाया जाये विपक्षी सदस्य उग्र हो उठे और गार्ड्स के कार्यों में बाधा डाली । इसी समय नेता विरोधी दल तथा विरोधी दल के अन्य सदस्य अपने स्थानों पर माननीय सदस्य को बाहर नहीं ले जा सके । प्रमुख प्रतिपक्षी दल भा0क्रा0 दल की ओर से अव्यवस्था का तांडव शुरू हो गया एवं अध्यक्ष पीठ पर किताबें व कागज फैंके गये । उन्हीं बेंचों की ओर सेअध्यक्ष आसन की ओर जूते भी फेंके गये । मार्शल ने माननीय सदस्यों को बाहर करने में अपनी असमर्थता प्रकट की ओर सहायता के लिये पुलिस बुलाने की आज्ञा चाही इस पर अध्यक्ष ने पुलिस बुलाने की आज्ञा दे दी ।

पुलिस के आने पर भी शोर मचता रहा और अध्यक्ष के विरूद्ध अपमानजनक नारे लगते रहे । विरोधी दल के सदस्यों द्वारा अध्यक्ष तथा सरकारी पक्ष की ओर कुर्सियों की गद्दियाँ भी फेंकी गयी । अध्यक्ष के आदेश पर मार्शल द्वारा प्रर्थना किये जाने पर नेता विरोधी दल सहित विरोध पक्ष के कुछ सदस्य सदन से बाहर चले गये । इसी समय सदन में काफी शोरगुल के बीच उपाध्यक्ष श्री वासुदेव सिंह अपने आसन पर खड़े हो गये और उन्होंने पुलिस को सदन से बाहर चले जाने का आदेश दिया एक पुलिस अधिकारी के यह कहने पर कि हम लोग अध्यक्ष की आज्ञा से आये हैं । उपाध्यक्ष ने अत्यन्त आवेश में कहा "स्पीकर्स आर्डर इज इल्लीगल" ।[1] जब अध्यक्ष को उपाध्यक्ष के कथन की सूचना दी गयी तो उन्होंने आदेश दिया कि उपाध्यक्ष को भी सदन से बाहर जाने के लिये कहा जाये । मार्शल की प्रार्थना पर उपाध्यक्ष श्री वासुदेव सिंह सदन से बाहर चले गये । पूर्णतया अराजकता व अव्यवस्था की स्थिति में विपक्षी सदस्य "ए0जी0 खेर (अध्यक्ष) मुर्दाबाद व उपाध्यक्ष जिन्दाबाद के नारे[2] सदन में लगा रहे थे और पुलिस उन्हें पकड़ -पकड़ कर बाहर कर रही थी । तत्पश्चात् पुनः सदन की कार्यवाही प्रारम्भ होने पर सदन के अवमान के लिये उत्तरदायी 25 सदस्यों को सदन से निलम्बित किये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।[3]

1- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, खण्ड- 279, पृ0- 605

2- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड-279, पृ0- 606

3- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही खण्ड- 279, पृ0- 602-18

दिनांक 5 मई, 1970 को श्री अध्यक्ष ने ग्राम परसरामपुर थाना हाफिजगंज, जिला बरेली की श्रीमती मुन्नी देवी के अपहरण के सम्बन्ध में श्री भानुप्रताप सिंह तथा श्री सुरेन्द्र विक्रम द्वारा नियम–51 के अनतर्गत दी गयी सूचना पर मुख्य मंत्री को बुलाया उप मंत्री श्री ओमप्रकाश सिंह ने वक्तव्य पढ़ना प्रारम्भ किया । श्री अनन्त राम जायसवाल (नेता संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी) ने जाँच की मांग की । अध्यक्ष ने उनसे कमरे में आकर बात कर लेने को कहा इस पर प्रतिपक्षी सदस्यों ने व्यवधान शुरू कर दिया । उप मंत्री ने अपना वक्तव्य व्यवधान के मध्य पूरा किया । श्री अनन्त राम जायसवाल ने पुनः खड़े होकर मांग करना शुरू कर दिया श्री अध्यक्ष ने कहा वे इसकी इजाजत नहीं दे रहे हैं फिर भी माननीय सदस्य ने अपना स्थान ग्रहण नहीं किया तब श्री अध्यक्ष ने कहा कि यदि माननीय सदस्य नहीं बैठे तो वे सदन स्थगित कर देंगे । फिर भी माननीय सदस्य नहीं बैठे । मुख्य मंत्री जी ने तुरन्त प्रस्ताव किया कि आप के बाकी समय के लिये श्री अनन्त राम जायसवाल को सदन की सेवा से निलम्बित किया जाये प्रस्ताव 83 के मुकाबले 109 से स्वीकृत हुआ ।[1]

सदस्यों के आचरण के उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सदस्यों द्वारा सदन में प्रायः संसदीय मर्यादाओं, मान्यताओं, नियमों एवं परम्पराओं की पूर्णतया उपेक्षा की गयी । इस अनुशासनहीन आचरण से सदन में अव्यवस्था व अराजकता की स्थिति पैदा हुई । प्रश्न यह है कि न केवल प्रतिपक्षी सदस्य अपितु प्रतिपक्षी नेतृत्व द्वारा ऐसा अमर्यादित आचरण क्यों किया गया । इसके मूल में निश्चिततः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सदन में अल्पसंख्यक होने के कारण प्राप्त होने वाली विफलताओं से उत्पन्न क्षोभ व निराशा थी । इसके अतिरिक्त शासकदल से राजनीतिक विरोध होने के कारण उसके द्वारा प्रस्तावित नीतियों व कार्यों की पूर्ति में यथासंभव व्यवधान उपस्थित करना भी विरोध की मंशा रही है । कारण कुछ भी हो किन्तु जनप्रतिनिधि प्रतिपक्षी नेतृत्व जो सत्ता के विकल्प माने जाते हैं, द्वारा ऐसा अमर्यादित आचरण सर्वथा निन्दनीय है क्योंकि न केवल संसदीय परम्पराओं के सम्मान के लिये अपितु प्रजातंत्र में जनता का विश्वास दृढ़ करने के लिये उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कार्य व्यवहार द्वारा जनता के समक्ष उच्च आदर्श उपस्थित करें ।

सदन में सदस्यों के अमर्यादित आचरण का प्रमुख कारण संसदीय आचरण के नियमों का समुचित ज्ञान न होना भी रहा । अतः यह आवश्यक है कि सदस्यों

1– उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही संक्षिप्त सिंहावलोकन 1970 के प्रथम सत्र कृत कार्य खण्ड–2, पृ0–

को नियमों का सम्यक बोध हो तभी वे तद्नुसार आचरण कर सकते हैं । इसके लिये समस्त राजनीतिक दलों का प्रमुख दायित्व भी है । प्रत्येक राजनीतिक दल को चाहिए कि वह स्वस्थ विरोध की परम्परा के विकास हेतु अपने सदस्यों को संसदीय अनुशासन में समुचित रूप से प्रशिक्षित करें व उसकी अवहेलना करने वाले सदस्य के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करें । प्रतिपक्षी नेतृत्व को इस विषय पर अधिक जागरूक होने की आवश्यकता है क्योंकि जब नेतृत्व स्वयं नैतिक दृष्टि से उन आदर्शों की प्राप्ति हेतु दृढ़ संकल्प होगा तभी संसदीय आचरण के उच्च आदर्शों की स्थापना हो सकेगी ।

इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सदन में सत्ता पक्ष का वर्चस्व होता है और प्रतिपक्ष अपनी न्यूनता के कारण विरोध व व्यवधान के अतिरिक्त सरकार के विरूद्ध कुछ भी करने में असमर्थ होता है किन्तु विरोध का तात्पर्य पीठासीन अधिकारी की अवज्ञा, नियमों की अवहेलना और अनुशासन का उल्लंघन कदापि नहीं है जिससे सदस्यों को सदन में मर्यादा एवं अनुशासन की सीमाओं के अन्दर सरकार का यथासंभव विरोध करना चाहिये और साथ ही सदन के बाहर उसके विरूद्ध जनमत जाग्रत कर विपक्ष की स्वस्थ एवं जनतांत्रिक भूमिका का निर्वाह करना चाहिये । विरोधीं दल द्वारा संसदीय आचरण हेतु बहुमत दल व पीठासीन अधिकारियों के दायित्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि सदन की गरिमा की रक्षा के लिये सरकारी विपक्ष और पीठासीन तीनों समान रूप से उत्तरदायी हैं और इसके लिये इनमें समुचित सहयोग व सामंजस्य होना नितान्त अपेक्षित है । शासन का विरोध पक्ष के प्रति कुछ अधिक उदार दृष्टिकोण और उन्हें आलोचना का ज्यादा अवसर प्रदान कर अपनी गुरूता का परिचय देना तथा पीठासीन अधिकारियों द्वारा अपने आचरण में किसी प्रकार का पक्ष-पात न प्रकट होने देना विपक्ष को संमत व अनुशासित रखने में निश्चित रूप से सहायक सिद्ध होगा ।

(क) **विपक्षी विधायकों की समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैचारिक पृष्ठभूमि** :–

निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में प्रतिप्रक्षी विधायक जनतंत्र के मेरूदण्ड, प्रशासन के त्रीब दृष्टा, लोकतंत्र के सजग प्रहरी एवं जनता के सबल अधिवक्ता होते है। सदनों से समितियों तक, निर्वाचन क्षेत्र से समग्र राष्ट्रतक उनका कार्यक्षेत्र निःसंदेह बड़ा ही व्यापक व दायित्वपूर्ण होता है। इन गुरूत्तर कार्यो के सम्पादन में जहाँ एक ओर सख्यात्मक दृष्टिकोण से सुदृढ़ विपक्ष अनिवार्य है, वही दूसरी ओर विपक्षी सदस्यों की व्यक्तिगत गुणात्मकता संसदीय संगठन को बल देती है ।[1] विपक्षी सदस्य जिस सीमा तक योग्य एवं व्यवहार कुशल होगें उसी हद तक वह शासक पक्ष को प्रभावित करने में सफल हो सकते हैं ।

विपक्ष की प्रभावोत्पादकता जिससे कि वह अपनी भूमिका अदा करता है, उन लोगों से है जिनसे मिलकर वह बनता है; उनकी प्रतिभा पर निर्भर करता है। क्यों कि कर्मी की प्रतिभा के बिना कला का कोई भी सिद्धान्त सफल नाटक नही प्रस्तुत कर सकता है। नायक व सेना की प्रतिभा व युद्ध शक्ति के बिना कोई युद्ध सिद्धान्त युद्ध में विजय नही दिला सकता अतः सदस्यों की व्यक्तिगत गुणात्मकता आवश्यक है।

विभिन्न समाज शास्त्रियों के मध्य, सदस्यों की सामाजिक पृष्ठ भूमि के सन्दर्भ में, दो विपरीत विचार धारायें प्रचलित है। एक विचार धारा के अनुसार विधायकों की गुणात्मकता एवं व्यवहार उनकी सामाजिक, आर्थिक पृष्ठ भूमि पर निर्भर करती है। वास्तव में उनकी समाजिक पृष्ठभूमि व राजनैतिक मनोवृतियाँ उन्हें कार्य करने की एक दिशा प्रदान करती हैं।[2] और फिर राजनीतिक समाज शास्त्रियों की यह बहुप्रचलित मान्यता कि नीति निर्माताओं की समाजिक पृष्ठभूमि का उनके दृष्टिकोण एवं नीतियों पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।[3] इन विचारकों के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक अवधारणों से पृथक नही रह सकता । बाल्यावस्था में माता–पिता, शिक्षक एवं मित्र मण्डली के मध्य रह कर जो विचार उसके मन में समाहित हो जाते है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उनका प्रभाव उसके परवर्ती आचरण में पड़ना अवश्यम्भावी है।[4]

---

1. लक्ष्मीमल सिंघवी, (भारतीय संसद, नयी दृष्टि) लोकतंत्र समीक्षा, नई दिल्ली, वर्ष 3, 1971, पृ0 16.
2. चौधरी बलवीर बहादुर, 'जनसंघ एज एन अपोजिनशन पार्टी इन दि फोर्थ लोकसभा इलेक्सन', पृ0 62.
3. पैरी जी0, "पालिटिकल इलिट्स", एलेन एण्ड अनविन 1969, पृ0 96.
4. –तदैव– पृ0 97.

उक्त विचार धारा के विपरीत दूसरे वर्ग के समाजशास्त्रियों की यह मान्यता है कि व्यक्ति के विचार परिस्थितियों की उपज हैं और समय के थपेड़ों के साथ सतत् परिवर्तशील है । बाल्यावस्था के संस्कारों में, वातारण के प्रभाव से तथा आत्मचितंन द्वारा मूलभूत परिर्वतन सम्भव है। महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा ऋषि बाल्मीकी को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है । तत्कालीन समाजिक वातारण, शिक्षा सम्मति तथा महापुरूषों की प्रेरणायें व्यक्ति में अप्रत्याशित परिवर्तन कर सकती है । अतः विधायकों की समाजिक पृष्ठभूमि पर उनके क्रियाकलापों में कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता।

इस प्रकार दो विपरीत धारणायें कि विधायकों का व्यवहार, उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि से अभिन्नरूप से सम्बन्धित है तथा दूसरे वर्ग के अनुसार परिस्थितियों के गर्भ में विधायकों के व्यवहार का जन्म होता है और चूँकि परिस्थितियों का स्वरूप सदैव परिवर्तन शील है और इसलिये व्यवहार भी हमेशा बदलता रहता है। इतनी मत भिन्नता के होते हुये भी इस अध्याय में विपक्षी सदस्यों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है ताकि इस तथ्य का ज्ञान हो सकें कि विधान सभा में उनक आचरण किस सीमा तक उनकी पृष्ठभूमि से प्रभावित है । अतः अध्ययनाधीन विधानसभा काल में विपक्षी सदस्यों की पृष्ठभूमि को ज्ञात करने के लिये उनकी आयु, शैक्षिणिक स्तर, व्यवसाय, सामान्य निवास स्थान, .जन्म स्थान, विधायी व स्थानीय स्व शासन का अनुभव, स्वतंत्रता आन्दोलन व व्यक्तिगत आन्दोलन में भागीदारी के परीप्रेक्ष्य में किया गया है।[1]

विपक्ष की सामाजिक पृष्ठभूमि:—

(क) **जन्म स्थान:—**

विपक्षी सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन के सन्दर्भ में उनके जन्म स्थान का अध्ययन अपरिहार्य है । क्यों कि मनुष्य के चतुर्दिक भौतिक व सामाजिक परिस्थितियॉ उसके जीवन को एक विशेष दिशा प्रदान करती हैं तथा व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध, मनोवृत्तियॉ एवं सोचने समझने की शक्ति को प्रभावित करती है । इसी दृष्टि से विपक्षी सदस्यों का अध्ययनाधीन विधान सभा में विवरण निम्नवत् है:—

---

1. उ0प्र0 विधानसभासचिवालय द्वारा प्रकाशित 'विधान सभा सदस्य परिचय' 1952—1986 तक तथा अन्जेला एस0 वर्मर की पुस्तक 'अपोजिशन इन ए डोमिनेन्ट पार्टी सिस्टम' एवं 'उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष की भूमिका'—लेखकडा.विनोद विजय द्वारा प्राप्त विवरण पर आधारित

जन्म स्थान

जन्म स्थान	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	वि0स0 चतुर्थ संविद	कांग्रेस
गाँव	11	68	111	54	47
(प्रतिशत)	27.50	47.22	61.33	24.00	23.73
शहर	1	11	37	25	29
(प्रतिशत)	2.50	7.64	20.44	11.11	14.14
अनुपलब्ध	28	65	33	146	122
(प्रतिशत)	70.00	45.14	18.22	64.88	77.20
विपक्षी सदस्यों का योग	40	144	181	225	198

जन्म स्थान	वि0स0 पंचम संविद	कांग्रेस	वि0स0 षष्टम	वि0स सप्तम	वि0स0 अष्ट	सम्पूर्ण योग
गाँव	94	100	98	47	15	645
(प्रतिशत)	44.13	47.16	46.66	65.87	13.04	40.06
शहर	43	50	41	25	19	281
(प्रतिशत)	20.18	23.58	19.52	34.72	16.52	17.45
अनुपलब्ध	76	62	71	–	81	684
(प्रतिशत)	35.68	29.24	33.80	–	70.43	42.48
योग	213	212	210	72	115	1610

सारणी संख्या जन्म स्थान के देखने से स्पष्ट होता है कि अध्ययनाधीन काल (1952 से 1986) तक सम्पूर्ण विपक्ष में से 645 (कुल विपक्ष के 40.06प्रतिशत) सदस्यों का जन्म स्थान गाँव था। तथा मात्र 281 (कुल विपक्ष के 17.45 प्रतिशत) सदस्यों का जन्म स्थान शहर था । 684 (कुल विपक्ष के 42.48 प्रतिशत सदस्यों की इस सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध न हो सकी। इस प्रकार विरोध पक्ष में गाँव में जन्म लेने वाले विपक्षी सदस्यों का बाहुल्य रहा ।

सामान्य निवास स्थानः–

सामाजिक पृष्ठभूमि के निर्माण में निवास स्थान का महत्वपूर्ण स्थान होता है जहाँ एक ओर ग्रामीण जीवन औपचारिक, प्राथमिक, सरल व परम्परावादी सम्बन्धों के द्वारा समाज की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है, वही नगरीय जीवन शिक्षापद व विवेक वर्धक होता है, क्यों कि वहाँ अन्ध विश्वास व रूढ़ियों का प्रभाव न्यूनतम होता है। गाँव में प्रथा, परम्परा तथा धर्म और विश्वासों तथा सांस्कृतिक आदर्शों के कारण जीवन सरल व शुद्धता से परिपूर्ण है वही नगरीय जीवन पर्यावरण व परम्पराओं के प्रति उदासीन किन्तु सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से जागरूक व कुछ अर्थो में प्रगतिशील भी है। इसी दृष्टि से अध्ययनाधीन विधान सभा काल में सदस्यों के निवास स्थान का विवरण निम्नवत् है:–

निवास	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ संविद	चतुर्थ कांग्रेस
गॉव	7	45	80	131	101
%	17.50	31.25	44.20	58.22	51.01
शहर	5	34	73	68	93
%	12.50	23.61	40.33	41.33	46.96
अनुपलब्ध	28	65	28	26	4
%	70.00	45.14	15.47	11.55	2.02
योग	40	144	181	225	198

निवास	वि0स0 पंचम संविद	पंचम कांग्रेस	वि0स0 षष्टम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग
गॉव	120	136	131	47	77	874
%	56.33	63.67	62.38	65.27	66.95	54.28
शहर	83	76	79	25	38	574
%	38.96	35.84	37.61	34.72	33.04	35.65
अनुपलब्ध	10	1	–	–	–	162
%	4.69	0.64	–	–	–	10.06
योग	213	212	210	72	115	1610

संलग्न तालिका में विपक्षी सदस्यों की सामान्य निवास स्थान की जानकारी का अध्ययन स्वयं उनके द्वारा उल्लेखित गॉव या शहर द्वारा किया गया है उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि ऐसे सदस्यों का बाहुल्य रहा जिनका निवास स्थान गॉव था । अध्ययनाधीन काल के मध्य विरोधी दल के सर्वाधिक 874 (कुल विपक्ष के 54.28 प्रतिशत) सदस्यों का सामान्य निवास स्थान गॉव था जब कि 574 (कुल विपक्ष के 35.65 प्रतिशत) सदस्यों का निवास स्थान शहर से सम्बद्ध था । 162 (कुल विपक्ष के 10.06 प्रतिशत) सदस्यों के सामान्य निवास स्थान की जानकारी प्राप्त नही हो सकी ।

किन्तु जब हम उक्त सारिणी की तुलना विपक्षी सदस्यों की जन्म स्थान की सारिणी करते है तो हम पाते है कि कालान्तर में उनमें से कुछ ने शहर को अपना सामान्य निवास स्थान बना लिया । ऐसा ध्वनित होता है कि गॉव का पर्यावरण सम्भवत: उन्हें अपने विकास में उन्नति में बाधक प्रतीत हुआ होगा।

आयु वर्ग:-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 173(बी) द्वारा विधान सभा की सदस्यता हेतु न्यूनत्तम आयु 25 वर्ष निर्धारित की गयी है। विधायकों का अनुभव एवं बुद्धि की परिपक्वता उनकी आयु पर भी निर्भर करती है। ऐसा माना जाता है कि अधिक आयु का व्यक्ति अनुभवी, गम्भीर, कर्तव्यशील, धैयवान एवं चिंतनशील होता है । उसमें सोचने समझने की शक्ति अधिक होती है, जबकि कम आयु का व्यक्ति चंचल व उच्छश्रृखल व भावनाओं से प्रेरित होता है । इसी दृष्टि से विपक्षी सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन में उनकी आयु की जानकारी प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। अध्ययनाधीन विधान सभा काल में विपक्षी सदस्यों का आयु वर्ग निम्नवत् रहा :-

आयु	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 संविद	चतुर्थ वि0स0 कांग्रेस
25-32	1	13	19	19	3
%	2.50	9.31	10.50	8.44	1.51
33-42	8	31	58	72	29
%	20.00	21.52	32.04	32.00	14.64
43-52	1	21	49	62	49
%	2.50	14.58	27.07	27.55	24.74
53 या उससे	-	5	21	24	56
अधिक %	-	3.47	11.60	10.66	28.28
अनुपलब्ध	30	74	34	48	61
%	75.00	51.38	18.78	21.33	30.80
योग	40	144	181	225	198

आयु	वि0स0 सं0	पंचम कांग्रेस	वि0स0 षष्टम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	सम्पूर्ण योग
25–32	12	9	14	2	5	97
%	5.63	4.24	6.66	2.77	4.34	6.02
33–42	54	34	55	14	34	389
%	25.35	16.03	26.19	19.44	29.56	24.16
43–52	46	59	60	18	30	395
%	21.59	27.83	28.57	25.00	26.08	24.53
53 या उससे	35	49	41	17	21	269
%	16.43	23.11	19.52	23.61	18.26	16.70
अनुपलब्ध	66	61	40	21	25	460
%	30.98	28.77	19.04	29.16	21.73	28.57
योग	213	212	210	72	115	1610

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल के मध्य सर्वाधिक 395 (सम्पूर्ण विपक्ष के 24.53 प्रतिशत) सदस्य 43 से 52 वर्ष की आयु के थे तथा 389 (सम्पूर्ण विपक्ष के 24.16 प्रतिशत) सदस्य 33 से 42 वर्ष की आयु वर्ग के थे इस प्रकार विधान सभा में विपक्षी सदस्यों ने मध्यम आयु वर्ग का प्राधान्य रहा। तीसरा स्थान 53 या उससे अधिक आयु वर्ग के लोगों का था । इनकी सदस्य संख्या 269 (सम्पूर्ण विपक्ष का 16.70 प्रतिशत है । सबसे कम 97 (कुल विपक्ष का 6.02 प्रतिशत) सदस्य 25 से 32 वर्ष के उम्र के थे। 460 कुल विपक्ष के 28.57 प्रतिशत) सदस्यों का आयु विवरण प्राप्त नही हो सका ।

<u>शैक्षणिक स्तरः–</u>

सदन की सम्पूर्ण कार्य क्षमता सदस्यों की शिक्षा-दिक्षा से प्रभावित होती है। विधान सभा सदस्यता के लिये यद्यपि संविधान में कोई शैक्षिणीक अर्हता निर्धारित नही की गयी है तथापि विपक्षों सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि को अभिनिश्चित करने के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण तत्व है शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व

का विकास होता है । शिक्षा का उद्देश्य केवल वकील या डाक्टर, सैनिक या अध्यापक नही वरन् एक प्रतिष्ठत मानव बनाना है । मिल्टन ने कहा था "कि मैं आदर्श एवं पूर्ण शिक्षा उसे कहता हूँ जो मानव को न्याय संगत, कुशल, नीति व सार्वजनिक पदों पर शान्ति व युद्ध में कार्य करने के लिये उर्पयुक्त बनाती है" शिक्षा शासकों व शासितों के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस दृष्टि से अध्ययनाधीन विधानसभा में विपक्षी सदस्यों का शैक्षिक स्तर निम्नवत् है :-

शिक्षा	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	वि0स0 चतुर्थ संविद	कांग्रेस
प्राइमरी	-	2	15	4	1
%	-	1.39	8.29	1.77	0.50
मिडिल	1	6	25	4	-
%	2.50	4.17	13.81	1.77	-
हाईस्कूल	-	2	18	15	14
%	-	1.39	9.94	6.66	7.07
इन्टर	-	2	14	5	7
%	-	1.39	7.73	2.22	3.53.
स्नातक	4	14	17	22	22
%	10.00	9.72	9.39	9.77	11.11
स्नातकोत्तर	-	9	17	25	32
%	-	6.25	9.39	11.11	16.16
तकनीकी	-	-	-	4	1
%	-	-	-	1.77	0.50
विधि	3	11	25	18	28
%	7.5	7.64	13.81	8.00	14.14
अशिक्षित/	32	98	50	128	93
अनुपलब्ध %	80.00	68.06	27.62	56.88	46.96
योग	40	144	181	225	198

शिक्षा	वि0स0 संविद	पंचम कांग्रेस	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	सम्पूर्ण योग
प्राइमरी	13	–	3	4	6	48
%	6.10	–	1.42	5.55	5.21	2.98
मिडिल	7	4	9	4	–	60
%	3.28	1.88	4.28	5.55	–	3.72
हाईस्कूल	15	25	28	9	16	142
%	7.04	11.79	13.33	12.05	13.91	8.82
इण्टर	9	13	13	8	13	84
%	4.22	6.13	6.19	11.11	11.30	5.22
स्नातक	16	26	21	9	14	165
%	7.51	12.26	10.00	12.05	12.17	10.25
स्तातकोत्तर	40	33	28	7	31	222
%	18.77	15.56	13.33	9.72	26.95	13.79
तकनीकी	5	5	6	1	2	24
%	2.34	2.35	2.85	1.38	1.73	1.49
विधि	28	23	41	7	13	197 *
%	13.14	10.84	19.52	9.72	11.30	12.24
अशिक्षित/	80	83	61	23	20	668
अनुपलब्ध %	37.56	39.15	29.04	31.94	17.39	41.49
योग	213	212	210	72	115	1610

उपरोक्त सारिपी को देखने से पता चलता है कि अध्ययनाधीन काल में विपक्षी सदस्यों के अधिकांश सदस्य (जिनका कि विवरण प्राप्त है) किसी न किसी

* इस संख्या में स्नातकोत्तर शिक्षा के पश्चात् विधि शिक्षा प्राप्त सदस्यों की संख्या भी सम्मिलित है।

स्तर तक शिक्षित थे। दूसरे, शिक्षित सदस्यों में भी उच्च शिक्षा प्राप्त अर्थात स्नातक से उच्च का प्राधान्य रहा । इनमें सर्वाधिक संख्या स्नाकोत्तर पश्चात कानूनी शिक्षा प्राप्त सदस्यों की थी । शायद इसी लिये विधान सभा में प्रायः उनके उच्च तार्किक स्तर की अभिव्यंजना परिलक्षित होती रही। प्रतिपक्ष के अग्रिम श्रेणी के सदस्य जैसे श्री झारखण्डे राय, श्री त्रिलोकी सिंह, श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे, श्री चन्द्र भानु गुप्त, चरण सिंह तथा श्री नारायण दत्त तिवारी के वाद विवाद का स्तर संसद के विपक्षीय नेताओं अथवा विश्व में लोकतंत्रात्मक प्रणामी का अनुसरण करने वाले देशों के प्रमुख विपक्षी नेताओं के वाद विवाद के स्तर से कमोवेश काफी मेल खाता है, अतः तार्किक स्तर श्रेष्ठ कोटि का रहा ।

आर्थिक पृष्ठभूमि :-

मुख्य व्यवसाय:-

व्यवसाय व्यक्ति के जीवन में उसके स्वभाव तथा चरित्र के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है । इसी के आधार पर व्यक्ति अपना सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन क्षेत्र निश्चित करता है और उसी प्रकार के वातावरण में विचरता है । तथा वैसे ही संस्थाओं व संगठनों की सदस्यता ग्रहण करता है। वैसे तो कोई व्यक्ति बहुधन्धी हो सकता है, लेकिन अन्ततोगत्वा कोई एक व्यवसाय उसके जीवकोपार्जन का प्रमुख आधार होता है। सदस्यों के व्यवयाय का सदन के विधायी एवं अविधायी क्रियाकलापों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है इस दृष्टि से व्यवसायिक विश्लेषण की उपेक्षा नही की जा सकती है। अध्ययनाधीन विधान सभा में विपक्षी सदस्यों के चुनाव के पूर्व व्यवसाय का विवरण निम्नवत् है।

व्यसाय	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 संविद	कांग्रेस
कृषि	5	25	75	80	58
%	12.50	17.36	41.44	35.55	29.39
वकालत	1	12	12	19	36
%	2.50	8.33	6.63	8.44	18.18
राजनीति	–	–	–	–	18
%	–	–	–	–	9.09
समाजसेवा	2	4	17	14	4
%	5.00	2.78	9.39	6.22	2.02

व्यापार	–	3	11	10	15
%	–	2.08	6.07	4.44	7.57
अध्यापन	–	3	9	13	11
%	–	2.08	4.98	5.77	5.55
औषधि	–	1	3	4	1
%	–	0.69	1.66	1.77	0.50
अन्य (यथा खिलाड़ी, नौकरी, पत्रकार, ठेकेदार आदि)	2	6	5	12	14
%	5.00	4.17	2.76	5.33	7.07
अनुपलब्ध	30	90	49	74	41
%	75.00	60.50	27.07	32.88	20.70

व्यवसाय	वि0स0 संविद	पंचम का0	वि0स0 षष्टम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग
कृषि	72	61	127	33	43	579
%	33.80	28.77	60.47	45.83	37.39	35.96
वकालत	32	31	21	4	16	184
%	15.02	14.62	10.00	5.55	13.91	11.43
राजनीति	17	24	16	7	3	85
%	7.98	11.32	7.61	9.72	2.60	5.28
समाजसेवा	18	2	–	–	–	61
%	8.45	0.94	–	–	–	3.79
व्यापार	11	10	15	8	13	96
%	5.16	4.71	7.14	11.11	11.30	5.96

अध्यापन	16	11	11	1	15	90
%	7.51	5.18	5.23	1.38	13.04	5.59
औषधि	3	6	5	2	2	27
%	1.40	2.43	2.38	2.77	1.73	1.67
अन्य (यथा	22	21	10	2	4	98
खिलाड़ी % आदि)	10.32	9.90	4.76	2.77	3.47	6.08
अनुपलब्ध	39	56	5	16	19	419
%	18.30	26.41	2.38	22.22	16.52	26.02
योग:*						

उर्पयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट हे कि सर्वाधिक विपक्षी सदस्य कृषि के व्यवसाय से समबन्द्ध थे । सम्भवतः यही कारण है कि उ0प्र0 विधान सभा में कृषि के व्यवसाय से सम्बद्ध सदस्य एकहित अथवा दबाव समूह के रूप में संगठित हो सकें। द्वितीय स्थान वकालत करने वाले सदस्यों का था । किन्तु यदि उक्त सारणी की तुलना विधायकों की शैक्षिणिक योग्यता की सारणी से की जाये तो यह उल्लेखनीय तथ्य प्रकाश में आता हे कि कानूनी शिक्षा प्राप्त 197 (कुल विपक्ष के 12.24 प्रतिशत) सदस्यों में से 184 सदस्य (कुल विपक्ष का 11.43 प्रतिशत) सदस्यों ने इसे अपने व्यवसाय के रूप में अपनाया। सदस्यों के कानून विज्ञ होने के कारण सदन में वाद विवाद का स्तर तार्किक व अच्छा रहा । सारणी से स्पष्ट है कि ऐसे सदस्यों की संख्या भी कम नहीं थी कि जिन्होंने राजनीति को एक पेशा बना लिया और सम्भतः इसी कारण राज्य नें विपक्षी खेमे में दलीय विघटन की राजनीति परिलक्षित होती रही ।

योग * कुछ सदस्य ऐसे थे जिनके कई व्यवसाय थे अतः प्रत्येक में उनकी संख्या जुड़ी होने के कारण योग नही दिया गया ।

राजनीतिक पृष्ठभूमि:–

सार्वजनिक आन्दोलन, जेल यात्रा–

सार्वजनिक आन्दोलनों, प्रदशनों व सत्याग्रहों में भाग लेने तथा राजनीतिक कारणों से जेल यात्रा करने से जहाँ एक ओर व्यक्ति की राजनीतिक उत्तेजना एवं चेतना परिलक्षित होती है वही दूसरी ओर इससे संसदीय शासन प्रणाली अनास्था अभिव्यक्त होती है । इस दृष्टि से अध्ययनाधीन विधान सभाओं में विधान सभा के विपक्षी सदस्यों के राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने अथवा राजनीतिक कारणों से जेल यात्रा करने का विवरण निम्नवत् है:–

सार्वजनिक आन्दोलन/ जेल-यात्रा	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 संविद	कांग्रेस
स्वतंत्रता	9	2	20	17	35
आन्दोलन %	22.5	18.75	11.05	7.55	17.67
कृषक	3	10	9	–	–
आन्दोलन %	7.50	6.94	4.97	–	–
खाद्य	–	6	8	–	–
आन्दोलन %	–	4.17	4.42	–	–
श्रमिक	–	2	1	–	–
आन्दोलन %	–	1.39	0.55	–	–
विद्यार्थी	–	4	–	–	–
आन्दोलन %	-	2.74	–	–	–
अन्य(दलीय, व्यक्तिगत आन्दो० सत्याग्रह आदि)	3	11	17	6	11
%	7.50	7.64	9.39	2.66	5.55
जेल यात्रा	1	18	–	144	116
नही की %	2.50	12.50	–	66.00	58.58
अनुपलब्ध	28	85	140	58	36
%	70.00	59.03	77.35	25.77	18.18
योग	*				

सार्व०आन्दो०/ जेलयात्रा	वि0स0 संविद	पंचम कांग्रेस	वि0स0 षष्टम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	सम्पूर्ण योग
स्वतंत्रता आन्दोलन%	15 7.04	38 17.92	9 4.28	4 5.55	10 8.69	184 11.43
कृषक आन्दोलन%	1 0.46	1 0.47	5 2.38	1 1.38	2 1.73	32 1.98
खाद्य आन्दोलन%	– –	– —	3 1.42	2 2.77	2 1.73	21 1.30
श्रमिक आन्दोलन %	– –	3 1.41	4 1.92	4 5.55	– –	14 0.87
विद्यार्थी आन्दोलन %	– –	– –	– –	– –	3 2.60	7 0.43
अन्य (दलीय, व्यक्तिगत आन्दो० आदि)	16 7.51	2 0.94	13 6.19	7 9.72	60 52.17	146 9.07
जेलयात्रा नहीं की %	167 78.40	– –	163 77.61	65 90.27	– –	674 41.86
अनुपलब्ध %	55 25.82	168 79.24	13 6.9	– –	58 50.43	641 39.81
योग*						

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अध्ययनाधीन काल के विपक्षी सदस्यों में सर्वाधिक 184 (कुल विपक्ष के 11.43%) सदस्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता सग्राम में भाग लेने के कारण जेल गये । 32 (कुल विपक्ष के 1.98 प्रतिशत) सदस्य स्वतंत्रतोत्तर

योग* कुछ सदस्य ऐसे थे जिन्होने कई आन्दोलनों में अपना योगदान किया अतः सभी में उनकी संख्या जुडी होने के कारण योग नही दिया गया ।

राज्य में कृषक आन्दोलन के सन्दर्भ में जेल गये। 21 (कुल विपक्ष के 1.30 प्रतिशत) सदस्य खाद्य आन्दोलन में भाग लेकर जेल गये । 14 (कुल विपक्ष के 0.87 प्रतिशत) सदस्य श्रमिक आन्दोलन में भाग लेकर जेल गये । 7 (कुल विपक्ष के 0.43 प्रतिशत) सदस्यों ने विद्यार्थी आन्दोलन के सन्दर्भ जेल यात्रा की। 146 (सम्पूर्ण विपक्ष के 9.07 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिन्होंने सम्बद्ध दल द्वारा चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों, सत्याग्रहों में भाग लेकर जेल यात्रा कर अपनी राजनीतिक सक्रियता का परिचय दिया। 674 (सम्पूर्ण विपक्ष के 41.46 प्रतिशत) सदस्य किसी भी सन्दर्भ में जेल नही गये । तथा 641 (कुल विपक्षके 39.81 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिनकी इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नही हो सकी।

उर्पयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि विरोध पक्ष में ऐसे सदस्यों की संख्या बहुत कम थी , जिन्होंने स्वतन्त्रोत्तर/स्वतंत्रतापूर्व विभिन्न आन्दोलनों, विशेषकर स्वतंतत्रा संग्राम मेंभाग लियाहो। सम्भवतः इसी कारण वे संयमित एवं संसदीय प्रणाली के प्रति आस्थावान नहीं रहे।

विधायी अनुभवः-

विधायकों का विधायी पूर्वानुभव उनकी योग्यता को अभिनिश्चित करते हैं । वास्तव में अनुभव प्राप्त विधायक नवआगन्तुक विधायकों का मार्ग दर्शन करने में काफी सहयोग देते हैं। सदन की मर्यादा व प्रतिष्ठा को बनाये रखना तथा विधायिनी पेची-दगियों को सुलझाने आदि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन्हें अनुभवी विधायक ही सम्पादित कर सकते है।

विधायी अनुभव	प्रथम विधान सभा	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	वि0स0 चतुर्थ	
				संविद	कांग्रेस
स्वतंत्रता	–	4	1	–	21
पूर्व निर्वाचित %	–	2.78	0.55	–	10.60
स्वतंत्रता के बाद	–	13	5	9	37
प्रथम वि0स0 %	–	9.03	2.76	4.00	18.68
द्वितीय वि.स.	–	–	22	16	48
%	–	–	12.15	7.11	24.24
तृतीय वि0स0	–	–	–	18	42
%	–	–	–	8.00	21.2
चतुर्थ वि.स.	–	–	–	–	–
%	–	–	–	–	–
अनुभवहीन	11	59	98	118	14
%	27.50	40.97	54.14	52.44	7.07
अनुपलब्ध	29	68	48	64	36
%	72.5	47.22	26.52	28.44	18.18

विधायी अनुभव	पंचम संविद	कां0	षष्टम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	सम्पूर्ण योग
स्वतंत्रता पूर्व	4	22	3	5	1	61
%	1.87	10.37	1.42	6.94	0.86	3.78
स्वतन्त्रता के बाद - प्रथम वि०स०	15	37	10	6	1	133
%	7.04	17.45	14.76	8.33	10.86	8.26
द्वितीय वि०स०	15	37	18	9	6	171
%	7.04	17.45	8.57	12.50	5.21	10.62
तृतीय	23	51	39	12	9	201
%	10.79	24.05	18.57	16.66	7.82	12.48
चतुर्थ	37	43	42	13	13	148
%	17.73	20.28	20.0	18.05	11.30	9.19
पंचम	–	–	37	16	16	121
%	–	–	17.61	22.22	13.91	7.51
षष्टम	–	–	–	29	22	51
%	–	–	–	40.27	19.13	3.16
सप्तम	–	–	–	–	36	36
%	–	–	–	–	31.30	2.23
अनुभवहीन	126	70	121	25	56	698
%	59.15	33.01	57.61	34.72	48.69	43.35
अनुपलब्ध	31	21	–	–	–	245
%	14.55	9.90	–	–	–	15.22
योग *						

योग * कुछ सदस्य ऐसे थे जिन्होनं कई विधान सभाओं में अपना योगदान किया अत: सभी में उनकी संख्या जुड़ी होने के कारण योग नहीं दिया गया ।

उर्पयुक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि विपक्ष के सर्वाधिक 201 सदस्यों (कुल विपक्ष के 12.48 प्रतिशत) सदस्यों को तृतीय विधान सभा का अनुभव प्राप्त था । 171 सदस्यों (कुल विपक्ष के 10.62 प्रतिशत) सदस्यों को द्वितीय विधान सभा का विधायी अनुभव प्राप्त हुआ; 148 सदस्यों (कुल विपक्ष के 9.19 प्रतिशत) विधायकों को चतुर्थ विधान सभा का विधायी अनुभव प्राप्त था। तथा 133 (सम्पूर्ण विपक्ष के 8.26 प्रतिशत) सदस्यों को प्रथम विधान सभा का विधायी अनुभव प्राप्त था। 121 को पंचम वि0 का विधायी अनुभव प्राप्त था । 61 (सम्पूर्ण विपक्ष के 3.78 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे। जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व विधायिनी बनाने में योगदान किया था। तथा 51 (सम्पूर्ण विपक्ष के 3.16 प्रतिशत) सदस्यों को षष्ठम विधानसभा का विधायी अनुभव प्राप्त था। तथा अष्टम विधान सभा के 36 सदस्य (सम्पूर्ण विपक्ष के 2.23 प्रतिशत सदस्य ऐसे थे जिन्हें सप्तम विधान सभा का विधायी अनुभव प्राप्त था। तथा 698 (सम्पूर्ण विपक्ष के 43.35 प्रतिशत सदस्य ऐसे थे जिन्हें कोई विधायी अनुभव प्राप्त नही था। 245 (सम्पूर्ण विपक्ष के 15.22 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण प्राप्त नही हो सका ।

<u>दल का संगठनात्मक अनुभव:-</u>

संसदीय प्रणाली का अनुसरण करने वाले प्रजातंत्रिक देशों में राजनीतिक दलों के संगठनों का विशेष महत्व होता है । ये संगठन अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखने, भावी राजनीति की रूपरेखा निर्धारित करने, सदन में उनके आचरण को अभिनिश्चित करने तथा अनुशासनात्मक प्रशिक्षण देने जैसे महत्व पूर्ण कार्यो का सम्पादन करते है। इस दृष्टि से विपक्षी सदस्यों का किसी राजनीतिक दल के संगठन में पद धारण करना एक महत्वपूर्ण बात है। इसी उद्देश्य से सारणी में प्रथम, द्वितीय,तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्टम सप्तम व अष्टम विधान सभा के विपक्षी सदस्यों के दलीय संगठनातमक अनुभव का विवरण निम्नवत् हैं :-

पदीय अनुभव	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ	
				संविद	कांग्रेस
जिला स्तर	-	6	2	7	6
से निम्न %	-	4.17	1.10	3.11	3.03
जिला स्तर	2	14	19	35	62
%	5.00	9.72	10.50	15.55	31.31
राज्य स्तर	1	4	16	15	59
%	2.50	2.78	8.84	6.66	29.79

अखिल भा0	–	3	4	13	26
स्तर (क) %	–	2.08	2.21	5.77	13.13
अनुभवहीन	8	49	92	52	40
%	20.00	34.03	50.83	23.11	20.20
अनुपलब्ध	29	68	48	103	5
%	–	–	–	47.55	2.52
योग	40	144	181	225	198

पदीय अनुभव	पंचम वि0स0 संविद	कांग्रेस	षष्टम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	सम्पूर्ण योग
जिला स्तर	7	4	6	–	2	40
से निम्न %	3.28	1.88	2.85	–	1.73	2.48
जिला स्तर	41	55	30	20	9	287
%	19.24	25.94	14.28	27.77	7.82	17.82
राज्य स्तर	50	41	27	13	14	240
%	23.47	19.33	12.85	18.05	12.17	14.90
अखिल भा0	11	20	7	4	4	92
स्तर %	5.16	9.43	3.33	5.55	3.47	5.71
अनुभवहीन	71	24	140	35	43	554
%	33.33	11.32	66.66	45.61	37.39	34.40
अनुपलब्ध	33	68	–	–	43	397
%	15.49	32.07	–	–	37.39	24.65
योग	213	212	210	72	115	1610

(क) अखिल भारतीय अथवा राज्य स्तर की श्रेणी में उन सदस्यों को भी शामिल किया गया है जो उक्त स्तर पर दल की कार्यकारिणी में थे.

उर्पयुक्त सारिणी को देखने से स्पष्ट होता है कि अध्ययनाधीन काल में विपक्षी सदस्यों में सर्वाधिक 287 (सम्पूर्ण विपक्ष के 17.82 प्रतिशत) सदस्यों को जिला स्तर संगठनों में पद प्राप्त करने का अवसर मिला । 240 (सम्पूर्ण विपक्ष के 14.90 प्रतिशत सदस्यों को राज्य स्तर के संगठन में पद धारण करने का मौका मिला। 92 (सम्पूर्ण विपक्ष के 5.71 प्रतिशत) को अखिल भारतीय स्तर के संगठनों में पद धारण करने का मौका प्राप्त हुआ तथा मात्र 40 (सम्पूर्ण विपक्ष के 2.48 प्रतिशत) सदस्यों को जिला स्तर तक के संगठनों में पद धारण करने का अवसर मिला । सर्वाधिक 554 (सम्पूर्ण प्रतिपक्ष में 34.40 प्रतिशत) सदस्यों को राजनीतिक दलों के संगठन में किसी स्तर पर पद धारण करने का अवसर प्राप्त नही हुआ । 397 (कुल विपक्ष के 24.65 प्रतिशत) सदस्यों की इस सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त नही हो सकी।

उपरोक्त विवरण के विश्लेषण से स्पष्ट हैं कि विपक्ष के अधिकांश सदस्य दलीय संगठन में पद धारणकर्ता के रूप में अनुभहीन थे। सभवतः इसी कारण विपक्षी खेमा संयुक्त रूप से अनुशासन बद्ध नही रह सका। फलस्वरूप समय समय पर सदन में कुछ विषयों पर एक ही दल के सदस्य ने अलग अलग मत व्यक्त किये ।

स्थानीय स्व शासन का अनुभव:—

शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये सत्ता का विकेन्द्रीकरण स्थानीय निकायों जैसे – जिला बोर्ड, जिला परिषद, टाउन एरिया, नोटीफाइड एरिया, नगरपालिका, पंचायत समिति व ग्राम पचायतों के रूप में किया गया है। इन निकायों के माध्यम से नागरिकों को लोकतांत्रिक पद्धति व परम्पराओं का ज्ञान होता है। और इसी कारण इन्हें राजनीतिज्ञों का प्रशिक्षण केन्द्र कहा जाता हैं। इतनी प्रभावी उपयोगिता होने के कारण विपक्षी सदस्यों की इन संस्थाओं से सम्बद्धता की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। इसी उद्देश्य से अध्ययनाधीन विधान सभाओं में विपक्षी सदस्यों का स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का पूर्वानुभव दर्शाया गया है –

स्थानीय स्वशासन का अनुभव	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ संविद कां0
नगर पालिका	–	–	–	–
टाउन एरिया	–	–	–	–

अनुभव	प्रथम वि०स०	द्वितीय वि०स०	तृतीय वि०स०	चतुर्थ वि०स० संविद	कां०
नोटी०	1	3	13	21	17
एरिया %	2.50	2.08	7.18	9.33	8.58
ग्राम पंचायत	1	8	9	6	8
%	2.50	5.56	4.87	2.66	4.04
पंचायत	–	3	4	6	9
समिति %	–	2.08	2.21	2.66	4.54
जिला बोर्ड एवं जिला परिषद	2	19	28	32	55
%	5.00	13.19	15.47	14.22	27.77
अनुपलब्ध	–	–	–	–	–
अनुभवहीन	36	111	127	160	109
%	90.00	77.08	70.17	71.11	55.05
योग	40	144	181	225	198

अनुभव	पंचम वि0स0 संविद	कां0	षष्टम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम	योग
नगरपालिका	–	–	–	–	–	–
टाउन एरिया	–	–	–	–	–	–
नोटी	17	19	12	5	10	118
फाइड एरिया %	7.98	8.96	5.71	6.94	8.69	7.32
ग्राम पंचायत	19	8	7	3	6	75
%	8.92	3.77	3.33	4.17	5.12	4.65
पंचायत समिति	15	15	1	5	11	69
%	7.04	7.07	0.47	6.94	9.56	4.28

अनुभव	पंचम वि०सभा संविद	कां.	षष्टम वि०स०	सप्तम वि०स०	अष्टम वि०	योग
जिला बोर्ड/ जिला परिषद	38	60	14	9	7	264
	17.84	28.30	6.66	12.5	6.08	16.39
अनुपलब्ध	63	38	–	7	–	108
%	29.57	17.92	–	9.72	–	6.71
अनुभवहीन	61	72	176	43	81	976
%	28.63	33.96	83.80	59.72	70.43	60.62
योग	213	212	210	72	115	1610

उपरोक्त सारणी* से विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में सर्वाधिक 264 (सम्पूर्ण विपक्ष के 16.39 प्रतिशत) सदस्यों को जिला बोर्ड) जिला परिषद (का अनुभव था । 118 (कुल विपक्ष के 7.32 प्रतिशत सदस्यों को नगर पालिका नगर निगम, टाउन एरिया या नोटीफाइड एरिया का अनुभव प्राप्त तथा 75 (कुल विपक्ष के 4.65 प्रतिशत) सदस्यों को ग्राम पंचायत का अनुभव प्राप्त था; 69 (सम्पूर्ण विपक्ष के 4.28 प्रतिशत सदस्यों को पंचायत समिति का अनुभव प्राप्त था । 976 (सम्पूर्ण प्रतिपक्ष के 60.62 प्रतिशत) सदस्य अनुभवहीन थे। तथा 108 (सम्पूर्ण विपक्ष के 6.71 प्रतिशत) सदस्यों की इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नही हो सकती ।

इस सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में विरोधी दल में स्थायी स्वशासन संस्थाओं का अनुभव प्राप्त सदस्यों की संख्या अल्प थी।

---

* प्रथम, द्वितीय, तृतीय विधान सभाओं का विवरण - 'उत्तर प्रदेश विधान सभा में विपक्ष की भूमिका' - ले० डा० विनोद विजय, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, से उद्धृत, पृ० 84.

विदेशी यात्रा अनुभव

विदेश यात्रा अनुभव	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ वि0स0 संविद	चतुर्थ वि0स0 कांग्रेस
1या2देश	–	3	7	3	10
%	–	–	–	1.33	5.05
3या4 देश	–	2	2	–	2
%	–	–	–	–	1.01
4 से अधिक	–	2	3	2	9
%	–	–	–	0.88	4.54
विदेश यात्रा नहीं	·11	69	121	127	140
%	–	–	–	56.44	70.70
अनुपलब्ध	29	68	48	93	37
%	–	–	–	41.33	18.68
योग	40	144	181	225	198

अनुभव	पंचम वि0स0 संविद	पंचम वि0स0 कां0	षष्टम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग
1–2 देश	6	8	15	11	5	68
%	2.81	3.77	7.14	15.27	4.34	4.22
3–4 देश	3	1	3	7	6	26
%	1.40	0.47	1.42	9.72	5.21	1.61
4 से अधिक	2	8	2	4	4	36
%	0.93	3.77	0.95	5.55	3.47	2.23
विदेश यात्रा नहीं	118	107	126	27	74	794
%	55.39	50.47	60.00	37.50	64.34	49.31
अनुपलब्ध	84	88	64	23	26	560
%	39.43	41.50	30.47	31.94	22.60	34.78
योग	213	212	210	72	115	1610

मनुष्य अपने पर्यावरण की उपज है। किसी स्थान पर रहने वाले व्यक्ति पर उसके चारों ओर की सामाजिक सांस्कृतिक भौगोलिक, आर्थिक, जैविकीय और जनसंख्यात्मक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। एक सीमिति दायरे में रहने से व्यक्ति की भावनायें, व्यवहार के ढ़ंग, भाषा, नैतिकता, प्रथा, परम्परा, सामाजिक मूल्य, लोकाचार व मनोवृत्तियों का स्वरूप कुंठित हो जाता है इससे उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील नहीं रहता । एक प्रकार से उसको जीवन कूप मण्डूकता की युक्ति से धिर जाता है । लेकिन विभिन्न क्षेत्रों एवं देशों का भ्रमण करने से उसे विभिन्न सम्भयताओं, आदर्शो, व्यवहार, संस्कृति, खानपान, वेशभूषा, सामाजिक विश्वासों अथवा मनोवृत्तियों का बोध होने लगता है; परिणाम स्वरूप उसकी मानसिकता का विकास होने लगता है और प्रत्येक समस्या को प्रगतिशील दृष्टिकोण से देखने लगता है।

उपरोक्त सारणी के विवेचन से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में प्रतिपक्ष के 68 (सम्पूर्ण विपक्ष के 4.22 प्रतिशत) सदस्यों ने एक या दो देशों की यात्रा की । 36 (सम्पूर्ण विपक्ष के 2.23 प्रतिशत/सदस्यों ने 4 से अधिक देशों की यात्रा की। 794 (सम्पूर्ण विपक्ष के 49.31 प्रतिशत) सदसय ऐसे थे जिन्होंने किसी देश का भ्रमण नही किया। 560 (सम्पूर्ण विपक्ष के 34.78 प्रतिशत) सदस्यों ऐसे थे जिनकी इस सन्दर्भ में जानकारी अनुपलब्ध रही ।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि विपक्ष के कुछेक सदस्यों को ही विदेश यात्रा का अनुभव प्राप्त था । तथा ऐसे सदस्यों का बाहुल्य था जिन्होंने किसी भी देश का भ्रमण नही किया । शायद यही कारण है कि सदस्यों ने किसी समस्या का समाधान भारतीय परिप्रेक्ष्य में करने का ही सुझाव दिया ।

<u>विशेष रूचि–</u>

यह एक सर्वमान्य सत्य हे कि जिस कार्य को करने में मन का अधिक लगाव होता है । उस कार्य को अच्छे ढंग से सम्पादित किया जा सकता है तथा उसके परिणाम भी लाभकारी सिद्ध होते हैं । ऐसे कार्यो की प्रवृत्ति की जानकारी प्राप्त कर कुछ सीमा तक व्यक्ति के दृष्टिकोण उसकी भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का सहज आभास होने लगता हे। अतः विपक्ष की वैधानिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में विशेष रूचि का विवरण दिया गया है–

सदस्यों की रूचि	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ संविद	कांग्रेस
अध्ययन	8	40	72	33	37
%	20.00	27.78	39.78	14.67	18.68
संगीत	3	12	26	12	26
%	7.50	8.33	14.36	5.33	13.13
राजनीति	1	10	10	2	4
%	2.50	6.94	5.52	0.88	2.02
समाजसेवा/समाज	3	8	29	5	10
सुधार %	7.50	5.55	16.2	2.22	5.05
भ्रमण	–	3	9	7	7
%	–	2.08	4.97	3.11	3.53
बागवानी	2	8	10	5	16
%	5.00	5.56	5.52	2.22	8.08
खेलकूद/	2	19	18	19	6
शिकार %	5.00	13.19	9.84	8.44	3.03
फोटोग्राफी	1	3	3	6	8
%	2.50	2.08	1.66	2.67	4.04
अन्य	–	16	32	5	20
%	–	11.11	17.68	2.22	10.10
अनुपलब्ध	30	76	53	180	49
%	75.00	52.78	29.28	57.77	24.75
योग *					

योग *एक ही सदस्य की कई रूचियाँ होने के कारण उन्हें कई रूचियों में दर्शाया गया है। अतः सारणी का योग नही लिखा ।

सदस्योंकीरूचि	पंचम सं0	पंचम का0	षष्ठम वि0स 0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग
अध्ययन	46	59	54	22	38	409
%	21.60	27.83	25.71	30.55	33.04	25.40
संगीत	25	28	11	5	4	152
%	11.74	13.20	5.23	6.94	3.47	9.44
राजनीति	–	2	11	2	12	54
%	–	0.94	5.23	2.77	10.43	3.35
समाजसेवा/	24	11	29	17	30	166
समाजसुधार%	11.27	5.18	13.80	23.61	26.08	10.31
भ्रमण	7	14	15	–	8	70
%	3.29	6.60	7.14	–	6.95	4.34
बागवानी	17	18	75	16	30	202
तथा कृषि %	7.98	8.49	35.71	22.23	26.08.	12.54
खेलकूद/	34	33	21	8	6	166
शिकार %	15.96	15.56	10.00	11.11	5.21	10.31
फोटोग्राफी	9	10	1	6	3	50
%	4.23	4.71	0.47	8.33	2.60	3.10
अन्य	–	17	7	5	22	124
%	–	8.01	3.33	6.94	19.13	7.70
अनुपलब्ध	66	76	–	–	–	480
%	30.98	35.84	–	–	–	29.81
योग*						

योग* एक ही सदस्य की कई रूचियों होने के कारण उन्हें कई रूचियों में दर्शाया गया है अतः सारणी का योग नही लिखा ।

उर्पयुक्त सारणी को देखने से पता चलता हे कि अध्ययनाधीन काल में विपक्ष के सर्वाधिक 409 (सम्पूर्ण विपक्ष का 25.40 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिन्होंने अध्ययन में अपनी विशेष रूचि व्यक्त की। 202, कुल विपक्ष के 12.54 प्रतिशत, सदस्य ऐसे थे जिन्हें कृषि या बागवानी में लगाव था। 166 (सम्पूर्ण विपक्ष के 10.31 प्रतिशत) सदस्य को समाज सुधार में रूचि थी । यही प्रशिशत खेलकूद व शिकार में रूचि रखने वालों का रहा । 152 (सम्पूर्ण विपक्ष के 9.44 प्रतिशत (सदस्य ऐसे थे जिन्हें संगीत में रूचि थी। 70 (सम्पूर्ण विपक्ष के 4.34 प्रशित (सदस्यों ने भ्रमण में अपनी रूचि व्यक्त की। 54 (सम्पूर्ष विपक्ष के 3.35 प्रतिशत (सदस्यों ने राजनीति में अपनी रूचि व्यक्त की। 50 (सम्पूर्ण विपक्ष के 3.10 प्रतिशत) सदस्यों की रूचि फोटोग्राफी करना था। 124 (सम्पूर्ष विपक्ष के 7.70 प्रतिशत सदस्य ऐसे थे, जिन्हें अन्य रूचियों जैसे– सत्संग, एकान्तवास, तैरना, चर्खा चलाना, दस्तकारी, प्राचीन वस्तुओं का संग्रह, घुड़सवारी इत्यादि में रूचि थी। 480 (सम्पूर्ष विपक्ष के 29.81 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिनकी इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नही हो सकी ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि विपक्ष में ऐसे सदस्यों का बाहुल्य था जिनकी विशेष रूचि अध्ययन में थी, जो उनके उच्चस्तरीय तर्क-वितर्क करने एवं अपने मत के सर्मथन में ठोस तथ्यों को उजागर करने की नीति, वाद विवाद, में झलकती रही।

(ख) सत्ता पक्ष के सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि से तुलनाः–

लोकतंत्र जनप्रतिनिधियों की भूमिका बहुआयामीय होती है। वे एक साथ ही दल के सदस्य, जनता के प्रतिनिधि, संसद के सदस्य एवं सरकार के अधिकर्ता होते है, संसदीय सरकारों को वे तभी महत्व प्रदान कर सकते है जब दल के सदस्य के रूप में दल के कार्यक्रमों एवं नीतियों से आम जनता को अवगत कराकर उसमें दल के प्रति रूझान उत्पन्न करने की उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हो। दलीय सिद्धातों एवं नियमों के प्रति सर्मपित हो, जनप्रतिनिधियों के रूप में राष्ट्रीय समस्याओं के साथ ही अपने निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं का पूर्ण ज्ञान रखते हो तथा उन समस्याओं के समाधान हेतु पहल करने की उनमें व्यग्रता हो। विकास कार्यक्रमों में मतदाताओं के बीच अपने को पथ प्रर्दशक के रूप में प्रस्तुत करते हों, संसद सदस्य के रूप में संसदीय प्रक्रिया का ज्ञान रखते हो तथा अपने आचरण एवं वाणी से संसद के बाहर एवं भीतर संसदीय मर्यादा को प्रतिबिम्बित करते हों।[1] डा0 फाइनर के अनुसार इन सब कार्यो के लिये विधायक के पास विशेष

---

1. कॉल एवं शंक्धर-'संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार', पृ0 276

दक्षता की आवश्यकता नही है। उसको आवश्यकता है सामान्य बुद्धिमत्ता की, पैनी बुद्धि की, तर्क पूर्ण शक्ति की तथा निर्णय लेने की सामान्य शक्ति की और मानव स्वभाव में अर्न्तदृष्टि की भी।[2] इनमें से कुछ गुण मनुष्य में सामान्य तौर पर पाये जाते हैं तथा दूसरे गुण आयु, शिक्षा, व्यवसाय व अनुभव से। सामाजिक परिवेश व्यक्ति को कार्य करने की दिशा प्रदान करती है। विपक्ष को व्यवहार सत्तापक्ष की तुलना में सामूहिक घेराव, धरना, व्यवधान, सदन त्याग का रहा । अतः इस सन्दर्भ में सत्तापक्ष के सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि से तुलना इसलिये आवश्यक है कि किन परिस्थितियों के चलते प्रतिपक्ष का व्यवहार सत्तापक्ष की तुलना में संसदीय नहीं रहा। विवेचन निम्नवत् हैः-

जन्म स्थान :-

जन्म स्थान	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ वि0स0 कांग्रेस	चतुर्थ वि0स0 संविद	पंचम वि0स0 कांग्रेस	पंचम वि0स0 संविद
गाँव	–	63	149	47	54	100	94
%	–	22.05	49.83	23.73	24.00	47.16	44.13
शहर	–	54	100	29	25	50	43
%	–	18.88	40.16	14.64	11.11	23.58	20.18
अनुपलब्ध	389	169	–	122	146	62	76
%	–	59.09	–	61.61	64.88	29.24	35.68
सत्तापक्ष के सदस्यों का योग	389	286	249	198	225	212	213

जन्म स्थान	वि0स0 षष्टम	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग सत्ता	योग प्रतिपक्ष
गाँव	84	63	48	702	645.
	39.06	17.94	15.68	26.55	40.06
शहर	62	44	66	473	281
	28.83	12.53	21.56	17.88	17.45
अनुपलब्ध	69	244	192	1469	684
	32.09	69.51	62.74	55.57	42.48
सत्ता पक्षके सदस्यों का योग	215	351	306	2644	1610

2. फाइनर एच०; 'दि थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेन्ट'- पृ० 386-87.

उर्पयुक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सत्तापक्ष की तुलना में प्रतिपक्ष के अधिक सदस्यों का जन्म स्थान गॉव था । सत्तापक्ष के मात्र 26.55 प्रतिशत सदस्य ग्रामीण जन्मभूमि के थे जब कि प्रतिपक्ष के 40.06 प्रतिशत सदस्यों का जन्म स्थान गॉव था। जब कि शहर में जन्म लेने वाले सत्ता व प्रतिपक्षी सदस्यों का प्रतिशत अपेक्षाकृत एक समान था। सत्तापक्ष के 17.88 प्रतिशत सदस्य शहर के थे तथा प्रतिपक्ष के 17.45 प्रतिशत सदस्यों का जन्म स्थान शहर था ।

कुल सत्तापक्ष के 1469 (55.57 प्रतिशत) सदस्यों की तथा प्रतिपक्ष के 684 (सम्पूर्ण प्रतिपक्ष के 42.48 प्रतिशत) सदस्यों की इस सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध नही हो सकी।

उर्पयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि विरोधापक्ष में गॉव में जन्म लेने वाले विपक्षी सदस्यों का बाहुल्य था ।

सामान्य निवास स्थान:–

निवास	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ वि0स0		पंचम वि0स0	
				कांग्रेस	संविद	कांग्रेस	संविद
ग्राम	–	145	149	101	131	135	120
%	–	50.69	49.83	51.01	58.22	16.36	56.33
शहर	–	141	100	93	68	76	83
%	–	49.30	40.16	46.96	41.33	35.84	38.96
अनुपलब्ध	389	–	–	4	26	1	10
%	–	–	–	2.02	11.55	0.46	4.69
योग	389	286	249	198	225	212	213

निवास	षष्ठम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग-सत्ता	योग-विपक्ष
ग्राम	114	199	176	1270	874
%	53.02	56.69	58.16	48.03	54.28
शहर	101	152	130	944	574
%	46.97	43.30	42.48	35.70	35.65
अनुपलब्ध	–	–	–	430	162
%	–	–	–	16.26	10.06
योग	215	351	306	2644	1610

उर्पयुक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि अध्ययनाधीन काल में विपक्षी दल के सर्वाधिक 874 (सम्पूर्ण विपक्ष के 54.28 प्रतिशत) सदस्यों का सामान्य निवास स्थान गॉव था । जबकि इसकी तुलना में सत्तापक्ष के सर्वाधिक 1270 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 48.03 प्रतिशत) सदस्यों का सामान्य निवास स्थान गॉव था जो कि विपक्ष की तुलना में कम था । जबकि 574 (सम्पूर्ण विपक्ष के 35.65 प्रतिशत) सदस्यों का निवास शहर एवं सत्तापक्ष के 944 (35.70 प्रतिशत) सदस्यों का निवास स्थान शहर था । 430 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष 16.26 प्रतिशत) सदस्यों के निवास स्थान की जानकारी प्राप्त नही हो सकी।

आयुवर्ग :-

आयुवर्ग	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ कां0	चतुर्थ सं0	पंचम का0	पंचम सं0
25–32	–	19	25	3	19	9	12
%	–	6.64	10.04	1.51	8.44	4.24	5.63
33–42	–	43	84	29	72	34	54
%	–	15.03	33.73	14.64	32.00	16.03	25.35
43–52	–	32	64	49	62	59	46
%	–	11.18	25.70	24.74	27.55	27.83	21.59

आयुवर्ग	प्रथम वि.स.	द्वितीय -	तृतीय वि.स.	चतुर्थ वि.स.		पंचम वि.स.	
				का.	सं.	का.	सं.
53-से अधिक	–	33	53	56	24	49	35
%	–	11.53	21.28	28.28	10.66	23.11	16.43
अनुपलब्ध	389	159	23	61	48	61	66
%	–	55.59	9.23	30.88	21.33	28.77	30.98
योग	389	286	249	198	225	212	213

आयु	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग-सत्ता	योग-विपक्ष
25–32	11	24	20	142	97
%	5–11	6.83	6.53	5.37	6.02
33–42	55	82	82	535	389
%	25.58	23.36	26.79	20.23	24.16
43–52	71	92	84	559	395
%	33.02	26.21	27.45	21.14	24.53
53 से अधिक	48	68	66	432	269
%	22.32	19.37	21.56	16.33	16.70
अनुपलब्ध	30	85	54	976	460
%	13.95	24.21	17.64	36.91	28.57
योग	215	351	306	2644	1610

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 559 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 21.14 प्रतिशत) सदस्य 43 से 52 वर्ष की आयु के थे। इसी प्रकार 395 (सम्पूर्ण

प्रतिपक्ष के 24.53 प्रतिशत) सदस्य 43–52 वर्ष तक की आयु के थे। स्पष्ट है कि सत्तापक्ष व प्रतिपक्ष दोनों से ही मध्यम आयु वर्ग के लोगों का प्राधान्य रहा । द्वितीय स्थान 33 से 42 वर्ष की आयु समूह – कमशः सत्तापक्ष 535 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 20.23 प्रतिशत) व विपक्ष 389 (सम्पूर्ण विपक्ष का 24.16 प्रतिशत) का था। जो सत्तापक्ष की तुलना में अधिक थे। तीसरा स्थान 53 वा उससे अधिक आयु वर्ग के लोगों का रहा जो क्रमशः सत्तापक्ष 432 (सम्पूर्ण सत्ता पक्ष का 16.33) तथा विपक्ष 269(सम्पूर्ण प्रतिपक्ष का 16.70प्रतिशत) रहा। सत्तापक्षके 976,विपक्ष के 460 (सम्पूर्ण विपक्ष के 28.57 प्रतिशत) सदस्यों की आयु का विवरण ज्ञात नही हो सका।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सत्तापक्ष व प्रतिपक्ष में मध्यम आयु वर्ग के लोगों का प्राधान्य होने के कारण ही सदन का स्तर व सदस्यों का आचरण अपेक्षाकृत मर्यादित व सन्तुलित रहा ।

शैक्षणिक स्तर :-

शैक्षणिक स्तर	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 कां0	चतुर्थ वि0स0 सं0	पंचम वि0स0 कां0	पंचम वि0स0 सं0
प्राइमरी	–	3	32	1	4	–	13
%	–	1.04	12.84	0.50	1.77	–	0.10
मिडिल	–	1	53	–	4	4	7
%	–	0.34	21.28	–	1.77	1.88	3.28
हाईस्कूल	–	3	36	14	15	25	15
%	–	1.04	14.45	7.07	6.66	11.79	7.04
इण्टर	–	2	18	7	5	13	9
%	–	0.69	7.22	3.53	2.22	6.13	4.22
स्नातक	–	20	47	22	22	26	16
%	–	6.99	18.87	11.11	9.77	12.26	7.51
स्नाकोत्तर	–	20	30	32	25	33	40
%	–	6.99	12.04	16.16	11.11	15.56	18.77
तकनीकी	–	2	6	1	4	5	5
%	–	0.69	2.40	0.50	1.77	2.35	2.34

कानून	–	14	27	28	18	23	28
%	–	4.89	10.84	14.14	8.00	10.84	13.14
अशिक्षित/ अनुपलब्ध	389	221	–	93	128	83	80
%	–	77.27	–	46.96	56.88	39.15	37.56
योग	389	286	249	198	225	212	213

शिक्षा स्तर	वि0स0 षष्टम	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग सत्ता	योग विपक्ष
प्राइमरी	19	10	20	84	48
%	8.83	2.84	0.65	1.81	2.98
मिडिल	5	18	5	97	60
%	2.32	5.12	1.63	3.66	3.72
हाईस्कूल	20	49	44	221	142
%	9.30	13.96	14.3	8.35	8.82
इण्टर	13	28	26	121	84
%	6.04	7.97	8.89	4.57	5.22
स्नातक	33	33	48	267	165
%	15.34	9.40	15.68	10.09	10.25
स्नातकोत्तर	46	93	66	385	222
%	21.39	26.49	21.56	14.56	13.79
तकनीकी	31	7	40	101	24
%	14.41	1.99	13.07	3.81	1.49
कानून	4	41	15	198	197
%	1.86	11.68	4.90	7.84	12.24

अनुपलब्ध	44	72	60	1170	668
%	20.46	20.51	19.60	44.25	41.49
योग	215	351	306	2644	1610

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में सत्ता व प्रतिपक्ष के अधिकांश सदस्य किसी न किसी स्तर तक शिक्षित थे, तथा शिक्षित सदस्यों में भी उच्च शिक्षा, अर्थात स्नातक से उच्च, का प्राधान्य रहा। इनमें सर्वाधिक संख्या स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त सदस्यों की थी, जो कि सत्तापक्ष व विपक्ष की क्रमशः 14.56 प्रतिशत व 13.79 प्रतिशत रही। द्वितीय स्थान स्नातक शिक्षा प्राप्त सदस्यों का रहा। सत्ता पक्ष के 10.09 प्रतिशत सदस्य स्नातक थे तथा विपक्ष के 10.25 प्रतिशत सदस्य स्नातक शिक्षा प्राप्त थे। कानून की शिक्षा प्राप्त सदस्यों में विपक्ष के सदस्यों का प्रतिशत अधिक रहा। जो समय समय पर उनके उच्च तार्किक स्तर की अभिव्यंजना करता रहा। यह इस तथ्य का भी परिचायक है कि निर्वाचन राजनीति में उच्च शिक्षित वर्ग की सक्रियता निरन्तर बढ़ रही है। जो कि सत्तापक्ष व विपक्ष दोनों के लिये एक स्वस्थ राजनीतिक लक्षण कहा जा सकता है। तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में विपक्ष की तुलना में सत्ता पक्ष के सदस्यों का प्रतिशत अधिक रहा। सत्ता पक्ष की संख्या 101 (सम्पूर्ण सदस्यों का 3.81 प्रतिशत) रही। तथा विपक्ष की संख्या 24 (सम्पूर्ण विपक्ष का 1.49 प्रतिशत) थी। प्राइमरी, मिडिल, हाईस्कूल एवं इण्टर पास सदस्यों का प्रतिशत सत्तापक्ष व प्रतिपक्ष में सामान्यतया समान स्तर का रहा। सत्तापक्ष के 1170 (सम्पूर्ण सत्ता पक्ष का 44.25 प्रतिशत) सदस्य या तो अनुपलब्ध थे, अन्यथा अशिक्षित थे। तथा विपक्ष के 668 (सम्पूर्ण विपक्ष का 41.49 प्रतिशत) सदस्य अनुपलब्ध थे, अन्यथा अशिक्षित थे।

आर्थिक पृष्ठभूमि :-

आर्थिक पृष्ठभूमि की सारणी के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिपक्ष के ऐसे सदस्य जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि था, की संख्या सत्तापक्ष के तुलना में अधिक रही। द्वितीय स्थान वकालत करने वाले सदस्यों का रहा; इससे ऐसा ध्वनित होता है कि वकालत या कानूनी शिक्षा प्राप्त लोगों का राजनीति में अच्छा योगदान रहा। सत्तापक्ष व विपक्ष में यह प्रतिशत क्रमशः 298 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 11.27 प्रतिशत) तथा विपक्ष के 184 (सम्पूर्ण विपक्ष के 11.43 प्रतिशत) सदस्यों का व्यवसाय वकालत था। विपक्ष की तुलना में सत्तापक्ष में व्यापरी वर्ग की अधिकता रही। सत्तापक्ष में व्यापार करने वाले सदस्यों की संख्या 230 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 8.69 प्रतिशत रही। राजनीति एवं अध्यापन व्यवसाय वर्ग के लोग प्रतिपक्ष में अधिक पाये गये। सत्तापक्ष की तुलना में

"आर्थिक पृष्ठ भूमि"–

मुख्य व्यवसाय	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 कां0	चतुर्थ वि0स0 सं0	पंचम वि0स0 कां0	संविद
कृषि–	–	21	91	58	80	61	72
	–	7.34	36.54	29.29	35.55	28.77	35.80
वकालत	–	14	41	36	19	31	32
	–	4.89	16.46	18.18	8.44	14.62	15.02
राजनीति	–	15	32	18	–	24	17
	–	5.24	12.85	9.09	–	11.32	7.98
समाज सेवा	–	–	–	4	14	2	18
	–	–	–	2.02	6.22	0.94	8.45
व्यापार	–	6	91	15	10	10	11
	–	2.09	36.54	7.57	4.44	4.71	5.16
अध्यापन	–	7	5	11	13	11	16
	–	2.44	2.20	5.55	5.77	5.18	7.51
औषधि	–	2	4	1	4	6	3
	–	0.69	1.60	0.50	1.77	2.83	1.40
अन्य	–	15	60	–	–	–	–
	–	5.24	24.09	–	–	–	–
(यथा–खिलाड़ी	–	–	–	14	12	21	22
नौकरी,पत्रकार	–	–	–	7.07	5.33	9.90	10.32
ठेकेदार,बहुधन्धी)							
अनुपलब्ध	389	206	–	41	74	56	39
	–	72.02	–	20.70	32.88	26.4	18.30
योग *							

मुख्य व्यवसाय	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्ठम	योग सत्ता	योग विपक्ष
कृषि	99 46.04	179 50.99	183 59.80	844 31.92	579 35.96
वकालत	23 10.69	51 14.52	51 16.66	298 11.27	184 11.43
राजनीति	8 3.72	11 3.13	7 2.28	132 4.99	85 5.28
समाज सेवा	4 1.86	15 4.27	2 0.65	59 2.23	61 3.79
व्यापार	16 7.44	23 6.55	48 15.68	230 8.69	96 5.96
अध्यापन	11 5.11	27 7.69	28 9.15	129 4.87	90 5.59
औषधि	4 1.86	10 2.84	10 3.26	44 1.66	27 1.67
अन्य (यथा–खिलाड़ी, ठेकेदार, पत्रकार, बहुधन्धी)	10 4.65	22 6.26	12 3.92	188 7.11	98 6.08
अनुपलब्ध	40 18.60	59 16.80	45 14.70	835 31.58	419 26.02
योग *					

* कुछ सदस्यों के एक से अधिक व्यवसाय थे अतएव सभी व्यवसायों में उनकी गणना होने के कारण योग नहीं लिया गया।

यह प्रतिशत क्रमशः सत्तापक्ष 132 (4.99 प्रतिशत) तथा 1 29 (4.87) प्रतिशत एवं विपक्ष क्रमशः 85 (5.28 प्रतिशत) तथा 90 (5-59 प्रतिशत) रहा। औषधि व चिकित्सा व्यवसाय में यह प्रतिशत सत्तापक्ष व विपक्ष में समान स्तर का रहा । समाज सेवा को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले वर्ग में विपक्ष का प्रतिशत अधिक रहा। यह सत्तापक्ष 59 (223 प्रतिशत) तथा विपक्ष 61 (3.79 प्रतिशत) रहा। अन्य व्यवसाय अपनाने वालों में सत्ता पार्टी के सदस्य प्रतिपक्षी सदस्यों की तुलना में अधिक थे। सत्तापक्ष में 835 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 31.58 प्रतिशत) सदस्यों का तथा विपक्ष के 419 (सम्पूर्ण विपक्ष के 26.02 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण प्राप्त नहीं हो सका ।

"राजनीतिक पृष्ठभूमि"–

सार्वजनिक आन्दोलन, जेलयात्राः–

जेलयात्रा/ सार्व० आन्दोलन	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	तृतीय वि0स0	चतुर्थ कां0	चतुर्थ सं0	पंचम कां0	पंचम सं0
स्वतंत्रता	–	40	67	35	17	38	15
आन्दोलन %	–	13.98	26.90	17.67	7.55	17.92	7.04
कृषक	–	1	–	–	–	1	1
आन्दोलन %	–	0.34	–	–	–	0.47	0.46
खाद्य	–	–	–	–	–	–	–
आन्दोलन %	–	–	–	–	–	–	–
श्रमिक	–	2	–	–	–	3	–
आन्दोलन %	–	0.69	–	–	–	1.41	–
विद्यार्थी	–	–	–	–	–	–	–
आन्दोलन %	–	–	–	–	–	–	–
अन्य(दलीय	–	2	–	11	6	2	16
आन्दोलन; % सत्याग्रह आदि)	–	0.69	–	5.55	2.66	0.94	7.51

सार्व.आन्दो./ जेलयात्रा	प्रथम वि.स.	द्वितीय वि.स.	तृतीय वि.स.	चतुर्थ वि.स. कांग्रेस	चतुर्थ वि.स. संविद	पंचम वि.स. कांग्रेस	पंचम वि.स. संविद
जेल यात्रा	–	84	182	116	144	–	167
नही की	–	29.37	73.09	58.58	64.00	–	78.40
अनुपलब्ध	389	157	–	36	58	168	55
%	–	54.89	–	18.18	25.73	79.24	25.82
योग *							

सार्वजनिक आ./ जेलयात्रा	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग-सत्ता	योग-विपक्ष
स्वतंत्रता	20	23	22	277	184
आन्दोलन %	9.30	6.55	7.18	10.47	11.43
कृषक	1	7	9	20	32
आन्दोलन %	0.46	1.99	2.94	0.75	1.98
खाद्य	1	–	–	6	21
आन्दोलन %	0.46	–	–	0.22	1.30
श्रमिक	3	2	2	12	14
आन्दोलन %	1.39	0.56	0.65	0.45	0.87
विद्यार्थी	–	4	1	5	7
आन्दोलन %	–	1.13	0.32	0.18	0.43
अन्य	4	47	120	208	146
आन्दोलन, %	1.86	13.39	39.27	7.86	9.07
जेलयात्रा	167	268	107	1178	674
नही की %	77.67	76.35	34.96	44.55	41.86
अनुपलब्ध	19	–	45	982	641
%	8.83	–	14.70	37.14	39.81
योग*					

उर्पयुक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अध्ययनाधीन काल के मध्य प्रतिपक्ष के सदस्यों ने सत्तारूढ़ दल की तुलना में विभिन्न आन्दोलनों में अपना सक्रिय सहयोग अधिक किया । स्वतंत्रता आन्दोलनमें विपक्ष के 184 (11.43%); सत्तापक्ष में भाग लेने वालों की संख्या 277 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष 10.47 प्रतिशत) रही। अन्य आन्दोलनों में भाग लेने वाले सदस्यों में भी प्रतिपक्ष का योगदान ज्यादा रहा। वर्ष 1974 से '77 तक मीसा के अर्न्तगत तथा डी0आई0आर0 के अर्न्तगत बन्दी होने वाले प्रतिपक्षी सदस्यों की संख्या सदस्यों की संख्या बहुत रही । इसके अतिरिक्त श्रीमती गाँधी सत्ताच्युत होकर प्रतिपक्ष में आ जाने के पश्चात् उनके समर्थन में हुये कांग्रेस आन्दोलनों में जेलयात्रा करने वाले सदस्यों की विवरण प्राप्त होता है। खाद्य एवं विद्यार्थी आन्दोलन में सदस्यों द्वारा भाग लेने की प्रवृत्ति नगण्य रूप से पाई गई। ऐसा प्रतीत होता है कि न केवल सत्तापक्ष अपितु विपक्षी सदस्य भी इस विषयों पर अधिक जागरूक नही रहे। सत्तापक्ष में इसका प्रतिशत क्रमशः 6 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 0.22 प्रतिशत) व 5 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 0.18प्रतिशत रहा । तथा विपक्ष में इसका 21 (सम्पूर्ण विपक्ष का 1.30 प्रतिशत) तथा 7 सम्पूर्ण विपक्ष का (0.43 प्रतिशत) रहा । यही स्थिति श्रमिक आन्दोलन में भाग लेने वाले सदस्यों की रही विपक्ष में इसकी संख्या 14 (सम्पूर्ण विपक्ष का 0.87प्रतिशत रही तथा सत्तापक्ष में इसकी संख्या 12 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 0.45 प्रतिशत) रही।

सत्तापक्षके 1178 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 44.55 प्रतिशत) सदस्यों को जेल यात्रा का कोई अनुभव नही था तथा विपक्ष के 674 (सम्पूर्ण विपक्ष के 41.86 प्रतिशत) सदस्यों को जेल यात्रा का अनुभव प्राप्त नही था ।सत्तापक्ष के 982 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 37.14 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण अनुपलब्ध रहा । तथा विपक्ष के 641 (सम्पूर्ण विपक्ष के 39.81 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण अनुपलब्ध रहा ।

विधायी अनुभवः–

विधायी अनुभव	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ वि0स0 कां0	चतुर्थ वि0स0 सं0	पंचम वि0स0 कां0	पंचम वि0स0 सं0
स्वतंत्रता	–	25	29	21	–	22	4
पूर्व निर्वाचित %	–	8.74	11.64	10.60	–	10.37	1.87
स्वतंत्रता बाद	–	50	63	37	9	37	15
प्रथम वि0स0 %	–	17.48	25.30	18.68	4.00	17.45	7.04

	प्रथम वि.स.	द्वितीय वि.स.	तृतीय वि.स.	चतुर्थ वि.स.		पंचम वि.स.	
				कां.	सं.	कां.	स.
द्वितीय वि.स.	–	–	48	48	16	37	15
%	–	–	19.27	24.24	7.11	17.45	7.04
तृतीय वि.स.	–	–	–	42	18	51	23
%	–	–	–	21.2	8.00	24.05	10.79
चतुर्थ वि.स.	–	–	–	–	–	43	37
%	–	–	–	–	–	20.28	17.73
अनुभवहीन	–	82	61	14	118	21	31
%	–	28.67	24.49	7.07	52.44	9.90	14.55
अनुपलब्ध	389	129	48	36	64	70	126
%	–	45.10	19.27	18.18	28.44	33.00	59.15
योग *							

विधायी अनुभव	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग सत्ता	योग विपक्षी
स्वतंत्रता पूर्व	8	2	1	112	61
	3.72	0.56	0.32	4.23	3.78
स्वतंत्रता बाद प्रथम वि.स.	24	12	13	260	133
	11.16	3.41	4.24	9.83	8.26
द्वितीय वि.स.	31	19	18	232	171
%	14.41	5.41	5.88	8.77	10.62
तृतीय वि.स.	30	31	24	219	201
%	13.96	8.83	7.84	8.28	12.48
चतुर्थ वि.स.	39	47	27	193	148
%	18.13	13.39	8.82	7.29	9.19

	षष्ठम वि.स.	सप्तम वि.स.	अष्टम वि.स.	योग-सत्ता	योग-विपक्षी
पंचम वि.स.	40	38	68	146	121
%	18.60	10.82	22.22	5.52	7.51
षष्टम वि.स.	–	110	71	181	51
%	–	31.33	23.20	6.84	3.16
सप्तम वि.स.	–	–	34	34	36
%	–	–	11.11	1.28	2.23
अष्टम	–	–	–	–	–
	–	–	–	–	–
अनुभवहीन	102	92	51	429	698
%	47.44	20.21	16.66	16.22	43.35
अनुपलब्ध	43	–	14	919	245
	20.00	–	4.57	34.75	15.22
योग *					

उर्पयुक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्रतिपक्ष की अपेक्षा सत्तापक्ष के सदस्यों द्वारा स्वतंत्रता पूर्व विधायी अनुभव अधिक था । इसका प्रमुख कारण देश में कांग्रेस के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलनों का लड़ा जाना रहा व बाद में कांग्रेस द्वारा विभिन्न प्रान्तों में सरकारें बायी गयी । फिर भी यह विपक्ष की तुलना में बहुत अधिक नहीं रहा । स्वतंत्रता बाद प्रथम विधानसभा में सत्तापक्ष का वर्चस्व. था व विपक्ष की संख्या नगण्य थी अत अध्ययनाधीन काल में प्रथम वि.सभा का अनुभव सत्तापक्ष को विपक्ष की तुलना में अधिक प्राप्त हुआ। द्वितीय विधानसभा का विधायी अनुभव प्राप्त सदस्यों की संख्या व प्रतिशत प्रतिपक्ष का अधिक था । जबकि विधान सभा में सत्तापक्ष का वर्चस्व व विपक्षियों की कम संख्या थी । किन्तु यह सम्पूर्ण सत्तापक्ष की तुलना में 1.85 प्रतिशत अधिक रहा ।तृतीय विधान सभा का अनुभव सत्तापक्ष की अपेक्षा विपक्षियों को अधिक था। यह सम्पूर्ण सत्तापक्ष की तुलना में 4.2 प्रतिशत अधिक था। इसी प्रकार चतुर्थ विधानसभा का अनुभव प्राप्त सदस्यों का प्रतिशत सत्तापक्ष की तुलना में विपक्ष का अधिक रहा। यह सम्पूर्ण सत्तापक्ष की तुलना में 1.9 प्रतिशत अधिक रहा । यही स्थिति पंचम विधानसभा के सदस्यों की रही । इसमें विपक्ष में सत्तापक्ष की तुलना में 1.99 प्रतिशत सदस्यों की संख्या अधिक थी । छठी विधान सभा के सन्दर्भ में सत्तापक्ष के सदस्यों को अधिक विधायी अनुभव था । यह विपक्ष की तुलना में 3.68 प्रतिशत अधिक था ।

जबकि सप्तम विधान सभा का विधायी अनुभव प्रतिपक्ष को अधिक था । यह सत्तापक्ष की तुलना में (0.95 प्रतिशत) अधिक था । सम्पूर्ण सत्तापक्षके 429 (16.22 प्रतिशत) सदस्य अनुभवहीन थे तथा सम्पूर्ण विपक्ष के 698 (43.25 प्रतिशत) सदस्य अनुभवहीन थे। सत्तापक्ष के 919 (34.75 प्रतिशत) तथा विपक्ष के 245 (15.22 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण अनुपलब्ध रहा । सत्तापक्ष के सदस्यों का निधायी अनुभव कम होने का एक प्रमुख कारण युवावर्ग की सत्तापक्ष के प्रति अधिक रूझान होना था जबकि प्रतिपक्ष का नेतृत्व निर्माण प्रायः सत्तापक्ष से किसी कारणवश निकले लोगों से हुआ।[1] इसका एक अन्य कारण यह भी था कि विपक्ष में प्रायः उन्ही व्यक्तियों को निर्वाचन हेतु टिकट प्राप्तु हुये जिनकी एक ठोस राजनैतिक पृष्ठभूमि थी[2] जब कि सत्तापक्ष में बहु संख्यक होने के कारण किसी भी अच्छे राजनैतिक कार्यकर्ता को प्रत्याशी बना दिया गया । साथ ही चुनाव परिणामों के विवेचन से पता चलता है कि प्रायः प्रतिपक्ष ने सत्तापक्ष की अपेक्षा अधिक मत प्राप्त किये । किन्तु राजनीतिक दलों को अधिकता होने के कारण वह एक जुट नही हो सकें । सभवतः इसी कारणं सामूहिक रूप से विपक्ष का प्रतिशत सत्तापक्ष से अधिक रहा ।

दल का संगठनात्मक अनुभव :-

'दल का संगठनात्मक अनुभव'-सारणी को देखने से स्पष्ट होता है कि अध्ययनाधीन काल में सत्ता पक्ष के सर्वाधिक 431 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 16.30 प्रतिशत) सदस्यों को तथा विपक्ष के 237 (सम्पूर्ण विपक्ष के 17.82 प्रतिशत) सदस्यों को जिला स्तर के संगठनों मे पद प्राप्त करने का अवसर मिला । सत्तापक्ष के 373 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 14.1 प्रतिशत) सदस्यों को राज्य स्तर तथा 240 (सम्पूर्ण विपक्ष के 14.90 प्रतिशत) सदस्यों को राज्य स्तर का अनुभव प्राप्त था (क) । सत्तापक्ष के 163 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 6.16 प्रतिशत) सदस्यों तथा विपक्ष में 92 (सम्पूर्ण विपक्ष के 5.71 प्रतिशत सदस्यों) को अखिलभारतीय स्तर तक के सगठनों में पद धारण करने का अवसर प्राप्त हुआ यह सम्पूर्ण विपक्ष की तुलना में 0.45 प्रतिशत अधिक था। सत्तापक्ष के 101 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 3.81 प्रतिशत) सदस्यों को जिला के निम्नस्तर तक के संगठनों में पद धारण करने का मौका मिला। तथा विपक्ष के 40 (सम्पूर्ण विपक्ष के) 2.48 प्रतिशत सदस्यों को जिला से निम्न स्तर तक के सगठनों में पद धारण करने का मौका मिला। यह सम्पूर्ण सत्तापक्ष की तुलना में 1.33 प्रतिशत कम था । सत्तापक्ष 900 (सम्पूर्ण सत्तापक्षके 34.03 प्रतिशत) तथा विपक्ष के 554 (सम्पूर्ण विपक्ष के 34.40 प्रतिशत) सदस्यों को राजीतिक दलों के संगठन में किसी भी स्तर परपदधारण करने का अवसर प्राप्त नहीं

---

1. वीनर मायरन, एडिटेड स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया पृ0 88
2. शिवलाल, इलेक्शन टू इण्डियाज लेजिस्लेचर्स सिन्स 1952, उ0प्र0 असम्बेली, दिल्ली, दि इन्स्टीटयूट फार इलेक्टोरल स्टडीज, 1978

(क). अखिलभारतीय व राज्य स्तर की श्रेणी में उन सदस्यों का भी शामिल किया गया है जो उक्त स्तर पर दल की कार्यकारिणी के सदस्य थे।

नही हुआ । 676 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 25.56 प्रतिशत) तथा 397 (सम्पूर्ण विपक्ष के 24-65 प्रतिशत) सदस्यों की इस सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त न हो सकी।

<u>दल का संगठनात्मक अनुभव:-</u>

पदीय अनुभव	वि0स0 प्रथम	वि0स0 द्वितीय	वि0स0 तृतीय	चतुर्थ कां0	वि0स0 सं0	पंचम कां0	वि0स0 सं0
जिला से निम्न	-	15	21	6	7	4	7
स्तर %	-	5.24	7.26	3.03	3.11	1.88	3.28
जिला स्तर	-	63	83	62	35	55	41
%	-	22.02	33.33	31.31	15.55	25.94	19.24
राज्यस्तर(क)	-	42	76	59	15	41	50
%	-	14.68	30.52	29.79	6.66	19.33	23.47
अखिलभारतीय	-	10	32	26	13	20	11
स्तर %	-	3.49	12.85	13.13	5.77	9.43	5.16
अनुभवहीन	-	150	37	40	52	24	71
%	-	52.44	14.85	20.20	23.11	11.32	33.33
अनुपलब्ध	389	6	-	5	103	68	33
%	-	2.09	-	2.52	47.55	32.07	15.49
योग	389	286	249	198	225	212	213

पदीय अनुभव	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग सत्ता	योग विपक्ष
जिला से निम्न	8	10	23	101	40
स्तर %	3.72	2.84	7.51	3.81	2.48
जिला स्तर	15	35	47	431	287
%	6.97	9.97	15.35	16.30	17.82

पदीय अनुभव	षष्ठम	सप्तम	अष्टम	योग-सत्ता	योग-विपक्ष
राज्य स्तर(क)	27	32	31	373	240
%	12.55	9.11	10.13	14.1	14.90
अखिलभारतीय	19	15	17	163	92
स्तर %	8.83	4.27	5.55	6.16	5.71
अनुभवहीन	124	255	147	900	554
%	57.67	72.64	48.03	34.03	34.40
अनुपलब्ध	22	4	45	676	397
%	10.23	1.13	13.39	25.56	24.65
योग	215	351	306	2644	1610

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सत्तापक्ष व विपक्ष के अधिकांश सदस्य दलीय संगठन में पद धारणकर्ता के रूप में अनुभवहीन थे । यही कारण है कि समय-समय पर भारतीय राजनीति में अस्थिरता का वातारण दृष्टिगत हुआ । क्यों कि पूर्वानुभव न होने के कारण सदस्य प्रायः परम्परागत व व्यवस्था सम्बन्धी जटिलताओं पर उत्तेजित हो जाते थे।

स्थानीय स्वशासन का अनुभव :—

स्थानीय स्वशासन अनुभव	वि०स० प्रथम	वि०स० द्वितीय	वि०स० तृतीय	चतुर्थ वि०स० का०	सं०	पंचम वि०स० का०	सं०
नगर पालिका	–	9	24	–	–	–	–
%	–	3.14	9.63	–	–	–	–
टाउन एरिया	-	2	2	-	-	-	-
%	-	0.69	0.80	-	-	-	-
नोटी० एरिया	–	1	2	17	21	19	17
%	–	0.34	0.80	8.58	9.33	8.96	7.98
ग्राम पंचायत	–	7	4	8	6	8	19
%	–	2.44	1.60	4.04	2.66	3.77	8.92
पंचायत समिति	–	2	6	9	6	15	15
%	–	10.69	2.40	4.54	2.6	7.07	7.05

अनुभव	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ कां.	चतुर्थ सं.	पंचम कां.	पंचम सं.
जिला बोर्ड	–	14	68	55	32	60	38
%	–	4.89	27.30	27.77	14.22	28.30	17.84
अनुपलब्ध	389	157	67	–	–	38	63
%	–	54.89	26.90	–	–	17.92	29.57
अनुभवहीन	–	94	76	109	160	72	61
%	–	32.86	30.52	55.05	71.11	33.96	28.63
योग	389	286	249	198	225	212	213

अनुभव	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योगसत्ता	योग विपक्ष
नगरपालिका	16	13	12	74	–
%	7.44	3.70	3.92	2.79	–
टाउन एरिया	1	3	3	11	–
%	0.46	0.85	0.98	0.41	–
नोटीफाइड एरिया	–	–	–	77	118
%	–	–	–	2.91	7.32
ग्राम पंचायत	8	13	17	90	75
%	3.72	3.70	5.55	3.40	4.65
पंचायतसमिति	8	15	26	103	64
%	3.72	4.55	8.49	3.89	4.28
जिला बोर्ड	38	23	41	369	246
%	17.67	6.55	13.39	13.95	16.39
अनुपलब्ध	4	5	41	764	108
%	1.86	1.42	13.39	28.89	6.71
अनुभवहीन	140	278	166	1156	976
%	65.11	79.20	54.2	43.72	60.62
योग	215	351	306	2644	1610

उपरोक्त सारणी से पता चलता है कि उ0प्र0 विधान सभा में अध्ययनाधीन काल के सर्वाधिक सत्ता पक्ष के 369 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 13.95 प्रतिशत) सदस्यों को जिला बोर्ड/जिला परिषद का अनुभव था यह विपक्ष की तुलना में 2.44 प्रतिशत कम था । सत्तापक्ष के 103 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 3.89 प्रतिशत) सदस्यों को पंचायत समिति का अनुभव प्राप्त था । यह 0.39 प्रतिशत कम था। सत्तापक्ष के 90 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 3.40प्रतिशत सदस्यों को ग्राम पंचायत का अनुभव प्राप्त था यह विपक्ष की तुलना में 1.25 प्रतिशत कम था । सत्तापक्ष के 77 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 2.91 प्रतिशत सदस्यों को नोटीफाइड एरिया का अनुभव प्राप्त था। यह विपक्ष की तुलना में 4.41 प्रतिशत कम रहा । सत्तापक्ष के 11 सदस्यों को (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 0.41 प्रतिशत) सदस्यों को टाउन एरिया का अनुभव प्राप्त था । विपक्ष का इस सम्बन्ध में तुलनात्मक प्रतिशत उपलब्ध नहीं हुआ। सत्तापक्ष के 764 (28.89%) जबकि विपक्ष के मात्र 108 (सम्पूर्ण विपक्ष का 6.71 प्रतिशत) सदस्यों का विवरण अनुपलब्ध रहा जो कि सत्तापक्ष से 22.18 प्रतिशत कम था । सत्तापक्ष के 1156 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 43.72 प्रतिशत) सदस्य अनुभवहीन थे। तथा विपक्ष के 976 (सम्पूर्ण विपक्ष के 60.62 प्रतिशत) सदस्यों को पदीय अनुभव नहीं था।

स्पष्ट है कि सत्ता पक्ष की अपेक्षा विपक्ष के सदस्यों को स्थानीय स्वशासन का अनुभव अधिक था ।

विदेश यात्रा अनुभव :-

विदेश यात्रा	प्रथम वि0स	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ कां0	चतुर्थ सं0	पंचम कां0	पंचम सं0
1या2देश	–	3	11	10	3	8	6
%	–	1.04	4.41	5.05	1.33	3.77	2.81
3या4	–	1	5	2	–	1	3
%	–	0.34	2.00	1.01	–	0.47	1.40
4से अधिक	–	3	5	9	2	8	2
%	–	1.04	2.00	4.54	0.88	3.77	0.93
विदेश यात्रा नही	–	122	106	140	127	107	118
%	–	42.65	42.57	70.70	56.44	50.47	55.39

अनुभव	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ का.	चतुर्थ सं.	पंचम का.	पंचम सं.
अनुपलब्ध	389	157	122	37	93	88	84
%	–	54.89	48.99	18.68	41.33	41.50	39.43
योग	389	286	249	198	181	212	213

विदेश यात्रा	वि0स0 षष्ठम	वि0स0 सप्तम	वि0स0 अष्टम	योग सत्ता	योगविपक्ष
1या2 देश	14	22	20	97	68
%	6.51	6.26	6.53	3.66	4.22
3या4	5	6	5	28	26
%	2.32	1.70	1.63	1.05	1.61
4से अधिक	11	7	20	67	36
%	5.11	1.99	6.53	2.53	2.23
विदेश यात्रा नहीं	163	316	216	1415	774
%	75.81	90.02	70.58	53.51	49.31
अनुपलब्ध	22	–	45	1039	560
%	10.23	–	14.70	39.22	34.78
योग	215	351	306	2644	1610

विदेश यात्रा अनुभव के सन्दर्भ में उपरोक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में सत्तापक्ष 97 (सम्पूर्ण विपक्ष के 3.66 प्रतिशत) सदस्यों तथा विपक्ष के 68 (सम्पूर्ण विपक्ष के 4.22 प्रतिशत) सदस्यों ने 1 या 2 देशों की यात्रा की । सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना मे 0.56 प्रतिशत कम था । तथा 28

(कुल सत्ता पक्ष के 1.05 प्रतिशत) सदस्य तथा विपक्ष के 26 (कुल विपक्ष के 1.61 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिन्होंने 3 या 4 देशों की यात्रा की । इसमें सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना में 0.56 प्रतिशत कम रहा । 67 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 2.53 प्रतिशत) तथा 36 (सम्पूर्ण विपक्ष का 2.23 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिन्होंने चार से अधिक देशों की यात्रा की। इसमें सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना में 0.3 प्रतिशत अधि रहा। सत्तापक्ष के 1415 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 53.51) तथा विपक्ष के 774 (सम्पूर्ण विपक्ष के 49.31 प्रतिशत) सदस्य ऐसे थे जिन्होंने किसी देश का भ्रमण नही किया। सत्तापक्ष को1039 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 39.22 प्रतिशत) तथा विपक्ष के 560 (सम्पूर्ण विपक्ष के 34.78 प्रतिशत) सदस्यों की जानकारी अनुपलब्ध रही । उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि न केवल विपक्ष अपितु सत्तापक्ष के अधिकांश सदस्य विदेश यात्रा में अनुभवहीन थे अतः भारतीय राजनीति में समस्याओं के समाधान के प्रति व्यापक दृष्टिकोण का अभाव रहा ।

विशेष रूचिः-

रूचि	प्रथम वि0स0	द्वितीय वि0स0	तृतीय वि0स0	चतुर्थ कां0	सं0	पंचम कां0	सं0
अध्ययन	-	52	66	37	33	59	46
%	-	18.18	26.50	18.68	14.67	27.83	21.60
संगीत	-	26	36	26	12	28	25
%	-	9.09	14.45	13.13	5.33	13.20	11.74
राजनीति	-	2	3	4	2	2	-
%	-	0.69	1.20	2.02	0.88	0.94	-
समाज सेवा/	-	16	29	10	5	11	24
समाज सुधार %	-	5.59	11.6	5.05	2.22	5.18	11.27
भ्रमण	-	14	19	7	7	14	7
%	-	4.89	38.77	3.53	3.11	6.60	3.29
बागवानी या	-	19	21	16	5	18	17
कृषि %	-	6.64	8.43	8.08	2.22	8.49	7.98

रुचि	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ कां.	चतुर्थ सं.	पंचम कां.	पंचम सं.
खेलकूद	–	24	31	6	19	33	34
%	–	8.39	12.44	3.03	8.44	15.56	15.96
फोटोग्राफी–	–	5	6	8	6	10	9
%	–	1.74	2.40	4.04	2.67	4.71	4.23
अन्य	–	12	23	20	5	17	
%	–	4.19	8.03	10.10	2.22	8.01	–
अनुपलब्ध	389	116	18	49	130	76	66
%	–	40.55	7.22	24.75	57.77	35.84	30.98
योग *							

रुचि	षष्ठम वि0स0	सप्तम वि0स0	अष्टम वि0स0	योग सत्ता	योग विपक्ष
अध्ययन	71	139	61	561	409
%	33.03	39.60	19.93	21.21	25.40
संगीत	19	29	13	214	152
%	8.83	8.26	4.24	8.09	9.44
राजनीति	12	25	37	87	54
%	5.58	7.12	12.09	3.29	3.35
समाजसेवा/	47	20	117	279	166
समाज सुधार %	21.86	5.69	38.23	10.55	10.31
भ्रमण	12	23	19	122	70
%	5.58	7.12	6.20	4.61	4.34
बागवानी/	81	89	46	312	202
कृषि %	37.67	25.35	15.03	11.80	12.54

रुचि	षष्ठम	सप्तम	अष्टम	योग-सत्ता	योग-विपक्ष
खेलकूद	36	40	35	236	166
%	16.74	11.39	11.43	8.92	10.31
फोटोग्राफी	5	–	4	53	50
%	2.32	–	1.30	2.00	3.10
अन्य	14	35	35	158	124
%	6.51	9.97	11.43	5.97	7.70
अनुपलब्ध	–	70	–	914	480
%	–	19.94	–	34.56	29.81
योग *					

उपरोक्त सारणी के विवेचन से स्पष्ट है कि अध्ययनाधीन काल में सत्तापक्ष के सर्वाधिक 561 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 21.21 प्रतिशत) सदस्यों ने तथा विपक्ष के 409 (सम्पूर्ण विपक्ष के 25.40 प्रतिशत) सदस्यों को अध्ययन में विशेष रूचि थी। सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना में 4.19 प्रतिशत कम था । 312 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 11.80 प्रतिशत) तथा 202 (सम्पूर्ण विपक्ष का 12.54 प्रतिशत) सदस्यों ने कृषि में अपनी सर्वाधिक रूचि व्यक्त की । 279 (सत्तापक्ष का 10.55 प्रतिशत) तथा 166 (सम्पूर्ण विपक्ष का 10.31 प्रतिशत) सदस्यों की रूचि समाज सेवा में थी। इसमें सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना में 0.24 प्रतिशत अधिक रहा । सत्तापक्ष के 236 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष के 8.92% सदस्यों की रूचि आखेट एवं खेलकूद में थी। तथा विपक्ष के 166 (सम्पूर्ण विपक्षं के 10.31 प्रतिशत सदस्यों की रूचि आखेट एवं खेलकूद में थी। इसमें सत्तापक्ष का प्रतिशत विपक्ष की तुलना में 1.39 प्रतिशत कम रहा । सत्तापक्ष के 158 (सम्पूर्ण सत्तापक्ष का 5.97 प्रतिशत) सदस्यों ने अन्य तथा विपक्ष के 124 (सम्पूर्ण विपक्ष के 7.70 प्रतिशत सदस्यों ने अन्य जैसे–सत्संग, एकान्तवास, तैरना, चरखा चलाना, दस्तकारी इत्यादि में अपनी रूचि व्यक्त की । तथा सत्तापक्ष के 914 (सम्पूर्ण सत्ता पक्ष के 34.56 प्रतिशत) तथा विपक्ष के 480 (सम्पूर्ण विपक्ष के 29.81 प्रतिशत) सदस्यों की इस सम्बन्ध में जानकारी अनुपलब्ध थी ।

उपरोक्त विवेचन में कृषि समूह में रूचि व इसे व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले सदस्यों की संख्या सदैव ज्यादा रही इससे इस बात का संकेत मिलता हे कि ग्रामीण विशिष्ट वर्ग उच्च स्तरीय राजनीति में (चाहे वह सत्तापक्ष की या विपक्ष की) तेजी से प्रवेश कर रहा है। अतः कृषि के प्रति अपना रूझान व्यक्त करने की संख्या अधिक रही है।

(ग) संविद सरकारें व विपक्ष–

कांग्रेस के जन्म के थोड़े समय बाद ही भारतीय राजनीति में विभिन्न प्रकार के अर्द्ध राजनीतिक संगठनों का विकास हो चला था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीयता मूलक स्वतंत्रता संग्राम के संचालन का दायित्व स्वीकारते ही (अर्थात एक सामाजिक, सांस्कृतिक व सुधारवादी संगठन के स्थान पर राजनीतिक दल का स्वरूप ग्रहण करते ही) भारतीय राजनीति में विभिन्न प्रकार के राजनीतिक दलों के जन्म तथा विकास की प्रक्रिया भी शुरू हो गई जो आज भी जारी है । तभी से इस प्रकार का प्रयास भी समानान्तर रूप से क्रियाशील देखा जा सकता है कि किस प्रकार ये दल एक दूसरे के साथ मिलकर या एक मंच पर इकट्ठे होकर सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य कर सकते हैं किन्तु पहले यह प्रयास स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य हेतु सफल संचालन से जुड़े थे बाद में वही प्रयास विभिन्न प्रान्तों की प्रतिनिधिमूलक सरकारों को बनाने व चलाने के प्रयोजन से चलने लगे ।

अपने इतिहास के विकासक्रम में भारतीय राजनीति ने सन् 1919 के बाद विशेषतया 1935–36 से दलों की पारस्परिक निकटता एवं सहयोग हेतु अनेक मार्ग समय–समय पर अपनाये । कहीं कांग्रेस ने दूसरे राजनीतिक संगठनों एवं दलों द्वारा चलाये जा रहे संघर्ष के वुनियादी मुद्दों व कार्यक्रमों को स्वीकार करते हुये अपना सहयोग उपस्थित किया तो कभी दूसरों को यथासम्भव अपनी बुनियादी नीति एवं कार्यक्रमों से सहमत करने व साथ लेकर चलने की कोशिश की इस प्रकार संयुक्त मोर्चे की भारतीय पद्धति का आधार प्रस्तुत हुआ ।

भारत का प्रथम आम निर्वाचन विभिन्न दलों द्वारा मुख्य रूप से अकेले चलो की नीति पर लड़ा गया क्योकि प्रथम आम चुनाव में जिन 14 दलों को निर्वाचन आयोग द्वारा राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता मिली उनमें कांग्रेस को छोड़कर कोई भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं था जिसका संगठन सार्वदेशिक हो या जिसके कार्यकर्ता प्रत्येक जगह विद्यमान हों ।[1] किन्तु प्रथम आम चुनाव में बुरी तरह पराजय के बाद विपक्षी दलों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये समान सिद्धान्तों के आधार पर गठबन्धन करना प्रारम्भ किये । परिणामतः समाजवादी दल ने किसान मजदूर पार्टी तथा फरवर्ड ब्लाक के राय ग्रुप के साथ गठबन्धन कर प्रजासमाजवादी दल का निर्माण किया तथा इस गठबन्धन ने प्रजा समाजवादी दल को द्वितीय प्रभावशाली दल के रूप में खड़ा कर दिया ।[2] हालांकि यह एक विपक्ष के लिये शुभ संकेत था किन्तु सरकार निर्माण की स्थिति कहीं भी

1– फर्टियाल एच0एस0,' दि–अपोजिशन इन एन इंडियन पार्लियामेन्ट,' पृ0–37

2– –तदैव– पृ0–37–38

उत्पन्न नहीं हुई । 1955 में डा0 राममनोहर लोहिया ने इस पार्टी से निकलकर पुनः समाजवादी दल का निर्माण कर लिया इसी अवधि में उग्रवामपंथी साम्यवादी दल ने प्रजा पार्टी तथा कामगार पार्टी के साथ एक्य स्थापित किया । दक्षिण पन्थी दलों ने भी इसी तरह गठबन्धन का अक्सर प्रयास किया ।[1]

1962 के तृतीय आम चुनाव में महत्वपूर्ण विपक्षी दलों ने यह महसूस किया कि दलों के बिखराव को नियंत्रित किये बिना सत्तापक्ष का मुकाबला करना बहुत कठिन है अतः विपक्षियों ने कांग्रेस के विरूद्ध बहुआयामी संघर्ष की जगह सीधे संघर्ष की व्यवस्था की । बंगाल में साम्यवादी दल ने वाम मोर्चा बनाया तथा स्वतंत्र पार्टी ने साम्यवादी दल एवं कांग्रेस को छोड़कर अन्य राजनीतिक दलों के साथ निर्वाचकीय समायोजन किया । हिन्दू महासभा एवं रामराज्य परिषद ने संयुक्त मोर्चा बनाया तथा क्षेत्रीय स्तर पर जनसंघ ने उनके साथ निर्वाचकीय समायोजन किया किन्तु तृतीय आम चुनाव के ये प्रयास क्षेत्रीय स्तर तक ही सीमित रहे । दलीय गठबन्धन में सिद्धान्त साम्यता को महत्व दिया गया तथा दलीय संगठन पर सिद्धान्त प्रतिबद्धता एवं दलीय निष्ठा का वर्चस्व रहा तथा इस निर्वाचन में विपक्ष की स्थिति कुछ और दृढ़ हुई ।[2]

चौथे आम चुनाव में इस प्रवृत्ति को डा0 लोहिया के "गैर कांग्रेसवाद" से सम्बन्धित दृष्टिकोण द्वारा पर्याप्त सैद्धान्तिक व व्यवहारिक पोषण प्राप्त हुआ और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिये न केवल विभिन्न दलों के बीच व्यापक चुनावी समझौता हुआ बल्कि राज्यस्तर पर स्थानीय दलों के साथ गठबन्धन एवं क्षेत्रीय एवं राज्य स्तर पर भिन्न-भिन्न विचारधाराओं वाले दलों के मोर्चा का भी गठन सम्भव हुआ तथा निर्वाचन के पश्चात् प्रथम बार भिन्न-भिन्न और सर्वथा विरोधी विचारधाराओं वाले दल न्यूनतम सहमति के मुद्दों व कार्यक्रमों के माध्यम से एक दूसरे के साथ सरकार बनाने व चलाने के लिये परस्पर सहमत हो सके ।[3]

संविद निर्माण घटनाक्रम- 1967 के आम चुनाव के आस-पास चुनाव के दिनों में, उसके नतीजों में और बाद के कुछ महीनों में यह साफ दिखाई देने लगा कि देश को परिवर्तन की भूख लगी है । आम चुनाव के पहले देश में कांग्रेस के प्रति व्यापक असन्तोष था लेकिन यह नेतृत्वहीन, विभाजित व दिशाहीन था । यह असन्तोष कितना व्यापक व सम्भावनाओं से युक्त हो सकता था इसका अन्दाज राजनेताओं में केवल डा0 लोहिया

1- फर्टियाल एच0एस0- 'दि-अपोजिशन इन एन इण्डियन पार्लियामेन्ट,' पृ0-38-
2- -तदैव-
3- एस0सी0 कश्यप- 'दि-पालिटिक्स आफ पावर,' पृ0- 10-11

को था । अतः उन्होंने एक गैर कांग्रेसी मोर्चा बनाने की कोशिश की तथा कांग्रेस की पराजय के बाद उसके अन्तराल को भरने के लिये उन्होंने संविद की कल्पना की । चुनाव से बहुत पहले डा0 लोहिया ने सब गैर कांग्रेसी दलों के नेताओं को चिट्ठी लिखी किन्तु विरोधी दल के नेता यद्यपि सिद्धान्ततः लोहिया से सहमत हुये पर व्यवहारिक तौर पर कोई ठोस नतीजा नहीं मिला, न साम्यवादी जनसंघ के साथ बैठने को तैयार थे न जनसंघ साम्यवादियों के साथ । अन्ततः उ0प्र0 में साम्यवादी दल (दोनों) प्रजा समाजवादी पार्टी तथा संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में चुनावी समझौता हुआ । लोहिया ने इस गैर कांग्रेसवाद व संविद को अन्ततः केन्द्र से कांग्रेसी कुशासन समाप्ति का हथियार माना था अतः उन्होंने चुनाव के पहले एवं बाद में इसे एक नीति के रूप में चलाया तथा अन्य दलों ने जनमत के दबाव में इसे किसी हद तक स्वीकार किया किन्तु वास्तव में इन समस्त विपक्षी दलों ने इसे तब स्वीकार किया जब सरकार बनाने की स्थिति पैदा हो गई तथा जनसंघ व साम्यवादी भी एक साथ बैठने को तैयार हो गये । यह वास्तव में लोहिया के गैर कांग्रेसवाद की नहीं अपितु अवसरवाद की विजय थी ।[1]

प्रथम संविद सरकार– इसके फलस्वरूप उ0प्र0 में 1967 के आम चुनाव में 425 सदस्यों वाली उ0प्र0 विधान सभा में कांग्रेस को 199 स्थान मिले, पूर्ण बहुमत प्राप्त करने के लिये 13 सीटों की कमी रह गई अतः कुछ निर्दलियों के सहयोग से कांग्रेस श्री चन्द्रभानु गुप्त के नेतृत्व में सरकार बनाने में सफल हुई ।[2] किन्तु कांग्रेस में अन्तर्कलह रंग लाया और श्री चरण सिंह ने स्वयं को कांग्रेस पार्टी का नेता पद के लिये प्रस्तुत किया किन्तु केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री, श्री दिनेश सिंह के हस्तक्षेप से उन्होंने ने अपना नाम वापस ले लिया ।

इधर 5 मार्च, 1967 को सब विपक्षी दलों के नेताओं तथा प्रतिनिधियों की बैठक हुई तथा घोषणा की गई कि संविद सरकार बनाने की स्थिति में वे लोग हैं तया नेता व न्यूनतम/ कार्यक्रम निश्चित किये गये । श्री रामचन्द्र विकल संविद के नेता चुने गये । संविद में जनसंघ, संसोपा, प्रसोपा, रिपब्लिकन पार्टी, साम्यवादी पार्टी के दोनों दल स्वतंत्र दल व निर्दलीय शामिल थे, 19 मार्च, 1967 को संविद ने एक न्यूनतम कार्यक्रम स्वीकार किया जिसमें अन्य विषयों के साथ निम्न विषय भी शामिल थे– (1) भूमि राजस्व, व्यवसाय कर, नागरिक भूमि, ईमारती कर, एक ही वस्तु पर अनेक व्यवस्थाओं में बिक्रीकर और फौजदारी के मामलों में अदालती हिस्सों का अन्त (2) सारे राजनीतिक कैदियों व छात्रों की रिहाई (3) पुलिस काण्ड में सभी मामलों की अदालती जॉच कराने के लिये आयोग

1– "उ0प्र0 में संविद राजनीति" द्वारा 'मलिक सत्यपाल'– लोकतंत्र समीक्षा, अक्टूबर,- दिसम्बर, 1971, पृ0–181

2– निर्वाचन निदेशालय, उ0प्र0, चतुर्थ आम चुनाव परिणाम

की स्थापना ।(4) मंत्रियों व अफसरों की सम्पत्ति की जाँच कराने के लिये आयोग की स्थापना । (5) सरकारी कामकाज में अंग्रेजी के प्रयोग पर पाबन्दी । (6) संविद सरकार बनने पर मंत्रियों के वेतन तथा उपलब्धियों दोनों को पाँच-पाँच सौ रूपये प्रति माह तक सीमित करना ।[1]

चौधरी चरण सिंह द्वारा कांग्रेस दल का नेता न बनाये जाने पर असन्तोष तीव्रतर हो गया । श्री राजनारायण ने उसी समय श्री चरण सिंह में निहित संभावनाओं को बखूबी समझ लिया तथा चौधरी चरण सिंह ने दल-बदल के सम्बन्ध में बात-चीत की । चौधरी साहब एक अरसे से मुख्य मंत्री बनने का स्वप्न देख रहे थे अतः उन्होंने सहमति दी तथा 1 अप्रैल, 1967 को श्री चरण सिंह ने अपने 16 साथियों समेत जन0 कांग्रेस बनाकर कांग्रेस मंत्रिमण्डल के विरूद्ध वोट कर दिया जिससे कांग्रेस सरकार गिर गई तथा श्री चन्द्रभानु गुप् ने तत्काल त्यागपत्र दे दिया । संविद ने सर्वसम्मति से श्री चरण सिंह को अपना नेता चुन लिया तथा श्री चन्द्रभानु गुप्त ने नेता विपक्ष का पक्ष सुशोभित किया ।[2]

इस संविद के न्यूनतम कार्यक्रम से श्री चरण सिंह ने सहमति व्यक्त की किन्तु शीघ्र ही संविद में मतभेद होने लगे । विभिन्न दल जैसे जनसंघ के लोग अनाज की लाजमी वसूली के निर्णय से अप्रसन्न थे । 1 मई, 1967 को साम्यवादी दल ने अपने एकमात्र सदस्य श्री शराफत हुसैन को संविद से हटा लिया तथा आरोप लगाया कि न 6. 25 एकड़ की जमीन से संविद सरकार ने लगान माफ किया और न उसने राजनीतिक कैदियों को रिहा किया, इस प्रकार राज्य में अंग्रेजी विरोधी आन्दोलन को संसोपा द्वारा हवा दिये जाने के मतभेद खुलकर सामने आये और नये वर्ष 1968 में अंग्रेजी विरोध प्रदर्शन व गोली काण्ड के कारण 17 फरवरी, 1968 को श्री चरण सिंह ने त्याग-पत्र दे दिया । संविद में दल-बदल भी व्यापक हुआ जिसके परिणामस्वरूप संविद सरकार लड़-खड़ा गई ।[3] तथा संविद के घटकों में मतभेद इस स्तर तक पहुँच गये कि संविद के प्रत्याशी विधान परिषद और राज्यसभा के उप चुनावों में काफी मतों के अन्तर से हार गये ।[4] श्री चरण सिंह के त्याग पत्र दे देने से राज्य में गहरा राजनीतिक गत्यावरोध आ गया तथा विपक्ष जिसे संसदीय

1- दैनिक आज, 9 मार्च 1967, पृ0-1

2- उ0प्र0 विधान सभा कार्यवाही, 1 अप्रैल, 1967, पृ0-490

3- काश्यप सुभाष, "दल बदल व राज्यों की राजनीति," पृ0-179

4- -तदैव- पृ0- 179-80

लोकतंत्र में विकल्प बनाने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए, पूर्णतया असफल रहा । राज्यपाल ने राज्य में उत्पन्न राजनीतिक गत्यावरोध की सूचना केन्द्र को दी तथा कुछ समय बाद विधान सभा निलम्बित हो गई व राज्य में 25 फरवरी, 1968 को राष्ट्रपति शासन लागू हो गया ।[1]

संविद के घटकों नें श्री चरण सिंह के स्थान पर श्री हरीशचन्द्र सिंह को सर्वसम्मति से दूसरा नया नेता चुना और राज्यपाल से अनुरोध किया कि संविद सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करें दूसरी ओर श्री चन्द्रभानु गुप्त ने भी सरकार (कांग्रेस की) बनाने का दावा प्रस्तुत किया । 10 अप्रैल, 1968 तक राज्य की राजनीतिक स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी और राजनीतिक अस्थिरता बरकरार रही । अन्ततोगत्वा राज्यपाल ने राष्ट्रपति से राज्य विधान सभा को विघटित करने तथा पुनः चुनाव कराने की संस्तुति की तथा राष्ट्रपति ने राज्यपाल की संस्तुति एवं केन्द्रीय सरकार की सलाह मानते हुये संविधान के अनुच्छेद-356 के अधीन राज्य विधान सभा के विघटन की उद्घोषणा की । इसके पश्चात् कांग्रेस व संविद के घटक चुनाव लड़ने की तैयारियाँ करने लगे व उ0प्र0 मध्यावधि चुनाव की चपेट में आ गया ।[2]

उ0प्र0 की प्रथम संविद सरकार के निर्माण व पतन के पीछे निहित इरादों के बारे में सोचने से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के विरूद्ध गैर कांग्रेसवाद (मिला-जुला मंत्रि मण्डल) को जिस आशय और आग्रह से अपनाया गया, वह आदर्श और आस्था का आशय व आग्रह नहीं था परन्तु वह एक सत्ता प्राप्ति का आशय था, जिसके भीतर स्वार्थगत राजनीति के बीज अंकुरित हो रहे थे । सैद्धान्तिक आधार पर ये सम्पूर्ण नीति एक प्रकार की नकारात्मक नीति थी जिसमें रचनात्मकता का अभाव था । राजयपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव पर जब श्री चन्द्रभानु गुप्त की सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पेश हुआ तब कांग्रेस विरोधी पार्टियों को यह प्रतीति नहीं थी कि यदि कांग्रेस सरकार अलग होती है तो वे किस आधार पर सम्मिलित सरकार बनायेंगी । उन्होंने मिलकर जो मुद्दे उठाये थे वे सर्वमान्य मुद्दे नहीं थे । उन्होंने सामूहिक रूप से कुछ मुद्दे स्वीकार कर लिये थे । इस सामूहिक रूप को लोगों ने जल्दी में कांग्रेस के विरूद्ध सरकार बनाने के नाम पर कार्यक्रम के रूप में स्वीकार कर लिया किन्तु जब अमल का प्रश्न आया तो श्री चरण सिंह (भा0क्रा0दल), श्री रामप्रकाश (जनसंघ), श्री उग्रसेन (संसोपा), श्री झारखण्डे राय (कम्यूनिस्ट) एकदम अलग-अलग दिशाओं में चलने लगे तथा कांग्रेस के विपक्षी पार्टियों द्वारा नकारात्मक आधार पर खड़ी की गई ये दीवार खण्डित हो गई । शुरू में विपक्ष ने कांग्रेस का विकल्प प्रदान करने की इच्छा व सत्ताकामना इन दोनों से प्रेरित

1- संविद सरकारें, विधान सभा के 32 वर्ष- सम्पादक श्री भालचन्द्र शुक्ल, सचिव, उ0प्र0 विधान सभा, लखनऊ, पृ0-33-34

2- -तदैव- पृ0-35

होकर काम किया । किन्तु कुछ समय पश्चात दूसरा पहले पर हावी हो गया तथा सत्ता, उससे प्राप्त होने वाले लाभ, दल सिद्धान्त व व्यक्तिगत प्रतिष्ठा से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया और विपक्ष का गैर कांग्रेसवाद परे हटकर, तात्कालिक लाभ व उपलब्धियाँ, शक्ति राजनीति के इस खेल के निर्णायक व निदेशक तत्व बन गये ।

द्वितीय संविद सरकार– मध्यावधि चुनावों के परिणामस्वरूप कांग्रेस पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी किन्तु कुछ निर्दलीय विधायकों की सहायता से कांग्रेस विधान मण्डल दल के नवनिर्वाचित नेता श्री चन्द्रभानु गुप्त ने 26 फरवरी, 1969 को एक बार पुनः सरकार बनाई जिसमें श्री कमलापति त्रिपाठी उप मुख्यमंत्री बने ।[1]

1969 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राष्ट्रीय स्तर पर विभाजन हुआ । जिसका प्रभाव प्रदेश की कांग्रेस सरकार पर भी पड़ा । 23 नवम्बर, 1969 को श्री कमलापति त्रिपाठी ने अपने 9 सहयोगियों के साथ चन्द्रभानु गुप्त मंत्रिमण्डल से त्याग–पत्र देकर कांग्रेस आर (रूलिंग पार्टी) में शामिल हो गये । जिसके फलस्वरूप चन्द्रभानु गुप्त की सरकार अल्पमत में आ गई । भारतीय क्रान्ति दल (चरण सिंह) व तुरन्त की बनी सरकार बनी सरकार कांग्रेस आर (कमलापति त्रिपाठी) सहित अन्य दलों ने विधान सभा की बैठक शीघ्र बुलाने के लिये राज्यपाल को लिखा । श्री चरण सिंह और कमलापति त्रिपाठी ने साझा सरकार बनाने की बात आरम्भ की । श्री चन्द्रभानु गुप्त की सरकार को किसी अन्य दल से पूर्ण सहयोग नहीं मिला अतः श्री गुप्त ने 10 फरवरी, 1970 को अपनी सरकार का त्याग–पत्र राज्यपाल बी० गोपाल रेड्डी के पास भेज दिया । श्री चन्द्रभानु गुप्त के दल कांग्रेस (संगठन) को उस समय धक्का लगा जब श्री चरण सिंह ने 17 फरवरी, 1970 को भारतीय क्रान्ति दल व कांग्रेस आर की मिलीजुली सरकार के मुख्य मंत्री के रूप में दूसरी बार शपथ ग्रहण की ।[2]

1967 के बाद यह प्रदेश में दूसरी साझा सरकार थी इसकी मुख्य विशेषता यह थी कि यह केवल दो दलों के सहयोग से बनी थी जबकि प्रथम साझा सरकार में लगभग 10 दल शामिल थे । कांग्रेस आर अप्रैल, 1970 को इस साझा सरकार में विधिवत् शामिल हुई । आरम्भ में भारतीय क्रान्ति दल के केवल 10 सदस्य ही मंत्रिमण्डल में शामिल हुये थे ।[3] यह साझा सरकार सत्ता में अपने को ठीक से संभाल भी नहीं पाई कि कुछ अध्यादेशों, विधेयकों और राज्य में चीनी उद्योग के राष्ट्रीकरण जैसे मामलों को लेकर

1– उ0प्र0 में संविद सरकारें, विधान सभा के 32 वर्ष– सम्पादक श्री भालचन्द्र शुक्ल, सचिव, उ0प्र0 विधान सभा पुस्तकालय, उ0प्र0, लखनऊ पृ0–36

2– –तदैव– पृ0–36–37

3– –तदैव– पृ0– 37

इसके घटक आपस में टकरा गये ।[1] जिसके फलस्वरूप सितम्बर, 1970 में कांग्रेस (आर) ने श्री चरण सिंह की साझा सरकार को समर्थन देना बन्द कर दिया और इसकी सूचना राज्यपाल को दे दी । राज्यपाल ने राज्य में उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता व गत्यावरोध से केन्द्रीय सरकार को अवगत कराया केन्द्रीय सरकार ने राज्यपाल से प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर राष्ट्रपति से संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की और राष्ट्रपति से स्वीकृति के फलस्वरूप 2 अक्टूबर,1970 को उ0प्र0 में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया और विधान सभा निलम्बित हो गई । यह दूसरी साझा सरकार जो लगभग 225 दिनों तक सत्तारूढ़ रही राष्ट्रपति शासन के पश्चात् समाप्त हो गई ।[2]

यह साझा सरकार भी वास्तव में श्री चरण सिंह के पदलिप्सा का परिणाम थी तथा यह कहना असंगत न होगा कि चरण सिंह ने कांग्रेस जरूर छोड़ थी पर वे कांग्रेस से अपना पुराना रिश्ता एक तरह से बनाये रखे थे । उन्होंने परिवर्तन को गैर जरूरी समझा तथा वे एक गैर कांग्रेसी सरकार के कांग्रेसी चरित्र के मुख्यमंत्री बने रहे । उनका उनका कांग्रेस से किसी सिद्धान्त पर आधारित मनमुटाव नहीं था बल्कि मुख्य मंत्री बनने न बनने के सवाल पर वह कांग्रेस से अलग हुये थे । उनकी क्रिया कलापों के पीछे देश की राजनीति में बड़े परिवर्तन की आकांक्षा या जनकल्याण की आकांक्षा निहित नहीं थी वह डा0 लोहिया के सपने की केन्द्र विरोधी राजनीति वाली संविद रणनीति से सहमत नहीं थे तथा इन्दिरा कांग्रेस का समर्थन भी तात्कालिक था । इसका समर्थन श्री चरण सिंह को नहीं था वरन् कांग्रेस से अलग हुये दूसरे घटक संगठन कांग्रेस को सत्ता में न आने देने का प्रबल इरादा निहित था । परिणामस्वरूप यह संविद भी गिर गई ।

<u>तृतीय संविद सरकार–</u> तृतीय संविद सरकार के निर्माण के पीछे इन्दिरा कांग्रेस द्वारा लखनऊ की गद्दी पर कब्जा करने के प्रयत्नों को ध्वस्त करने का उद्देश्य सबसे बड़ा कारण था । संविद में इस बार साम्यवादी तथा प्रसोपा शरीक नहीं थे । संविद के 5 घटकों ने मिलकर 9 अक्टूबर, 1970 को सर्वसम्मति से श्री त्रिभुवन नारायण सिंह को नेता चुना । 22 अक्टूबर को लखनऊ में संविद के सभी घटकों की बैठक हुई । उसमें संगठन कांग्रेस, भारतीय क्रान्ति दल, जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी सभी ने संसोपा के आग्रह किया कि वह सरकार में जरूर शामिल हो । भारतीय क्रान्ति दल का कहना था कि जब संसोपा का कार्यक्रम हमने मान लिया है तब संसोपा को उस कार्यक्रम पर अमल करने

1– करूनाकरण के0पी0–"कोलियेशन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया," पृ0–15–16

2– संविद सरकारें उ0प्र0 में (लेख) विधान सभा के 32 वर्ष– सम्पादक श्री भालचन्द्र शुक्ल, सचिव, उ0प्र0 विधान सभा पुस्तकालय उ0प्र0 लखनऊ पृ0–38–39

के लिये सरकार में शामिल होना चाहिए । ऐसा नहीं होना चाहिए कि कार्यक्रम चले संसोपा का और अमल में लायें हम । हम अमल करने को तैयार हैं बसरते कि संसोपा सरकार में साझेदारी करे । संगठन कांग्रेस का तो यहां तक कहना था कि यदि संसोपा साझेदारी नहीं करेगी तो हम सरकार नहीं बनायेंगे । 26 अक्टूबर को संसोपा राष्ट्रीय कार्यकारिणी में मंत्रि मण्डल में साझेदारी की अनुमति दे दी और अन्ततः श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के नेतृत्व वाली संविद सरकार बन गई ।[1]

मंत्रि मण्डल में संसोपा के शरीक होने पर संसोपा के एक छोटे गुट को परेशानी हुई । इस गुट का नेतृत्व श्री मधुलिमये के हाथ में था । यद्यपि सरकार में शामिल होने का जो फैसला राष्ट्रीय समिति ने किया उसमें श्री मधुलिमये शरीक थे परन्तु बाद में उन्होंने अपनी स्थिति बदल दी और जार्जफर्नाडीज (महामंत्री संसोपा) के माध्यम से अन्तिम समय तक यक कोशिश की कि संसोपा मंत्री शपथ न लें । लेकिन श्री राजनारायण की प्रदेश संगठन में मजबूती के कारण उनके ये प्रयास असफल रहे । इन प्रयासों के पीछे कोई सिद्धान्त का कारण हो यह बात नहीं थी अपितु श्री मधुलिमये व फर्नाडीज का यह डर निहित था था कि इससे राजनारायण की स्थिति पार्टी में मजबूत होगी । इस प्रकार यह संविद व्यक्तिगत कलह का केन्द्र बन गई क्योंकि श्री लिमये व फर्नाडीज जिन क्षेत्रों का प्रतिनिधितव करते थे वहां पार्टी संगठन शून्य था अतः आन्तरिक गुटबन्दी व चिढ़न के कारण इन्होंने संविद सरकार से संसोपा को न हटा पाने के बाद उसे गिराने के प्रयास शुरू कर दिये ।[2]

वास्तव में डा0 लोहिया की मृत्यु के बाद संसोपा नेतृत्व का कुछ हिस्सा नरम हो गया था तथा उसने कांग्रेस के विभाजन के बाद इन्दिरा सरकार के प्रति नरमी व विलय के समर्थक थेइनका नेतृत्व श्री जार्जफर्नाडीज के हाथ में था जो कि इन्दिरा कांग्रेस का समर्थन इसलिये करते थे कि वह उस समय प्रचलित शब्द "प्रतिक्रियावादी" न कह दिये जांय क्योंकि इन्दिरा कांग्रेस का समर्थन प्रगतिशीलता मानी जा रही थी ।[3] तथा श्री मधुलिमये कुछ निजी कारणों व राजनारायण के विरोध के कारण संविद के आलोचक हो गये । इन दोनों ने गैर कांग्रेसवाद को असंगत ठहराया व संविद को गिराने के लिये लगातार प्रयत्न करते रहे । इधर त्रिभुवन नारायण सिंह गोरखपुर से संगठन कांग्रेस के लोक सभा सदस्य महन्त अवैद्यनाथ के आमंत्रण पर मानीराम चुनाव क्षेत्र से विधान सभा का चुनाव लड़ने को राजी हो गये तथा कांग्रेस के एक साधारण मुकाबले पर चुनाव हार गये[4]

1– संसदीय दीपिका, अप्रैल–जून, 1987, खण्ड–3, अंक–1–4, पृ0–38

2– "उ0प्र0 में संविद" द्वारा श्री सत्यपाल मलिक (लोकतंत्र समीक्षा) अक्टूबर–दिसम्बर, 1971, पृ0–181

3– श्री पुरी राजेन्द्र–"अन्तरात्मा का संकट," पृ0–112

4– चुनाव परिणाम निर्वाचन निदेशालय, 1970

परन्तु उन्होंने इस्तीफा नहीं दिया जबकि श्री चरण सिंह इसके आलोचक थे परिणामस्वरूप संविद कमजोर होती गई । इस संविद के पतन का एक कारण छात्रसंघ अध्यादेश भी था जिसमें संसोपा के युवा संगठन समाजवादी युवजन सभा संशोधन चाहती थी किन्तु चौधरी चरण सिंह इसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं चाहते थे । परिणामस्वरूप समाजवादी युवजन सभा में 6 दिसम्बर को इसके विरोध में विधान सभा के समक्ष प्रदर्शन किया जिसमें करीब 100 लोग समाजवादी युवजन सभा के गिरफ्तार हुये ।[1] वास्तव में संविद को गिराने में इंदिरा कांग्रेस के साथ-साथ संसोपा की चालें भी मुख्य कारण थी । एक अन्य प्रमुख घटना श्री चरण सिंह के बनारस दौरे के दौरान पुलिस द्वारा निर्दोष छात्रों पर गोली-बारी कर दी जिससे दर्जनों जानें गई ।[2] इतनी बड़ी घटना के बाद न तो सरकार ने इस्तीफा दिया न दोषी व्यक्तियों को कोई दण्ड और जब बनारस गोली काण्ड पर संविद के ही मुख्य घटक संसोपा नें कड़ा रूख अपनाया तो चौधरी चरण सिह खुलकर पुलिस के समर्थन में आ गये परणिामस्वरूप संसोपा को चुप होना पड़ा ।

इस प्रकार इस स्पष्ट है कि यह संविद अर्न्तविरोधों के कारण पतित हुई । आन्तरिक तनावों का स्तर बहुत बढ़ गया था । संसोपा, भारतीय क्रान्ति दल इत्यादि के सम्बन्ध इतने बिगड़ चुके थे कि वे जनसामान्य के सम्मुख एक दूसरे की आलोचना करने लगे । यह संविद सरकार ऊपरी स्तर पर तो एक थी किन्तु इसमें निहित सभी घटक अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का इसे साधन मानते रहे । तथा इसमें प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक थी कि सभी घटकों के नेता अपनी भावी राजनैतिक पृष्ठभूमि को ठोस करने के लिये जनता के सामने दूसरे घटकों की आलोचना करते रहे जिससे कि जनमत उनके पक्ष में हो सके । किन्तु इसका प्रभाव नकारात्मक रहा तथा संविद जनता की दृष्टि में गिर गई और निरन्तर अलोकप्रिय होती गई । नीति के विषय में अर्न्तविरोध भी इस सरकार के पतन का मुख्य कारण रहा । इस सरकार पर जन आन्दोलनों का दबाव भी काफी नहीं था । सारी दुनियाँ में सरकारें यथास्थिति की पोषक होती हैं और बाहर से दबाव पड़ने पर ही बदलाव के लिये कार्य करती हैं । संविद के दलीय संगठन अपने-अपने मंत्रियों और उनके पिछलग्गुओं के भी पिछलग्गू बन गये । सत्तारूढ़ दलों के जिला दफ्तरों में स्वार्थी, अवसरवादी व कोटा परमिट पाने के लोग भर गये ।[3] सभी स्तरों पर पार्टियों के निःस्वार्थ नेताओं और कार्यकर्ताओं का स्वयं अपने मंत्रियों से सम्बन्ध विच्छेद हो गया साथ ही मंत्रियो

1- दैनिक आज- 6 दिसम्बर, 1970, पृ0-1

2- दैनिक आज- 9 सितम्बर, 1970, पृ0-1

3- कश्यप सुभाष, "पालिटिक्स आफ डिफेक्शन," दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1970, पृ0-100

का भी दृष्टिकोण प्रदेश व सरकार की राजनीति के प्रति कल्याणकारी न होकर अवसर वादिता का शिकार हो गया।

स्पष्ट है कि यह सरकार सही मायनों में गैर कांग्रेसी व तेजस्वी नहीं थी बल्कि दिशाहीन, ढीली, कलही और एक तरह कांग्रेसी परम्पराओं की पोषक थी उनके अन्त व अलोकप्रियता का भी यही कारण था। विपक्ष द्वारा अपनाया गया गैर कांग्रेसवाद एक ऐसी रणनीति थी जिसका अगर सही इस्तेमाल किया गया होता तो अक्षरशः वही नतीजे निकलते जिनकी कामना की गई थी। यदि संविद सरकारों में विपक्ष के इस गैर कांग्रेसवाद का प्रयोग असफल हुआ तो उसमें गैर कांग्रेसवाद की खामी नहीं थी अपितु देश भर के भ्रष्ट राजनीति, तेजहीन व लुंज-पुंज स्थिति व राजनेताओं की आपसी स्पर्धा व स्वार्थ तथा पदलिप्सा थी जिसमें राजनीति का अर्थ सिर्फ सत्ता राजनीति रह गया था।

चतुर्थ संविद सरकार–

1977 और जनता सरकार– 1977 में आम निर्वाचन में संविद की प्रवृत्ति को एक नया आयाम दिया। 1976 की आपातकालीन घटनाओं से क्षुब्ध प्रमुख विपक्षी दलों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त कर "जनता पार्टी" का निर्माण किया जो भारत की संसदीय प्रणाली के इतिहास में पहली बार कांग्रेस के विकल्प के रूप में मतदाता के समक्ष प्रस्तुत हुई। जनता पार्टी के अभ्युदय ने एक तरफ यदि व्यक्तिनिष्ठ पार्टियों के निर्माण को हतोत्साहित कर दलों के विखराव को रोक दिया तो दूसरी तरफ विपक्ष की वैकल्पिक सरकार बनाने की क्षमता को भी सुनिश्चित कर दिया। किन्तु जनता पार्टी सत्ता में आने के बाद स्थायित्व ग्रहण नहीं कर सकी इसमें सम्मिलित विभिन्न घटकों के शीर्षस्थ नेताओं की सत्ता पर पकड़ बनाये रखने की महत्वाकांक्षा ने आन्तरिक संघर्ष को इतना तीव्र बना दिया कि जनता पार्टी 28 महीने बाद बिखर गई और सत्ताच्युत हो गई।[1]

विशेषतः उ0प्र0 में मतदाताओं ने केन्द्र में कांग्रेस को पूरी तरह अपदस्थ कर देने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की जिसका भरपूर लाभ उठाने के लिये इन संस्थापनाओं के अनुकूल प्रमुख विरोधी दल भी एकता का ऐसा लिबास पहनकर विवाह मण्डप में बैठने को तैयार हो गई जो न केवल बड़ी जल्दी में सिला था बल्कि बैरंग, असुविधाजनक और अवसर के अनुपयुक्त एवं बेमन तथा शीघ्रता में उल्टा धारण किया गया था इसका एक ही परिणाम हो सकता था, क्षणिक कुतूहल एवं उपहास– और ऐसा ही हुआ भी। इसका आधार बना घटकवाद, व्यक्तिवाद, सत्तालोलुपता तथा अदूरदर्शिता।[2]

जनता पार्टी के संगठन क्रम से चन्द दिनों पहले तक कांग्रेस के ऐसे प्रबल समर्थकों को भी जो उनके बढ़ते प्रभाव एवं नियंत्रण से असुविधा महसूस कर रहे थे

1– "राजनीतिक गठजोड़, नित नये आयाम"-"माया"– सम्पादकीय– दिसम्बर, 1979

2– मिश्र सच्चिदानन्द– "भारत में दलीय गठबन्धन व संसदीय मूल्य"– संसदीय दीपिका खण्ड–33, अंक–1–4, वर्ष 1987, पृ0–5–6

जिनका राजनीतिक भविष्य एवं महत्वाकांक्षायें संकटग्रस्त बन गई थी, को दल में नाटकीय ढंग से प्रमुख स्थान देकर गुणात्मक रूप से जनता पार्टी द्वारा भी वही भूलें दोहराई गई जो चतुर्थ आम निर्वाचन के पश्चात कांग्रेस ने दल-बदल कराकर विरोध पक्ष की ओर से किया गया था । बदले में कांग्रेस ने भी वही कार्यवाही की । दूसरे बिना विचारात्मक या संगठनात्मक एकता के जनता पार्टी के निर्माण की घोषणा मतदाताओं को भ्रमित करने में भले ही सफल रही हो परन्तु दलों की स्थिति में चतुर्थ आम निर्वाचनों की तुलना में इससे कोई गुणात्मक आन्तरिक परिवर्तन आने वाला नहीं था । भारतीय मतदाता राजनीतिक दलों की तुलना में अपने उपरोक्त अनुभवात्मक निष्कर्षों के प्रति कुछ ज्यादा ही ईमानदार व संवेदनशील प्रमाणित हुये । उन्होंने विभिन्न उत्तरीय राज्यों के विधान सभाओं में निर्वाचनों में भी जनता पार्टी को ही व्यापक समर्थन सौंपा ।

किन्तु आन्तरिक फूट और मतभेदों से ग्रस्त जनता पार्टी द्विदलीय व्यवस्था की बात ही चलाती रही तथा अनुशासन के नाम पर अराजगता, आरोप-प्रत्यारोप, परस्पर विरोधी आन्तरिक गतिविधियाँ, शक्ति प्रदर्शन, प्रतिशोधात्मक कार्य, अनुत्तरदायित्व, षडयंत्र आदि के तथ्य दोष न रहकर जनता पार्टी के स्वाभाविक गुण बन गये । समर्थनविहीन युवा अध्यक्ष व वृद्धतम तथा अल्पमतीय (प्रधान मंत्री जनता पार्टी) इस स्थिति को संभाल न सके । किसी युवा नेतृत्व को केन्द्र में होने का अर्थ होता बूढ़ों की परस्परिक नेतृत्व प्रतिस्पर्धा सम्भावनाओं पर नियंत्रण । किन्तु ऐसा नहीं हुआ अतः वह भी नहीं हो सका जो मतदाता चाहते आ रहे थे और न ही विरोधी दल ही अपने उद्देश्य में सफल हो सके । हुआ वही जो कांग्रेस या उसका नेतृत्व चाहता था ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संविद राजनीति को प्रोत्साहित करने वाली प्रवृत्तियों ने संसदीय मूल्यों को कुण्ठित कर दिया है । दलीय गठबन्धन में सिद्धान्त व कार्यक्रमों की समानता को उचित महत्व न मिलने तथा शीर्षस्थ नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को अत्यधिक महत्व मिलने के कारण राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की अविछिन्न व अखण्डता क्रमशः क्षीण होती रही है । व्यक्तिनिष्ठ विजाती अवसरवादी दलीय गठबन्धन की बहुलता ने मतदाता के मस्तिष्क में सही पहचान को कठिन बनाकर उनकी निर्णायक मानसिकता को दिशाहीन बना दिया है । परिणामतः वैकल्पिक सरकारें बनाने में सक्षम विपक्ष का अस्तित्व में आना कठिन होता जा रहा है । और सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया कुण्ठित होती जा रही है तथा दलीय राजनीति की इस स्थिति के चलते भारत में क्षेत्रीय पार्टियों का महत्व राष्ट्रीय पार्टियों की अपेक्षा अधिक होता जा रहा है स्थिति यहां तक पहुँच गई है कि बिना क्षेत्रीय गठबन्धन के निर्वाचन लड़ना टेढ़ी खीर है ।[1] निष्कर्ष के रूप में

यह कहा जा सकता है कि विपक्ष के असफलता ने राष्ट्रीय स्तर पर एक ही राजनीतिक दल का एकाधिकार और व्यक्ति विशेष के चंगुल में फंसने की राजनीति को प्रोत्साहित किया । लोकतंत्र को ऊर्जा सम्पन्न बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि शासक दल बदलते रहें किन्तु समस्या है कि विपक्ष की विश्वसनीयता की -- क्योंकि विपक्षी एकता का एकमात्र आधार सत्ता है व सिद्धान्त रूप में एकता और इस सत्तालक्षित एकता का हश्र विपक्ष का विघटन है । विचारधारा ही किसी संगठन के ऊर्जा होती है क्या उसे त्यागकर कोई पार्टी या संगठन जीवित रह सकते हैं ? नहीं । अतः आवश्यकता इस बात की है कि विपक्ष को विश्रृखलित व अस्थिर विरोध का रास्ता त्याग कर सक्रिय रचनात्मक क्रियाशीलता को अपनाना चाहिए क्योंकि जनसामान्य एक अस्थिर व सतही एकता की तुलना में कांग्रेस को अपन समक्ष दोषों सहित अच्छा मानते हैं तथा दलों को अपने स्वविवेक से अवसरोचित दण्ड पुरूष्कार देने की क्षमता रखते हैं ।

(घ) दल–बदल व विपक्ष–

अवसाद, निराशा, अनिश्चितता और लगातार आन्दोलनों के वातावरण में सम्पन्न हुआ फरवरी, 1967 का चतुर्थ आम चुनाव भारतीय राजनीति में एक सीमा चिन्ह की हैसियत रखता है । इन चुनावों को मतपत्र के माध्यम से राजनीतिक क्रान्ति का नाम दिया जाता है क्योंकि इन चुनावों ने भारत की राजनीतिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया, यथा– (1) कांग्रेस का वह राजनीतिक एकाधिकार जो पिछले 15 वर्षों तक निरन्तर स्थापित रहा था, वह समाप्त हो गया । (2) राज्यों की राजनीति में संयुक्त मंत्रि मण्डलों दौर प्रारम्भ हुआ ।

संयुक्त मंत्रि मण्डलों की राजनीति को स्वतंत्रोत्तर भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति कहा जा सकता है । अनेक राज्यों में संयुक्त मंत्रि मण्डलों का निर्माण हुआ और इन संयुक्त मंत्रि मण्डलों को कांग्रेस के राजनीतिक एकाधिकार का एकमात्र वांछनीय विकल्प समझा गया परन्तु यह संयुक्त मंत्रि मण्डल राजनीतिक अस्थिरता का पर्याय सिद्ध हुये । राजनीतिक अस्थिरता के इस समय में मूल्यों के ह्रास तथा निष्ठा के पतन का एक ऐसा दौर प्रारम्भ हुआ जिसमें दल–बदल की प्रवृत्ति अपने सर्वाधिक दूषित पक्ष के साथ उभर कर सामने आई ।

दल–बदल की हवा वैसे बहुत प्राचीन है तथा यह भारत के साथ–साथ विदेशों में भी बराबर चली रही है । ब्रिटेन के उप प्रधानमंत्री विलियम ग्लैडस्टन, विन्टसन चर्चिल[1]

1– कश्यप सुभाष, "दि–पालिटिक्स आफ डिफेक्शन," दिल्ली 1969, पृ0–105

व रैम्जे मैकडोनेन्ड दल बदलुओं की ही श्रेणी में आते हैं । 1846 में सत्तारूढ़ कंजरवेटिव पार्टी में फूट पड़ने तथा दल के अधिकांश सदस्यों द्वारा विरोध के बावजूद तत्कालीन प्रधान मंत्री सररावर्ट पील ने त्याग-पत्र नहीं दिया और दल के आदेशों की अवहेलना कर, लिबरल पार्टी की सहायता से प्रधानमंत्री बने । इसी तरह दक्षिणी आस्ट्रेलिया में दल बदल के बाद वर्षों (1856-1901) में 42 सरकारें बनी व बिगड़ी ।[1] तथा फ्रान्स में सन् 1870 से 1914 के दरम्यान 88 मंत्रि मण्डलों का गठन एवं विघटन हुआ ।[2]

जहां तक भारत का प्रश्न है समीक्षक दलबदल के इस रोग को सन् 1919 तक ले जाते हैं जब श्री श्यामलाल नेहरू अंग्रेजी शंसन काल में कांग्रेस के टिकट पर निर्वाचित हुये तथा बाद में सरकारी पक्ष में सम्मिलित हो गये । 1937 के बाद हाफिज मो0 इब्राहीम के साथ कई सदस्य मुस्लिम लीग छोड़कर कांग्रेस में सम्मिलित हुये ।[3]

भारत में जनसंख्या के आधार पर उ0प्र0 का महत्वपूर्ण स्थान है उ0प्र0 में दल बदल स्वतंत्रता के बाद ही आरम्भ हो गया था । 1950 में उ0प्र0 में त्रिलोकी सिंह के नेतृत्व में 23 विधायकों ने कांग्रेस छोड़कर जन कांग्रेस बनायी इनहीं दिनों श्रीमती आचार्य कृपलानी और श्री रफीक अहमद किदवई ने अलग होकर कृषक मजदूर पार्टी बनायी, ऐसा अनुमान किया जाता है कि 1967 के पूर्व के वर्षों में जो लोग विधायक बनें उनमें से पाँच में से एक विधायक ने दल बदला होगा । 1957 से 1967 तक की अवधि के बीच 524 बार विधायकों ने अपने दल बदले किन्तु 1967 के दल बदलुओं ने लोकतंत्र के अस्तित्व को एक कड़ी चुनौती दे दी । 1967 के आम चुनाव के प्रथम वर्ष में भारत 430 बार विधायकों ने अपने दल बदलने का रिकार्ड कायम किया 1967 के आम चुनावों के बाद दल बदलुओं के कारण 16 महीनों के भीतर 16 राज्यों में सरकारें गिरी ।[4] व दल बदल की अनगिनत घटनाओं से ऐसा प्रतीत हुआ कि भारतीय लोकतंत्र का भविष्य खतरे में हैं ।ब्रिटेनी संसद में नियमानुसार सत्तापक्ष व विरोध पक्ष आमने सामने बैठते हैं तथा यदि एक तरफ का सदस्य उठ कर दूसरी ओर चला जाये तो उसे फ्लोर क्रासिंग अर्थात दल बदल कहा जाता है । इससे स्पष्ट है कि दल बदल की परम्परा मूल ब्रितानी है ओर भारत में संसदीय विरासती देन के रूप में दल बदल का रोग आयातित है । ब्रिटेन में दल के सदस्य अपने दलों के आधार पर एक जुट होकर वोट डालते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि किसी अवसर पर यदि किसी दल का प्रतिनिधि अपने दल के पक्ष में वोट

1-विजेन्द्रपाल सिंह,"हमारे विधायक," पृ0- 44

2- पचौरिया भवानी शंकर, "दल बदल बनाम दलीय प्रति बद्धता" लोकतंत्र समीक्षा अंक 4, 1977, पृ0-13

3- -तदैव- पृ0- 13-14

4- कश्यप सुभाष,"पालिटिक्स आफ डिफेक्शन," दिल्ली ,नेशनल पब्लिशिंगहाउस 1970, पृ0-8

न करे तो दल की नीति के प्रतिकूल आचरण करने वाले प्रतिनिधि को दल बदल व डिफेक्टर कहा जाता है ।[1]

दल बदल की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों व राजनीतिज्ञों में तीव्र मतभेद है दल बदल के लिये अंग्रेजी में विभिन्न पदबन्धों का प्रयोग किया गया जैसे चैंजिंग अथवा फ्लोर क्रासिंग (फर्श बदलना या पार कर जाना) कार्पेट क्रासिंग (एक गलीचे से दूसरे गलीचे में जाना) पालिटिकल टर्न ओवर (आवश्यकतानुसार राजनीतिक कोर्ट बदलने की नीति अर्थात अवसरवादिता) पालिटिक्स ओपर्चुनिज्म (अवसरवादिता की राजनीति, पालिटिक्स आफ डिफेक्शन (अपने नेता दल और सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा त्यागने की राजनीति) पालिटिक्स आफ म्यूजिक चेयर्स) संगीतमय कुर्सियां बदलने अथवा कुर्सियों के लिये लड़ने का खेल) आदि संक्षेप में दल बदल की अवधारणा राजनीतिक सत्ता के लिये सिद्धान्तहीन होड़ के रूप में सामने आयी ।[2]

यद्यपि दल बदल की एक सार्वभौमिक व सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं बन पाई किन्तु डा0 सुभाष कश्यप की परिभाषा बहुत मात्रा में इस अवधारणा का प्रतिनिधित्व करती है उनके अनुसार– दल बदल का मतलब राजनीतिक प्रतीक (राजनिष्ठा) का बदलना है इसमें निम्नलिखित सभी परिस्थियाँ सम्मिलित समझी जानी चाहिए ।(1) किसी विधायक का किसी दल विशेष के टिकट पर निर्वाचित होकर उसे छोड़ देना तथा किसी अन्य दल में शामिल होना (2) किसी दल को त्याग कर बाद में विधायक का निर्दलीय रहना (3) निर्दलीय रूप से विधायक निर्वाचित होकर किसी दल विशेष में शामिल होना तथा (4) बुनियादी मामलों पर विधायक का अपने दल की नीति के विरूद्ध मतदान करना आदि । इस प्रकार (दलबदल– किसी विधायक का अपने दल अथवा निर्दलीय मंच का परित्याग कर किसी अन्य दल में जा मिलना, नया दल बना लेना तथा निर्दलीय स्थिति अपना लेना अथवा अपने दल की सदस्यता त्यागे बिना ही बुनियादी मामलों पर सदन में उसके विरूद्ध मतदान करना दल--बदल कहलाता है ।[3]

1– सुभाष कश्यप,"दल बदल व राज्यों की राजनीति," पृ0– 15, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

2– एस0सी0 कश्यप, "दि–पालिटिक्स आफ डिफेक्शन दि–चेजिंग कन्टूर आफ दि पालिटिकल पावर स्टक्चर इन दि स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया, इन एशियन सर्वे, 1 मार्च, 1971, पृ0–195

3– कश्यम सुभाष, दि–पालिटिक्स आफ डिफेक्शन, पृ0--12–13

श्री जयप्रकाश नारायण ने दल बदल की अपनी परिभाषा में कहा था– " एक विधान मण्डल के लिये निर्वाचित कोई भी सदस्य जिसे किसी राजनीतिक दल का सुरक्षित चुनाव चिन्ह मिला था, यदि वह निर्वाचित होने के पश्चात उस राजनीतिक दल से अपना सम्बन्ध तोड़ लेने या उसमें अपनी आस्था समाप्त करने की घोषणा करता है तो उसे दल बदल ही समझा जाना चाहिए बसरते उसकी कार्यवाही सम्बद्ध पार्टी के निर्णय के अनुसार न हो ।[1]

विधि मंत्रालय के एक आलेख में कहा गया है कि – "दल बदल का वास्तविक अर्थ है असहमति के आधार पर एक पार्टी छोड़ कर दूसरी पार्टी में शामिल होना"।[2]

भारत में 1967 के पूर्व आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी, अशोक मेहता, टी प्रकाशम् व डा0 रघुवीर जैसे दिग्गज नेताओं ने अपने राजनीतिक प्रतिबद्धतायें बदली थी किन्तु 1967 के पूर्व के इन छुट–पुट घटनाओं ने दलीय राजनीति को दूषित नहीं किया किन्तु थोड़ी हलचल मचाई थी । देशी की सबसे बड़ी पार्टी तथा पुरानी पार्टी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस क इस मामले में बड़ शर्मनाक इतिहास रहा है और वह समय–समय पर गैर कांग्रेसी पार्टियों से दल बदल कराकर दल बदलुओं को जज्ब करती रही है तथा गैर कांग्रेसी पार्टियां में विघटन को प्रोत्साहित करती रही है । दल बदल के पहले चरण में, कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व चरम सीमा पर था, अर्थात् चौथे आम चुनाव 1967 तक, राजनैतिक राहजनी की कांग्रेसी नीति का खामियाजा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (टी प्रकाशम् तथा भानु पिल्लै से लेकर जसवन्त मेहता व अशोक मेहता के समर्थकों तक) महाराष्ट्र की किसान मजदूर पार्टी, कम्यूनिस्ट पार्टी (चन्द्रजीत यादव) और जनसंघ को भुगतना पड़ा जबकि जनसंघ व कम्यूनिस्ट पार्टी सबसे ज्यादा संगठित व अनुशासनयुक्त दल हैं ।[3]

कांग्रेस का यह प्रभुत्व 1967 में समाप्त हुआ । जब हरियाणा, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में कांग्रेस से बड़े पैमाने पर दलबदल हुआ और यहां कांग्रेस की सरकारें टूटी जब तक दल बदल का प्रभाव कांग्रेस की तरफ रहा तब तक राजनीति में स्थिरता व नैतिक मूल्यों में ह्रास सम्बन्धी बातें नगण्य रहीं । वास्तव में राजनीतिक दल बदल की प्रक्रिया का उद्भव कांग्रेस पार्टी के पतन से ही तीव्र हुआ । भारी संख्या में विधायकों द्वारा राजनीतिक प्रतिबद्धता के बदलने के कारण देश की राजनीति, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक

1– शर्मा राजीव, "भारत मे दल बदल की राजनीति," लोकतंत्र समीक्षा, जनवरी–दिसम्बर, 1988, पृ0– 101

2– वरसैया गोबिन्द दास, "मिली जुली सरकारों की राजनीति–" लोकतंत्र समीक्षा 1980, जनवरी–मार्च, पृ0–95

3– मधुलिमये–"दल बदल का यक्ष प्रश्न बाकी है,"नवभारत टाईम्स लखनऊ, 11 दिसम्बर, 1991, पृ0– 5

व नैतिक पहलुओं में निहित है। एक ज्ञाता ने इसके निम्न कारण बताये हैं:– [1]

1– भारत में राजनीतिक दलों, विशेषकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, का इतिहास व उनकी प्रकृति।

2– सभी दलों में बृद्ध लोगों का नेतृत्व।[2], दादागिरी, निहित स्वार्थ व यथास्थिति के पालक संस्थानों का विकास।

3– राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण का अभाव।

4– दलों की सदस्यता, उनके लक्ष्यों व गतिविधियों में जन भागीदारी का अभाव तथा चुने हुये प्रतिनिधियों की दल बदल सम्बन्धी गतिविधियों के प्रति जन उपेक्षा।

5– दलों में अर्न्तकलह व उनमें गुटबन्दी।

6– राज्य विधान सभाओं में अस्थाई या कम बहुमत वाली सरकारें तथा निर्दलीय सदस्यों की भूमिका।

7– साधारण विधायक व दल के स्वामी के मध्य व्यक्तित्व का टकराव।

8– पद, धन, स्तर आदि का लालच।[3] या उसका अभाव।

9– मंत्रि व विधायक के वेतन भत्ते स्तर व अन्य उपलब्धियों में भारी अन्तर।

10– राजनीतिक दलों में शक्तिशाली दबाव समूह व धड़ों की भूमिका।

11– 1967–69 के मध्य कांग्रेस द्वारा सत्ता में अन्य को भागीदार न बनाने की प्रवृत्ति, और

12– भारतीय राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी, अज्ञानता से भरे देश में झूठे विचारों व राजनीतिक वास्तविकताओं के बीच की बड़ी खाई।

1– कश्यप सुभाष, "दि–पालिटिक्स आफ डिफेक्शन," पृ0–87–88

2– कांग्रेस का विघटन, सिण्डीकेट के कारण सत्ता कांग्रेस व संगठन कांग्रेस के रूप में हुआ इसमें प्रमुख तत्व नेतृत्व का आपसी संघर्ष रहा है

3– कहा जाता है कि सन् 1967 से 73 के दौर में दल बदल के कारण विभिन्न 45 राज्य सरकारें बनी व बिगड़ी इस 7 साल की अवधि में 2700 विधायकों ने दल बदल किया जो कि कुल विधायकों का 60% है इसी प्रकार ये भी उजागर है कि दल बदल की प्रवृत्ति के पीछे मंत्रि पद प्रमुख आकर्षण रहा। एक अन्य विश्लेषण के अनुसार दल बदलू 535 विधायकों में से 212 को विभिन्न मंत्रि पद मिले जिनमें 15 मुख्य मंत्री 92 मंत्री 171 राज्य मंत्री व 338 उप मंत्री बने। श्रोत– दे0 विजमम् नई दुनिया इन्दौर 7 जुलाई, 1977, पृ0–4

उपरोक्त कारणों से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दल बदल में व्यक्तिगत लाभ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है राजनीतिक प्रतिबद्धता बदलने का मुख्य आधार केवल स्वार्थ है उसके अलावा कुछ नहीं । अतः दल बदल करने वाले व्यक्ति राजनीतिक अपराधी है जिसे जनता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं है ।[1]

भारतीय राजनीतिक दलों के विशेष विवरण के संदर्भ में स्पष्ट है कि आज शायद ही कोई राजनीतिक रंगमंच पर ऐसी पार्टी होगी जिसमें बिखराव न आया हो । साम्यवादी भी तीन दलों में पाये जाते हैं । सी0पी0आई0, (मा0क0पा0 और एक अन्य क्रान्तिकारी विंग जिसे नक्सलवाद कहा जाता है तथा सी0पी0आई0 एम0एल । जबकि साम्यवादी दल बन्द होते हैं किन्तु कम्युनिस्ट पार्टियों में ये विभाजन वैचारिक मतभेद को लेकर हुआ था न कि सत्ता पिपासा से ।[2] इसीतरह कांग्रेस का भी विभाजन हुआ तथा सत्ता कांग्रेस व संगठन कांग्रेस दो प्रधान धड़ों में कांग्रेस का विभाजन हुआ संगठन कांग्रेस का अन्त में जनता पार्टी में विलीनीकरण हो गया । तथा देवराज अर्स व पाटिल के बीच दलीय संघर्ष के कारण देवराज अर्स ने अर्स कांग्रेस का निर्माण किया तथा बाद में श्री जगजीवन राम ने कांग्रेस फार डेमोक्रेसी का निर्माण किया जो जनता पार्टी का घटक बनी इसी प्रकार पूर्व में समाजवादी भी तीन घेरे में- सो0 पार्टी, संसोपा तथा प्रसोपा में विखण्डित थे जो बाद में अपनी पहिचान छोड़कर जनता पार्टी में विलीन हो गये किन्तु यह विखण्डन भी नीतिगत मतभेदों के चलते हुआ ।[3] जनसंघ जैसी अनुशासित पार्टी भी दलीय अनुशासन तोड़कर दो भागों में बटी जिसमें से बड़ा मूल जनसंघ जनता दल में तिरोहित हो गया और दूसरे को श्री बलराज मधोक आज भी हिफाजत से परवरिश करने का प्रयास कर रहे हैं जनता पाटी भी विघटित हुई जिसका प्रमुख कारण जनसंघ की दोहरी निष्ठा के अनसुलझे तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अड़ियल रवैये के अलावा सत्ता लिप्सा व महत्वाकांक्षा के कारण हुआ ।

<u>**उ0प्र0 दल बदल-**</u> उ0प्र0 में दल बदल की सबसे महत्वपूर्ण घटना कांग्रेस में फूट पड़ने के फलस्वरूप श्री चरण सिंह ने अपने ही दल कांग्रेस की सरकार को दल बदल द्वारा गिरा दिया तथा सत्ता की बागडोर संभाल ली । यह उल्लेखनीय है कि श्री चरण सिंह ने केवल इस कारण दल बदल किया क्योंकि तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त उनके

1- जनरल आफ कान्सटीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, न्यू देलही, गवर्नर्स रिपोर्ट 1971 वा-6, न0-1, 1974, पृ0-14

2- लिमये मधु-"दल बदल का यक्ष प्रश्न बाकी है," नवभारत टाईम्स लखनऊ, 11 दिसम्बर, 1991

3- -तदैव- पृ0-5

कुछ साथियों को मंत्रि मण्डल में शामिल करने के लिये तैयार न थे ।[1]

इसके बाद तो दल बदल का खेल खुलकर शुरू हो गया और विधान सभा में विभिन्न दलों की स्थिति जानने के लिये विधान सभा में दिन भर रहना आवश्यक हो गया क्योंकि यह निश्चित नहीं रहा कि जो दलीय स्थिति सबेरे हो, वही दोपहर को व शाम को भी हो । विपक्षी दलों द्वारा बनायी गयी संविद सरकार के सदस्यों की निष्ठा क्षण-प्रतिक्षण बदलती रही । उदाहरणार्थ उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय के अनुसार कल प्रातः नयी कांग्रेस में 171, शाम को 180 तथा आज शाम को 197 विधायक बताये गये (26 मार्च, 1971)
27 मार्च, 1971- आज शाम 5 बजे नई कांग्रेस के विधायकों की संख्या 206 हो गई
28 मार्च,1971- नयी कांग्रेस के मुख्य सचेतक श्री नारायण दत्त तिवारी ने राज्यपाल को बताया कि उनके दल में 112 विधायक हो गये हैं ।[2]

उ0प्र0 में विभिन्न दलों में हुये दल बदल की स्थिति निम्न सारिणी से स्पष्ट है :-

तालिका नं0-1

छठी विधान सभा के तीन वर्षों के द्वितीय सत्र में दलीय स्थिति
(1974-74)

राजनीतिक दल	1974(द्वितीय सत्र)	1975(द्वितीय सत्र)	1976(द्वितीय सत्र)
1 कांग्रेस	216	228	237
2 भा0क्रान्ति दल	106	95	138
3 जनसंघ	61	60	-
4 कम्युनिस्ट	16	16	16
5- कांग्रेस (संगठन)	10	10	-

1- सईद एस.एम. भारतीय राजनीतिक प्रणाली, पृ0-276
(क) हालांकि चौधरी चरण सिंह ने इसका खण्डन करते हुये कहा कि उन्होंने दल बदल केवल निजी उद्देश्य से किया है । उन्होंने अपने पत्र में श्रीमती गांधी को लिखा कि उनके बीच नागपुर अधिवेशन में गहरे मतभेद हो गये थे- दिनमान 23 अगस्त, 3 सितम्बर, 1977, पृ0-19
2- विजेन्द्रपाल सिंह-"हमारे विधायक-" पृ0-25,

6	सोशलिस्ट	5	4	1
7	कम्युनिस्ट मार्क्सवादी पार्टी	2	2	2
8	स्वतंत्र	1	–	–
9	मुस्लिम लीग	1	1	1
10	हिन्दू महासभा	1	1	1
11	शोषित समा0 दल	1	1	1
12	निर्दलीय	5	4	21
13	नामनिर्देशित	1	1	1
14	रिक्त स्थान	–	2	6
15	असम्बद्ध	–	1	1

उपर्युक्त तालिका से प्रतीत होता है कि दल बदल निरन्तर होता रहा है । यह उल्लेखनीय है कि दल बदल के केवल एक दल से दूसरे दल तक ही सीमित नहीं रहा वरन सदस्यों ने अपना दल छोड़कर निर्दलीय सदस्यों की संख्या में बृद्धि की । 1974 में निर्दलीय सदस्यों की संख्या केवल 5 थी जो कि 1976 में बढ़कर 21 पहुंच गई ।[1]

जून 1975 के प्रारम्भ में आपातकाल लागू होने के बाद राजनीतिक दल बदल में बाढ़ आ गई । अपने राजनीतिक संगठनों का कोई राजनैतिक भविष्य न देखकर भारतीय लोक दल, जनसंघ, संगठन कांग्रेस, समाजवादियों व अन्य क्षेत्रीय पार्टियों के विधायकों में कांग्रेस में शामिल होने की होड़ लग गई । 9 फरवरी, 1977 से कांग्रेस से भारी निकासी की शुरूआत हुई जब श्री जगजीवन राम ने (उ0प्र0 से हेमवतीनन्दन बहुगुणा भी शामिल थे) कांग्रेस फार डेमोक्रेसी का निर्माण किया इसके आलोचकों ने इसे बदल बदलुओं की कांग्रेस कहा ।

वर्ष 1979 में फूट पड़ जाने के साथ ही दल बदल का ज्वालामुखी फूट पड़ा सत्ता की होड़ में नये–नये दलों ने जन्म ले लिया । साक्ष्य रूप में वर्ष 1979 के द्वितीय व तृतीय सत्र की दलीय स्थिति प्रस्तुत है:–

1– उ0प्र0 विधान सभा सक्षिप्त सिंहावलोकन से प्राप्त विवरण पर आधारित

तालिका नं0–2

1979 द्वितीय सत्र		1979 तृतीय सत्र	
राजनैतिक दल	स्थिति	राजनैतिक दल	स्थिति
जनता पार्टी	356	जनता पार्टी (बनारसीदास)	197
		जनता पार्टी (राजमंगलपाण्डेय)	158
कांग्रेस (ई)	45	कांग्रेस (ई)	45
कम्युनिस्ट	9	कम्युनिस्ट	9
कांग्रेस	7	कांग्रेस	7
कम्युनिस्ट मार्क्स0	1	कम्युनिस्ट मार्क्स0	1
निर्दलीय	6	निर्दलीय	4
नाम निर्देशित	1	नाम निर्देशित	1
सोशलिस्ट	1	रिक्त स्थान	3

स्पष्ट है कि जनता पार्टी जो सत्तारूढ़ पार्टी थी बनारसी दास व राजमंगल पाण्डेय के नेतृत्व में दल बदल के कारण विभाजित हो गये तथा राजमंगल पाण्डेय को विपक्षी दल के रूप में रहना पड़ा।

1980 में एक बार फिर सत्ता कांग्रेस को सौंपी गई किन्तु दल बदल के गरम बाजार में कमी न हुई तथा नवीन दलों का निर्माण जारी रहा उदाहरण के लिये 1980 की अष्टम विधान सभा के प्रथम व अन्तिम सत्र की दलीय स्थिति निम्न रही :–

तालिका नं0–3

1980 प्रथम सत्र		1984 अन्तिम सत्र	
राजनैतिक दल	स्थिति	राजनैतिक दल	स्थिति
कांग्रेस (ई)	308	कांग्रेस (ई)	320
लोक दल	59	रा0लोकतांत्रिक मोर्चा	67
कांग्रेस (यू)	13	जनता पार्टी	9
भारतीय जनता पार्टी	11	डे0सी0 पार्टी	6
भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी	7	भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी	6
जनता जे पी0	5	कांग्रेस जगजीवन	2
जनता राजनारायण	3	शो0समाजवादी दल	1
शोषित समा0दल	1	कम्युनिस्ट मार्क्स	1

1980 प्रथम सत्र		1984 अन्तिम सत्र	
निर्दलीय	11	निर्दलीय	10
नाम निर्देशित	1	असम्बद्ध	1
रिक्त स्थान	7	रिक्त स्थान	12

इस विवरण से स्पष्ट है कि कांग्रेस जो कि सत्तारूढ़ पार्टी थी, की सदस्य संख्या 308 से बढ़कर 320 हो गई । स्पष्ट है कि विपक्षी सदस्यों द्वारा सत्ता के लालच में निरन्तर दल बदल किया जाता व कांग्रेस में सम्मिलित हुआ जाता रहा ।[1]

इस विवरण से स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष के सदस्यों द्वारा निरन्तर दल बदल किया गया । वास्तव में दल बदल की समस्या के समाधान हेतु कांग्रेस व प्रतिपक्ष की संयुक्त सरकार द्वारा निरन्तर प्रयास किया जाता रहा है जबकि दूसरी ओर दल बदल के प्रति निरन्तर चिन्ता व्यक्त की जाती रही । दल बदल रोकने के लिये किये गये प्रयासों का विवरण निम्नवत् है :–

1– गृह मंत्रालय के एक विश्लेषण में पया जाता है कि जितने दल बदल हमारे देश में जाते हैं उतने अन्यत्र नहीं । चौथी लोक ससभा में 63 दल बदल हुये । और 1969 से 1975 के बीच विभिन्न राज्यों में 1400 से अधिक विधायकों ने दल बदल किया इस अवधि में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों में हुये इस व्यापक दल बदल ने तत्कालीन सत्तारूढ़ कांग्रेस को सर्वाधिक लाभ पहुँचाया–

राजनैतिक दल	राज्य विधान सभायें– आये	1969–1975 गये
कांग्रेस	684	258
कांग्रेस संगठन	107	246
सोपा	14	7
जनसंघ	15	53
भा0क्रा0 दल	30	90
भारतीय लोक दल	7	5
स्वतंत्र	10	110
भा0 क0पा0	7	4
मा0क0पा0	2	6
संसोपा	5	50
प्रसोपा	1	27

दल बदल रोकने के प्रयास–

1– कहा जाता है कि सर्वप्रथम सन् 1963 में कांग्रेस के संसदीय बोर्ड में दल बदल को रोकने की दृष्टि से एक यह फैसला किया कि भविष्य में कांग्रेस दल बदलुओं को अपने दल में प्रवेश नहीं देगी– जहाँ तक प्रस्ताव के अमल का प्रश्न है, स्वयं कांग्रेस संसदीय पार्टी के फैसले पर उसी के दल ने लागू नहीं किया और दल बदल को वह स्वयं किसी न किसी तरह प्रोत्साहित करती रही ।

2– वर्ष 1967 में 8 दिसम्बर को श्री बैंकट सुब्बैय्या द्वारा प्रस्तावित एक गैर सरकारी प्रस्ताव लोक सभा द्वारा लाया गया और यह गैर सरकारी प्रस्ताव भी पटल पर आया गया हो गया ।

3– दल बदल हेतु मार्च, 1968 में एक सर्वदलीय समिति का गठन तत्कालीन गृह मंत्री श्री चव्हाण की अध्यक्षता में गठित की गई इसने 28 सितम्बर, 1968 को दल परिवर्तन रोकने सम्बन्धी अपनी रपट भी पेश की किन्तु कांग्रेस विभाजन में इस रिपोर्ट को विधेयक न बनने दिया ।

4– 16 मई, 1973 को तत्कालीन गृह मंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित ने लोक सभा के पटल पर एक विधेयक रखा इसे संयुक्त प्रवर समिति के हवाले किया गया परन्तु दुर्भाग्यवश वह समिति रिपोर्ट न प्रस्तुत कर सकी और 1977 में लोक सभा विघटित होने पर विधेयक समाप्त हो गया ।

5– वर्ष 1970 को केन्द्रीय सरकार ने प्रारूप तैयार किया और प्रतिपक्ष को सुझावार्थ आमंत्रित किया किन्तु विपक्ष ने सहमति नहीं दी । अभी दल बदल निवारण हेतु प्रसंग में काट–छांट चल रही थी, तत्कालीन राष्ट्रपति बी0बी0गिरी ने एक निर्दलीय उम्मीदवार के नाते राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ा । संसद की कई वरिष्ठ सदस्यों ने इसे दल बदल की संज्ञा दी ।[1] और एक ने तो साफ–साफ कह दिया कि दल बदल की सजा सुनाने का हक ऐसे राष्ट्रपति को कैसे दिया जा सकता है जो खुद दल–बदल कर इस पद पर आसीन हुआ हो । दल बदल के संदर्भ में एक मनोरंजक प्रसंग तब देखने को मिला, जिस दल बदल निरोधक समिति का गठन किया गया था, उसी में से एक सयाना सदस्य स्वयं ही इस दरम्यान दल बदल कर बैठा ।[2]

1– श्री राम सुभग सिंह ने वी0वी0 गिरी पर आरोप लगया कि वे दल बदल कर राष्ट्रपति बने हैं ।

2– दल बदल निरोधक समिति के वयावृद्ध सदस्य श्री एन0जी0 रंगा ने सदस्य रहते हुये दल बदल किया था ।

इसके पश्चात् 1978 में मोरारजी देसाई मंत्रि मण्डल द्वारा इसके लिये प्रयास किये गये किन्तु 48वें संविधान संशोधन विधेयक को 28 अप्रैल, 1978 को लोक सभा में प्रस्तुत करते ही जनता दल के कुछ वरिष्ठ सदस्यों ने इसका तीव्रतम विरोध किया अतः यह विधेयक वापस हो गया ।

1985 का दल बदल कानून— 9वीं लोक सभा के पहले सत्र में ही विपक्षी दलों का सहयोग लेकर श्री राजीव गांधी ने दल बदल पर अंकुश लगाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया जो सर्वसम्मति से पारित हुआ तथा जनवरी 1985 में यह चर्चित विधेयक 52वें संविधान संशोधन के रूप में सामने आया । इसके प्रावधान निम्न हैं:—

1— निम्न परिस्थितियों में संसद या राज्य विधान मण्डल की सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जायेगी ।

(क) यदि स्वेच्छा से अपने दल का परित्याग करे, या

(ख) यदि वह अपने दल या उसके अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके किसी निर्देश के प्रतिकूल मतदान करे या मतदान के समय अनुपस्थित रहे परन्तु यदि 15 दिन के अन्दर उसका दल उसे इस उल्लंघन के लिये क्षमा कर दे तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(ग) यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य 6 महीने के भीतर किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाय तो उसे दल बदल का अपराध नहीं माना जायेगा ।

2— किसी राजनीतिक दल के विघटन पर विधायक की सदस्यता समाप्त नहीं होगी यदि वह मूल दल के एक तिहाई सांसद, विधायक वह दल छोड़ दें ।

3— इसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दल बदल नहीं माना जायेगा यदि किसी दल के कम से कम दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में मिल जांय ।

4— दल बदल के किसी प्रश्न पर अन्तिम निर्णय का अधिकार सदन के अध्यक्ष को होगा ।

इस विधेयक की सर्वत्र सराहना की गई किन्तु व्यापक स्तर पर देखा जाय तो इस संशोधन से न तो पंजाब, तमिलनाडु, मणिपुर, आसाम, नागालैण्ड व मेघालय व मिजोरम की सरकारें गिरने से बचाई जा सकीं न ही दल बदल को रोका जा सकता, अतः यह कानून कुछ अर्थों में विफल रहा है अतः इस अधिनियम पर पुनर्विचार की आवश्यकता है— इस विधेयक में यह प्रावधान है कि पीठासीन अधिकारी किसी सदस्य के विषय में लिखित शिकायत प्राप्त होने पर ही कार्यवाही कर सकेंगे । प्रश्न यह है कि इस प्रकार की शिकायत कौन करेगा जबकि किसी दल में मात्र एक ही प्रत्याशी सदन में पहुँचा हो । अच्छा यह होता कि इस सम्बन्ध में निर्णय का अधिकार केवल अध्यक्ष के विवेक पर छोड़ दिया जाता ।

यह अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जिस सदस्य का कोई दल न हो सर्वथा निर्दलीय हो वह किसी में सम्मिलित हो जाये तो दल बदल कैसे होगा । इस सम्बन्ध में सुझाव है कि निर्दलीयों की प्रथा को ही समाप्त कर दिया जाना चाहिए । निर्दलीय सदस्यों की भूमिका से चिन्तित होकर निर्वाचन आयोग द्वारा भी निर्दलीय सदस्यों पर रोक लगाने का सुझाव दिया गया है ।[1] अन्य बात यह भी है कि बिना मान्यता प्राप्त किये किसी दल को चुनाव में भाग लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए । प्रायः यह देखने में आता है कि चुनाव के समय छोटी-छोटी पार्टियाँ जन्म ले लेती हैं और बाद में अपने स्वार्थ के अनुसार अन्य पार्टियों से मिल जाती हैं अतः मान्यता प्राप्ति की शर्तों को कठोर बनाकर दल बदल पर रोक के सम्बन्ध में प्रावधान किया जाना चाहिए ।

दल बदल विरोधी कानून के लागू होने के बाद उत्पन्न हुई परस्थितियों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यह कानून सदस्यों की असहमति व्यक्त करने के सिद्धान्त पर आघात पहुँचाता है इसका परिणाम यह हुआ कि थोक रूप से दल-बदल हुआ है जिसे दल विभाजन की संज्ञा दी गई है । उदाहरणार्थ उ0प्र0, गुजरात व हरियाणा की सरकारें रातों-रात जनता दल (समाजवादी) बन गई । इन सभी का जन्म मुख्य रूप से सत्ता के लालच से हुआ है तथा अधिकांश मामलों में या तो दल बदलुओं को मंत्रि पद मिले हैं या विधान सभा भंग की गई है । अतः यह ज्यादा अच्छा होता कि दल बदल के प्रमुख कारण जैसे भौतिक लाभ की सम्भावनाओं पर प्रतिबन्ध लगाया जाता जिससे किसी दल बदलू को कोई लाभ पद न मिल सके तथा दल बदलू को स्वीकारने वाले दल को पाँच साल के लिये चुनाव आयोग उसकी मान्यता समाप्त कर दे ।[2]

दल बदल से सम्बन्धित संविधान की दसवीं अनुसूची में मूल राजनीतिक दल में विभाजन व एक तिहाई सदस्यों का दावा स्पष्टीकरण की माँग करते हैं क्योंकि दल बदल कानून में दलों का विभाजन अथवा विलय को इसलिये मान्यता दी गई है कि इससे सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण आदि में सहायता मिलेगी पर यदि कोई सत्ताधारी दल उसे छोड़कर जाने वाले और विलय का दावा करने वाले सदस्यों में से कुछ का दल से निष्काशन घोषित कर दे ताकि बचे हुये सदस्य एक तिहाई से कम रह जांय तो यह विवादास्पद हो जाता है कि विभाजन की मान्यता दी जा सकती है या नहीं । यदि निष्कासन व असम्बद्धता की घोषणा को महत्व दिया जाता है तो विलय सम्बन्धी प्रावधान अर्थहीन हो जाते हैं ।

1-- नवभारतटाईम्स, 29 दिसम्बर, 1985

2- लिमये मधु, "ला-अगेन्स्ट डिफेक्शन," टाईम्स आफ इण्डिया, 4 मार्च, 1985, पृ0-8 तथा "दल बदल का यक्ष प्रश्न बाकी है"- नवभारतटाईम्स, 11 सितम्बर, 1991, पृ0-5

जरूरी यह है कि संविधान संशोधन द्वारा यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि अब विधायी दल में विभाजन का दावा पेश किया जाये तो अध्यक्ष को केवल यह देखना है कि मूल दल के अम्मीदवारों के रूप में निर्वाचित सदस्यों में से कम से कम एक तिहाई सदस्य उसे छोड़ रहे हैं ।[1]

इतना सब कुद्द होते हुये भी सबसे अधिक आवश्यकता राजनीतिक लाभ रोकने हेतु किन्ही संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था के साथ स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं के विकास की है इसके लिये जनता को जागरूक होना चाहिए क्योंकि वही संसद प्रासंगिक हो सकती है जो व्यापक रूप से जनता से जुड़ी हो । संसद व जनता के बीच रचनात्मक सम्बन्ध बनाये रखने का काम राजनीतिक दल करते हैं । अतः संसदीय कार्य अपने आप में मात्र राजनैतिक कसौटी नहीं बन सकता । कसौटी यह भी होगी कि जनता द्वारा उसका मूल्यांकन क्या है । पाँच वर्ष के लिये सांसद चुनकर जनता अपने राजनीतिक अधिकार मुल्तवी नहीं कर देती यही कारण है कि राजनीतिक दलों से आशा की जाती है कि वे अपने संसदीय प्रतिनिधियों के आचरण को नियंत्रित करेंगे । विचारधारा व राजनैतिक सोच भी इसमें मदद करते हैं । अतः आदर्श स्थिति यही मानी जाती है कि पार्टी का संगठन उसकी सरकार और संसदीय दल पर नियंत्रण रखें । यह हमारी राजनीति का ही क्षय है कि क्रमशः पार्टी संगठन कमजोर होते गये हैं और सरकारें मजबूत होती गई हैं । इसका कारण यह है कि पार्टियों ने अपने वैचारिक लक्ष्यों को गौण मान लिया है सत्ता प्राप्त करना व उसे बनाये रखना ही राजनीतिक कर्म की एकमात्र कसौटी है– बाकी सब विचारधारा, राजनीति, अन्तरात्मा, सार्वजनिक नैतिकता अप्रासंगिक करार दिये गये हैं । अतः यदि राजनीति में सुधार लाना है– दल बदल जैसी समस्याओं से निपटना है तो इस स्थिति से मुक्त होना होगा । राजनीति का केन्द्र जनता है यही सोचकर पार्टी संगठन खड़ा करना होगा और संगठन में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने सदस्यों को अनुशासित कर सके यह अनुशासन तानाशाही में न बदल जाये इसके लिये पार्टी के अन्दर लोकतांत्रिक परम्पराओं का विकास हो । बिना राजनैतिक दलों की सफाई का प्रबन्ध किये राजनीतिक प्रदूषण को नहीं हटाया जा सकता ।[2]

1– कश्यप सुभाष, "दल बदल कानून में संशोधन की आवश्यकता" नवभारत टाईम्स– 10 जनवरी, 1991, पृ0–6

2– श्री राजकिशोर, "मानो संसद ही सबकुछ हो" नवभारत टाईम्स, 19 जून, 1993, पृ0–6.

अध्याय –11, उपसंहार

(क) प्रतिपक्ष की दुर्बलतायें

(ख) संसदीय प्रजातंत्र में एक सशक्त विपक्ष के लिये सुझाव

(ग) विपक्ष का भविष्य

उपसंहार

जी0के0 चेस्टरसन ने कहा है कि - संसदीय व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं जिनमें से एक निर्माण करता है, दूसरा ध्वन्स, एक प्रस्ताव करता है दूसरा उसका विरोध करता है तथापि संसदीय लोक तंत्र की मूल कल्पना में यह व्यवस्था अन्तर्निहीत है यह वह आधारशिला है जिस पर संसदीय लोक तंत्र का ढाँचा सुदृढ़ता पूर्वक खड़ा होता है । भारतीय संविधान के प्रवर्त्तन की पवित्र बेला में भारतीय लोगों को यह आशा थी[1] कि भारतीय राष्ट्र हित प्रतिनिधित्व के पाश्चात्य नमूने पर आधारित दो सशक्त राजनीतिक दल (पक्ष, प्रतिपक्ष) के विकास में सफल हो जायेगा[2] किन्तु गत अनेक वर्षो से यह आशा साकार नही हो सकी है और इसकी विफलता ने देश में व्यापार राजनीतिक संकट उत्पन्न किया है । प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों है ? इसका प्रमुख कारण भारतीय प्रतिपक्ष की दुर्बलतायें हैं जिनके कारण कभी भी भारतीय राजनीति में सशक्त विकल्प तैयार न हो सका । विवेचन निम्नवत् है -

(क) प्रतिपक्ष की दुर्बलतायें :-

1- विरोधी दल की शक्ति हीनता का प्रमुख कारण यह है कि उनकी संख्या बहुत अधिक है । वास्तव में विरोधी दलों को समर्थन देने वाले मतदाताओं की संख्या कांग्रेस से अधिक रही एवं 1952 स 85 तक उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष को क्रमश: 1952 से 1985 तक 55.35 प्रतिशत मत प्राप्त हुयें तथा सत्ता पक्ष कांग्रेस को 56.64 प्रतिशत मत प्राप्त हुए किन्तु उन्ही चुनाव में उनके द्वारा प्राप्त किये गये स्थान नगण्य रहे[3] इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत में एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र की प्रणाली है और नियम यह है कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाला प्रत्याशी विजयी माना जाता है क्यों कि विरोधी दल कई थे अत: उनके मत बंट जाते थे और अधिकांश निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस प्रत्याशी विजयी होते रहे[4] ।

1- मधु लिमये-कोयेलियेशन पालिटिक्स इन इण्डिया, डेविड एण्ड गसैलियथ पब्लि0, सम्पादित द्वारा ए.सी.साहनी 1971 पृष्ठ 371

2- रजनी कोठारी, पालिटिक्स इन इण्डिया,ओरियेन्टल लॉग मैनस,1970 पृष्ठ 158

3- उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव परिणाम, चुनाव निदेशालय उत्तर प्रदेश से प्राप्त विवरण पर आधारित

4- राम जोशी एण्ड कीर्ति देसाई , अपोजिशन प्राबलेम एण्ड प्रास्पेक्टस एवनामिक्स एण्ड पालिटिकल्स वीकली वाल्यूम 8 अंक 42-43 अक्टूबर 20,1973 पृष्ठ 1917

2- भारत में प्रतिपक्ष ने कभी मध्यम मार्ग का अनुसरण नहीं किया वे या तो दक्षिण पंथी या बाम पंथी । परिणाम यह हुआ कि परस्पर दो विपक्षी दलों की अपेक्षा सत्तारूढ़ दल (कांग्रेस) व उसके विरोधियों में समानतायें थीं। परिधि के दो बिन्दुओं की दूरी केन्द्र व परिधि के किसी बिन्दु से अधिक थी । साम्यवादी या समाजवादी दलों के लिए सत्तारूढ़ दल कांग्रेस के साथ सहयोग करना तो आसान था किन्तु स्वतन्त्र पार्टी या जनसंघ के साथ असम्भव था ।

3- विरोधी दलों की बहुलता और उसके परिणाम स्वरूप उनकी शक्ति हीनता का तीसरा कारण सामा० है । सामा० विभिन्नतायें आपसी सहयोग में बाधा उत्पन्न करती हैं । यदि सत्ता प्राप्त करने की आशा दूर हो जैसी स्थिति 1967 के पूर्व थी या 1971-72 के बाद हो गयी तो दलों के नेताओं ने अन्य दलों के साथ सहयोग करने के स्थान पर ऐसे गुटों में रहना ज्यादा पसन्द किया जिनके बीच उनकी चले। वास्तव में जैसा कि मॉरिस जॉन्स ने कहा है - 'भारतीय समाज की विषमतायें देखते हुए इसमें आश्चर्य नहीं है कि यहाँ इतने अधिक राजनीतिक दल हैं, बल्कि इसमें हैं कि यह विषमतायें एक प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस में कैसे समाहित हैं'।[1]

4- विरोधी दल के नेताओं में वैचारिक शुद्धता को अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति रही है, अतः इससे प्रतिपक्षी दलों में एकीकरण तो दूर रहा उनमें किसी व्यापक कार्यक्रम के आधार पर कभी समझौता न हो सका उल्लेखनीय है कि 1971 के मध्यावधि निर्वाचनों के पूर्व यद्यपि संगठन कांग्रेस जनसंघ , स्वतन्त्र पार्टी तथा संयुक्त समाजवादी दल ने सत्ता पक्ष के विरूद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया किन्तु उनमें किसी कार्यक्रम पर समझौता नही हो सका, संयुक्त समाजवादी दल के मोर्चे में शामिल होने की शर्त यह थी कि मोर्चे का कोई संयुक्त कार्यक्रम नहीं होगा[2]। एक व्यापक कार्यक्रम न विकसित कर पाने के कारण न तो विरोधी दलों में एकता हो सकी और न उन्हें जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हो सका ।

1- मॉरिस जॉन्स, दि गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स आफ इण्डिया , हर्यचिसन लिमिटेड लन्दन 1962 पृष्ठ 176

2- मधोक बलराज - पोलराइजेशन आफ लाइक माइन्टेड पार्टी- जनरल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज जनवरी मार्च 1972 पृष्ठ 12

5- विपक्षी दलों का अन्य प्रमुख दोष वैचारिक प्रश्नों पर अधिक महत्व देना भी रहा किन्तु (कुछ अपवादों को छोड़ कर) विपक्षी दलों ने संगठन के प्रश्न पर अधिक ध्यान नही दिया है । परिणाम यह होता है कि विरोधी दलों को मतदाओं का वैसा समर्थन प्राप्त नहीं हो पाता जैसा कि मिलना चाहिये या विपक्ष की तुलना में सत्ताधारी दल को प्राप्त होता है । एक सर्वेक्षण के अनुसार 1967 में 42.6 प्रतिशत मतदाओं ने अपने को कांग्रेस से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित बताया । विरोधी दलों से इसी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध बताने वाले मतदाताओं की संख्या इस प्रकार थी स्वतन्त्र पार्टी 5.1 प्रतिशत, जनसंघ 7.0 प्रतिशत, दोनों साम्यवादी दल 4.1 प्रतिशत, सभी समाजवादी दल 6.3 प्रतिशत तथा 30 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने आपको इसी दल से सम्बन्धित नहीं बताया[1] । अस्तु यह स्पष्ट है कि ऐसे मतदाताओं की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम हैं जो किसी विरोधी दल के प्रति निष्ठा रखते हो । इसीलिए विभिन्न विरोधी दलों द्वारा प्राप्त किये गये मतों या उसके द्वारा जीते गये स्थानों में कोई स्थिरता नहीं रही है[2] ।

6- विरोधी दल की एक अन्य दुर्बलता यह है कि उनके द्वारा सत्तारूढ़ दल का जो विरोध किया जाता है, वह जनमत को प्रभावित करने में असफल रहा है । भारत की दल प्रधान प्रणाली में प्रधान दल कांग्रेस में विरोध को पचाने की विलक्षण क्षमता है , कांग्रेस की आन्तरिक गुट बाजी बाहरी विरोध से जुड़ी है और जब कभी विरोधी दल सरकार की किसी नीति की आलोचना करते हैं तो समान विचारधारा वाले कांग्रेसियों को बल मिलता है और वे उस नीति में परिवर्तन करा देते हैं किन्तु सरकार में परिवर्तन नहीं होता है । विरोध की इस प्रक्रिया का परिणाम यह होता है कि विरोध पक्ष न तो स्थिर रह पाता है और न ही उसमें शक्ति आ पाती है । विरोधी दलों के सम्मुख एक अन्य समस्या यह है कि विरोधी दल समाज के जिन वर्गों में राजनीतिक चेतना लाते हैं और उन्हें कांग्रेस के विरूद्ध संगठित करते हैं वे ही कुछ समय बाद कांग्रेस को समर्थन देने लगते हैं । यह इसलिए होता है कि जनमानस इस बात का हामी है कि सत्तारूढ़ दल सुदृढ़ है और सत्तारूढ़ भी, अतः उसे समर्थन देने से कुछ लाभ भी हो सकते हैं ,

---

1- राम जोशी, कीर्ति देसाई- दि अपोजिशन प्राबलम एण्ड प्रास्पेक्टस; एक्नामिक्स एण्ड पालिटिक्ल वीकली 1973 (20 अक्टूबर) पृष्ठ 117।

2- राम जोशी एवं कीर्ति देसाईः दि अपोजिशन प्राब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्टसः एक्नामिक एण्ड पालिटिक्ल वीकलीः वर्ष 8 अंक 42-43, अक्टूबर 20, 1973 पृष्ठ 197।

इसीलिए एँजेला व बर्गर ने कहा कि 'भारत में विपक्षी दल सत्तारूढ़ दल (कांग्रेस) के पोषक संगठन का कार्य करते हैं'।[1]

7- भारत में प्रतिपक्ष का सबसे बड़ा दोष संख्यात्मक न्यूनता के साथ-साथ तालमेल का अभाव भी है उदाहरणार्थ 1970 में कांग्रेस विघटन के पश्चात प्रतिपक्षी दलों ने आपसी विलय का सुझाव रखा किन्तु साम्यवादियों ने सत्तारूढ़ दल का साथ दिया इसके बाद प्रतिपक्षी दल दो खेमों में बँट गया तथा संगठन कांग्रेस द्वारा सभी प्रतिपक्षी दलों में एकता का प्रयास किया गया किन्तु इसका परिणाम मात्र इतना रहा कि गैर साम्यवादी दलों - स्वतन्त्र दल , जनसंघ, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी , संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय क्रान्तिदल व कांग्रेस संगठन ने सदन में प्रतिपक्ष की भूमिका में सामन्जस्य स्थापित करने की सम्भावनाओं पर विचार किया और असफल रहे । परिणाम स्वरूप प्रतिपक्ष के सामन्जस्य के अभाव में सत्तारूढ़ दल अल्पमत में हो जाने के बावजूद सत्ता में बना रहा।

8- विपक्ष का एक प्रमुख दोष यह भी है कि इसमें एक व्यक्ति के प्रति आस्था की कमी रही है तथा सार्वजनिक सेवा भावना के द्वारा प्रति पक्ष जनता के हृदय में कोई स्थान नहीं बना पाया । उदाहरणार्थ- सत्तारूढ़ दल कांग्रेस का जन्म सार्वजनिक सेवा भाव रखने वाले व्यक्तियों से हुआ था जो जनता की स्थिति में सुधार लाना चाहते थे । और तदुन्तर महात्मा गाँधी तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नेतृत्व में इस दल का उद्देश्य गुलामी की बेड़ियों से देश को मुक्त कराना हो गया था । कांग्रेस दल को सदैव इन व्यक्तियों पर गहन आस्था रही जब कि प्रतिपक्ष में ऐसा नहीं था ।

9- प्रतिपक्ष की स्थिति के कमजोर होने का कारण लचीलेपन व व्यवहारिकता का अभाव है इसी के कारण वह अपने आप को जनता की भावनाओं के अनुरूप नहीं ढाल पाता । लोक तन्त्र में धर्म निरपेक्षता व समाजवाद जैसे आदर्शों के प्रति अपना राजनैतिक दृष्टिकोण रखना अत्यन्त आवश्यक होता है । प्रतिपक्ष का अपना कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं और न ही हर राजनीतिक व आर्थिक विचारधारा वाले व्यक्ति हैं जो दल को एक व्यवहारिक कार्यक्रम दे सकें ।

1- एंजेला एण्ड बर्गर- अपोजीशन इन ए डोमिनेन्ट पार्टी सिस्टम- यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस 1969 पृष्ठ 284

10- विभिन्न विपक्षी राजनीतिक दलों की नीतियाँ भी अनेक दुर्बलताओं से ग्रस्त हैं - यथा (अ) कम्युनिस्ट पार्टी 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में अंग्रेजों का साथ देने के कारण जनता का विश्वास खो चुकी है इसके अतिरिक्त यह सोवियत रूस व साम्यवादी चीन से प्रभावित है यह दल हिंसा व राजनीतिक स्वतन्त्रता का गला घोंट कर आर्थिक स्वतन्त्रता लाने की पक्षधर है जो कि भारत वर्ष जैसे देश के लिए उपयुक्त नहीं है साथ ही यह दल दक्षिण पंथी , बाम पंथी व नक्सल -पंथी गुटों में विभक्त हो गया है । (ब) दल स्वतन्त्र पार्टी का है पंडित नेहरू ने एक बार स्वतन्त्र पार्टी के बारे में कहा था - कि स्वतन्त्र पार्टी के पीछे जनसमूह नहीं है यह दल यथा स्थिति वाद में विश्वास रखता है'[1] । (स) जनसंघ अपनी साम्प्रदायिकता के लिए बदनाम है यह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का राजनीतिक अंग है यह संविधान में निहित धर्म निरपेक्षता के खिलाफ है, यह आर्थिक क्षेत्र में दक्षिण पंथी है इसका प्रभाव केवल उत्तरी भारत के कुछ भागों में है । (द) समाजवादी दल एक बंटा हुआ दल है उसका समाजवाद का नारा रूढ़िवादी है । इसने देश की जनता को अधिक प्रभावित नहीं किया है । (य) संगठन कांग्रेस एक ऐसा दल है जिसने अपनी सारी शक्ति इन्दिरा कांग्रेस को अपदस्थ करने में लगायी है ।

11- विपक्षी दल सत्तारूढ़ दल को तथा उसके नेतृत्व को बदनाम करने से नहीं चूकते हैं लोकतांत्रिक व्यवस्था के कुछ मान्य नियम यह है कि लोक तन्त्र में बहुमत द्वारा शासन चलाया जाता है जिस दल को बहुमत मिलता है वह शासन करता है , जिसे बहुमत नहीं मिलता है वह शासन नहीं करता , शासन की यह अवधि पाँच वर्ष होती है। अल्पमत शासक दल की आलोचना करता है तथा उसे सावधान रखता है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह गैर कानूनी तरीकों से सत्ता हथियाने का प्रयास करे जिसे वह निर्वाचन द्वारा प्राप्त करने में असफल रहा है लोकतन्त्र तभी चल सकता है जब अल्पमत निश्चित अवधि तक सत्तारूढ़ दल का नेतृत्व स्वीकार करे तथा गलत तरीकों से उसे अपदस्थ करने की कोशिश नहीं करे । सरकार को अपदस्थ करने के लिए भूख हड़ताल करना, जन आन्दोलन करना, जनता को कर न देने के लिए कहना, उतने ही गलत तरीके हैं जितने की हिंसात्मक तरीके ।

1- लोक सभा वाद-विवाद खण्ड 14 अंक 3 , 1956 दिनांक 2 फरवरी पृष्ठ 111 एडेड द्वारा एज वी.पी. पट्टाभिरामाराव लोकसभा सदस्य संविधान व संसद का कार्यकरण पृष्ठ 776

12- विपक्षियों द्वारा लोकतंत्र की मूल भूत अपेक्षाओं का खुलेआम उल्लंघन किया जाता है उनका कार्य सत्तारूढ़ दल को बदनाम करना है हर कार्य के लिए वे सत्तारूढ़ दल को जिम्मेदार ठहराते हैं इसके लिए विद्यार्थी समुदाय तक को भड़काया जाया जाता है । विधान मण्डलों में शोर शराबा करना , बर्हिगमन करना , धरना, घेराव बन्द आदि मार्ग विपक्ष द्वारा अपनाये जाते हैं जो देश व लोक तन्त्र के लिए दुखद बात है श्री फ्रैंक एन्थोनी जो कि भारत में लोकसभा के निर्माण के प्रारम्भिक वर्षो से लगातार संसद में रहें हैं ने कहा - 'संसद के वातावरण में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन दिखायी पड़ता है यह परिवर्तन संसदात्मक परम्पराओं व तकनीक में होना है । मनुष्यों के विभिन्न मानसिक उकसाओं के बावजूद केन्द्रीय विधान मण्डल कई मायनों में संसदात्मक नियमों और अनुशासन का आदर्श था उस समय नियन्त्रित मतदाता का प्रचलन और एक सशक्त और सुयोग्य लोगों की उपस्थिति संसद में संसदात्मक स्तर की उच्चतम सीमा को प्रदान करने में मदद देती थी किन्तु आजकल ऐसा नहीं है -- सामा0 मूल्य बदल गये हैं , विधिवेत्तासंसद में न जाकर चुनाव में पैसे व बल का प्रयोग करने वाले पहुँच गये हैं[1]'। फ्रैंक एन्थोनी ने आगे कहा है कि संसदात्मक प्रभाव युक्तता का एक सामान्य हथियार संसद के भीतर बहस व प्रश्न प्रहर है लेकिन इनका बुरी तरह से क्षरण हुआ है अनुशासन हीनता और व्यवस्था विहीन आचरण सदन के भीतर बढ़ गये हैं । कुछ विपक्षी दल के सदस्यों का यह स्वभाव बन गया है कि वह वहाँ अव्यवस्था व अराजकता का माहौल बनाकर प्रचार माध्यमों अखबार आदि में सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने में इच्छुक रहते हैं और किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर सूचना देना , बहस करना उनका लक्ष्य नहीं रहता[2] ।

विपक्षी दल हताश होकर सम्पूर्ण क्रान्ति की बात कहते हैं समाज की हर संस्था परिवार, चर्च, निजी सम्पत्ति को राज्य से स्वीकृत मिलती है और राज्य के विरूद्ध क्रान्ति की बात कहना अराजकता को निमन्त्रण देना है । कानून का पालन करना विपक्ष का प्रथम कर्तव्य है परन्तु वे महत्वपूर्ण मामलों पर जन भावनाओं का उभारते हैं जिससे ऐसा लगता है कि वे अराजकता को उचित ठहरा रहें हों

1- एम0 पट्टाभिरामा, दि फेलर आफ अपोजीशन पार्टी इन इण्डिया , जर्नल आफ पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, वाल्यूम 6 1977 पृ० 36

2- -तदैव --

विपक्षी दल निर्वाचित सदस्यों को जबरन त्यागपत्र देने में मजबूर करने हेतु बल प्रयोग करने में भी नहीं हिचकिचाते - इससे विपक्ष का सम्पूर्ण दृष्टिकोण नकारात्मक विनाशकारी व फासीवादी हो जाता है कोई भी सरकार अधिक समय तक नहीं टिकती अगर विपक्ष भाषा, प्रदेश तथा सम्प्रदाय के आधार पर जन भावना को उभारे। साधन उद्देश्य के अनुरूप उतने ही पवित्र होने चाहिये । लोकतंत्र में इसकी आवश्यकता के सम्बन्ध में पण्डित नेहरू ने कहा था - 'लोकतन्त्र का अर्थ गहरा है यह केवल सरकार का एक राजनैतिक रूप ही नहीं अपितु यह एक प्रकार के सोचने का कार्य करने का तथा अपने पड़ोसियों के साथ बर्ताव करने का तरीका है[1]. अतः विपक्ष को अपने कार्यो का संचालन इस प्रकार करना चाहिये ताकि लोक तन्त्र तथा लोकतांत्रिक तरीकों व लोकतांत्रिक संस्थाओं की अवमानना न हो ।

(ख) **संसदीय प्रजातन्त्र में सशक्त विपक्ष हेतु सुझाव :-**

संसदीय प्रजातंत्र में सशक्त विपक्षी हेतु आवश्यक है कि विपक्ष की एक निश्चित विचारधारा होनी चाहिये । विद्यमान समस्याओं के समाधान हेतु उसका निजी दृष्टिकोण होना चाहिये । उसे व्यवहारिक कार्यक्रम अपना कर ग्रामीणों का समर्थन प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिये तथा राष्ट्र की अखण्डता के प्रति अटूट निष्ठा होनी चाहिये[2] ।

विपक्ष को उन नीतियों का जिनको यह अपने चुनाव के समय कहती हैं का विचार एवं कार्य दोनों में एकरूपता या समन्वय रखना आवश्यक है , अगर विपक्ष के विभिन्न सदस्य विभिन्न दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं तो सत्ताधारी की विपक्ष द्वारा आलोचना कमजोर व गैर प्रभावकारी हो जायेगी और मतदाओं पर विपक्ष की यह प्रतिविम्ब बनेगा कि यह विपक्ष न तो एक जुट होकर सोच सकता है और न एक जुट होकर कोई कार्य कर सकता है । अतः इस प्रकार के विपक्ष पर कोई भी व्यक्ति सत्ताधारी दल के मुकाबले में वैकल्पिक सरकार बनाने के लिए विश्वास नहीं कर सकता । जैसा कि लास्की ने कहा है - 'कि यदि विपक्ष उन अवसरों पर, जबकि इसे सत्ताधारी दल पर प्रहार करने का अवसर है , त्वरित कार्यवाही करने की क्षमता न हो और बड़े महत्व के प्रश्नों पर आपस में मतभेद हो , विपक्ष को कमजोर बनाते हैं । यदि विपक्ष विभाजित है तो एक खराब सरकार बहुत समय तक सत्ता में रह सकती है, वरन् चुनाव में भी विपक्ष की कमजोरी के कारण जीत सकती है ।[3]

1- एस.वी.पी.पट्टाभिरामाराव लोकसभा सदस्य-संसद व विधानसभाओं में विपक्ष की भूमिका, पु0 संविधान व संसद का कार्यकरण (लोकसभा सचिवालय पुस्तकालय) पृष्ठ 778

2- अय्यर,एस.पी.एण्ड श्री निवासन, आर.(एडिटेड) स्टडीज इन इण्डियन डेमोक्रेसी, राजू एस.वी.कानिस्कर, जी.वी. एण्ड दण्डवते, एस.आर.प्राब्लम्स आफ डेवलपिंग एण्ड अपोजीशन इन इण्डिया,बाम्बे एलाइड परिल0 1965 पृष्ठ 633

3- हेराल्ड.जेलास्की,पार्लियामेन्ट्री गर्वनमेन्ट इन इंगलैण्ड(लन्दन) 1956 पृष्ठ 1756

लास्की ने आगे कहा है - चूँकि विपक्ष अगर मतदाताओं के सामने रखी जाने वाली नीति पर एक मत नहीं है तो इस प्रकार के अवसर बहुत होगें कि मतदाता अथवा सम्पूर्ण देश इस बात को सुनिश्चित न कर पायेंगे कि विपक्ष क्या करने का प्रयास कर रहा है ? इन परिस्थितियों में एक सत्ताधारी दल पुनः शासन में आ सकता है क्योंकि विपक्ष द्वारा अपने मतदाताओं को यह समझाया नहीं गया कि उसका बहुमत उसे सत्ता संभालने की ताकत देगा[1] विपक्ष को अपनी प्रकृति के आधार पर अपने कार्यो को एक सुविचारित कार्यक्रम का रूप देने की क्षमता होनी चाहिये और उसे खुद को जनमानस के सामने अपनी विश्वसनीयता व योग्यता साबित करने के लिए न केवल शोर शराबा करने व जनतांत्रिक कार्यवाही को निष्प्रभावी बनाने के लिए अपितु सत्ताधारी दल के स्थान पर स्वयं को स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिये । उसे अपने पक्ष को ऐसे ठोस आधारों पर प्रस्तुत करना चाहिये कि मतदाता विश्वास करे कि तत्कालीन सरकार एक अक्षम सरकार है तथा जनहित में जितनी जल्दी हो सके विपक्ष को सत्ताधारी दल का स्थान ले लेना चाहिये । कोई भी विपक्ष इस प्रकार की विश्वसनीयता तभी प्राप्त कर सकता है जबकि विपक्ष में तथा उसके नेतृत्व में इस प्रकार के गुण हों कि वह न केवल प्रहारक क्षमता रखते हो अपितु उस क्षमता का प्रयोग एक विशद एवं उपयुक्त आधार पर कर सकें[2]

मुद्दो का सही चुनाव (Proper Selection of issue) विपक्ष को सक्षम बनाता है । विधान मण्डल उठाये जाने विषयों की एक लम्बी तालिका है इनमें से कुछ विषय बड़े महत्व के होते हैं कुछ रोज-मर्रा की प्रकृति के होते हैं आवश्यक यह विपक्ष द्वारा ऐसे मुद्दों का चुनाव करना चाहिये जिससे प्रतिपक्ष का व्यापक प्रचार हो और वह मतदाताओं की कल्पना को अपनी ओर आकृषित कर सकें - जैसा कि आइवर जैनिग्स का मानना है - 'सदन में राजनीतिज्ञों को दो वर्गो में बॉटा जा सकता है । सदन में कार्य उस समय सर्वाधिक अच्छा होता है जिस समय सदन में महत्वपूर्ण राजनीतिक तथा लोक कल्याणकारी मुद्दों पर विवाद होता है । हांलाकि सदन को बहुत सारा समिति कार्य करना होता है किन्तु नेताओं का चुनाव इसीलिए नहीं किया जाता है कि वह अच्छे प्रशासक या समितियों के नेता हैं वरन् इसीलिए वह आकर्षक व युक्ति-युक्त भाषण कर सकते हैं । यह साधारण राजनीतिक वाद-विवाद सदन के कार्य का एक हिस्सा है जिसके जनता के बीच पर्याप्त प्रचार होता है । संसदात्मक वाद-विवाद का वास्तविक उद्देश्य सत्ताधारी दल की नीति और विपक्ष की नीति के बीच मतभेद को मतदाताओं के सम्मुख उजागर करना है । समाचार पत्रों में दुर्भाग्य से स्थान बहुत सीमित होता

1- लास्की - पार्लियामेन्टरी गर्वनमेन्ट इन इंगलैण्ड (लन्दन) 1956 पृष्ठ 1756

2- फर्टियाल एच.एम. - रोल आफ अपोजीशन इन इण्डियन पार्लियामेन्ट पृष्ठ 7, इलाहाबाद 1971-72

है और उन्हें वही कुछ देना होता है जो उनके पाठक चाहते हैं न कि इस प्रकार कि क्या उनको पढ़ना चाहिये , यह कथन कि सामान्य मतदाता या पाठक राजनीति में रूचि नहीं रखता की कभी अवहेलना नहीं की जा सकती'[1] । अतः विपक्ष को एक प्रभावी भूमिका निभाने के लिए ऐसे मुद्दे उठाने चाहिये जो कि विशेष महत्व के हों तथा जिन पर विपक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने में जनता को अधिकाधिक आवश्यकता हो । उसे साधारण मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करना चाहिये स्थानीय मुद्दों तथा व्यक्तिगत घटनायें अगर ठीक से वाद-विवाद किया जाये तो इस छोटी सी घटना से बड़े महत्व के मुद्दों पर लोक चेतना जगाई जा सकती है[2] । विपक्ष को मौलिक मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रहना चाहिये भारत जैसे देश में जहाँ पर सत्ताधारी दल और विपक्ष में मौलिक मूल्यों पर बुनियादी मतभेद है विपक्ष का प्राथमिक कार्य यह है कि वह उन मूल्यों की जिन को वह स्थायित्व प्रदान करने का दावा करता है, उसकी अवहेलना होने पर एक मजबूत प्रतिरोध प्रस्तुत करे - क्योंकि वह मूल्य जिसके लिए विपक्ष लड़ता है वह किसी व्यक्तिगत नीति और कार्यो की अपेक्षा उसके ज्यादा बुनियादी राजनीतिक लक्षण को परिभाषित करती है और मतदाताओं के मस्तिष्क में एक ऐसी पार्टी की छवि प्रस्तुत करती है जोकि किसी गम्भीर राजनीतिक परिस्थिति में अथवा चुनाव के समय महत्वपूर्ण साबित होती है ।

सशक्त विपक्ष के लिए आवश्यक है कि विपक्ष प्रथम उद्योग की भावना से प्रेरित हो । लास्की के अनुसार वाद-विवाद में प्रहार की अवधारणा संसदीय सरकार की सम्पूर्ण घटनाचक्र का केन्द्र है'[3] यह कहना गलत न होगा कि यह प्रहार करने का लक्षण सत्ताधारी दल की अपेक्षा विपक्ष के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है चूंकि सत्ताधारी दल के लिए उसे एक सीमा तक प्रकाश में लाना ही पर्याप्त है, लेकिन एक विपक्ष तब तक प्रभावी होने की आशा नहीं कर सकता जब तक कि वह अवसर मिलने पर उस प्रहार के गुण का प्रस्तुतिकरण नहीं करता । लास्की ने पुनः कहा है कि - 'जिस समय कोई सरकार कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेती है वह निर्णय विपक्षी दल के लिए एक मुद्दा प्रस्तुत करता है और उसे यह अवसर देता है कि वह अपनी केन्द्रीय नीति को लोगों के बीच में जानकारी देने के उद्देश्य से प्रदर्शित करे , इसकी कसौटी यह है कि विपक्ष दलीय वाक् युद्ध में अपनी प्रहारक क्षमता का प्रदर्शन कर अपनी शक्ति सिद्ध कर सके[4]' ।

1- जैनिग्स आइवर -दि क्वीन्स गवर्नमेन्ट,पेनगुइन बुक पब्लिसर्स 1958 पृष्ठ 88-89

2- तदैव पृष्ठ 89-90

3- लास्की - पार्लियामेन्टरी गवर्नमेन्ट इन इंग्लैण्ड,(लन्दन) 1959, पृष्ठ 164

4- तदैव पृष्ठ 164, 165.

विपक्ष को यह मानकर चलना चाहिये कि एक संसदीय लड़ाई अहिंसात्मक होते हुए भी अनेक लक्षण सशस्त्र युद्ध जैसे रखती है और जैसा कि युद्ध में होता है उसी प्रकार संसद के अन्दर लड़ाई में वह पक्ष जो कि प्रारम्भिक कदम उठाता है निश्चित लाभ में रहता है । अतः सभी सुलभ संसदीय तौर तरीकों और पद्धतियों का प्रयोग कर विपक्ष को अपने द्वारा चुने गये मुद्दों पर और उन मुद्दों को चुनने में हर एक मौका ग्रहण करना चाहिये तथा उस समय सबसे कम अपेक्षित समय और सबसे कम अपेक्षित दिशाओं से सरकार को खतरे में डालना चाहिये व विखण्डित करना चाहिये।

एक प्रभाव शाली विपक्ष के प्रारम्भिक आक्रमण को केवल सरकार की आलोचना तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये अपितु वह विलय प्रस्ताव भी प्रस्तुत करना चाहिये जिन्हें कि सरकार अपनी नीतिगत प्रतिबद्धता के कारण विरोध नहीं कर सकती है विपक्ष सरकार को प्रगतिशील कदम अपनाने के लिए, और उस पर इससे पहले कि सरकार इनको प्रस्तुत करे बिलव प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहिये[1]

विपक्ष की प्रभावोत्पादकता जिससे कि वह अपनी भूमिका अदा करता है उन लोगों पर, उन लोगों की प्रतिभा पर निर्भर करती है, जिनसे मिलकर विपक्ष का निर्माण हुआ है क्योंकि कर्मी की प्रतिभा के विना कला का कोई सिद्धान्त सफल नाटक प्रस्तुत नहीं कर सकता । नायक की प्रतिभा और युद्ध शक्ति के बिना कोई भी युद्ध सिद्धान्त युद्ध में विजय नहीं दिला सकता अतः यह बात प्रभावपूर्ण है कि कोई संसदीय विपक्ष तब तक सफल नहीं हो सकता जो कि वाह्यदलीय संगठन से प्रथक होकर विधान मण्डल में कार्य करता है । विपक्ष की सफलता बड़ी सीमा तक उसकी संगठनात्मक शक्ति और विधायका के बाहर उसकी लोकप्रियता पर निर्भर करती है[2] । विपक्ष लोगों में राजनीतिक चेतना जगाने का कार्य करता है तथा देश के लोगों की राजनीतिक सहभागिता में मदद करता है जैसा कि जे. रोनाल्ड पिनाक और जॉन डब्लू चेकमैन ने लिखा है - प्रतिपक्ष जनमत की शिक्षा देता है और आम नागरिक को स्वतन्त्रतापूर्वक व निर्भयता पूर्वक अपने विचार प्रकट करने के योग्य बनाता है[3] । विपक्ष का चाहिये कि वह विभिन्न सिद्धान्तों के मध्य में भेद करें तथा विभिन्न कार्यो के विभिन्न कार्यक्रम के गुण व दोष को तौले , एवं यह देखे कि कोई राजनीतिक कार्यक्रम किस सीमा तक नागरिकों के सम्पूर्ण वर्ग को लाभ पहुँचायेगा न कि कुछ ही लोगों के वर्ग मात्र को । अगर इन सभी बातों को कार्य रूप देते हुए अपने कार्यक्रम का संचालन करेगा तभी एक सशक्त विपक्ष बन सकता है ।

1- सारटो स्टीवस् - प्रास्पेक्टस आफ इण्डियन डेमोक्रेसी मेरठ 1970 पृष्ठ 7

2- लास्की , पार्लियामेन्टरी गवर्नमेन्ट इन इंगलैण्ड (लन्दन) 1959 पृष्ठ 178-79

3- जे. रोनाल्ड पिनाक, जॉन डब्लू चेकमैन, उद्घृत - फर्टियाल एच.एस., रोल आफ अपोजीशन इन पार्लियामेन्ट पृष्ठ 70

अन्त में सशक्त विपक्ष हेतु प्रमुख सुझाव यह है कि विपक्ष को स्वयं को राष्ट्र हित हेतु उत्तरदायी समझना चाहिये जैसा कि मोरार जी देसाई के शब्दों में स्पष्ट है - जब तक विरोधी पक्ष अपने उत्तरदायित्व को अपने अपेक्षाकृत अधिक न समझे तब तक सरकार के लिए उत्तरदायी हो पाना सम्भव नहीं है यही संसदीय जीवन का सार तत्व है । हम सदैव औरों से अपेक्षा करते हैं कि वे उत्तरदायी हों किन्तु स्वयं उत्तरदायी नहीं बनते यही एक रोग जिसने हम सबको डस लिया है मैं अपने आप को भी इससे परे नही मानता हम सब इसी रोग के रोगी हैं कोई कम कोई अधिक --- नागरिक जिस हद तक काम नहीं कर पाते उसी हद तक उनकी सहायता करना सरकार का अधिकार भी हो जाता है और कर्तव्य भी , और यहीं आकर सरकार कभी - कभी गलती कर बैठती है क्योंकि आखिरकार सरकार में जो लोग होते हैं वे अपूर्ण होते हैं हम उसे तो दोष दे उठते हैं अपने आपको नहीं । अतः लोकतंत्रीय जीवन पद्धति में दूसरे के मत्थे दोष मढ़ने की अपेक्षा स्वयं उसे ओढ़ लेना कहीं अधिक आवश्यक होता है । यह सबक हम सभी को सोचना चाहिये[1] ।

(ग) विपक्ष का भविष्य :-

विपक्ष ने भारत में गतवर्षो (स्वतन्त्रता के बाद अब तक) जो भूमिकायें निभायी हैं उनके मूल्यांकन में एक सामान्य व महत्वपूर्ण तत्व निरन्तर दृष्टि ओझल बना रहा है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जो देश स्वतन्त्र हुए उनमें भारत उन बहुत थोड़े देशों में से हैं , जहाँ ससंदीय लोकतंत्र विद्यमान है । बहुत से देश प्रारम्भ में अथवा बीच-बीच में भी इस परिपाटी पर चले थे किन्तु सत्ता पक्ष व विपक्ष के आपसी द्वन्द के चलते वहां संसदीय लोकतंत्र विलुप्त हो गया । भारत में सत्तापक्ष व प्रतिपक्ष दोनों को यह श्रेय है कि इसे एक अल्पकालीन अपवाद को छोड़कर बहाल रखा है । अन्यथा पचास के दशक में इन्डोनेशिया लोकतन्त्र के मार्ग पर चलकर उससे हटा , वर्मा साठ के दशक के प्रारम्भ में हटा , नेपाल भी पचास के दशक के अन्त में लोकतन्त्र से वंचित हुआ हालांकि विगत कुछ वर्षो से वहाँ लोकतन्त्र दोबारा स्थापित हुआ है । अल्जीरिया में लोकतान्त्रिक चुनाव सम्पन्न होने के बाद भी सत्ता सेनाधिपतियों के हाथ में है ऐसी ही स्थिति वर्मा की है , पाकिस्तान में लोकतन्त्र आता जाता रहा है । अफ्रीका में मेडागास्कर, सेनेगल, घाना , केनिया, उगाण्डा, जैसे अनेक देशों में लोकतन्त्र की शुरूआत हुई और उसका विलोप भी हो गया ।

1- देसाई मोरार जी , भारत में संसदीय जनतन्त्र, लोक तंन्त्र समीक्षा , खण्ड-1 अंक-1, 1 जनवरी, मार्च 1969

भारत में प्रारम्भ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा सरकार उलटनी चाही थी तब युगान्तर हो रहा था संक्रमण की भारी समस्यायें थी परन्तु विपक्ष की कमान भारत छोड़ो आन्दोलन की वीरपंक्ति ,जय प्रकाश नारायन, डा0 लोहिया तथा अच्युतपटवर्धन के हाथ में थी । समाजवादी दल माकपा की ही तरह मजदूर किसान क्रान्ति की भूमिका को लेकर , लोकतंत्र व राष्ट्रवाद से अपनी प्रतिवद्धता के कारण कुछ चुनौती के कारण भारतीय राजनीति का संरक्षण बना और राजव्यवस्था को सशस्त्र क्रान्ति दबाने के उद्देश्य से लोकतांत्रिक मार्ग नहीं अपनाना पड़ा । विपक्ष मुकाबले में सक्षम है , जनता के मौलिक अधिकारों व नागरिक स्वाधीनता की रक्षा में विपक्ष को बराबर सम्बद्ध रहना पड़ा है । उसने नजरबन्दी अधिनियमों, अभिव्यक्त की स्वतन्त्रता पर आघातों जिनमें समाचार पत्रों के दमन की की घटनायें भी शामिल थीं - श्रमिकों की सामूहिक सौदे बाजी संगठित होने की आजादी और हड़ताल के अधिकार पर प्रहारों व न्यायालयों को पंगु बनाने के प्रयासों का तीव्र व निरन्तर विरोध किया है । राजसत्ता कभी सीधा हमला भी करती है जैसा कि आपात काल की घोषणा करके किया । किन्तु जब वह धीरे-धीरे और गुपचुप तरीके से षड़यन्त्र करती है तो अधिक चौकसी की आवश्यकता होती है । विपक्षी ने सीधे हमले का मुकाबला किया है वह अपनी चौकसी में भी सामान्यतयः कभी नहीं चूका ।

विपक्ष की एक अन्य भूमिका भारत की सीमाओं की रक्षा करने में सरकार की किसी भी ढील-ढाल को रोकने तथा उसे चुस्त बनाने की रही है । पचास के दशक के उत्तरार्द्ध में हिमालय के उस पार के खातरों और साठ के मध्य कच्छ और कशमीर अन्य क्षेत्रों की चुनौतियों को उजागर करने में विपक्ष ने सीमाओं के प्रहरी का कार्य सरअन्जाम दिया इसके अतिरिक्त आतंकवादियों, उग्रवादियों ,विघटनकारी तत्वों के साथ सेना अर्धसैनिक बलों , सुरक्षा बलों के व्यवहार के बारे में पैदा सुलझनों सम्बन्धी जटिलताओं को भी विपक्ष ने सही तथ्यों का पता लगा कर एक रचनात्मकता प्रदर्शित की है ।

विपक्ष ने सत्ता के केन्द्रीयकरण तथा इस स्थिति के चलते देश के सार्वभौमिक ढांचे में संघीय्ता की भावना की अति का विरोध करके भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । उल्लेखनीय है कि यह प्रक्रिया विगत 25 वर्षो से ज्यादा गतिमान व तीव्र हुई है इन वर्षो में लगभग 80 बार संविधान के अनुच्छेद 356 का सहारा लेकर राज्य सरकारों को बर्खास्त किया गया है । राज्य सरकारों की आर्थिक वैयक्तिक स्थिति को कमजोर बनाने के निरन्तर प्रयास हुए । कभी बजट से पहले तो कभी बजट के बाद उन पदार्थो के दाम बढ़ा कर जिनके उत्पाद कर या सीमा शुल्क में राज्य सरकारों का भाग रहता है । यदि यह बजट में बढ़ाये गये तो वित्त आयोग की सिफारिशों के चलते और कभी कुल कर आय में केन्द्र के भाग को बढ़ाकर,

इस प्रवृत्ति की वृद्धि का एक कारण कांग्रेस पार्टी के आन्तरिक संगठन में एक मेव नेता का बर्चस्व रहा है । बहरहाल प्रतिपक्ष विशेष कर उत्तर प्रदेश ने इसका समय समय पर इसका विरोध किया है ।

आर्थिक विषमता में वृद्धि, सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण , बढ़ती बेरोजगारी, दामों में बढ़त , कृषि उत्पाद की तुलना में औद्योगिक उत्पाद के दामों में तेजी , भूमि सुधारों को लागू करने में केन्द्र व राज्य सरकार की ढील ढाल , लघु एवं कुटीर उद्योगों की बदहाली , ग्रामीण विकास की उपेक्षा तथा मूल आर्थिक ढांचे के प्रति लापरवाही जैसे सवालों को तो यूँ सभी विपक्षों दलों ने उठाया किन्तु कम्युनिस्ट पार्टियाँ, समाजवादी दल , लोक दल, जनता पार्टी, जनता दल इस ओर विशेष सक्रिय रहें हैं । बल्कि इन सभी प्रश्नों पर जन आन्दोलन भी चलाये तथा विधान पालिका के बाहर भी इन सवालों पर भारी सरगर्मी पैदा की । इसी तरह भ्रष्टाचार भी सरकार की प्रताड़ना का प्रमुख मुद्दा रहा ।

बहुत से प्रश्न ऐसे भी आये जब प्रतिपक्षी दलों ने मिलजुल कर कार्य किया तो भी चीन सम्बन्धी प्रश्नों पर पचास के उत्तरार्ध में और सोवियत संघ व हंगरी 1956 चेकोस्लोवाकिया 1964 तथा अफगानिस्तान और उसके बाद के सवालों पर कम्युनिस्ट पार्टियों का रूख अलग रहा , किन्तु 1980 से बदलाव सामने आया व भाजपा ने कांग्रेस की औद्योगिक नीति का समर्थन किया ।

मध्यान्तरों का क्रम के चलते प्रतिपक्ष ने आपसी मतभेद के होते हुए 1967 के चुनाव तथा उसके बाद गैर कांग्रेस वाद की रणनीति को अपनाया बहरहाल डा० लोहिया के इस प्रतिपादित सिद्धान्त के चलते एक राजनीतिक दल का एकाधिकार टूटा व 1962 , 1966 में कांग्रेस की साख के घटने 1975-76 के आपात काल के अत्याचारों में कांग्रेस एक बार आंशिक व दो बार पूर्ण रूपेण केन्द्र तक में ध्वस्त हुई किन्तु वैकल्पिक सरकारें चली ही नहीं । उस सीमा तक विपक्षी एकता अस्थाई और नाकाफी साबित हुई ।

विगत 25 वर्षो में सत्ता के आयाम बदले हैं और इस मानसिकता की सत्ता पर कांग्रेस के राजनैतिक एकाधिकार को तोड़ने के लिए समाज में परिवर्तन की शक्तियों को मुक्त करने के उद्देश्य से विपक्षी दलों में तालमेल जरूरी है , वास्तविक आधार व तर्क से ही वंचित हो गयी है । भारत में शुरू से ही बहुदलीय लोकतंत्र रहा है लेकिन यहाँ हमेशा एक मध्य मार्गी पार्टी का बर्चस्व रहा , यह पार्टी कांग्रेस थी अतः आधिकारिक विपक्षी दल की स्थिति 1977 तक रही ही नही यह स्थिति 1977 में उत्पन्न हुयी जब कांग्रेस को आधिकारिक विपक्ष का दर्जा प्राप्त हुआ । किन्तु यह

स्थिति बहुत जल्दी ही समाप्त हो गयी ।

1977 के बाद भारतीय राजनीतिक मंच पर राजनैतिक संतुलन दो मध्य मार्गीय पार्टियों के ऊपर टिक गया यह कांग्रेस एवं जनता दल थे । किन्तु जनता दल द्वारा शिथिल सिद्धान्तों पर काम करने के कारण शीघ्र ही विघटन की स्थिति में पहुँच गया जिसका देश की राजनीति में अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा । वर्तमान स्थिति यह है कि देश की राजनीति में विभिन्न आयाम दिखाई दे रहे हैं । लोकतांत्रिक राजनीति, वोट का अधिकार, आर्थिक विकास, शहरीकरण इन सबके कारण समाज के उपेक्षित तबकों में जागृति की लहर आयी है । विभिन्न जातीय और साम्प्रदायिक समूहों के अस्तित्व में आने के कारण उनमें अस्तित्व तथा उत्कर्ष का तीव्र संघर्ष चल रहा है । अगड़ी जातियाँ पिछड़ी जातियों के उत्कर्ष से परेशान हैं तथा उधर उपेक्षित जातियां, ऊँची जातियाँ व शक्तिशाली पिछड़ी जातियों दोनों के बर्चस्व से नाखुश हैं । आरक्षण की नीति पर राजनीतिक दलों की नीति के कारण सामाजिक अशांति व उथल-पुथल के एक नए युग की शुरूआत हो गयी है तथा बहुजन समाज वादी पार्टी जैसे नये राजनीतिक दल उदित हो गये हैं । अतः राजनीतिक दलों के समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं जैसे- बढ़ते हुए सामाजिक और साम्प्रदायिक टकराओं को संयत करने व अपने सामाजिक आधार को बनाये रखने और उसे व्यापक बनाना । इन सभी मुद्दों पर आज विपक्ष ने स्पष्टतः ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है । मुख्य दो धड़े भाजपा व जनतादल में होड़ लगी है कि कांग्रेस का विकल्प कौन बनेगा ? भाजपा का आधार हिन्दुत्व है जो मोटे तौर पर अल्पसंख्यक सम्प्रदायों द्वारा हिन्दुत्व और भारतीयता, देश की अखण्डता के प्रति विरोधात्मक दृष्टिकोण का विरोधी है । भाजपा का राजनीतिक रचनात्मक दृष्टिकोण यह है कि वह देश की अखंडता को , भारतीयता को अक्षुण रखना चाहता है और उसका मानना है कि जो हिन्दू धर्म के इतर धर्मावलम्बी हैं उनको दो नागरिकताएँ नहीं दी जा सकतीं । उनको भारत एवं राष्ट्रीय हितों के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना हर हालत में रखनी होगी । जनता दल सामाजिक व आर्थिक विषमता के स्थान पर समता आधारित समाज रचना का पक्षधर है ।

आज विपक्ष में जो ध्रुवीकरण की नीतियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं तथा विपक्ष में स्पष्ट रूप से अलग-अलग धड़े दिखाई देते हैं तो यह सोचना कि विपक्ष का भविष्य उज्जवल नहीं है असंगत होगा । दल या सरकार कोई भी हो सबमें कुछ न कुछ कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं चाहे जो भी दल सरकार बनाए । पर सिर्फ इसके लिए कह देना ठीक नहीं है कि संसदीय जीवन के सूत्र टूटने लगे हैं । अतः यह कहा जाना चाहिए कि भारत में विपक्ष की परम्परा स्थाई है । इसके लिए सत्ता पक्ष व विपक्ष दोनों को यह आवश्यक हो गया है कि वे संसद या विधान सभाओं में रचनात्मक भूमिका निभाएँ और मूल मुद्दे के प्रश्नों व जनहित की समस्याओं पर दलनिरपेक्ष रूख अपनाएँ । हम आशा कर सकते हैं कि सदन में होने वाली बहसें निरर्थक राजनीतिक प्रचार न होकर संगत व तथ्यपूर्ण होगी । शासक दल रचनात्मक आलोचना के अवसर समाप्त नहीं करेगा तथा देश में स्वस्थ विरोध पनपेगा ।।

परिशिष्ट-[क] कार्यस्थगन प्रस्ताव [तालिका-1]
[ख] विशेषाधिकार प्रस्ताव [तालिका-2]

-सन्दर्भग्रन्थ सूची

तालिका–1 परिशिष्ट......

(संदर्भ अध्याय–5)

"अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत एवं सदन द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कार्य स्थगन प्रस्ताव"

विधानसभा	चर्चा की तिथि	प्रस्तावक सदस्य एवं दलीय सम्बन्ध	प्रस्ताव का विषय
01	02	03	04
प्रथम	–	–	–
द्वितीय	26 अगस्त 1957	झारखण्डे राय (कम्युनिष्ट पार्टी) नारायण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी पार्टी) उपनेता विरोधी दल	प्रदेश के प्रमुख समाजवादी नेता श्री गेंदासिंह के पूर्वी उत्तर प्रदेश की भुखमरी की स्थिति पर अनिश्चित काल के लिये अनशन तथा इस विषय पर मुख्यमंत्री द्वारा श्री गेंदा सिंह को लिखे गये पत्र के विषय में उत्पन्न प्रदेश व्यापी क्षोभ व असंतोष एवं चिंता पर विचार ।
	30 नवम्बर 1957	श्री राजनारायण (नेता सोशलिस्ट पार्टी)	लखनऊ जेल में बुरी तरह लाठी चार्ज
	10 दिसम्बर 1957	गौरी शंकर राय (प्रजा समाजवादी दल)	वर्षा के असमय समाप्त होने के कारण प्रदेश की विशेषकर पूर्वी अंचल में खरीफ की फसल के नष्ट होने और उसी कारण रवी की बुआई ठीक समय पर न हो सकने तथा इस संकट से मुकाबला करने के लिये सरकार द्वारा सिंचाई के साधन उपलब्ध करा सकने में असमर्थता से उत्पन्न भयंकर स्थिति ।
	9 फरवरी 1958	राजा यादवेन्द्र दत्त दुबे (जनसंघ)	राज्य के खाद्यान्न मूल्यों के तेजी के साथ बढ़ने के कारण जनता में असंतोष व्याप्त, स्थान स्थान पर गल्ले की दुकानें लूटी जाने के कारण प्रदेश की शान्ति व व्यवस्था में गडबड़ होने की आशंका ।

विधानसभा	चर्चा की तिथि	प्रस्तावक सदस्य एवं दलीय सम्बन्ध	प्रस्ताव का विषय
01	02	03	04
	4 अगस्त 1958	श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे, (जनसंघ) श्री राजनारायण (सो0 पार्टी) झारखण्डे राय (कम्युनिष्ट पार्टी) ऊद्दल (कम्युनिष्ट पार्टी) मदन पाण्डेय स्वतंत्र प्रगतिशील वि0दल नारायण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी दल) श्री त्रिलोकी सिंह नेता विरोधी दल (प्रजा समाजवादी दल)	2 अगस्त 1958 को लखनऊ नगर में छितवापुर चौकी के करीब पुलिस का अकारण विद्यार्थियों पर गोली चलाना और उसके द्वारा आहत व्यक्तियों की चिकित्सा का प्रबन्ध करने में असफलता
	26 अगस्त 2958	श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे (जनसंघ)	हाथरस जिला अलीगढ़ में बाढ़ व मंहगाई के कारण त था सरकार की दुर्बल व उदासीन नीति के कारण जनता द्वारा अनाज की लूट, तथा प्रदेश की शान्ति व व्यवस्था भंग होकर अराजक स्थिति को प्राप्त ।
	8 अक्टूबर 1958	श्री त्रिलोकी सिंह प्रजा समाजवादी दल (नेता विरोधी दल)	काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में उ0प्र0 पुलिस द्वारा अनाधिकार दखल तथा आवागमन पर रोक ।
	3 मार्च 1959	श्री त्रिलोकी सिंह (प्र0सो0पा0) व अन्य 9सदस्य	कानपुर के विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज
9 फरवरी 1960		श्री झारखण्डे राय (कम्युनिस्ट पार्टी) व अन्य 2 सदस्य	रिहन्द बांध पिपरी के मजदूरों पर पुलिस द्वारा लाठी व गोली प्रहार के सम्बन्ध में।

विधानसभा	चर्चा की तिथि	प्रस्तावक सदस्य एवं दलीय सम्बन्ध	प्रस्ताव का विषय
01	02	03	04
	1961	श्री नारायण दत्त तिवारी (प्रजा समाजवादी दल) श्री राज नारायण (सो0पा0) व अन्य 2 सदस्य	बद्रीनाथ केदार नाथ तथा रामनगर व भतरौजखान मोटर रोड पर बस दुर्घटना में सैकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु
तृतीय	16 अप्रैल 1962	श्री यादवेन्द्र दत्त दुबे (जनसंघ) व अन्य 5 सदस्य	इलाहाबाद नगर पुलिस द्वारा कोतवाली के समक्ष एकत्रित भीड़ पर लाठी व गोली चार्ज ।
	7 मई 1964	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (जनसंघ) श्री उग्रसेन (सोशलिस्ट)	सरकार द्वारा स्थानीय निकायों के चुनावों का अनिश्चित कालीन स्थगन ।
	19 अप्रैल 1965	श्री शारदा भक्त सिंह (जनसंघ; नेता विरोधी दल) तथा अन्य 12 सदस्य	राज्य कर्मचारियों की अदूरदर्शिता व असावधानी के कारण अयोध्या में सरयू पर बने पीपे के पुल के अकस्मात-3 पीपे बैठ जाने से 300 अबाल बृद्ध नर-नारियों की मृत्यु ।
	23 अगस्त 1965	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (जनसंघ) तथा अन्य 8 सदस्य	अवर्षण के कारण प्रदेश में अकाल व सूखे की विषम स्थिति ।
	26 अगस्त 1965	तदैव	गोरखपुर के राजकीय उर्वरक कारखाने में प्रदेशनकारियों पर पुलिस द्वारा गोली चलाई ।
	4 फरवरी 1966	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (जनसंघ)	बनारस विश्वविद्यालय में छात्रों की पुलिस द्वारा पिटाई
	18 जुलाई 1966	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (जनसंघ) तथा अन्य 10 सदस्य	उ0प्र0 सचिवालय के कर्मचारियों पर लाठी चार्ज

विधानसभा	चर्चा की तिथि	प्रस्तावक सदस्य एवं दलीय सम्बन्ध	प्रस्ताव का विषय
	19 जुलाई 1966	श्री मतोला सिंह (जनसंघ) तथा अन्य 4 सदस्य	उ0प्र0 बन्द के सिलसिले में बांदा में पुलिस द्वारा गोली काण्ड ।
	25 जुलाई 1966	श्री माधव प्रसाद त्रिपाठी (जनसंघ) तथा अन्य 10 सदस्य	लखनऊ में राजकीय कर्मचारियों तथा छात्रों पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज
	30 नवम्बर 1966	श्री झारखण्डे राय (साम्यवादी पार्टी) तथा अन्य 19 सदस्य	प्रदेश में छात्र आन्दोलन के के दौरान पुलिस द्वारा निरपराध छात्रों पर अत्याचार ।
	8 दिसम्बर 1966	श्री द्रम्बेश्वर प्रसाद (जनसंघ) तथा अन्य 6 सदस्य	प्रदेश के अराज पत्रित कर्मचारियों द्वारा काम का बहिस्कार
चतुर्थ	16 जून 1967	श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा (कांग्रेस) व अन्य 5 सदस्य	रामगंगा परियोजना कालागढ़ के मजदूरों व पुलिस में संघर्ष
	20 दिसम्बर 1967	श्री नेकराम शर्मा (नि0) तथा अन्य 13 सदस्य	प्रदेश में भाषा विधेयक सम्बन्धी आन्दोलन में हुई जन व धन की क्षति
पंचम	–	–	–
षष्टम	–	–	–
सप्तम	2 मई 1978	श्री गुलाब सेहरा (कांग्रेस ई0) व अन्य 12 सदस्य	आगरा में अनुसूचित जाति के सत्याग्रहियों पर गोली वर्षा
	30 सितम्बर 1979	श्री रवीन्द्र तिवारी श्री राजेन्द्र गुप्त (भा0जनता पार्टी)	विधान सभा सदस्य श्री रवीन्द्र सिंह की हत्या ।
अष्टम	–	–	–

परिशिष्ट.......

तालिका–2
(सन्दर्भ अध्याय–5)

"विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गये विशेषाधिकार प्रस्ताव"

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
प्रथम विधानसभा			
27.3.1953	अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट	श्री राजनारायण, श्री राम नारायण त्रिपाठी श्री जगन्नाथ मल्ल	मा0 अध्यक्ष की आज्ञा की अवहेलना
15.3.1954	श्री नारायण दत्त तिवारी सदस्य विधान सभा (प्र0स0दल)	जिला मजिस्ट्रेट नैनीताल अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट काशीपुर व एस0ओ0 काशीपुर	अवैध रूप से गिरफ्तार करने के कारण सदन की कार्यवाही में भाग न ले पाना
4.3.1954	श्री गेंदा सिंह सदस्य विधान सभा (प्र0स0दल)	जेल अधीक्षक देवरिया तथा जिला मजिस्ट्रेट देवरिया	अवैध रूप से 15 दिन रिमाण्ड व 6 दिन जेल में रखने के कारण बजट अधिवेशन में भाग न ले पाना।
द्वितीय विधानसभा			
13.3.1958	श्री शान्ति प्रपन्न शर्मा सदस्य विधान सभा (कांग्रेस)	श्री गेंदा सिंह सदस्य विधान सभा	21 फरवरी 1958 को पूछे गये अल्प सूचित प्रश्नो के सम्बन्ध में सदन व अध्यक्ष को भ्रम में डालने की चेष्टा।
9.9.1958	श्री जगदीश शरण अग्रवाल (कां०) व श्री शिवराज सिंह (कांग्रेस)	समाजवादी दल के 12 सदस्य	श्री राजनारायण को बाहर ले जाने में मार्शल के कर्तव्य पालन में बाधा डालने का प्रयास।
11.4.1960	कुँवर श्रीपाल सिंह सदस्य विधान सभा (प्रगतिशील विधानसभा मण्डलीय दल)	श्री भूप किशोर सदस्य विधान सभा	तुलसी कृत रामायण के कुछ चौपाईयों पर आक्षेप करते हुये रामायण के पन्ने फाड़ना

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
12.8.1960	श्री गौरी शंकर राय (प्र0 समाज० दल)	लखनऊ विश्वविद्यालय के एशोसियेशन की कार्यकारिणी के विरूद्ध	सदस्यों द्वारा सदन में दिये गये भाषणों पर आपत्ति जनक टिप्पणी सहित प्रस्ताव पारित कर सदन का अपमान करना ।
22.9.1958	अध्यक्ष द्वारा निर्दिस्ट	एडीशन सेशन जज सीतापुर	दर्शक दीर्घा के बारे में रजिस्टर मांगना ।

तृतीय विधानसभा

4.3.1963	अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट	–	अतिरिक्त मुंसिफ लखनऊ के न्यायालय द्वारा मांगे गये लेखों को उपस्थित करने का प्रश्न ।
28.3.1963	गया प्रसाद मेहरोत्रा	मुंशीराम मिश्रा सब इन्सपेक्टर (पुलिस)	शिकायत कर्ता के साथ अभद्रता का व्यवहार
21.3.1963	बनवारी लाल विप्र भगवानदास माद्वेन्दु तथा खेमचन्द्र	श्री वी0एम0 अग्रवाल एस0ओ0सी0 तथा एम0डी0 गोयल अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अलीगढ़ ।	श्री खेम सिंह, सदस्य विधान सभा की गिरफ्तारी की सूचना अध्यक्ष को न देना
7.3.1963	नरसिंह नारायण पाण्डेय	श्याम नारायण सिंह, केशव सिंह, हुबलाल दुवे तथा महातम सिंह	शिकायत कर्ता को वदनाम करने वाले पर्चे का प्रकाशन व वितरण

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
14.3.1963	झारखण्डे राय	लखनऊ में आयोजित औद्योगिक प्रदर्शनी के भीतर "माँ की प्रकार" नामक कक्ष के आयोजक व संगठन कर्ता ।	एक चित्र में शिकायतकर्ता को सदन में आपत्ति जनक भाषण देते हुये दिखाना ।
29.3.1963	अध्यक्ष	दीपनारायण सदस्य विधान सभा	अध्यक्ष विधानसभा को अपमान-जनक पत्र लिखना ।
3.4.1963	कृष्ण पाल सिंह माधव प्रसाद त्रिपाठी राजेन्द्र सिंह, विश्वनाथ प्रसाद व ट्रम्बेश्वर प्रसाद	पुलिस अधीक्षक गोण्डा	श्री वल्देव सिंह सदस्य विधानसभा की गिरफ्तारी की सूचना सदन को विलम्ब से देना तथा विहित प्रपत्र में न देना।
8.7. 1963	सभापति लोक लेखा समिति विधान सभा	नार्दर्न इण्डिया पत्रिका	समिति के प्रतिवेदन के कतिपय अंशों का प्रकाशन
20.2.1964	अध्यक्ष	मैनेजर सिंह सदस्य विधानसभा	एक मंत्री के विरूद्ध असंसदीय शब्द का प्रयोग
19.2.1964	अध्यक्ष	चन्द्रवली सिंह सदस्य विधान सभा	सदन के कार्य में व्यवधान उपस्थित करना तथा आपत्ति जनक शब्दों का प्रयोग
29.7.1964	ट्रम्बेश्वर प्रसाद	केयर टेकर तथा विधान भवन रक्षक	कुछ व्यक्तियों को दीर्घाओं के प्रवेश पत्र होने पर भी विधान भवन में प्रवेश करने से रोकना ।
10.8.1964	अध्यक्ष	चन्द्रबली सिंह सदस्य विधान सभा	निलंबित होने पर भी सदन में प्रवेश कर सदन के कार्यों में भाग लेने का प्रयास ।

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
3.9.1964	अध्यक्ष	उग्रसेन व चार अन्य सदस्य	अध्यक्ष के निर्णय के विरूद्ध सदन से बर्हिगमन ।
5.3.1964	नित्यानन्द पाण्डेय	रामपाल सिंह यादव मंत्री जिला सोशलिस्ट पार्टी कानपुर	शिकायत कर्ता के विरूद्ध एक आपत्ति जनक पर्चा छपवाकर बंटवाना ।
15.30.1964	राजनारायण मित्र	गोरखपुर के अश्विनी कुमार प्रद्युम्न शुक्ला, सुभाष चन्द्र तथा रमाकान्त पाण्डेय	सदन के एक कृत्य व कुछ विधान सभा सदस्यों के विरूद्ध अपमानजनक व आपत्ति पूर्ण शब्दों से युक्त पर्चे को छपवाकर बंटवाना ।
11.2.1965	अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट	-	सहायक सत्र न्यायाधीश गोण्डा द्वारा मांगे गये लेखों से सम्बन्धित प्रश्न ।
18.2.1965	ब्रजभूषण	ट्रम्बेश्वर प्रसाद सदस्य विधान सभा	अध्यक्ष के प्रति आपत्ति जनक शब्दों का प्रयोग
25.3.1964	चन्द्रजीत यादव व अन्य	न्यायाधीश एन.यू.वेग न्यायाधीश डी॰ सहगल इलाहाबाद हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश व उनके सहयोगी न्यायाधीश, वी॰ सालोमन और केशव सिंह	सदन के अधिकारों में हस्तक्षेप
24.2.1965	सूबेदार सिंह	जी0के0 बाजपेयी पुलिस अधीक्षक, फर्रूखाबाद	शिकायतकर्ता को सदन में किये गये कार्यों के सम्बन्ध में धमकी देना

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
22.7.1966	ट्रम्बेश्वर प्रसाद व अन्य	मारविन एच.जिन्न एवं एस0के0राव	कैमरा सहित समाचार पत्र दीर्घा में अनधिकार रूप से प्रवेश ।
6.12.1966	अध्यक्ष	–	श्री लक्ष्मी चन्द्र अग्रवाल, रेलवे मजिस्ट्रेट, लखनऊ के न्यायालय द्वारा मांगे गये अभिलेखों को प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में प्रश्न ।
चतुर्थ विधानसभा			
24.7.1967	भगवती प्रसाद	बनारसी दास, केदार राजा जंग बहादुर राणा सुरेन्द्र विक्रम सिंह सदस्य विधान सभा	शिकायतकर्ता पर सदन में मत विभाजन के समय कांग्रेस के पक्ष में मत देने के लिये दबाव डालना ।
26.7.1967	राजबहादुर चन्द्र	परमेश्वर पाण्डेय, स्वायत्त शासन मंत्री बी.बी.शर्मा, और मलखान सिंह सदस्यगण विधान सभा	विधान सभा सदस्य नरदेव सिंह, प्रेम दत्त और बसन्त लाल को उस दल के पक्ष में मत देने के लिये विवश करना जिससे अभियुक्त सदस्य सम्बन्धित थे ।
पंचम विधानसभा–			
26.2.1970	चेतराम गंगवार	के0डी0शर्मा, पुलिस अधीक्षक बरेली	शिकायतकर्ता को अपमानित करना ।
3.3.1970	सुखपाल पाण्डेय	डी0पी0 वरूण निलंबित जिलाधिकारी, बस्ती ।	शिकायतकर्ता के विरूद्ध अशोभनीय शब्दों का प्रयोग।
3.3.1970	मोती लाल देहलवी	आशाराम इन्द्र, सदस्य विधान सभा	एक पर्चे के वितरण के लिये शिकायतकर्ता को धमकी देना ।

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
26.6.1970	श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा	दैनिक जागरण कानपुर के विधानसभा स्थित संवाददाता व सम्पादक	शिकायत कर्ता के सदन के कथन का गलत प्रकाशन।
19.6.1970	इन्द्रलाल	जगदीश प्रसाद पुत्र छज्जूमल निवासी कालादूंगी	शिकायतकर्ता व सदन के प्रति असभ्यता पूर्ण शब्दों का प्रयोग
8.6.1970	सुरेन्द्र विक्रम सिंह	गुरू सहाय लाल श्रीवास्तव परगनाधिकारी जलालाबाद, शाहजहाँपुर	शिकायतकर्ता के साथ अशिष्ट व्यवहार व सदन मे हुल्लड़ करने का आरोप ।
9.6.1970	राजाराम यादव	सत्यपाल सिंह, थानाध्यक्ष थाना, फिरोजाबाद, आगरा	विधानसभा के अधिवेशन में भाग लेने के लिये जाने में बल प्रयोग द्वारा बाधा डालना और अशोभनीय अपशब्दों का प्रयोग ।
18.6.1970	नित्यानन्द स्वामी	उपेन्द्र त्रिवेदी सम्पादक "विप्लव" (साप्ताहिक) लखीमपुर खीरी	विधानसभा व कुछ विधानसभा के सदस्यों के प्रति अपमान जनक शब्दों का प्रयोग ।
15.12.1970	मदन मोहन मिश्र व त्रिवेणी राय	कालाढूगी निवासी जगदीश प्रसाद	विशेषाधिकार समिति के पंचम प्रतिवेदन की कार्यवाही के प्रकरण पर दोषारोपित व्यक्ति द्वारा बोगस कागजात प्रस्तुत कर सदन की समिति को गुमराह करना ।
16.9.1971	चन्द्र प्रताप नारायण सिंह	राम कुमार भागर्व	शिकायतकर्ता द्वारा सदन में

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
			दिये गये वक्तव्य पर श्री भार्गव द्वारा टीकाजो दैनिक समाचार पत्र पायनियर में प्रकाशित ।
10.4.1972	श्यामलाल कनौजिया	परगनाधिकारी मुहम्मदाबाद जिला आजमगढ़ ।	शिकायतकर्ता के साथ दुव्यवहार
11.4.1972	सूबेदार सिंह	इन्द्रदेव जिला आपूर्ति अधिकारी, मैनपुरी	शिकायतकर्ता के प्रति धमकी भरे शब्दों का प्रयोग ।
18.7.1972	सुरेन्द्र विक्रम सिंह व विश्वनाथ कपूर आदि	राम विहारी लालश्रीवास्तव निरीक्षक अपराध शाखा अपराध अनुसन्धान विभाग, उ0प्र0 लखनऊ ।	शिकायतकर्ता (विश्वनाथ कपूर) को धमकी देना ।
2.5.1972 एवं 19.7.1972	माधव प्रसाद त्रिपाठी विश्वनाथ कपूर तथा राम विलास पाण्डेय	प्रताप सिंह जिलाधिकारी आगरा	माधव प्रसाद त्रिपाठी, सभापति आश्वासन समिति व उसके सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार
छठी विधानसभा–			
3.5.1993	श्री कल्पनाथ सिंह राम कुमार दीक्षित व मोतीलाल देहलवी	जिलाधीश, ज्येष्ठ पुलिस अधीक्षक, कानपुर दरोगा व न्यायाधिकारी, कानपुर	सर्व श्री राम कुमार दीक्षित व मोतीलाल देहलवी की गिरफ्तारी की सूचना सदन में न दिये जाने के संबन्ध में ।
26.7.1974	श्री रघुवीर राम व श्री राम जी सिंह	भा0 क्रांतिदल के सदस्य श्री लक्ष्मण सिंह, श्री राजेन्द्र सिंह व श्री सत्यप्रकाश मालवीय	पैट्रियाट के संवाद॰श्री सलाउद्दीन उस्मान के साथ भा. क्रांतिदल के सदस्यों द्वारा अभद्र व्यवहार व मारपीट किये जाना तथा शिकायतकर्ता को भारतीय क्रांति दल के विधायक श्री लक्ष्मण सिंह

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भंग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
			व अन्य द्वारा मारपीट की धमकी दिया जाना।
9.5.1973	श्री सूबेदार सिंह सदस्य विधान सभा	श्री कृष्णपाल अवस्थी श्री शिशुपाल सिंह मलिक सब इन्सपेक्टर पुलिस थाना–भोगांव जिला मैनपुरी।	शिकायतकर्ता के साथ दुर्व्यवहार
24.2.1975	श्री त्रिवेणी सहाय श्री बाबूलाल वर्मा श्री दशरथ सिंह	श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव	सदन के सदस्यों के प्रति यह कहे जाने कि "अगर कोई विधायक बेईमानी नहीं करता तो अपना खर्चा कैसे चलाता है।"
6.4.1976	श्री मुहम्मद असरार अहमद	जिलाधिकारी आजमगढ़	श्री शिव प्रसाद सदस्य विधान सभा को मीसा के अन्तर्गत निरूद्ध किये जाने की सूचना जानबूझकर विलम्ब से दिया जाना।
11.6.1974	श्री मलखान सिंह	श्री अयोध्या प्रसाद बेसिक शिक्षा अधिकारी, जालौन	शिकायत कर्ता के साथ अशिष्ट व्यवहार व सदन के प्रति अपमान जनक शब्दों का प्रयोग।
8.5.1973	श्री शिवानन्द नौटियाद	श्री हरीराम श्री माली, जिला गोरखपुर, श्री प्रेमपाल रावत बाल योगेश्वर डिवाइन लाईट मिशन हरिद्वार, सहारनपुर	सदन में श्री नौटियाल द्वारा किये गये कार्यों (भाषण व प्रश्नों के कथित आधार पर न्यायालय में अभियोग पत्र दायर करने के सम्बन्ध में।
सप्तम विधान सभा			
24.3.1975	श्री दीप नारायण पाण्डेय, कांग्रेस श्री काशीनाथ मिश्र (कांग्रेस)	श्री मोतीलाल देहलवी सदस्य विधान सभा	"श्री मोती लाल देहलवी द्वारा कथन कि विधायकों की खरीददारी की जाती है।"

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
17.3.1974	श्रीकाशी नाथ मिश्र (कांग्रेस) श्री भगवती सिंह (कांग्रेस)	श्री हरिकेवल सिंह सदस्य विधान सभा श्री कुंवर बहादुर मिश्र सदस्य विधान सभा	श्री हरि केवल द्वारा विरोधी पक्ष को चप्पल दिखाये जाने तथा श्री कुंवर बहादुर मिश्र द्वारा सदन में हरि केवल प्रसाद को यह कहना कि "यह साला चोर है यह क्यों बोल रहा है।"
11.4.1975	श्री काशी नाथ मिश्र (कांग्रेस)	डी0पी0 वरूण सचिव हरिजन व समाज कल्याण विभाग	हरिजन व समाज कल्याण अनुदान पर बहस के समय टाइप किया हुआ पर्चा बांटना।
27.9.1977	श्री मुनीन्द्र पाल सिंह (ज0पा0) सदस्य विधान सभा	ड्राइवर व कन्डक्टर पीलीभीत बस नं0 यू0एस0ई0 2255	सदस्य के प्रति अपमान जनक शब्दों का प्रयोग व सदन की कार्यवाही में भाग लेने में बाधा पहुँचाना।
28.12.1978	श्री सुखपाल पाण्डेय (जनता पार्टी)	श्री गोकरन सिंह अधिशासी अभियंता (सा0नि0वि0) बस्ती	शिकायत0 के प्रति अपमान जनक व धमकी भरे शब्दों का प्रयोग।
25.1.1980	अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट	–	विधान सभा के अधिकारियों व कर्मचारियों को न्यायालय में साक्ष्य हेतु बुलाने तथा सचिव विधान सभा की अभिरक्षा में रखे गये लेखों को न्यायालय में प्रस्तुत करने का प्रक्रिया सम्बन्धी प्रश्न।

अष्टम विधानसभा–

23.1.1980	श्री श्री कृष्ण गोयल सदस्य विधान परिषद	क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी श्री अरूण कुमार	शिकायतकर्ता के साथ अभद्र व्यवहार

तिथि जिसदिन विशेषाधिकार भग की शिकायत का प्रश्न उपस्थित हुआ	शिकायत कर्ता	जिनके विरूद्ध शिकायत की गयी	शिकायत की प्रकृति
16.7.1980	श्री बदन सिंह सदस्य विधान सभा (जनता पार्टी) एस. चरण सिंह	रवि शंकर त्रिपाठी सी.ओ. पुलिस खैराबाद जिला आगरा	शिकायतकर्ता के साथ अभद्र व्यवहार व धमकी भरे शब्दों का प्रयोग
7.10.1980	श्री राम आसरे वर्मा (निर्दलीय)	लखनऊ प्रोडयूसर्स कोआवरेटिव मिल्क यूनियन लि0 के फैक्ट्री मैनेजर, उप सचिव व विधि अधिकारी	वर्ष 1980 के प्रथम सत्र के छठे सोमवार के लिये निर्धारित तारांकित प्रश्न संख्या1 को वापस लेने के लिए दबाव डालना ।
7.3.1983	अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट	–	जुडीशियल मजिस्ट्रेट जिला जालौन उरई के न्यायालय में प्रस्तुत करने हेतु कतिपय लेखों की प्रतिलिपियों की मांग पर उन्हें सदन की कार्यवाही से सम्वद्ध अप्रकाशित लेखों को दिये जाने के संबन्ध में ।
27.1.1981	श्री हरिवंश सहाय (जनता दल) चौधरी चरण सिंह	पुलिस अधीक्षक, देवरिया	झूठे आरोपों में गिरफ्तार कर सदन की कार्यवाही में उपस्थित होने में व्यवधान डालना ।
23.3.1981	श्रीमती गौरा देवी सदस्या विधान सभा (जनता पार्टी)	जिलाधिकारी गोरखपुर डा०श्री सूर्य प्रसाद	विधान सभा के भीतर क्रिया कलापों को जानबूझ कर प्रभावित करने का प्रयास व दबाव डालने का प्रयास ।
26.8.1982	श्रीमती प्रेमवती सदस्या वि0सभा (जनता एस. चरण सिंह)	तहसीलदार, श्री खजान सिंह गून्नार, बदायूँ	शिकायत कर्ता के साथ अभद्र व व धमकी भरे शब्दों का प्रयोग
20.3.1982	श्रीमाता प्रसाद पाण्डेय	थानाध्यक्ष. त्रिलोक, बस्ती श्री जय पति नाथ	विधायी कार्यों में अवरोध व जीवन समाप्ति की धमकी

संदर्भिका

प्राथमिक स्त्रोत :

1- इण्डियन काउन्सिल रिपोर्ट्स, 1962-74

2- इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट, 1861

3- इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट , 1892

4- इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट , 1909

5- उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया नियमावली, 1951

6- उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली, 1958

7- उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, 1958, जैसा कि वह विधान सभा द्वारा 7 दिसम्बर 1966 को संशोधित की गयी ।

8- उ0प्र0 विधान सभा की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली , 9 अक्तूबर,1978 तथा यथा संशोधित ।

9- उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाहियाँ , 1952 से 1985 तक ।

10- उत्तर प्रदेश विधान सभा के कार्यों का संक्षिप्त सिंहावलोकन , 1957-85 (विधान सभा - सचिवालय द्वारा प्रकाशित)

11- उत्तर प्रदेश विधान सभा के दैनिक कार्यवृत्त , 1962-1985, (विधान सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित)

12- उत्तर प्रदेश विधान सभा में अध्यक्ष पद से दिये गये निर्णयों का संकलन, 1957-85 (विधान सभा- सचिवालय द्वारा प्रकाशित)

13- उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्यों का जीवन परिचय : द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम, षष्टम, सप्तम, अष्टम, विधान सभा (विधान सभा- सचिवालय द्वारा प्रकाशित)

14- उत्तर प्रदेश विधान सभा की समितियों के प्रतिवेदन 1952-1985

15- उत्तर प्रदेश विधान सभा के बिल रजिस्टर ।

16- उत्तर प्रदेश लेजिस्लेचर : ए हिस्टारिकल स्केच, विधान सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित , 1976

17- उत्तर प्रदेशीय विधानों के संक्षिप्त विवरण, 1952-1985, विधायिका विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित ।

18- गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट 1919

19- गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट , 1935

20- निर्वाचन निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित निर्वाचन परिणाम (प्रथम विधान सभा से अष्टम विधान सभा तक)

21- प्रिविलेज डाइजेस्ट (त्रैमासिक) 1952-85 तक, लोक सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित)

22- भारत का संविधान (रजत जयन्ती संस्करण) विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, 1975

23- सेन्सस आफ इण्डिया , 1881

द्वितीयक स्रोत : (अ) पुस्तकें

1- अग्रवाल आर0एन0 : फाइनेन्सियल कमेटीज आफ इण्डियन पार्लियामेंन्ट, एस चाँद एण्ड कं0 दिल्ली - 1966

2- आग, एफ0ए0 : यूरोपियन गवर्नमेंट्स एण्ड पालिटिक्स, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क- 1948

3- कश्यप, एस0सी0 : दि पालिटिक्स आफ पावर: डिफेक्शन एण्ड स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली- 1974

4- काक्स,सर वी0 : यूरोपियन पार्लियामेन्ट्स, हर मैजेस्टीजस स्टेशनरी आफिस लन्दन, 1973

5- किल्विन, आर 0 : पार्लियामेन्टरी प्रोसीजर इन साउथ अफ्रीका, जूटा एण्ड कम्पनी लि0, केपटाउन एण्ड जोहान्सवर्ग, 1950

6- कीथ, ए0बी0 : दि ब्रिटिश कैबिनेट सिस्टम स्टीवेन्स एण्ड सन्स लि0 , लन्दन 1952

7- कीथ, ए0बी0 : दि किंग एण्ड दि इम्पीरियल क्राउन लागमेन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, लन्दन, न्यूयार्क औरटोरोन्टो,1936

8- कैम्पियनजी0 : एन इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रोसीजर आफ दि हाउस आफ कामन्स, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन,1950

9- कैम्पियन सर जी0 एण्ड लिडरडेल : यूरोपियन पार्लियामेन्टरी प्रोसीजर; जार्ज एलेन एण्ड अनविन्, लन्दन , 1953

10- कोठारी, रजनी : पालिटिक्स इन इण्डिया, ओरियेन्ट एण्ड लागमैन कं0 लि0, दिल्ली, 1970

11- कोठारी रजनी : कास्ट इन इण्डियन पालिटिक्स ,ओरियेन्ट एण्ड लागमैन कं0 लि0 , दिल्ली, 1970

12- कौल, एम0एन0 एण्ड शकधर, एस0एल0 : संसदीय प्रणाली एवं व्यवहार मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1972

13- कौल, एम0एन0 एण्ड शकधर, एस0एल0 : प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ पार्लियामेंट, मेट्रोपोलिटन बुक कम्पनी, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1972 तृतीय संस्करण, 1978

14-	गुप्ता वी0डी0	:	कम्पैरेटिव स्टडी आफ सिक्स लिविंग कान्स्टीट्यूशन्स, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा0लि0 , नयी दिल्ली, 1974
15-	चतुर्वेदी, आर0जी0	:	दि प्रेसीडेन्ट एण्ड दि काउन्सिल आफ मिनिस्टर्स दि इन्स्टीट्यूट आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्टरी स्टडीज, नयी दिल्ली, 1971
16-	चेस्टर,डी0एन0व चावरिंग , एन0	:	क्वेश्चन्स इन पार्लियामेन्ट, क्लेरेन्डन प्रेस , आक्सफोर्ड 1962
17-	छावड़ा, जी0एस0	:	एडवान्स्ड स्टडी इन दि कान्सटीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया (1773-1774) न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कं0 जालन्धर, 1973
18-	द्विवेदी, एस0के0	:	उ0प्र0 विधान सभा का कार्यसंचालन , सुलभ प्रकाशन , लखनऊ - 1985
19-	जहीर, एम0 एण्ड गुप्ता जगदीश	:	दि आर्गनाइजेशन आफ दि गवर्नमेंट आफ उ0प्र0, एस0 चाँद एण्ड कं0 , नयी दिल्ली, 1970
20-	जिन्क, एच0	:	मार्डन गवर्नमेंट्स, डी वान नास्ट्रेण्ड कं0 प्रिस्टन न्यूजर्सी, न्यूयार्क 1958
21-	जैन सी0एम0	:	स्टेट लेजिस्लेचर्स इन इण्डिया , एस0 चाँद एण्ड कं0, नयी दिल्ली, 1972
22-	डायसी, ए0वी0	:	इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ दि ला आफ दि कान्स्टीट्यूशन , मैकमिलन एण्ड कं0 लिमिटेड, लन्दन- 1962
23-	दास, एस0सी0	:	दि कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया, ए कम्परैटिव स्टडी चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1968
24-	दुबे, माया	:	दि स्पीकर इन इण्डिया, एस0 चाँद एण्ड कं0 , नई दिल्ली, 1971
25-	नारायण इकबाल (सं0)	:	भारतीय सरकार एवं राजनीति, खण्ड-1, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , 1974
26-	नारायण , इकबाल	:	स्टेट पोलिटिक्स इन इण्डिया, मीनाक्षी पब्लिशर्स, मेरठ,1976
27-	पचौरी पी0एस0	:	संसदीय पद्धति, हिन्दुस्तानी बुक डिपो, लखनऊ,1953
28-	पचौरी पी0एस0	:	विधायन प्रणाली, सूचना विभाग , उत्तर प्रदेश सरकार, 1969
29-	पराजेय स्च0जी0तथा विशारद एम0एम0	:	संसदीय समिति प्रथा, भारतीय संसदीय समितियों का विशेष परिचय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित , 1968
30-	पायली, एम0वी0	:	दि कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1960

31- पाई, ल्यूसियन डब्ल्यू, (सम्पादित) : पोलिटिकल कल्चर एण्ड डेवलपमेंट प्रिन्सटन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1965

32- पिसानेल, जी0 कोंडैसी : पार्लियामेन्ट्स, इण्टर पार्लियामेन्टरी यूनियन, लन्दन,1962

33- पुनैय्या,के0बी0 : दि कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया, 1925

34- फर्टयाल एच0एस0 : रोल आफ दि अपोजीशन इन इण्डियन पार्लियामेंट, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद , 1971

35- फाइनर एच0 : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मार्डन गवर्नमेंट्स, मेथ्यून एण्ड कं0, लंदन, 1956

36- फाइनर एच0 : गवर्नमेण्ट्स आफ ग्रेटर यूरोपियन पार्वस, मैथ्यून एण्ड कम्पनी, लन्दन- 1956

37- फाइनर एच0 : दि मेजर गवर्नमेण्ट्स आफ मार्डन यूरोप, मैथ्यून एण्ड कम्पनी, लन्दन 1960

38- बसु डी0डी0 : इन्ट्रोडक्शन टु दि कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया, प्रा0लि0 नई दिल्ली- 1978

39- बसु डी0डी0 : कमेण्ट्री आन दि कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया , खण्ड-1,2,3 व 4

40- बसु डी0डी0 : कान्स्टीट्यूशनल ला आफ इण्डिया , प्रेन्टिस हाल आल इण्डिया , प्रा0लि0 , नयी दिल्ली, 1978

41- ब्राइस, लार्ड : मार्डन डेमोक्रेसीज , मैकमिलन एण्ड कं0 लन्दन ।

42- भगवान विष्णु : कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड नेशनल गवर्नमेंट , आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली- 1969

43- भल्ला आ0पी0 : इलेक्शन्स इन इण्डिया (1950-70) एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नयी दिल्ली, 1973

44- भालेराव एस0एस0 (सम्पादक) : विधान मण्डलों में द्वितीय सदन का स्थान, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1977

45- म्योर रैम्जे : हाउ पार्लियामेंट वर्क्स, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1967

46- मारिस, ए0 : दि ग्रोथ आफ पार्लियामेन्टरी स्कुटिनी वाई कमेटी, परगैमन प्रेस , आक्सफोर्ड, 1970

47- मोरिस जोन्स, डब्ल्यू0 एच0 : दि गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स आफ इण्डिया , हचिन्सन एण्ड कं0, लन्दन, 1967

48- मारिस जोन्स, डब्ल्यू एच0 : पार्लियामेन्ट इन इण्डिया, लांगमैन्स, ग्रीन एण्ड कम्पनी, लन्दन-1959

49- मारिसन, हरबर्ट : गवर्नमेंट एण्ड पार्लियामेंट , आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1959

50- माल्या एन0एन0 : इण्डियन पार्लियामेण्ट , नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1970

51- मिल जे0एस0 : आन लिबर्टी एण्ड कन्सीडरेशन्स आन रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट, बेसिल ब्लैकवेल, आक्सफोर्ड, 1946

52- मुखर्जी, ए0आर0 : पार्लियामेण्ट्री प्रोसीजर इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967

53- मुखर्जी , पी0वी0 : दि इण्डियन कान्स्टीट्यूशन, चेन्ज एण्ड ,चैलेन्ज, रूपक पब्लिशर्स,कलकत्ता, 1976

54- मुनरी,डब्ल्यू0वी0 एण्ड अयरेस्ट मार्ले : दि गवर्नमेंट्स आफ यूरोप , दि मैकमिलन कं0, न्यूयार्क, 1954

55- मे, थामस इर्सकिन : ट्रीटाइज आन दि ला, प्रिविलेजेज , प्रोसीडिंग्स एण्ड यूजेज आफ पार्लियामेंट (पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस) बटरवर्थ एण्ड कं0, लन्दन, 18वाँ संस्करण 1971 तथा 19वाँ संस्करण 1976

56- मेरेट जान : हाऊ पार्लियामेंट वर्क्स, स्टलेज एण्ड केगनपाल, लन्दन,1960

57- यंगरोनाल्ड : दि ब्रिटिश पार्लियामेंट फेवर एण्ड फेवर, लन्दन-1962

58- राव, बी0 : इण्डियाज कान्सटीट्यूशन इन दि मेकिंग, एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1963

59- लाल0 ए0बी0 (सं0) : इण्डियन पार्लियामेंट, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1956

60- व्हेयर के0सी0 : गवर्नमेंट बाई कमेटी, क्लेरेन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड,1955

61- बाइण्डिंग, एन एण्ड लाउन्ड्री,फिलिप : एन इन साइक्लोपीडिया आफ पार्लियामेंट, कैसेल एण्ड कं0 लि0 , लन्दन, 1961

62- लास्की , एच0 जे0 : पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन इग्लैण्ड,, जार्ज एलेन एण्ड अनविन, लन्दन, 1963

63- वाकर , हार्वे : दि लेजिस्लेटिव प्रोसेस, ला मेकिंग इन दि यूनाइटेट स्टेट्स । दि रोनाल्ड प्रेस कं0 न्यूयार्क, 1948

64- विनोद विजय : उ0प्र0 विधान सभा में विपक्ष -राधा पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली

65- वीनर, माइरन : पार्टी पालिटिक्स इन इण्डिया , प्रिन्सटन यूनीवर्सिटी प्रेस 1957

66- शकधर,एस0एल0(सं0) : संविधान और संसद, (गणतंत्र के 25 वर्ष) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1975

67- शकधर, एस0एल0 : गिलम्पसेस आफ दि वर्किंग आफ पार्लियामेन्ट, मेट्रोपालिटन बुक कं0 प्रा0 लि0,नयी दिल्ली- 1977

68- सईद, एस0एम0 : दि कमेटीज आफ यू0पी0 लेजिस्लेचर, आई0सी0एस0 एस0 आर0 नयी दिल्ली की वित्तीय सहायता से स्वत: प्रकाशित , 1973

69- सईदएस0एम0 : भारतीय राजनीतिक प्रणाली, दि मैकमिलन कं0 आफ इण्डिया लि0, नयी दिल्ली, 1978

70- श्रीनिवास एम0एन0 : सोशल चेन्ज इनमार्डन इण्डिया, एलाइड पब्लिशर्स, दिल्ली-1966

71- हर्टमैन एच0एस0 : पालिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ,1974

लेख ::

1- अग्रवाल के0एन0 : दि स्पीकर इन इण्डिया, समरीसेन्ट क्वेश्चन्स, जर्नल आफ सोसाइटी फार दि स्टडी आफ स्टेट गवर्नमेंट्स , वाराणसी, अंक 3, खण्ड-9, जुलाई-सितम्बर,1968

2- अग्रवाल एच0सी0 : विधेयकों के प्रकार, लोकतंत्र समीक्षा , नयी दिल्ली, अंक-1 वर्ष 2, जनवरी-मार्च, 1970

3- खाडिलकर, आर0के0 : पार्लियमेन्ट एण्ड पब्लिक एक्सपेन्डिचर, दि पालिटिकल क्वालिटी , लन्दन, अंक-9,खण्ड 44, अप्रैल-जून,1963

4- गिरी, वी0वी0 : पावर्स आफ प्रिसाइडिंग आफीसर्स इन इण्डियन लेजिस्लेचर्स, जर्नल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, नई दिल्ली, अक्तूबर-दिसम्बर,1968

5- ग्रिफिथ जे0ए0जी0 : दि लेजिस्लेटिव प्रोसेस इन दिन हाउस आफ कामन्स, जर्नल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, अंक 3, खण्ड-6, जुलाई- सितम्बर, 1972

6- गदोक, डी0ए0 : स्टीमिट्स कमेटी आफ लोकसभा , दि जर्नल आफ पार्लियमेन्ट्री , इन्फार्मेशन, नयी दिल्ली, अंक-1, खण्ड 21, जनवरी-मार्च, 1975

7- दहिया, एस0एम0 : राज्यपाल का विधान मण्डल के समक्ष अभिभाषण करने का अधिकार तथा उसके संभावित परिणाम संसदीय पत्रिका , नयी दिल्ली, अंक 3, खण्ड 18, जुलाई 1972

8- देशपाण्डे एन0आर : दि रोल आफ दि गर्वनर इन दि पार्लियमेन्ट्री गवर्नमेन्ट्स इन दि स्टेट्स, दि इण्डियन जर्नल आफ पालिटिकल साइंस, इंडियन पालिटिकल साइंस एसोसियेशन,अंक-1, खण्ड-20, जनवरी-मार्च-1959

9- देसाई , सी0सी0 : विधानतंत्र में समितियों की भूमिका , लोकतंत्र समीक्षा, नयी दिल्ली, अंक-1, वर्ष-2, जनवरी - मार्च,1970

10- पचौरी पी0एस0 : विधानतंत्र में समितियों की भूमिका , लोकतंत्र सीमक्षा, नयी दिल्ली, अंक-1, वर्ष - 2, जनवरी- मार्च 1970

11- पचौरी पी0एस0 : ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ दि लेजिस्लेचर इन उत्तर प्रदेश-दि जर्नल आफ पार्लियमेन्ट्री इन्फारमेशन, नयी दिल्ली, अंक - 10, 1964

12- बनर्जी, डी0एन0 : कान्स्टीट्यूशनैलिटी आफ गवर्नर्स एड्रेस, अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, अप्रैल 1, 1969

13- भाम्भरी, सी0पी0 : रोल आफ अपोजीशन इन दिन हाउस आफ पीपुल , 1952-56, मार्डन रिव्यू , कलकत्ता, अंक - 6, खण्ड 101, जुलाई 1957

14- भारद्वाज आर0सी0 : प्राइवेट मेम्बर्स बिल्स , देयर यूटिलिटी एण्ड इम्पैक्ट, जर्नल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज, नई दिल्ली , अंक-1, खण्ड-5, जनवरी-मार्च,1971

15- मावलंकर जी0वी0 : दि डबलपमेंट आफ पार्लियामेन्ट्री प्रोसीजर इन इण्डिया, एशियन रिव्यू, खण्ड 49, जून 1953

16- मित्थल डी0एन0 : लेखानुदान, लोकतंत्र समीक्षा, नयी दिल्ली, अंक-2, वर्ष-2 अप्रैल - जून, 1970

17- मित्थल डी0एन0 : संसदीय प्रक्रिया , लोकतंत्र समीक्षा, नयी दिल्ली, अंक-1, वर्ष - 2, जनवरी- मार्च 1970

18- मेहरोत्रा, के0एन0 : संसदीय प्रणाली में प्रश्न तथा उसकी प्रक्रिया, संसदीय दीपिका, अंक -1, खण्ड-3 , जनवरी-मार्च, 1978, उ0प्र0 विधान सभा सचिवालय, लखनऊ द्वारा प्रकाशित

19- राव के0वी : स्टेट लेजिस्लेचर्स इन इण्डिया, देयर पावर्स एण्ड प्रिविलेजेस, मार्डन रिव्यू, कलकत्ता, अंक-6, खण्ड-95, जुलाई - 1954

20- सईद, एस0एम0 : प्रिविलेज मोशन्स इन यू0पी0 असेम्बली, जर्नल आफ दि सोसाइटी फार दि स्टडी आफ स्टेट एण्ड गवर्नमेंट्स, वाराणसी, जुलाई-सितम्बर, 1970

21- सईद एस0एम0 : "नो कान्फीडेन्स मोशन्स इन यू0पी0 असेम्बली— ए केस स्टडी" जर्नल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज , अंक-2 खण्ड-5, प्रैल-जून,1971

22- सूपकार एस0 : प्रश्नकाल: संसदीय पत्रिका , नई दिल्ली, अंक-3 जुलाई-सितम्बर 1984

समाचार-पत्र :: : दैनिक आज (लखनऊ), दि इण्डियन एक्सप्रेस, दि टाइम्स आफ इण्डिया(लखनऊ, नई दिल्ली), दि पायनियर(लखनऊ), दि स्टेट्स मैन (नई दिल्ली), दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नेशनल हेराल्ड(नई दिल्ली,लखनऊ), सेमिनार (मासिक),दिल्ली आदि ।